पारसी थियेटर : उद्भव और विकास

डॉ० सोमनाथ गुप्त
भूतपूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

स म र्प ण

जिन्होंने नाटक मंडलियाँ बनाकर नाट्यकला का प्रचार किया,
जिन्होंने नाट्यशालायें बनवाकर अभिनय को प्रोत्साहन दिया,
जिन्होंने अभिनेता बनकर अभिनयकला को लोकप्रिय बनाया,
जिन लेखकों ने गुजराती, हिन्दी और उर्दू में अनेकों नाटक रचे,
जिन्होंने गानों को संगीतबद्ध कर शास्त्रीय संगीत की रक्षा की,
जिन्होंने पारसी रंगमंच और तत्सम्बन्धी विवरण लिखे—
उन सभी,
पारसियों, गैर-पारसियों, हिन्दुओं, मुसलमानों और ईसाइयों
की पुण्य-स्मृति में यह ग्रंथ उन्हें कृतज्ञतापूर्वक समर्पित है।

जयपुर
सन् १९६९ —सोमनाथ गुप्त

दो शब्द

सन् १९४७ में मैंने 'हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास' लिखा था। उसमें एक अध्याय 'रंगमंच और रंगमंचीय नाटक' भी था। इस अध्याय में जो सामग्री मुझे उस समय तक उपलब्ध हो सकी उसका विवरण दे दिया गया था। मेरी पुस्तक के बाद कई शोधप्रबन्ध हिन्दी नाटक साहित्य के विषय में लिखे गये परन्तु किसी ने भी इस अछूते प्रसंग पर अधिक प्रकाश नहीं डाला। एक शोधप्रबन्ध श्री डा० पवनकुमार मिश्र ने 'पारसी रंगमंच: उसके नाटक और नाटककारो का आलोचनात्मक अध्ययन' अपनी पी-एच० डी० की उपाधि के लिए लिखा जो अभी तक अप्रकाशित है। यद्यपि डा० मिश्र ने अपने प्रबन्ध को नितान्त मौलिक बताया है परन्तु उसका मूल आधार गुजराती में लिखा हुआ डा० धनजीभाई न० पटेल का 'पारसी नाटक तख्तानी तवारीख' है। दूसरी बात यह है कि उन्होंने केवल तीन नाटककारों को ही अपने अध्ययन का विषय बनाया है—राधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद 'बेताब' और आगा 'हश्र'। पारसी रगमच के अन्य भी नाटककार थे और उक्त तीनों नाटककारों से काफी पहले के थे। परंतु उन्होंने हिंदी के रंगमंच और रंगमंचीय नाटको को पारसी रगमंच से पहिले खोजने का प्रयास नहीं किया। न यही देखा कि उनके चुने हुए तीन नाटककारों की अपेक्षा और भी कोई नाटककार थे या नहीं।

श्री बलवंत गारगेयी ने अपनी रचना 'थियेटर इन इण्डिया' में हिन्दी के आदि रंगमंच पर कोई नया प्रकाश नही डाला। उन्होंने तो कई इतिहासपरक भूलें भी की है, यथा सन् १८७० मे 'पारसी रगमंच की स्थापना' अथवा सन् १८६५ में कैखसरू कावरा जी द्वारा थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना। उनके अग्रज डा० याजनीक ने अवश्य अपने 'इण्डियन थियेटर' में सन् १७७० में वर्तमान एक नाट्यशाला का उल्लेख किया है जिसका नाम बम्बई थियेटर था।

वास्तव में सर्वप्रथम तथ्य श्री डा० नामी ने अपने कुछ लेखों तथा पुस्तक 'उर्दू थियेटर' में वर्णित किए थे। परन्तु उनकी सबसे अधिक विवादास्पद

धारणा यह है कि उन्होने प्रत्येक हिन्दी एवं हिन्दुस्तानी में लिखे नाटक को 'उर्दू नाटक' मान लिया है ।

भावेकृत 'गोपीचन्द' नाटक को उन्होंने उर्दू का नाटक माना है जो नितांत असत्य है । संभवतः उन्होंने उस नाटक को देखा ही नही। केवल कल्पना से एक निष्कर्ष निकाला अथवा संभव है उसके अभिनय के विज्ञापन में जो 'इन हिन्दुस्तानी' शब्द छपे थे उससे उन्होंने मान लिया कि नाटक उर्दू में था ।

प्रस्तुत पुस्तक मे यह प्रयास किया गया है कि प्रामाणिक सामग्री के आधार पर आधुनिक नाट्यशाला और हिन्दी के रंगमंच का बुनियादी विवरण प्रस्तुत किया जाय। जहाँ से भी जिस सूत्र की सूचना प्राप्त हुई है वहाँ का उल्लेख उचित स्थान पर कर दिया गया है । पाठकों की सुविधा के लिए आवश्यक उद्धरण भी दे दिये गये है । जिन-जिन से मुझे सहायता मिली है मैं उन सभी लेखकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ ।

मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत सामग्री हिन्दी रगमंच के अध्येताओं को उपयोगी सिद्ध होगी । रजवाड़ों में पारसी थियेटर का प्रारम्भ स्वयं एक अध्ययन का विषय है वह दूसरे खंड मे प्रकाशित किया जायेगा।

मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली का विशेष रूप से आभारी हूँ जिसने मुझे 'शोध एवं अध्यापनवृत्ति' देकर इस कार्य मे प्रेरणा एव आर्थिक सहायता दी है ।

जयपुर —सोमनाथ गुप्त
सन् १९६९

आमुख

यह धारणा कि किसी ने कभी भी पारसी थियेटर पर नहीं लिखा, सही नहीं है। निस्सदेह इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम लिखने वाले पारसी लेखक ही थे। परन्तु उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह अपर्याप्त भी है, कही-कहीं गलत भी है और कहीं-कहीं समस्याओं को सुलझाने की अपेक्षा उलझा देने वाला है।

प्रस्तुत रचना में यथास्थान यह बताया गया है कि विक्टोरिया थियेट्रिकल मंडली की स्थापना से पहले भी पारसियों और गैर-पारसियों की मडलियाँ नाटक किया करती थी परन्तु बड़े और सुदृढ़ स्तर पर नाट्य-कला को प्रतिष्ठित करने का श्रेय विक्टोरिया, एलफिंस्टन और ज़ोरास्ट्रियन नाटक मंडलियों को ही था। अतएव थोड़ी बहुत जानकारी इनके सम्बन्ध में गुजराती के साप्ताहिक पत्र 'रास्तगोफ़्तार' से मिलती है। इसके सपादक कैखुसरु कावराजी थे जो स्वयं नाटककार, निर्देशक और अभिनेता थे। उनके पत्र की पुरानी फ़ाइलो में कुछ स्थानों पर नाटक विषयक विभिन्न चर्चायें मिलती हैं जिनसे तत्कालीन परिस्थितियों का पता चलता है। 'रास्तगोफ़्तार' में छपे विवाद अनेक पहलुओ पर प्रकाश डालते हैं। यद्यपि उनमे कोई क्रमिक इतिहास नहीं है परन्तु फिर भी उन्हें भुलाया नही जा सकता। वे महत्वपूर्ण है।

अंगरेजी के 'बाम्बे टाइम्स' और 'बाम्बे कौरियर एण्ड टेलिग्राफ़' की पुरानी फ़ाइलें अनेकों सूचनाओ से भरी पड़ी है। दुख की बात यही है कि पूरी फाइलें सुरक्षित रूप में एक स्थान पर उपलब्ध नही होती। महाराष्ट्र सरकार के 'आलेख और पुरातत्व विभाग' में जो सामग्री मिलती है वह बड़ी ही जीर्ण और शीर्ण अवस्था में है। कभी-कभी तो उसे हाथ लगाने मे भी डर लगता है। अँगुली लगते ही कागज फट जाता है। कही पन्ने परस्पर चिपक गये हैं कि उन्हें पृथक् करने के लिए किसी कोमल कलाकार की अंगुलियो की आवश्यकता प्रतीत होती है।

समाचारपत्रों की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गुजराती साप्ताहिक 'कैसरेहिन्द' है। इसी पत्र मे धनजी भाई नसरवानजी पटेल के पारसी नाटक

सम्बन्धी अनेकों लेख निरंतर रूप से प्रकाशित हुए थे। इन लेखों में से २७ से लेकर ९४ तक संख्यापरक लेखों का संग्रह 'पारसी तख्तानी तवारीख भाग २' के नाम से सन् १९३१ में "कैसरे-हिन्द प्रेस" से ही प्रकाशित हुआ था। इन लेखों में अधिकांशतः पारसी अभिनेताओं की चर्चा है। यथास्थान कुछ नाटक मंडलियों, उनके मालिकों और निर्देशकों का विवरण भी आ गया है। अतएव यह पुस्तक जो अब अप्राप्य है, पारसी थियेटर के अध्ययन के लिए बड़ी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। जैसा लेखक ने लिखा है, उसके विवरण लगभग ५० वर्ष की स्मृति पर अवलम्बित हैं, अतएव उनमें कई जगह कुछ तारतम्य मिलता नहीं परन्तु फिर भी अन्य स्रोतों से प्राप्त होने वाली सामग्री के संदर्भ पर, धनजी भाई पटेल की तवारीख, मील का एक पत्थर है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। निस्संदेह पारसी थियेटर पर मौलिक रूप से लिखने के दावेदारों ने धनजीभाई की रचना का उपयोग निस्संकोच किया है और उसके आभार को स्वीकारा नहीं है।

उक्त लेखमाला के प्रथम २६ लेख भी कैसरे-हिंद में निरंतर निकले थे। उनमें पर्याप्त लाभप्रद सामग्री दी हुई है परन्तु प्रतीत होता है पारसी रंगमंच पर लिखने वालों ने उनको पढ़ने और ढूँढ निकालने का कष्ट नहीं उठाया। मुझे सौभाग्य से, 'कैसरे-हिन्द' के वर्तमान सम्पादक श्री हीरजीबोहिदीन की कृपा से, उन फाइलों को देखने का अवसर मिल गया। फाइलें गली, सड़ी, दीमक-चाटी और अस्त-व्यस्त पन्नों की थी परन्तु फिर भी उपयोगी थी। धनजी भाई पटेल के लिखे और छपे ये दोनों भाग प्रस्तुत ग्रन्थ रचना में बड़े उपयोगी और महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुए। वास्तव में इसकी अधिकांश सामग्री धनजी भाई की ही सामग्री है। मैंने उसे हिन्दी में अपने रूप से और अपनी आवश्यकता के अनुसार ले लिया है और अन्य सामग्री के साथ उसका नाता जोड़ दिया है। जहाँगीर खंबाता की रचना 'मारो नाटको अनुभव' भी बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई है। धनजी भाई की पुस्तक में दी हुई घटनाओं के अनेक संकेत जहाँगीर की पुस्तक से स्पष्ट हो गए हैं। नाटक के सम्बन्ध में जहाँगीर के विचारों का संग्रह तो उसमें है ही परन्तु और भी महत्त्वपूर्ण प्रसंग उसमें यथास्थान आए हैं। सभी नाटक मंडलियाँ जहाँगीर की अभिनय कला और निर्देशन शक्ति का लोहा मानती थी। दुर्भाग्य यही था कि जहाँगीर को किसी बात में स्थिरता प्राप्त नहीं हुई जिसके कारण वह 'ममता भूत' की उपाधि से अलंकृत हो गये थे।

'पारसी-प्रकाश' में प्रायः सभी प्रतिष्ठित पारसियों के कृत्यों का वर्णन

है। परन्तु नाटक के इतिहास की दृष्टि से उसका सबसे बड़ा उपयोग यह जानने में है कि कौन-सा नाटक किस समय प्रकाशित हुआ। पारसी नाटककारों की रचनाओं की तिथियाँ कभी-कभी बड़ी आवश्यक प्रमाणित हुई है। उसमें विक्टोरिया नाटक मंडली का भी संक्षिप्त इतिहास है। कुछ पारसी अभिनेताओं और मडली-मालिकों के भी जीवन-संस्मरण है।

सबसे अधिक उपयोगी और प्रमाणित वे दीबाचे (भूमिकायें) हैं जो किसी-किसी नाटक के आदि में मिलते हैं। ये दीवाचे कुछ मूल नाटको मे है और कुछ कही-कही नाटक के गानों की पुस्तक में है। इन दीबाचों से यह पता चलता है कि नाटक किसने लिखा? किस नाटक मडली के लिए लिखा? कब उसका प्रकाशन हुआ? तथा नाटककार का नाटक-विशेष के लिए क्या दृष्टिकोण है? कैंखुसरू कावराजी एव रुस्तम जी नाना भाई तणीना की भूमिकायें विशेष ज्ञानवर्धक और प्रकाश डालने वाली है।

दु.ख की बात यह है कि अधिकृत रूप से प्रकाशित प्राप्य नाटकों की संख्या बहुत कम है। ये प्रमाणित नाटक प्राय: गुजराती अक्षरों में छपे है। इनमें सबसे अधिक नाटकों के प्रकाशक 'विक्टोरिया गिरोह' के मालिक है और उनमें भी खुरशेदजी बालीवाला प्रमुख हैं। दूसरे प्रकाशकों ने, जैसे जे० सन्तसिंह एण्ड संस लाहौर या उपन्यास बहार आफिस, बनारस, या जमनादास मेहता बम्बई या भाई दयालसिंह, लाहौर—जो नाटक छापे हैं उनमें अनेकों अशुद्धियाँ है। यह कहना भी कठिन है कि पाठ प्रमाणित है भी या नही। कापीराइट के फंदे से निकलने के लिए मूल नाटक के पाठ में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर देना एक साधारण-सी बात थी।

प्रस्तुत कृति में सभी प्राप्य और दुष्प्राप्य सामग्री का उपयोग किया गया है। जहाँ तक मेरा विचार है प्रस्तुत प्रबंध रचना के अतिरिक्त कोई अन्य ऐसा ग्रंथ हिन्दी में पारसी थियेटर पर नही लिखा गया जिसमें मूलभूत स्रोतों पर अवलंबित इतनी अधिक सामग्री आई हो। निबन्ध मे दिए गए अनेकों नाटककारों के नाटकों के विवरण, उनकी रचना के अध्ययन के आधार पर, प्रस्तुत है और प्राय: वे हैं जिन्हें डा० नामी ने अपने 'उर्दू थियेटर' में नहीं दिया है या बहुत ही संक्षिप्त रूप से देकर छोड़ दिया है। अतएव प्रबन्ध में पिष्ट-पेषण से बचने का यथा साध्य प्रयत्न है।

श्रीमती कुमुद अरविंद मेहता एम० ए०, पी-एच० डी० ने 'ड्रामा इन बाम्बे ड्यूरिंग द लास्ट एटीन्थ सेंच्युरी .एण्ड नाइन्टीन्थ सेंच्युरी' शीर्षक शोध-प्रबंध में (अप्रकाशित) बम्बई थियेटर का इतिहास बड़ी खोज और परिश्रम

से लिखा है । पारसी थियेटर की यह अग्रिम भूमिका है । डा० मेहता की कृपा और सौजन्य से कुछ तत्सम्बन्धी चित्र भी मुझे प्राप्त हुए हैं जिनका उपयोग यथास्थान किया गया है । मैं उनकी सहायता और शोध प्रबंध के आवश्यक अंशो का उपयोग करने के लिए दी हुई उनकी मौखिक आज्ञा के लिए आभारी हूँ । इस प्रबंध से स्पष्ट है कि पारसी थियेटर पारसियों के मस्तिष्क की उपज नहीं थी । थियेटर को व्यवसायी रूप देने तथा अंगरेजी से उसे उर्दू-हिन्दी मे लाने का श्रेय अवश्य उन्हें तथा शंकर शेट एवं माऊदा जी लाड आदि को था ।

डा० अब्दुल अलीम 'नामी' ने 'उर्दू थियेटर' के नाम से तीन भाग प्रकाशित किए हैं । मैं उनके नामकरण से मतभेद रखता हूँ । पहली बात तो यह है कि 'उर्दू थियेटर' नाम देने से पता चलता है कि थियेटर केवल उर्दू भाषा का था जो तथ्य की दृष्टि से असत्य है । पारसियों ने भी थियेटर का आरम्भ गुजराती नाटको से किया था । उर्दू-हिन्दी नाटक उनके द्वारा बाद मे अभिनीत हुए । अतएव उसे गुजराती थियेटर ही क्यो न कहा जाय ? दूसरी बात यह है कि डा० नामी जिसे उर्दू थियेटर कहते है उस पर गुजराती, मराठी, हिन्दी और हिन्दुस्तानी भाषा के भी नाटक खेले गये अतएव ऐसी अवस्था मे पारसी थियेटर को उर्दू थियेटर कहना सकुचितता और साम्प्रदायिकता का द्योतक है । तीसरा कारण यह है कि डा० नामी ने यह तो कहा है कि समस्त गुजराती नाटको का अनुवाद उर्दू मे हुआ और वे रगमच पर अभिनीत हुए । संभवतः इसी कारण उन्होने पारसी नाटककारो को अपने प्रबंध मे सम्मिलित कर लिया है । परन्तु इस निर्णय या कथन का कोई प्रमाण उन्होने नही दिया । आज उनमें से कोई भी अनुवाद उपलब्ध तक नही है । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि ऐसे पारसी नाटककारों को उर्दू-थियेटर की पंक्ति मे सम्मिलित करना उचित नही है । केवल 'आराम' ही ऐसे पारसी नाटककार थे जिनके विषय में पता चलता है कि उन्होंने कुछ मौलिक रूप से उर्दू में लिखा था और कुछ नाटक पारसी लेखकों के उर्दू मे अनूदित किए थे । यह सर्वविदित है कि उर्दू मे सबसे पहला नाटक 'पाक नाज़नीन उर्फ ज़र खरीद खुरशेद' था जिसे एदलजी खोरी के गुजराती नाटक 'सोनेना मूलनी खुरशेद' से रूपान्तरित किया गया था । अधिकतर उर्दू में लिखे नाटकों का आधार गुजराती नाटक ही थे । वे गुजराती नाटकों का अनुवाद नही थे ।

चौथा कारण यह है कि 'तालिब' और 'रौनक' जैसे आरम्भिक उर्दू

नाटककारों ने जहाँ उर्दू नाटक लिखे हैं वहाँ हिन्दी नाटक भी लिखे हैं। उनके ऊपर लिखा है 'बजबाने हिंदी, बहर्फ़ गुजराती' यथा तालिब का हरिश्चन्द्र। अतएव नाटककार अपनी भाषा के विषय में सचेत था।

इन सब कारणों से डा० नामी का उर्दू-थियेटर नामकरण अवांछित है, असत्य है और भ्रामक है। मैं मान सकता हूँ कि पारसी थियेटर के अधिकाश नाटक उर्दू भाषा में लिखे गये थे परन्तु उनमें हिन्दी का स्थान नगण्य नहीं था, और आगे चलकर आग़ा 'हश्र', 'बेताब', और राधेश्याम आदि ने—जो पारसी स्टेज के माने हुए नाटककार थे—अपने नाटकों को हिन्दी में भी लिखना आरंभ कर दिया था। उनका यह कार्य 'तालिब' के 'हरिश्चन्द्र' और 'गोपीचन्द्र' या 'राम-लीला' की शैली का ही अनुकरण था।

अतएव पारसी नाटककारों को जितना श्रेय नाट्यकला के विकास के लिए दिया जा सकता है उससे कम श्रेय गैर-पारसी नाटककारों को नहीं दिया जा सकता। गुजराती नाटकों के पश्चात् तो पारसी नाटक मंडलियाँ हिन्दी-उर्दू के नाटकों का ही अभिनय करती थी। मादन के कोरंथियन थियेटर तक यही परम्परा चलती रही। इसका अन्त तो सवाक् चल-चित्रों के आगमन पर हुआ। यहाँ तक कि पहला सवाक् चल-चित्र 'आलमआरा' उर्दू नाटक का ही चित्रपटी रूप था। 'ख़ूने-नाहक' भी 'अहसन' के नाटक का हू-बहू चित्रपटी रूप था।

आभार प्रदर्शन

मैं हृदय से निम्नलिखित महानुभावों एवं संस्थाओं के प्रति उनकी अमूल्य सहायता तथा सहयोग के लिए, अपना कृतज्ञतापूर्ण आभार प्रकट करता हूँ—

१. श्री के० टी० देशमुख, मराठी थियेटर रिसर्च सेंटर, बम्बई।
२. श्रीमती डा० कुमुदनी मेहता एम० ए०, पी-एच० डी० कुम्भाला हिल, बम्बई।
३. श्री हीरजी वेहीदीन—सम्पादक कैसरे-हिन्द, बम्बई, (कैसरे-हिन्द की संपूर्ण फाइलों के लिए)।
४. पुरातत्त्व एवं—आलेख अधिकारी—महाराष्ट्र सरकार, बम्बई।
५. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली।
६. डा० सत्येन्द्र, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर।
७. श्री सोहराब मोदी—अभिनेता—बम्बई।
८. श्री मानकशाह के० बलसारा—मालिक, न्यू आलफ्रेड नाटक मंडली, बम्बई।
९. धनजी भाई पटेल,—लेखक, पारसी तख्तानी, तवारीख।
१०. श्री गणपत लाल डागी—आकाशवाणी, जयपुर।
११. श्री जहाँगीर खंभाता—लेखक 'मारो नाटकी अनुभव'।
१२. सर्वश्री मालिकान, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

अनुक्रम

●

●

पारसी थियेटर से पूर्व । १

यदि यह सत्य है कि वर्तमान अतीत का परिणाम है और भविष्य वर्तमान का परिणाम होगा, तो मानना पड़ेगा कि पारसी थियेटर का उद्भव मौलिक रूप में न होकर उसके पहले अस्तित्व में रहनेवाले किसी अन्य थियेटर का परिणाम होना चाहिए। और यह धारणा सत्य है। पारसी थियेटर से पूर्व बम्बई में 'बम्बई थियेटर' के नाम से एक थियेटर के अस्तित्व का प्रमाण सन् १७७६ ई० में प्राप्त होता है।

बम्बई थियेटर के अस्तित्व का सबसे पहला प्रमाण श्री जान फोर्ब्स का एक उल्लेख है, जिसमें उनका कहना है, "जब मैंने बम्बई छोड़ी, उस समय लोक-भवन सामान्यतया सुन्दर की अपेक्षा उपयोगी अधिक थे। इन भवनों में प्रधान रूप से सम्मिलित हैं—राजभवन, कस्टम-भवन, मेरीन-भवन, फ़ौजी बारिकें, टकसाल, कोष-भवन, थियेटर तथा कारागार।"[1]

श्री फ़ोर्बस ईस्ट इंडिया कम्पनी में नौकर थे और सन् १७८४ में उन्होंने विश्राम लिया, अतएव उनके विवरण से सन् १७७६ में बम्बई थियेटर का अस्तित्व असंदिग्ध है।

एक अन्य प्रमाण श्री मिलबर्न का भी है। उन्होंने भी अपने संस्मरणों में बम्बई थियेटर के अस्तित्व का उल्लेख किया है। उनका कथन है, "ग्रीन के चारों ओर अनेक सुनिर्मित एवं विशाल सुन्दर गृह है—राजभवन एवं गिरजाघर जो अत्यधिक स्वच्छ, बड़ा और हवादार घर है। गिरजाघर के द्वार के बाईं ओर यह एक दूसरे के अति निकट हैं। गिरजे के द्वार के दाहिनी ओर बाजार है जिसमें बड़ी भीड़ रहती है और जो अति लोकप्रिय है तथा जहाँ पर प्रधानतया देशी व्यापारी

---

१. "When I left Bombay, the generality of public buildings were more useful than elegant, the Government House, Customs House, Marine House, Barracks, Mint, Treasury, Theatre and Prison includes the chief of these structures."
—John Forbes: Oriental Memoirs 4 vols., London 18..
vol. I, page 152.

निवास करते हैं। इसी के प्रवेश पर ही थियेटर स्थित है, जो एक स्वच्छ एव सुन्दर भवन है।" मिलवर्न महाशय कौन थे, इसका तो पता नही चलता, परन्तु उनकी पुस्तक का मुद्रण फोर्बस की पुस्तक के वर्ष मे ही हुआ था।[२] अतः मिलवर्न के कथन से भी फ़ोर्बस के उल्लेख की पुष्टि होती है।

सन् १७७६ से पहले बम्बई थियेटर के अनस्तित्व के प्रमाणों में एक उल्लेख श्री पार्सन्स की पुस्तक का दिया जा सकता है। यह पुस्तक उन्होने सन् १८१८ में छपाई थी अर्थात् सन् १७७६ से केवल ४२ वर्ष पश्चात्। इसका नाम था "Travels in Asia and Africa, London, 1818"। यह महाशय सन् १७७५ में बम्बई आए थे परन्तु इनके विवरण में कही भी बम्बई थियेटर का नाम नही आया। यदि उनके समय मे थियेटर का अस्तित्व होता तो वह अवश्य उसका उल्लेख करते। दूसरा प्रमाण श्री जे० एच० ग्रास की पुस्तक है। उन्होने 'ग्रीन' नामक स्थान का वर्णन करते हुए लिखा है, "ग्रीन एक विस्तृत क्षेत्र है जिसका आरभ किले से होता है। वह वृक्षों से युक्त चारदीवारी के अन्दर मनोरंजक रूप से बनाया गया है। उसके चारों ओर अधिकतर अँगरेजों के निवास-स्थान हैं।"[३] इसमे भी बम्बई थियेटर का कोई उल्लेख नही है।

बम्बई थियेटर में कौन से नाटक खेले गये और कब-कब उनका अभिनय हुआ, इसका कोई विवरण प्राप्त नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्थिक दृष्टि से इस थियेटर मे घाटा होता रहा, क्योंकि सन् १८३३ में इसको बेच डालने के निर्णय पर यह जाँच की गई कि बम्बई थियेटर का वास्तविक इतिहास क्या है? अतएव तत्कालीन सरकार के सचिव श्री जान बेक्स (John Bax) ने २ अगस्त सन् १८३३ को बम्बई जिलाधीश के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें पूछा

---

२. Oriental Commerce, 2 vols., London, 1813, vol. I, page 170.

३. "Green is a spacious area that continues from the fort thereto, and is pleasantly laid out in walls planted with trees a round which are mostly the houses of English inhabitants."

—J.H. Gross: Voyage to the East Indies, 2 vols, 2nd Edition, London 1761, vol. I, page 52.

गया था कि "बम्बई थियेटर का निर्माण किन मूल शर्तों पर हुआ था और उस समय से वह किन शर्तों पर (वर्तमान प्रबंधकों) के पास है ?"[४]

जिलाधीश ने इसके उत्तर में लिखा, "....राजस्व कर निरीक्षक के रेखा-चित्र एवं निरीक्षण मे यह बताया गया है कि (आलेख्य) भवन माननीय कम्पनी की सम्पत्ति है, तथा परिणामस्वरूप सरकार ने न तो कभी उसका किराया वसूल किया और न उसकी प्राप्ति का कोई उल्लेख है ।"[५]

"...*It is stated in the plan and survey of the* Revenue Surveyor to belong to the Hon'ble Company, and neither rent nor acknowledgement has consequently ever been received by the Government"

इसी प्रसंग में वह पत्र भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है जो विलियम न्यूहम ने राज्यपाल क्लेयर को लिखा था । उनका कथन है—

"बीस वर्षों से अधिक प्रबंधक के रूप मे इस थियेटर से मेरा सम्बन्ध रहा है। मैं समझता हूँ कि इसका निर्माण, सन् १७७६ में, चंदे से हुआ था। इस स्थान पर पहले अपावन जल का एक जलाशय था। बाद मे, मेरे समय में भी, सन् १८१७ में समाज द्वारा इसका पुनर्निर्माण किया गया। उस समय भी इसका वर्तमान विस्तृत आकार था और तत्कालीन बनावट के आधार पर ही इसका आज इतना मूल्य आँका जाता है, जो पहले नहीं समझा जाता था। यह उचित होगा कि अभी यह बता दिया जाय कि जिस समय प्रेसिडेन्सी (Presidency) के समाज द्वारा इसका नक़शा बनाया गया था, उस समय उन दिनों के प्रबन्धकों को यह बिल्कुल पता नहीं था कि थियेटर की भूमि (या पूर्व कथनानुसार दलदल) मूलरूप से सरकार की सम्पत्ति थी अथवा किन्हीं निजी व्यक्तियों की। उन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि भवन पर क़ब्ज़ा करने की शर्तें क्या हैं। कई वर्षों बाद सरकार के मुख्य सचिव पद पर कार्य करते हुए, आलेखों की जाँच-पड़ताल करते समय मुझे पता चला—सन् १७८९ की कार्रवाई रिपोर्टों से—कि थियेटर का क़ब्ज़ा मूल में राज्यपाल हार्नबी (Hornby) की सम्मति से (प्रबन्धकों द्वारा) लिया गया था और राज्यपाल मीडोज़

४. "....The terms on which the Bombay Theatre was originally constructed and has since been held...."
—General Department, vol. 38-A|370A for 1836, pages 13-14.

५. वही, पृष्ठ १५।

(Meadows) ने उस पर क़ब्ज़ा करने की आज्ञा दी थी, परन्तु सरकार की मर्ज़ी पर।"[६]

इसी आलेख में एक संकेत यह भी है कि सन् १७७६ से आरंभ होकर लिखी जानेवाली कार्रवाई का पूरा लेखा-जोखा एक पुस्तक में है, जो इस समय मिल नहीं रही है।[७]

यद्यपि श्री न्यूहम का सेवाकाल ३० वर्ष का दीर्घ समय था, परन्तु इस बीच में वह स्वयं कभी बम्बई थियेटर के रंगमंच पर नहीं आये। परन्तु वह बड़े कर्मठ प्रबन्धक थे और डायरियों में प्रबन्धकों की बैठकों की कार्रवाई बड़ी सावधानी एवं तत्परता से लिखते थे। आवश्यकता पड़ने पर वह चंदे के लिए अपील भी निकालते थे, अभिनेताओं के लिए वेश-भूषा भी तैयार कराते तथा उनके खाने-पीने की व्यवस्था भी वही करते थे। वास्तव में थियेटर जैसे उन्हीं की घरेलू वस्तु बन गई थी।[८]

---

६. "I have been associated with this Theatre for more than 20 years as a manager. It was built, I understand, by subscription so far back as 1776, where a tank of impure water existed, and was re-built in my time, at the expense of the community in 1817, on its present extensive scale: and the outlay on that occasion has given it a value it did not previously possess. It may be proper here to state that at the time this great outlay was made by the community of the Presidency, nothing was known to the manager of that period whether the ground (or swamp as before alluded to) was originally the property of the Government, or of private individuals, or of any condition being attached to its occupancy, and that it was not till many years after, when filling the office of Chief Secretary to the Government, that, on tracing the records, I discovered from proceedings in 1789, that it had been originally occupied with the sanction of Governor Hornby, and its continuance then sanctioned by Governor Meadows but subject to the pleasure of Government."
—General Deptt., vol. 38-A|370-A for 1836, pp. 16—18.

७. वही। यदि यह पुस्तक मिल जाती तो अनेकों भ्रम दूर हो जाते।

८. Bombay Theatre Diaries No. 601, pages 4 & 126.

अतएव बम्बई थियेटर का अस्तित्व सन् १७७६ में निर्विवाद स्थापित हो जाता है। परिशिष्ट में तत्कालीन बम्बई थियेटर का एक चित्र अवलोकनार्थ दे दिया गया है।

सत्य तो यह है कि योरोप की विभिन्न जातियाँ भारत से व्यापार करने के लिए आईं जिनमें से कुछ व्यापारी समय-समय पर बम्बई में रह गये। उन दिनों का बम्बई आज का बम्बई नहीं था। वह तीन द्वीपों में बँटा हुआ था। प्रत्येक का अपना-अपना महत्त्व था। परन्तु स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस और अँगरेजों में से अन्त में अँगरेज ही इन द्वीपों पर ठहरने में सफल हुए। 'वेलेसिस परिवार' के पत्रों और आलेखों से पता चलता है कि आरंभ में अंगरेजी समाज एक छोटा सा सैनिक समाज था, जिसके मनोरंजन के साधन सीमित थे। वे घर में ताश खेलते थे, 'मलाबार हिल' पर खरगोशों का शिकार किया करते थे अथवा 'थाना' तक घुड़दौड़ में भाग लेते थे। कुछ लोगों ने मिलकर बम्बई थियेटर का निर्माण भी मनोरंजन के लिए ही किया होगा। उस थियेटर के विकास का इतिहास कई सरणियों में बँटा हुआ है। प्रथम सरणी सन् १७७६ से लेकर सन् १८१९ तक मानी जाती है। ४३ वर्षों के दीर्घ काल में बम्बई थियेटर के सूक्ष्म विवरण प्राप्त नहीं होते। उसके संबंध का संभवतः सर्वप्रथम विज्ञापन २७ जुलाई सन् १७९३ के 'बाम्बे कोरियर' में प्रकाशित हुआ था। उस विज्ञापन से पता चलता है कि थियेटर के प्रबन्धक अँगरेज नाटककार शेरिडन के नाटक The School for Scandal का अभिनय करना चाहते थे, परन्तु वह पुस्तक उन्हें मिल नहीं रही थी। अतएव विज्ञापन द्वारा उन्होंने यह प्रयत्न किया कि किसी व्यक्ति से यदि वह प्राप्त हो जाय तो उसे खेला जाय। नाटक के नाम से पता चलता है कि किस प्रकार के नाटक बम्बई थियेटर में अभिनीत होते थे। उक्त विज्ञापन का एक चित्र परिशिष्ट में दे दिया गया है।

बम्बई थियेटर की दूसरी सरणी का समय सन् १८१९-३५ है। सन् १८१८ में थियेटर मरम्मत के लिए बंद कर दिया गया था। प्रथम जनवरी सन् १८१९ से मरम्मत-शुदा थियेटर का आरंभ हुआ। इस सम्बन्ध में 'बम्बई गजट' ने अपने ६ जनवरी सन् १८१९ के अंक में लिखा था—"होलक्राफ्ट (Holcraft) के नाटक 'The Road to Ruin' का अभिनय देखने के लिए हमारा समस्त समाज एकत्रित हुआ था। केवल वे लोग उसमें अनुपस्थित थे, जो अस्वस्थ होने के कारण अथवा किसी अति आवश्यक कार्य की वजह से नहीं आ पाये।"[१]

---

१. (Holcraft's) 'The Road to Ruin' was put on boards of

१६ वर्ष के इस लघु काल में बम्बई थियेटर को बम्बई के राज्यपाल माउण्ट-स्टुआर्ड एलफ़िस्टन (Mountstuard Elphinstone) (१ नवम्बर सन् १८१९ से नवम्बर सन् १८२७ तक) से बड़ी सहायता और प्रोत्साहन मिला। उन्होंने थियेटर को उपहारस्वरूप अनेक कामिडियाँ और प्रहसन प्रदान किए। वह स्वयं भी अभिनय देखने आते और थियेटर की आर्थिक सहायता करते। अपने इन संरक्षक की विदाई के समय थियेटर ने The Rivals का अभिनय किया था।

एलफ़िस्टन बम्बई के निर्माताओं में माने जाते है। यही कारण है कि उनके नाम के साथ बम्बई का एक कालेज, मिल, पुल और सड़क आदि संलग्न है। एलफ़िस्टन के प्रस्थान के पश्चात् बम्बई थियेटर के ऊपर विस्मृति और अकर्मण्यता के गहरे बादल छा गये। परन्तु उस समय के पत्रों और पत्रिकाओं से पता चलता है कि थियेटर के ये १६ वर्ष बड़ी चहल-पहल में बीते। साथ ही थियेटर पर ऋण का भार बढ़ता गया और अन्त में यह निश्चय हुआ कि थियेटर भवन बेच दिया जाय। और अक्तूबर सन् १८३५ मे जमसेत जी जीजीभाई ने ५०,००० रुपये में उसे खरीद लिया। थियेटर पर उस समय ऋण की राशि निकालकर २७,३७९ रुपये शेष रहे, जो सरकारी कोष में जमा करा दिए गये। १० वर्ष तक थियेटर बंद रहा। इस अवधि के पश्चात् फिर बम्बई के लोगों को अपने मनोरंजन के लिए नये थियेटर की आवश्यकता प्रतीत हुई। जनता ने आवाज उठाई और बम्बई के प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं ने इस आन्दोलन को जी खोलकर अग्रसर किया। परिणाम यह रहा कि पिछले थियेटर की बिक्री की शेष राशि नये थियेटर के निर्माण के लिए देने का वायदा सरकार ने कर लिया। प्रश्न स्थान का रहा। बम्बई के एक सम्भ्रान्त श्रेष्ठी श्री जगन्नाथ शंकर सेट ने वर्तमान ग्रांट रोड पर एक भूखण्ड थियेटर के लिए अपनी इच्छा से दान कर दिया। स्थान का प्रश्न भी हल हो गया और नये थियेटर का निर्माण आरंभ हो गया। इस कार्य के लिए निर्मित समिति ने भरपूर प्रयत्न से थियेटर को शीघ्र से शीघ्र समाप्त करने का बीड़ा उठाया। थियेट्रिकल समिति के सभापति श्री एच० फासेट (H. Fawcett) की ओर से थियेटर के लिए एक ड्रापसीन का पर्दा उपहार में दिया गया जिसे इंग्लैंड में तैयार कराया गया था।

---

the renovated theatre. The audience consisted of the whole of our society that were not prevented from attending by ill health or very urgent business."

आखिर १० फरवरी सन् १८४६ को नये थियेटर का उद्घाटन हुआ। नाम 'ग्राट रोड थियेटर' रखा गया। यही से तीसरी सरणी आरंभ होती है। इसमें आरम्भ में अँगरेजी नाटक भी होते थे यद्यपि 'बाम्बे ग्रीन' और 'फ़ोर्ट क्षेत्र' से यह स्थान बड़ा दूर पड़ता था और आने-जाने मे अनेको संकटो का सामना करना पड़ता था, फिर भी अँगरेज जनता अपने मनोरंजन के लिए यहाँ आती थी।

सन् १८४६ का यही 'ग्राट रोड थियेटर' वह नाट्यगृह था, जिसमें पारसियों और हिन्दू एवं ईरानियो ने अपने-अपने नाटक खेलकर जनता का मनोरजन किया।

बम्बई थियेटर की निजी विशेषताएँ : (i) बम्बई थियेटर भवन के निर्माण में दो आदर्श रखे गये थे। अँगरेजी ढग पर तो उसका निर्माण हुआ ही था। परन्तु भवन के अन्तर्भाग में Drury Lane Theatre का विशेष प्रभाव था। उसके ड्रेस बाक्सो के चारो ओर विस्तृत दीर्घा थी। ड्रेस बाक्सो मे ७२ व्यक्तियों के बैठने का स्थान था। 'पिट' मे ६५ दर्शक बैठ सकते थे और 'गैलरी' मे दो सौ।[१०] इस प्रकार प्रेक्षागृह मे ३३७ दर्शक सुगमता से बैठ सकते थे। मंडप में ध्वनि-प्रबंध ऐसा था कि प्रत्येक दर्शक प्रत्येक कोण से रगमच पर होनेवाले संवाद और गानों को सुगमता से सुन सकता था।[११] सन् १८४७ मे लेडी फ़ाकलेंड ने थियेटर के सम्बन्ध में लिखा था कि 'वह बहुत सुन्दर' है, परन्तु दुख की बात यह है कि वह बहुत कम काम में आता है और कभी-कभी ही पूरा भरता है।[१२]

(ii) दृश्यपट—अधिक नही थे। भवन निर्माण मे इतनी राशि व्यय हो चुकी थी कि दृश्यपट बनवाने के लिए पैसा रह ही नही गया था, परन्तु फिर भी श्रीमती डीकिल (Mrs. Deacle) ने इंग्लैंड से बहुत सी नई सीन-सीनरी बनवाकर मँगवाई थी।[१३] और इसी समाचारपत्र ने उसकी सुन्दर एवं रुचिपूर्ण होने की प्रशंसा की थी। परन्तु कभी-कभी इस दिशा मे पत्रों की भर्त्सना भी सुनाई पड़ जाती थी। एक बार जब प्रशिया के राजकुमार वाल्डेमार (Prince Waldemar of Prussia) अपने साथियों के साथ थियेटर में बैठे थे तो ऐसा हुआ कि ड्रापसीन जैसे ही तालियों की गड़गड़ाहट मे ऊपर को

---

१०. बा० को०, १० मई सन् १८४२ तथा बा० को० ६ मई, १८४५।
११. पिल्ले कृत—श्रीमंत नामदार जगन्नाथ शंकर सेट उर्फ़ नाना शंकर सेट ह्यांचे चरित्र, पृ० ३१६।
१२. बा० टे० एण्ड को०, ५ फरवरी १८४७।
१३. ब्रिटिश इंडियन जेन्टेलमेन्स गजेट, ३० मई १८४६।

उठा और रंगमंच पर Monsieur Deschappelles के सजे हुए कमरे का दृश्य दर्शक मंडली के सामने दिखाई दिया, पर्दे की रस्सी टूट गई और सारा दृश्य भूमि पर गिर पडा।[१४] दर्शक बडे बिगडे और पत्रों में भी इसकी पर्याप्त चर्चा रही। परन्तु ये अभाव नितान्त मिटे नहीं।

(iii) वेशभूषा : थियेटर मे इस भाग के अन्तर्गत भी बहुत कमी थी। नाटक के अनुकूल पात्रों की वेशभूषा की कल्पना करना अनुचित था। पत्रों में कही भी यह विवरण नही मिलता कि पात्रों की वेशभूषा नाटक के अनुकूल थी। एक वर्णन आता है। श्री हैमिल्टन जैकब ने थियेटर का उद्घाटन श्री डब्ल्यू०एच० विल्स के नाटक The Law Board Fin or The Cornish Wrecker से किया। उन्होंने यह विज्ञापन दिया था कि नाटक मे 'नितान्त नये दृश्यपट, वेशभूषा और साज-सज्जा' के दर्शन होगे। साथ ही इनके बनानेवालो के नाम भी दिए थे। परन्तु नाटक के अभिनय के समय वेशभूषा की बहुतायत एवं अनुकूलहीनता देखकर दर्शक मडली ने बड़ा शोर मचाया। Cornish Wrecker ने रक्तवर्ण ब्रीचेज, सफेद पेटीकोट, जिन पर लाल टफ़ेटा की गोट लगी हुई थी, पहन रखे थे।[१५] आलोचकों ने भी प्रबन्धको पर गाली पर गाली की बौछारें की। उन्होंने बताया कि Cornish नाविक है, मोटा चौडा कपड़ा पहनते है और पेटीकोटो से घृणा करते हैं। यद्यपि तीव्र आलोचना होते हुए भी रवैया बदला नहीं, परन्तु यह आलोचना अन्ततोगत्वा लाभदायक ही रही। कम से कम निर्देशकों को यह पता तो रहा कि दर्शक मौंदू नही है। वे भी कुछ नाट्य रुचि रखते हैं। इसी का परिणाम था कि इग्लैंड मे विकासोन्मुखी मच-सज्जा का भारत मे आगमन होता रहा और बम्बई में उसका प्रभाव दिखाई देने लगा।

(iv) प्रकाश : आरंभ मे थियेटर का प्रकाश तेल के दीपो और मोमबत्तियों द्वारा होता था, परन्तु गैस-लम्प के आविष्कार से गैस ही काम में आने लगी। किसी-किसी अवसर पर गैस-लाइट का पूरा-पूरा उपयोग किया जाता था। सन् १८४७ मे बम्बई के राज्यपाल की पत्नी श्रीमती रीड (Reid) के स्वागत के लिए थियेटर को गैस-लाइट से जगमगा दिया गया था। परन्तु इस आविष्कार का भी पूरा-पूरा उपयोग सदैव नही उठाया जाता था। संभवत. प्रबधक उसके प्रयोग से पूर्णतया अवगत नही थे। एक बार बाम्बे गजट (अप्रैल १८५४) ने प्रकाश योजना की बड़ी सराहना की, परन्तु उसी वर्ष दिसम्बर के अक मे बाम्बे

१४. ब्रिटिश इंडियन जेन्टेलमेन्स गजेट, १ मई १८४६।

१५. बा० टा०, ३० जुलाई १८५१।

(vi) **दर्शक मंडली :** जब तक राज्यपाल एवं उच्च सरकारी अधिकारियों का संरक्षण थियेटर को मिला, भले घरों के लोग थियेटर में आते रहे। ग्राट रोड पर होने के कारण फ़ोर्ट और मलाबार हिल एवं कोलाबा में रहनेवालों के लिए थियेटर दूर पड़ने लगा। उन्हें असुविधा भी होने लगी। समाज तो अधिकारियों का अनुकरण करता था। जब उनका आगमन कम हुआ तो सामान्य लोगों ने भी थियेटर में जाना कम कर दिया। कुछ ईसाई प्रचारकों ने भी थियेटर को आचार-हीन और धर्मविरुद्ध कहकर उसका विरोध किया। 'ओरियेण्टल क्रिश्चियन स्पेक्टेटर' इन पत्रों में प्रमुख था, जो हिन्दू नाटकों के विरोध में, विशेषकर डा० भाऊ दाजी के खिलाफ, लिखा करता था। परिणाम यह हुआ कि कुछ दिनों तक तो थियेटर में, आते-जाते जहाज़ों के नाविक, सिपाही और व्यापारी आदि आते रहे। बाद में निम्न श्रेणी की जनता भी आकर धूम्रपान से थियेटर को दुर्गन्धित करने लगी। अभिनय समय पर न होकर देर से शुरू होने लगे। शिष्टाचार में अवनति हुई। शराब पीकर आनेवाले नाविक, सिपाही आदि का व्यवहार महिलाओं के प्रति अभद्र होने लगा। नौजवान अधिकारी समझने लगे कि उनके आफ़िसर की अनुपस्थिति में उन पर देखरेख करनेवाला कोई नहीं है और न उन पर कोई आँच ही आयेगी। प्रबन्ध के लिए सिपाहियों की आवश्यकता का अनुभव होने लगा। कभी-कभी दर्शक तरह-तरह की आवाज़ें कसते और कभी हाथापाई भी हो जाती। एक विशेष बात यह थी कि कुछ लोग पारसियों की ऊँची टोपी पसन्द नहीं करते थे, क्योंकि पीछे बैठनेवालों के लिए वह बाधक पड़ती थी। यही दर्शक मंडली आगे चलकर पारसी थियेटर को विरासत में मिली।

(vii) **टिकट दरें :** जब तक अँगरेज़ी नाटक होते रहे, थियेटर प्रवेश के टिकट की दरें इस प्रकार थीं—

ड्रेस बाक्स	८ रुपये
पिट	६ रुपये
अपर बाक्स	५ रुपये
गैलरी	३ रुपये

परन्तु समय-समय पर इनमें कमी भी होती रही। सन् १८२५ में ड्रेस बाक्स का टिकट ६ रुपये में मिलता था। फिर सन् १८३० में सारी दरें क्रमशः ६ रुपये, ४ रुपये, ३ रुपये और २ रुपये कर दी गई थीं। एक रात की आय प्रायः १५०० रुपये से २००० रुपये तक हो जाती थी। विशिष्ट अवसर पर ३००० रुपये भी मिल जाते थे।

नाटक रात के १२½ तक प्रायः हुआ करता था। मुफ्त में कोई तमाशा नहीं दिखाया जाता था। दर्शक अपने मित्रों को अभिनय करते देखकर प्रसन्न होते थे। किसी अभिनेता की प्रेमपरक स्पीच सुनकर उनका अहम् यह सोचकर गद्-गद हो जाता था कि वे शब्द उन्हीं के लिए कहे जा रहे है। सन् १८२१ से भारतीय दर्शक भी थियेटर में जाने लगे थे। ३ अगस्त १८२१ को बालकृष्णनाथ शंकर सेट ने एक टिकट ड्रेस बाक्स का लिया था।[१९] इसी प्रकार १३ दिसम्बर सन् १८२२ में होरमसजी बोमनजी और सोराबजी फ्रामजी ने नाटक देखने के लिए दो-दो टिकट खरीदे थे।[२०] बम्बई विश्वविद्यालय में रखे हुए चाँदी के एक टुकड़े पर लिखा है 'Complimentary Season Ticket', यह मानकजी करसेतजी को 'बाम्बे अमेच्योर थियेटर' की ओर से भेंट किया गया था।

(viii) अभिनेता : बम्बई अमेच्योर थियेटर के अभिनेता सभी अव्यवसायी थे। वे मनोरंजन और स्व-रुचि की तुष्टि के लिए नाटक खेला करते थे। परन्तु ग्राट रोड थियेटर के निर्माण के पश्चात् अभिनेता प्रायः व्यवसायी हो गये। थियेटर की किरायेदार श्रीमती डीकिल स्वयं व्यवसायी थीं। उन्हीं की एक साथिन कुमारी क्लारा एलिस थीं। दोनों एकल रूप से अपने-अपने समय अभिनय द्वारा दर्शकों का मनोरंजन करती थी। परन्तु इससे काम चलता न देखकर श्रीमती डीकिल ने अव्यवसायी अभिनेताओं से अपनी सहायता के लिए अपील की थी।

जब कभी कोई बाहरी अभिनेता अथवा नाटक मंडली कलकत्ता, आस्ट्रेलिया अथवा चीन की ओर जाने के लिए बम्बई से होकर जाती, तो प्रायः प्रदर्शन के लिए वहाँ ठहर जाती या ठहरा ली जाती। यह क्रम कई बरसों तक चलता रहा। बाद मे विष्णुदास भावे जैसे मालिक और निर्देशक की नाटक मंडली भी भारत के अन्य स्थानों से बम्बई आकर अपने प्रदर्शन करने लगी थी।

(ix) दर्शक-अभिरुचि : यदि थियेटर में अभिनीत नाटकों के आधार पर दर्शकों की रुचि का अनुमान लगाया जा सकता है तो पता चलता है कि उन्हें Melodramas (गीतबहुल नाटक जिनमें रूमानी दृश्य हों) तथा Farces (प्रहसन) ही अधिक पसन्द थे। यह प्रभाव अँगरेजी के तत्कालीन थियेटर का था। लंदन की नाट्यशालाओं में १९वीं शताब्दी के मध्य में ऐसे ही नाटकों का अभिनय बहुतायत से हुआ करता था। साहित्यिक दृष्टि से चाहे उनमें कुछ

---

१९. बाम्बे डायरीज, नं० ६०२, पृ० २०।
२०. वही, पृ० ७-९।

न हो, परन्तु उनमें शक्ति थी, मनोरंजन था, प्राणवंतता थी ।[२१] यह प्रभाव अगरेज़ी मे जर्मन से आया था । लेसिंग, गेटे और शीलर के नाटकों का बड़ा व्यापक प्रभाव योरुप के नाट्य-जगत् पर पड़ा था । इन नाटकों में तर्क और विचार की अपेक्षा भावोन्माद का आधिक्य था, उनमें मध्य-युगीन विचारों की प्रधानता थी और अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान नाट्य-बल, था । कारण स्पष्ट है । संगीत-बहुल इन भावोन्मादी नाटको से पहिले अधिकतर साहित्यिक नाटक लिखे गये जो अभिनेय होने की अपेक्षा पाठ्य अधिक थे । इन नाटको मे प्रेक्षणीयता अधिक थी । दिन भर का थका-माँदा दर्शक जीवन की रूमानियत ओर हँसी-खुशी देखकर अपनी थकान मिटा लेता था । उसके शरीर और मस्तिष्क को राहत मिलती थी । यही नाटक का एक प्रयोजन भी था। मारटन का Speed the Plough तथा लार्ड लिटन का The Lady of Lyons ग्राट रोड थियेटर के प्रिय नाटकों मे थे । ये ऐसे ही नाटक थे जिनमे गभीर कामेडी और 'मेलोड्रामा' का मिश्रण था । ग्राट रोड थियेटर के उद्‌घाटन के समय श्रीमती डीकिल ने उसनें होनेवाले मनोरंजन के विषय मे कहा था—

> "इसमे वह पुरानी मदिरा ढाली जायगी जो युगो से प्रभावित होकर परिपक्व हो चुकी है, जो नये फलों की है, परन्तु थोड़े विलम्ब से लंदन के रगमच से आई है ।"[२२]

अनेक कठिनाइयो के कारण संपूर्ण नाटक का अभिनय, चाहे वह ट्रेजिडी हो अथवा कामेडी, असमव था । इसी कारण संभवत· शेक्सपियर अधिक प्रिय नही था । उसके नाटको में से कुछ एक के थोड़े-थोड़े चुने हुए अश ही अभिनीत होते थे । अश मूल अंशी का स्थान कैसे ग्रहण कर सकते थे ? अतएव भिन्न-भिन्न दृश्यों मे तारतम्य मिलाने के लिए बीच-बीच मे कभी प्रहसन, कभी सगीत, और कभी कुछ अन्य मनोरजक कार्यक्रम रखना अनिवार्य हो जाता था । दर्शक इसे पसन्द करते थे । दर्शक अभिनेताओ की स्पीचों की अपेक्षा उनके क्रिया-कलाप और कार्य-व्यवहार मे अधिक रुचि रखते थे । उन्हे गीतबहुलता, उत्तेजक नृत्य और भड़ोआपन अधिक पसन्द था । यह आवश्यक नही था कि नाटक की कथावस्तु सुव्यवस्थित हो, चरित्र-चित्रण सुरुचिपूर्ण हो और रंगमच की साज-सज्जा नाटक के अनुकूल रहे । वे तो तड़क-भड़क चाहते थे ; अलौकिक दृश्यों के

---

२१. Allardyce Nicoll : British Drama, Chapter III.

२२. "Old wines made mellow and improved by age,
New fruits, but late from the London Stage."
—British Indian Gentleman's Gazette, Feb. 12, 1846.

पक्षपाती थे और गंभीर नाटकों में भी कुछ न कुछ रूमानियत देखना चाहते थे। उन दिनों इंग्लैंड के थियेटरों की भी लगभग यही दशा थी। साहित्यिक सौंदर्य का अभाव था और उनसे किसी प्रकार की मानसिक तृप्ति की आशा करना निरर्थक था।

जब कभी कोई अभिनेता अपने स्वगत भाषण द्वारा तत्कालीन विषय पर कोई व्यंग्य कर देता अथवा किसी महत्वपूर्ण घटना या व्यक्ति पर फबती कस देता तो दर्शकों की ओर से हँसी का फुहारा छूट निकलता। स्थानीय घटनाओं का द्योतक यह तत्व नाट्य प्रदर्शन का एक आवश्यक अंग बन गया था।
उस समय के कुछ लोकप्रिय नाटक इस प्रकार थे—

१. The Lady of Lyons,
२. Speed the Plough,
३. Love, Law and Physic,
४. The School for Scandal,
५. She Stoops to Conquer,
६. The Castle Spectre,
७. The Critic,
८. The Honeymoon,
९. The Heir at Law,
१०. Rule a Wife and Have a Wife,
११. The Mountaineers,
१२. Miss in Her Teens, etc., etc., etc.

नाट्यशाला की उपरोक्त व्यवस्था, अभिनेताओं में स्त्री पात्रों का अभाव, नाटक प्रतिकूल वेशभूषा, घिसी-पिटी दृश्यपटावली, मध्यवर्गीय दर्शकमंडली और उनकी रुचि आदि यही सब उपकरण पारसी थियेटर को अपनी विरासत में मिले थे। इन्हीं अभावों और उपलब्धियों पर पारसी थियेटर की नींव रखी गई थी। अपने उत्तराधिकार के संदर्भ में उसने क्या किया और कैसे किया, यही आगे के अध्यायों का प्रतिपादित विषय है।

२ । पारसी थियेटर

'थियेटर' शब्द अँगरेजी से हिन्दी में आया है । इसका प्रयोग कई अर्थों में होता है । 'नाट्यगृह' या 'प्रेक्षागृह' को भी थियेटर कहते हैं, और नाटक को भी थियेटर कहते है, यथा 'हम थियेटर (नाट्यशाला) जा रहे हैं' या 'हम थियेटर देखने जा रहे है' । थियेटर का एक और भी अधिक व्यापक प्रयोग होता है यथा 'अँगरेजी थियेटर' अथवा 'फ्रेंच थियेटर' । ऐसे प्रयोग में 'थियेटर' का अर्थ होता है अँगरेज़ी या फ्रेंच भाषा का थियेटर अथवा अँगरेज़ या फ्रेंच जाति का थियेटर । इस सदर्भ मे 'थियेटर' शब्द के अन्तर्गत नाट्य-गृह, नाटक, नाटककार, अभिनेता, रगमच और उसकी साज-सज्जा, अभिनय, निर्देशक एव सगीत आदि सभी उपकरणों का समावेश होता है ।

'पारसी थियेटर' का प्रयोग उपरोक्त विस्तृत अर्थ मे ही किया गया है। उसका अभिप्राय है पारसी जाति द्वारा चलाये और बनवाये गये नाट्यगृह, पारसी नाटककार, पारसी नाटक, पारसी नाट्यशालाओं के रंगमंच, पारसी नाटक मडलियाँ, पारसी अभिनेता और पारसी निर्देशक आदि, आदि । केवल इतना ही नही, वरन् पारसी थियेटर के अन्तर्गत वे नाटक-लेखक और अभिनेता भी आते है जो पारसी नही थे परन्तु पारसी नाटक मडलियों में वैतनिक रूप से काम करते थे क्योंकि पारसी नाटक मंडलियाँ प्रायः सभी व्यावसायिक थी। पारसी थियेटर के अन्तर्गत वे नाटक मंडलियाँ, उनके मालिक और अभिनेता आदि भी सम्मिलित है जो पारसी जाति के न होकर भी, बम्बई या सूरत निवासी न होने पर अपनी नाटक मंडली के नाम के आगे 'बम्बई की' शब्द जोड़ कर दूसरो के सामने पारसी थियेटर से अपना सम्बन्ध दिखाना चाहते थे, यथा 'दी जुबली इम्पीरियल थियेट्रिकल कम्पनी आफ़ बाम्बे' । इस कम्पनी का सूत्रपात वर्तमान उत्तर प्रदेश (पहले युनाइटेड प्राविसेज़ आफ़ आगरा एण्ड अवध अथवा युनाइटेड प्राविसेज़) मे हुआ। परन्तु 'आफ़ बाम्बे' लगाकर उसके मालिकों ने उसका गठबंधन बम्बई की पारसी कम्पनियों से इसलिए करना चाहा कि पारसी कम्पनियाँ नाट्य-कला मे अपना नाम कर चुकी थी और इस नाम से व्यवसाय में लाभ अधिक होने की संभावना रहती थी ।

इस प्रकार पारसी थियेटर के दो रूप थे। एक रूप बम्बई और उसके आसपास अपने नाटक प्रदर्शित करता था और समय-समय पर बम्बई से बाहर अन्य प्रान्तों में भी अभिनय किया करता था। इसके कर्ता-धर्ता और मालिक केवल पारसी थे और दूसरा रूप वह था जिसके द्वारा अन्य प्रान्तीय मंडली मालिक अपनी मंडलियों का अभिनय दिखाते-फिरते थे। इसी दृष्टिकोण को लेकर प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध लिखा गया है।

पारसी थियेटर का उद्भव : बम्बई में अँगरेज़ी थियेटर के अस्तित्व का संक्षिप्त विवरण गत अध्याय में आ चुका है। उससे प्रतीत होता है कि ग्रांट रोड पर एक अँगरेज़ी ढंग की नाट्यशाला थी जिसे 'ग्रांट रोड थियेटर', 'शकर सेट की जूनी नाट्यशाला', 'बादशाही थियेटर' आदि नामों से पुकारा जाता था। इस थियेटर में आरंभ में अँगरेज़ी नाटकों का अभिनय होता था। यह 'बम्बई थियेटर' की चालू परम्परा थी। परन्तु १८४६ के बाद से ही अँगरेज़ी जनता इस नाट्यशाला में अधिक आनंद नहीं ले पाती थी क्योंकि यह थियेटर उसके रहवासों से दूर पड़ता था और आने-जाने में अनेकों कठिनाइयाँ सामने आती थीं। धीरे-धीरे ग्रांट रोड थियेटर की दर्शक मंडली में भी परिवर्तन होने लगा। पारसियों और हिंदुओं की संख्या बढ़ने लगी। परिणाम यह हुआ कि नये दर्शकों की रुचि के अनुकूल अभिनय अपेक्षित होने लगा। सन् १८५३ तक अँगरेज़ी नाटकों का बोलबाला रहा। परन्तु १८५३ से इस थियेटर में मराठी, गुजराती और हिन्दी (हिन्दुस्तानी) भाषा के नाटक भी प्रदर्शित होने लगे।

'बाम्बे टेलीग्राफ एण्ड कोरियर' के २७ एवं ३१ अक्तूबर सन् १८५३ के अंकों से पता चलता है कि बम्बई में इन्हीं दिनों एक 'पारसी ड्रामेटिक कोर' का जन्म हुआ और उसने गुजराती भाषा में एक नाटक का अभिनय ग्रांट रोड थियेटर में किया जिसका शीर्षक था 'रुस्तम जबोली और सोहराब'। जैसा नाम से स्पष्ट है इसका कथानक फ़िरदौसी के शाहनामा से लिया गया था। डा० नामी के अनुसार इसी 'कोर' ने ५ नवम्बर सन् १८५३ और ६ फ़रवरी सन् १८५४ को क्रमशः दो नाटकों का अभिनय और किया।[२३] इनका नाम डा० नामी ने नहीं दिया। 'पारसी थियेटर' [illegible] में एक अन्य नाटक के अभिनय का विज्ञापन 'बम्बई टाइम्स' में निकला।[२४] इस विज्ञापन के

---

२३. उर्दू अदब (त्रैमासिक), प्रकाशक अंजुमन तरक्किये उर्दू (हिन्द), अलीगढ़ मार्च १९५५, पृ० ९७ में प्रकाशित लेख 'उर्दू ड्रामा ग़दर से पहले'।

२४. २ मई सन् १८५४।

६ मई सन् १८५४ में खेले जाने वाले 'दयावक्ष की पैदाइश' और एक प्रहसन 'तीसे खाँ' की सूचना है। प्रहसन हिन्दुस्तानी भाषा में था। इसी का विज्ञापन 'बम्बई गज़ट' में ५ मई सन् १८५४ को प्रकाशित किया गया। यह नाटक भी शाहनामा के आधार पर लिखा गया था। प्रहसन में नवाबों के जीवन पर व्यंग किया गया है। इस प्रकार पारसी ड्रामेटिक कोर का यह चौथा नाटक था। पाँचवें नाटक के अभिनय की सूचना 'बम्बई टाइम्स' में १८ मई सन् १८५४ में दी गई जिसके अनुसार २० मई सन् १८५४ को वही ग्रांट रोड थियेटर में 'दयावक्ष भाग २' का अभिनय हुआ। उसके साथ जो प्रहसन दिखाया गया उसका नाम था 'हाजी मियाँ और उनके नौकर फ़ज़ल और तीरो खाँ'। इस नाटक पर २३ मई १८५४ के अंक में एक टिप्पणी प्रकाशित हुई जिससे पता चलता है कि ये नाटक भी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।[२५] अभिनय में कुछ अलौकिक घटनाओं का भी समावेश था यथा वृक्ष के तने से दाँत साफ़ करना तथा एक हाथ से 'अलबुर्ज' नामक पहाड़ को हिलाना। २ जून १८५४ के बम्बई टाइम्स में पुनः एक नाटक के अभिनय की सूचना निकली जिसके अनुसार एक और नाटक ३ जून १८५४ को ग्रांट रोड थियेटर में अभिनीत होना था। इस नाटक के साथ हाजी और तीरो खाँ के प्रहसन तो दिखाये ही गये, साथ ही साथ किसी प्रशियन (Prussian) के खेल भी दर्शकों के मनोरंजन के लिए प्रकट किए गए।

इस प्रकार उपरोक्त छः नाटकों से, जो एक ही सीजन में अभिनीत हुए, पारसी थियेटर का श्रीगणेश हुआ। जैसा लिखा जा चुका है, नाटक गुजराती भाषा के थे और प्रहसन हिन्दुस्तानी भाषा में लिखे गये थे। इनका अभिनय करने वाले सभी पारसी नौजवान थे। लेखकों का नाम तो पता नहीं चलता, संभवतः ये नाटक और प्रहसन कभी छपे भी नहीं। सभी का अभिनय ग्रांट रोड थियेटर में हुआ था।

'पारसी ड्रामेटिक कोर', 'पारसी थियेट्रिकल कमिटी' अथवा 'पारसी थियेटर' शीर्षकों से तत्कालीन बम्बई के समाचारपत्रों में पारसी नाटकों के विज्ञापन छपे थे। अतएव यह जिज्ञासा स्वतः ही उत्पन्न होती है कि ये नाम एक ही संस्था के हैं अथवा विभिन्न मंडलियों के हैं। धनजी भाई पटेल ने सन् १८५३ में 'पारसी नाटक मंडली' की स्थापना का उल्लेख किया है।[२६] इस मंडली

---

२५. बम्बई टाइम्स।

२६. पारसी तख़्तानी तवारीख़, भाग २, पृ० २।

के संस्थापक पेस्तनजी धनजी माई मास्तर थे और वह स्वयं इसमें एक अभिनेता थे।[२७] इस मंडली के अन्य अभिनेता थे—नाहना माई स० राणीना, दादामाई एलियट, मनचेरशाह बे० मेहरहोमजी, मीखामाई ख० मुस, डा० कावसजी हो० खिलिमोरिया, रु० हो० हाथीराम (डाक्टर) तथा कावसजी नशरवानजी कोहीदारू जो बाद में कावसजी गुरगीन के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ये सभी पारसी अपने समय मे प्रसिद्ध नागरिक थे। इनमें से नाहना माई राणीना और कावसजी गुरगीन तो अपने जीवन पर्यन्त नाटक की हलचल से सम्बन्धित रहे। शेप अपने-अपने धंधे में लग गये। इस मंडली के मालिक का नाम था फ़रामजी गुस्तादजी दलाल जो 'फलघूस' के नाम से प्रसिद्ध थे। मडली की देखरेख करने और उचित परामर्श तथा निर्देशन के लिए एक कमिटी की स्थापना की गई जिसमें प्रोफेसर दादामाई नवरोजी, खरशेदजी न० कामा, अरदेशर फ० मुस, जेंहागीर बरजोरजी वाच्छा, तथा डा० माऊ-दाजी आदि सम्मिलित थे।

'पारसी नाटक मंडली' ही पारसियो द्वारा स्थापित पहली नाटक मडली थी; इसी ने पारसी नाटकों का अभिनय किया और तत्कालीन समाचारपत्रों में जो विज्ञापन प्रकाशित हुए वे इसी मडली के भिन्न नामों के विभिन्न रूप थे। अतएव पारसी थियेटर का उद्‌भव इसी 'पारसी नाटक मंडली' के रूप में हुआ। पारसी जाति ने इसे प्रोत्साहन दिया और समवत: पहले अव्यावसायिक और बाद में व्यावसायिक रूप में इसका विकास हुआ।

पारसी नौजवानों का यह जोश ठंडा नही पड़ा। १६ सितम्बर सन् १८५४ को इसी मंडली की ओर से 'पठान सफ़रेज़ और कल्लू' तथा 'अल्लादीन और बानू जुलेखा' नाम के नाटक ग्रांट रोड थियेटर मे खेले गये।

अगरेज़ी नाटक देखने की प्रवेश दरों का उल्लेख पहले हो चुका है। पारसी नाटक मडली की प्रवेश दरें इस प्रकार थी—

आरंभ में—

ड्रेस सर्किल	३) रुपया
स्टाल	२) ,,
गैलरी	१॥) ,,
पिट	१) ,,

२७. वही, पृ० ३६३।

बाद में सन् १८५४ में—

बाक्स	२॥) रुपया
स्टाल	१॥) ,,
गैलरी	१।) ,,
पिट	१) ,,

नाटक रात के ८ बजे आरंभ हो जाया करता था।

सन् १८५४ में खेले गये नाटकों के बाद में खेले जाने वाले किसी नाटक का समाचार नहीं मिलता। २५ फरवरी सन् १८५५ के 'रास्त गोफ़्तार' नामक पारसी समाचार पत्र में एक विज्ञापन छपा था—

"पारसी नाटक"

पेट्रिआटिक फंडना फ़ायेदा सारु

पारसी नाटक मंडली सरवे खास आमनी सेवामा अरज करेछे के तेओ पोतानो १२ मी वारनो नाटक, तारीख २७ मी फेबरवारी अनेवार भोमने दीसे, गरांट रोड ऊपरना तमाशाना घरमां नीचे जणावेला खेल करी बतावशे।

पादशाह फरेदूननूं दास्तान

अने साथे

उठाऊगीर सुरतो नामनो रमुजी फारस

टिकीटोना भाव रु० २॥), १॥), १।) पिट रु० १)"

इस विज्ञापन से पता चलता है कि पारसी नाटक मडली समय-समय पर अपने गुजराती नाटक खेलती रही। सन् १८५६ मे भी उसने 'रुस्तम अने एकदस्त' का अभिनय किया था। इस नाटक का कथा-भाग भी शाहनामा से लिया गया था। नाटक के लेखक का नाम मालूम नही पडता। परन्तु पारसी नाटक मडली के प्रख्यात नाटककार बमनजी न० कावसजी तथा जहांगीर नशरवानजी पटेल थे। बमनजी कावसजी ने अनेक नाटक लिखे हैं यथा भोलीगुल, बागे-बहिश्त, बापना श्राप, बहेला बहेरा, नूरे नेकी, वफा पर जफ़ा, देलजग दिलेर, खुशरो अने परिचेहर और कुलयुग दोरंगी-दुनिया आदि। इनमे से कौन-कौन से नाटक पा० ना० म० मे खेले गये पता नही चलता। इसी

प्रकार जहांगीर नशरवानजी पटेल ने हास्यरस का जो 'फाकड़ो फीतुरी' लिखा वह मंडली के बड़े सफल नाटकों में गिना जाता था।

यह विवरण नहीं मिलता कि पा० ना० मं० सक्रिय रूप से कब तक काम करती रही। केवल इतना पता चलता है कि सन् १८६७ में जब विक्टोरिया नाटक मंडली की स्थापना हुई उस समय यह बंद पड़ी थी और इसके प्रसिद्ध अभिनेता एवं जन्मदायक धनजी मास्टर विक्टोरिया मंडली में डिरेक्टर नियुक्त हुए थे। पा० ना० म० का अन्त इस प्रकार हुआ कि वह इसका सारा सामान—दृश्य पटावली, वेष आदि—कलकत्ते के जे० एफ० मादन ने खरीद लिया और मंडली विश्राम निद्रा में विलीन हो गई।

पारसी नाटक मंडली से पारसी थियेटर का आरंभ अवश्य हुआ परन्तु उसके अन्त के साथ पारसी थियेटर का जीवन समाप्त नहीं हो गया। सन् १८६७ के पहले तक पारसी थियेटर के साथ-साथ हिन्दू थियेटर भी बम्बई में अपना कार्यक्रम करता रहा। पारसी थियेटर की हलचल समझने के लिए उसकी जानकारी भी आवश्यक है क्योंकि उसने भी पारसी थियेटर को प्रोत्साहन दिया। 'दी बाम्बे टाइम्स एण्ड जर्नल आफ़ कामर्स' से पता चलता है कि सन् १८४६ में 'खेतवाडी थियेटर' के नाम से एक थियेटर चला करता था।[२८] इसका विज्ञापन 'थियेटर कमिटी' के नाम से निकला करता था।

"We have much pleasure in directing attention to an announcement published in another column, by The Theatrical Committee intimating that the Theatre will be opened next Monday evening. It is rather late in the season to make a beginning but on the principle 'better late than never' we must be content with what is now offered to us, and have no doubt that the efforts of the Committee to provide amusement for the public will meet with deserved success.

"हमें (पाठकों का) ध्यान उस सूचना की ओर आकर्षित करने में बड़ा आनंद है जो इसी पत्र के अन्य कालम में छपी है और जिसमें बताया गया है कि 'थियेट्रिकल कमिटी' सूचित करती है कि अगले सोमवार को सायंकाल के समय थियेटर खोला जायगा। ऋतु-काल की दृष्टि से नाटक के आरंभ

२८. फरवरी सन् १८४६, पृ० ३१६, कालम १ और २।

में विलम्ब हो गया है परन्तु 'कुछ न करने से देर में ही करना' वाले सिद्धात के आधार पर हमे उस पर सतोष करना चाहिए जो हमारे सामने प्रस्तुत किया जा रहा है और इसमें सदेह नही करना चाहिए कि जनता के लिए मनोरंजन कार्य उपस्थित करने में कमिटी के प्रयत्न वाछित सफलता प्राप्त करेंगे।"

उक्त पत्र ने जिस उल्लेख की ओर ध्यान आकर्षित करने की बात ऊपर कही है वह इस प्रकार है—

"Our readers are not generally aware that an attempt which has hitherto proved eminently successful, has lately been made to revive the legitimate Hindoo Drama in Bombay. The Theatre in Khetwaddy, where this has been attempted is as yet without moveable seenes and.... what is usually reckoned the hit serves the purpose of the stage, benches all round rise tier about tier, and are occupied rightly by hundreds of respectable, well-conduced, and most attentive natives of all classes and creeds. We need not inform the readers of Herace Wilson-to those who are not such, the information may be new—that the Hindoo Drama is of very old date.......................

... .. .The plays acted at Khetwaddy Theatre have been translated from Sanskrit by a learned Brahmin, who appeared on the stage. A buffoon or chorus first comes in, somewhat after the manner of Greeks and shortly recites the leading particulars of what is about to occur. The actors next appear gorgeously and fantastically dressed and the play proceeds—the buffoon through the whole, even in the gravest scenes intrudes his impudence or wit."

"सामान्यतया हमारे पाठक इससे अनभिज्ञ है कि बम्बई में थोड़े दिनों से प्रयत्न किया गया है कि 'हिंदू ड्रामा' को पुनर्जीवित किया जाय और इसमें ख्यातिगत सफलता भी मिली है। "खेतवाड़ी थियेटर" मे, जहाँ यह सफलता मिली है, हटाये जाने वाले दृश्य नही हैं और जिसे प्राय: 'पिट' (Pit) कहते हैं वही रंगमंच का काम दे देता है। पिट के चारों ओर एक के ऊपर एक टांडों की तरह बेंचें लगा दी जाती हैं और उन्ही पर सभी प्रकार के वर्गों एवं जातियों के सैकड़ों सम्भ्रान्त शिष्ट और जिज्ञासु देसी निवासी बैठते हैं। जिन्होने होरेस विल्सन (Horace Wilson) की रचनायें

नहीं पढ़ी उनके लिए यह सूचना नई हो सकती है अन्यथा उनके पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि 'हिन्दू ड्रामा' बहुत पुरानी वस्तु है। .. .. खेतवाड़ी थियेटर में अभिनीत होने वाले नाटकों का अनुवाद एक विद्वान् ब्राह्मण द्वारा, संस्कृत से किया गया है। यह ब्राह्मण रंगमंच पर प्रकट होता है। कुछ-कुछ यूनानी परम्परा के अनुसार एक विदूषक या कोरस मंच पर आता है और नाटक की प्रधान घटनाओं के विषय में बताता है। इसके पश्चात् तड़क-भड़क और विचित्र पोशाक पहिने हुए अभिनेता प्रवेश करते हैं। नाटक चालू होता है। विदूषक, समस्त नाटक मे, गंभीर दृश्यों तक मे हर, समय उपस्थित रहता है और कभी हास्य से कभी व्यंग्य से अपनी टाँग अड़ाये रहता है।[२६]

इस विवरण से पता चलता है कि खेतवाड़ी थियेटर सन् १८४६ में सक्रिय था और उसमे संस्कृत से अनूदित नाटक 'हिन्दू ड्रामा' के नाम से अभिनीत होते थे। यह थियेटर अंगरेज़ी ढंग के बने हुए ग्रांट रोड थियेटर के जैसा बना हुआ न होकर संभवतः खुला थियेटर था जिसमे नाटक की लोकपरम्परा के अनुसार मंच का निर्माण होता था, दर्शकों के बैठने और पात्रों के प्रवेश आदि की भी वही लोकपरम्परा थी। इस लेख में यह उल्लेख नहीं है कि नाटक किस भाषा में अनूदित होते थे। परन्तु अनुमान हो सकता है कि संभवतः मरहठी भाषा मे होते थे। कारण यह है कि खेतवाड़ी क्षेत्र, आज की तरह, उस समय भी मरहठी क्षेत्र था अतएव उन्हीं के मनोरंजन के लिए उसका अस्तित्व रहा होगा। नाटक के प्रदर्शन की जिस परिपाटी का वर्णन उल्लेख मे आया है—प्रथम, किसी विदूषक या सगीत मडली का रंगमच पर प्रवेश, फिर उनके द्वारा दर्शकों के सामने अभिनीत होने वाले नाटक की प्रधान घटनाओं का वर्णन, तथा नाटक के आरंभ से अन्त तक विदूषक की उपस्थिति आदि सभी, नाटक की उस परम्परा के द्योतक हैं जो मरहठी परिपाटी कही जा सकती है यद्यपि नौटकी या स्वांग की शैली से यह अधिक भिन्न नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'हिन्दू ड्रामा' शब्दावली होरेस विलसन की रचना से ही ली गई है क्योंकि उन्होंने जो पुस्तक सस्कृत नाटकों के विषय में लिखी है उसे 'The Theatre of the Hindoos' ही कहा गया है, सस्कृत थियेटर नहीं। कदाचित् इसीलिए यह नाम भी उक्त लेख मे आया है। जो भी हो, यह निश्चित है कि पारसी थियेटर के उद्भव (सन् १८५३) से पूर्व

२६. वही, पृ० ३१६ कालम ३ और ४।

बम्बई में 'हिन्दू थियेटर' सक्रिय रूप से विद्यमान था और उसमें जनपदीय भाषा के लोकप्रिय नाटकों के अभिनय होते थे। इस प्रवत्ति ने पारसियों को निश्चित रूप से प्रोत्साहन दिया होगा।

एक आश्चर्य की बात यह है कि प्रो० बनहट्टी ने अपनी रचना 'मराठी रंगभूमि चा इतिहास' मे इस थियेटर और इसके नाटको का कोई उल्लेख नही किया है। कुलकर्णी आदि मराठी नाटक साहित्य के इतिहासकार भी इस विषय पर मौन हैं। इससे कभी-कभी यह सदेह होने लगता है कि कही ये नाटक 'हिन्दुस्तानी' मे तो नही होते थे ? अस्तु।

डा० धनजी भाई पटेल एवं श्यावक्षा ने सन् १८६१ तक बम्वई मे पाई जाने वाली थियेट्रिकल नाटक मडलियों और क्लबो की एक-एक सूची दी है। दोनों सूचियाँ एक सी नही हैं। उनमे कुछ मतभेद हैं। सूचियाँ इस प्रकार है—

धनजी भाई पटेल की सूची—	श्यावक्षा दाराशाह शराफ़ की सूची—
१. पारसी नाटक मडली (फलुधुमवाली)	१. दी पारसी स्टेज प्लेअर्स
२. अमेच्योर्स ड्रामेटिक क्लव	२. जेन्टेलमेन अमेच्योर्स क्लब
३. एलफिस्टन ड्रामेटिक क्लब (नाजरवाली)	३. जोरास्ट्रियन ड्रेमेटिक क्लब
४. एलफिस्टन अमेच्योर्स (नाज़रनुतरूप)	४. ओरियेन्टल ड्रामेटिक क्लब
५. पारसी स्टेज प्लेअर्स	५. परशियन क्लब
६. जेंटेलमेन्स अमेच्योर्स (फलुघुसवाली)	६. परशियन ओरियेंटल ड्रामेटिक क्लब
७. जोरास्ट्रियन नाटक मडली	७. पारसी नाटक मंडली
८. जोरास्ट्रियन ड्रामेटिक सोसाइटी	८. पारसी एलफिस्टन ड्रामेटिक क्लब
९. परशियन जोरास्ट्रियन नाटक मंडली	९. वेरोनेट थियेट्रिकल क्लब
१०. परशियन नाटक मडली	१०. आगलेकर हिन्दू कम्पनी
११. ओरियटल नाटक मडली	११. ओरिजेनल जोरास्ट्रियन क्लब
१२. वारोनेट नाटक मडली	१२. पारसी क्लव।[३०]

---

३०. पारसी नाटक तख्तो

१३. आलबर्ट नाटक मंडली
१४. शेक्सपियर नाटक मंडली
१५. दी वार्लेटियर्स क्लब
१६. विक्टोरिया नाटक मंडली
१७. ओरिजिनल विक्टोरिया क्लब
१८. हिन्दी नाटक मंडली
१९. पारसी विक्टोरिया ओपेरा ट्रूप
    (नाजरवाली) आदि, आदि ।[३१]

उपरोक्त दोनों सूचियों की तुलना से कई बातें स्पष्ट भी होती हैं और कई तथ्य कुछ उलझ भी जाते हैं। पहले धनजी भाई की सूची को लीजिये। उन्ही के लेखानुसार विक्टोरिया नाटक मंडली (नं० १६) की स्थापना ई० सन् १८६८ में हुई।[३२] परशियन नाटक मंडली (नं० १०) जिसका दूसरा नाम 'ईरानी नाटक मंडली' था सन् १८७० में स्थापित हुई।[३३] परशियन जोरास्ट्रियन नाटक मंडली भी १८७०-१८७५ में स्थापित हुई।[३४] 'जोरास्ट्रियन थियेट्रिकल क्लब' सन् १८६६ में बना।[३५] ओरिजनल विक्टोरिया मंडली या क्लब' (नं० १७) की स्थापना दादी पटेल ने उस समय की जब वह नाऊर जी से विक्टोरिया नाटक मंडली की भागीदारी से पृथक् हुए। अतएव यह घटना भी १८७०-७१ के लगभग हुई अतएव इस मंडली को भी १८६१ से पहले का नहीं माना जा सकता।[३६] सन् १८७९-८० में 'दी जोरास्ट्रियन ड्रामेटिक सोसाइटी' बनी।[३७] 'बारोनेट क्लब' (नं० १२) नशरवान जी फारबस ने उस समय आरम किया जब सन् १८७१ में जोरास्ट्रियन क्लब ने एदल जी खोरी का नाटक 'सुदावस्त' अभिनीत कर लिया था और नशरवान जी फारबस इस क्लब को छोड़कर चले गये थे।[३८] अतएव 'बारोनेट क्लब'

३१. पारसी नाटक तख्ताती तवारीख, पृ० १७-१९ ।
३२. पा० त० त०, पृ० ८२ ।
३३. वही, पृ० १०१, पृ० १०३ ।
३४. वही, पृ० १०२ ।
३५. वही, पृ० १९२ ।
३६. वही, पृ० १८३ ।
३७. वही, पृ० २६७ ।
३८. वही, पृ० १९४-१९५ ।

का अस्तित्व भी १८७१ से पहले का नहीं माना जा सकता।

इन उदाहरणों से सिद्ध है कि धनजी भाई की सूची में अनेक ऐसी नाटक मंडलियों (क्लब) के नाम सम्मिलित है, जो १८६१ के पश्चात् अस्तित्व में आई और उन की सूची को प्रमाणित नही माना जा सकता।

श्यावक्षा दाराशाह शराफ की सूची भी इसी प्रकार अग्राह्य है। अतएव निष्कर्ष यह निकलता है कि सन् १८६१ से पहले कई पारसी नाटक मंडलियों का अस्तित्व था और वे शंकर सेठ की नाटकशाला में यदा-कदा अभिनय दिखाकर जनता का मनोरंजन करती थीं। इनमे से कुछ अ-व्यवसायी भी थी। एलफिंस्टन कालेज के क्लब केवल अंगरेजी नाटकों, विशेषकर शेक्सपियर के नाटकों, का अभिनय अंगरेजी भाषा और अंगरेजी पोशाक में किया करते थे। पोशाके भी प्रायः अभिनेता अपने पास से ही बनवाया करते थे। यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि पारसी जाति की रुचि नाट्य कला मे बढ़ी-चढ़ी थी। वे उसे आरंभ मे व्यवसाय की ही दृष्टि से नही देखते थे, वरन् कला की दृष्टि से भी उसे आकर्षक बनाने का उद्योग करते थे। उनके नाटक निस्सदेह अधिकतर गुजराती में होते थे परन्तु अंगरेजी और हिन्दुस्तानी भाषा में भी उनके नाटकों का अभिनय होता था। सन् १८५८ मे जोरास्ट्रियन थियेट्रिकल क्लब ने 'हिन्दी और फिरंगी राज में मुकाबला' शीर्षक से एक नाटक का अभिनय किया था। यह हिन्दुस्तानी भाषा का नाटक था।[३९] सन् १८५८ के लगभग ही एक नयी नाटक मंडली का भी जन्म हुआ जिसका नाम था 'दी इंडियन थियेट्रिकल क्लब'। इसमे 'नाना-साहब' नाम का नाटक खेला गया था। यह नाना साहब वही थे जिन्हे सन् १८५७ की स्वतंत्रता की लड़ाई का नायक माना गया है। पारसियो ने तत्कालीन अंगरेजी सरकार के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रगट करते हुए नायक के लिए कहलवाया था—

"मूजी बच्चा नानाये, कीवां बुरा करम,
छोडी तेनें आलों मां थी नीमकनी शरम !
ओ पापी चोर चांडाल, ओ निर्दयीना काल,
फरतुक मीसाल थाशे तारा, बुरा बद बेहाल।"[४०]

यह नाटक बड़ा लोकप्रिय हुआ था। इसके कुछ गाने पारसी घरों में गाये जाते थे।

---

३९. पा० त० त०, पृ० १६१।
४०. वही।

यह दुर्भाग्य की बात है कि पारसी थियेटर के आरम्भिक नाटक अब कहीं भी प्राप्त नहीं होते। हो सकता है कि वे छपे ही न हों। परन्तु जो विवरण उनके विषय में इधर-उधर से मिलते है उनसे यह पता चलता है कि पारसियो की रुचि ईरान के इतिहास की ओर सब से पहले गई थी। शाहनामा की कथाओं को लेकर उन्होंने फ़ारस के पहलवानो और राजाओं को अपने नाटकों के नायक का पद दिया था। ये नाटक रगमंच पर यथासभव अपने मौलिक परिवेश मे अभिनीत होते थे परन्तु आरंभ मे यान्त्रिक दृश्यो का चलन नही हुआ था। पर्दों के चित्रकार भारतीय नहीं थे और वेशभूषा की उपयुक्तता पर भी विशेष ध्यान नही दिया जाता था। यह आश्चर्य है कि पारसी अभिनेता गुजराती मातृभाषा होते हुए भी, हिन्दुस्तानी बोलते थे और रंगमच पर उसका उच्चारण करने मे उन्हे विशेष कठिनाई नही होती थी।

संक्षेप में पारसी थियेटर का उदय सन् १८५३ मे मानना चाहिए। यह पारसी प्रयत्न निरंतर चलते रहे। आरंभ में इनके नाटक गुजराती भाषा में होते थे। साथ ही साथ कभी-कभी उनके अभिनय के पश्चात् एक या दो प्रहसन भी अभिनीत होते थे जिनकी भाषा हिन्दुस्तानी होती थी और जो प्राय: पारसियों द्वारा ही लिखे जाते थे। समय-समय पर अगरेजी नाटकों का अभिनय भी होता था। पारसी नाटक मंडलियाँ व्यावसायिक भी थी और कुछ मंडलियाँ या क्लब अव्यावसायिक भी थे। नाटकों का अभिनय पर्याप्त रिहर्सलों के बाद किसी निर्देशक की देख-रेख में होता था और इनके लिए एक ही नाटकशाला था जो ग्रांट रोड पर स्थित थी और जिसे 'शकर सेट की नाटकशाला' या 'ग्रांट रोड थियेटर' या 'बादशाही नाटकशाला' कहा जाता था।

बलवंत गार्गी का यह कथन कि "जिस समय बंगाल १८७० में व्यावसायिक नाटक की नीव रख रहा था, तब कुछ पारसी बम्बई में नाटक और ललित कलाओ में रुचि लेने लगे। परिणाम यह हुआ कि पारसियों ने व्यावसायिक हिन्दी नाटक की स्थापना करने मे पहल की,"[४१] नितान्त असत्य है। सन् १८७०-७१ में तो पारसी थियेटर बहुत आगे बढ़ चुका था। कैखुसरो जी काबरा, एदल जी खोरी और नाना भाई रुस्तम जी राणीना तथा बहमनजी नवरोजी काबरा एवं नसरवान जी नौरोज जी पारख आदि पारसी नाटककार अपनी कृतियो से पारसी रगमच को बहुत ऊँचा उठा चुके थे।

---

४१. रंगमंच, पृ० १६६।

पारसी थियेटर का विकास । ३

सन १८५३ में आरंभ होकर पारसी थियेटर धीरे-धीरे विकास पथ पर अग्रसर होता रहा। यह अवश्य था कि कभी कुछ नाटक मंडलियाँ उभरती परन्तु अधिक दिन तक जीवित न रहकर समाप्त हो जाती, कुछ ऐसी भी थी जो पुनः संजीवित हो जाती और अपने जीवन-काल की मर्यादा में कुछ उन्नति करती परन्तु प्रतियोगिता में केवल वे ही टिक पाती थी जिनके पीछे केवल रुपये-पैसे की ही एकमात्र शक्ति न होकर उनके कला-कुशल अभिनेता और गंभीर निर्देशक रहते थे। धीरे-धीरे दर्शकमंडली भी नाट्यकला से अवगत हो चली थी और चलाऊ नाटकों एवं प्रहसनों के अभिनय को रुचि विरुद्ध प्रदर्शित करने लगी थी। पारसियों में इन नाटक मंडलियों ने एक उत्साह की धारा बहू निकली थी और वे यथाशक्ति मनोरंजन का वातावरण उत्पन्न करना चाहते थे।

पारसी थियेटर के विकास में आरंभ से ही जो सब से बड़ी कठिनाई थी वह नाट्यशालाओं का अभाव था। सन् १८५३ में बम्बई में केवल दो थियेटरों का अस्तित्व प्रतीत होता है। एक नाट्यशाला तो ग्राट रोड पर थी ही जिसे 'ग्राट रोड थियेटर' कहा जाता था और दूसरा 'सेंतवाडी थियेटर' था जो संभवतः खुला थियेटर था और जिसमें लोकधर्मी परम्परा की शैली द्वारा नाटक अभिनीत हुआ करते थे। इसका परिणाम यह था कि नाटक मंडलियाँ अधिक दिनों तक अपने नाटक नही दिखा पाती थी। ग्राट रोड थियेटर प्रति सप्ताह किसी न किसी मंडली द्वारा भाड़े पर उठा रहता और उस मंडली के अतिरिक्त दूसरी मंडलियाँ बेकार बैठी रहती। व्यवसाय और आर्थिक दृष्टि से नाट्यशालाओं का अभाव विकट स्थिति उत्पन्न करने वाली बात थी। अतएव सब से पहिले मंडली मालिकों का ध्यान इस अभाव की पूर्ति की ओर गया। इसके उन्होंने दो मार्ग निकाले। जहाँ तक संभव हो मंडलियाँ बम्बई में अभिनय करती परन्तु बाद में अपने अभिनेताओं और समस्त दृश्य-पटों आदि सामग्री को साथ लेकर दूसरे स्थानों को चली जाती और वहाँ अपने 'चलते-फिरते थियेटर' की स्थापना कर जितने दिन संभव होता अपने खेलों का प्रदर्शन करती थी। यह प्रदर्शन देश के विभिन्न भागों में ऋतु-अनुकूल वातावरण में हुआ करते थे।

अतएव पारसी थियेटर के विकास में उनके द्वारा निर्मित नाट्यशालाओं का बड़ा महत्व था। ये थियेटर कब बने और उनका बाह्य एवं आन्तरिक आकार किस प्रकार का था ये विवरण उपलब्ध नहीं हो पा रहे हैं क्योंकि आज वे प्रायः सभी नष्ट हो चुके है अथवा रूपान्तरित हो गये है। नाट्यशालाओं के निर्माण के क्रमशः काल की अनुपस्थिति मे जो कुछ उपलब्ध है उसे अकारादि क्रम से यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(अ) पारसियों द्वारा निर्मित नाट्यशालाएँ

इरास थियेटर—इस थियेटर का निर्माण सन् १६३७ मे हुआ था। निर्माता थे स्यावक्षा संवाता। चर्च गेट स्टेशन के सामने यह शानदार थियेटर खड़ा किया गया था और लाखो रुपये इसके बनवाने मे व्यय हुए थे। आज भी इसकी शान वैसी ही बनी हुई है और बम्बई के प्रसिद्ध थियेटरो में इसकी गणना की जाती है। आजकल यह सिनेमा के काम मे आता है। स्यावक्षा ने इसकी गणना थियेटरों मे की है परन्तु यह कही पता नही चलता कि इसमे कौन से नाटक अभिनीत हुए और कौन सी नाटक मंडली ने उन्हे रंगमंच पर खेला।[४३]

एडवर्ड थियेटर—इस थियेटर का निर्माण सन् १८५०-६० में माना जाता है। आज भी यह कालबा देवी रोड पर स्थित है। परन्तु अन्य थियेटरों की तरह इसकी भी कायापलट हो गई है और सिनेमा के काम में आता है। इसमें गुजराती के नाटक खेले जाते थे।[४४]

एम्पायर थियेटर—इस थियेटर का निर्माण सन् १६०८ मे हुआ था। इसका मालिक सिटी आफ़ बाम्बे इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट लिमिटेड था और इसमें १००० दर्शकों के बैठने का स्थान था। इस ट्रस्ट के प्राण ई० डी० मेसून कम्पनी के मि० नेथन और ताता सस कम्पनी के ए० जे० बिलिमोरिया था। सन् १६३० तक इसमें नाटकों का ही अभिनय होता था परन्तु १६३० में इसमे पहला सवाक् चलचित्र दिखाया गया जिसका नाम Vagabond King था। पीछे सन् १६४८ मे प्रसिद्ध साहसी शेठ केशह मोदी ने नये सिरे से इसका निर्माण कराया और नवीन ढग से बना हुआ यह सिनेमाघर अगस्त १६४८ मे सिनेमा के रूप मे चालू हो गया।[४५]

एलफिंस्टन थियेटर—बम्बई के लोकप्रिय राज्यपाल एलफिस्टन के नाम पर इस थियेटर का निर्माण लगभग १८५३ मे हुआ था। इसके सबंध में कोई अन्य विवरण उपलब्ध नही।[४६]

४३, ४४, ४५, ४६. पारसी नाटक तख्तो : स्यावक्षा, पृ० २२-२३।

एस्प्लेनेड थियेटर—इस थियेटर का निर्माण नाटक-उत्तेजक मंडली द्वारा हुआ था। यह वर्तमान क्राफ़र्ड मारकेट के पास बना था और लकड़ी का था। नाटक उत्तेजक मंडली के सभी नाटकों का अभिनय इसमें होता था। प्रसिद्ध है कि रणछोड़ भाई का हरिश्चन्द्र नामक प्रसिद्ध नाटक इसी नाट्यशाला में बहुत दिनों तक निरन्तर खेला जाता रहा। जिस प्रकार उक्त नाटक मंडली की स्थापना और कार्य-कलाप में कैखुसरो काबरा जी का हाथ था उसी प्रकार इस नाट्यशाला के निर्माण में भी उनका घनिष्ठ सहयोग था। नाटक मंडली का कार्य-काल ३५ वर्ष के लगभग माना जाता है अतएव नाट्यशाला का उपयोग भी कम से कम इतना ही मानना चाहिए।

औरिजनल थियेटर—सन् १८५३ में इस थियेटर के अस्तित्व का उल्लेख स्यावक्षा ने किया है। उल्लेख के अतिरिक्त कोई अन्य विवरण प्राप्त नही है।[४७]

गेयटी थियेटर—यह थियेटर कोर्ट के एक कोने पर बना था। इसके मालिक डाह्या भाई छोलसाजी थे परन्तु वह किसी नाटक मंडली के अधिपति भी थे या नही यह पता नहीं चलता। पहले इसी स्थान पर और इसी नाम से नाज़र जी ने एक नाट्यशाला बनाई थी जिसमें प्राय अंगरेज़ी नाटक हुआ करते थे। इंग्लैंड आदि से आने वाली बम्बई अथवा कलकत्ता जाने वाली अंगरेज़ी कम्पनियाँ यहाँ अपना प्रदर्शन करती थी। विक्टोरिया और एलफ़िस्टन नाटक मंडलियों से पृथक् होने के बाद नाजर जी की जीविका का प्रधान साधन यही नाट्यशाला थी। इसी नाट्यशाला में कुंवर जी नाज़र ने बड़ी सफलता के साथ Honey Moon नाटक का अभिनय किया था और अंगरेज़ी महिला वरचनाफ़ के साथ स्वयं भी उसमें अभिनेता बनकर पार्ट लिया था।[४८]

गोलपीठां की नाट्यशाला—इस नाट्यशाला का निर्माण गोलपीठों के सामने हुआ था। इसके निर्माता पेस्तन जी फ़राम जी वेलाती थे। पहले पेस्तन जी वेलाती 'पर्शियन क्लब' में अभिनेता थे और उसमें उन्होंने 'बरजो अने रुस्तम' नाटक का फ़ारसी भाषा मे अभिनय किया था। बाद में किसी कारण उसे छोड़ दिया और एक नई मंडली 'दी पर्शियन ज़ोरास्ट्रियन क्लब' के नाम से स्थापित की। उसी के लिए इस थियेटर का निर्माण हुआ। इस नाट्यशाला

४७. पारसी नाटक तख्तो, पृ० २२
४८. वही, पृ० २३।

में प्रसिद्ध नाटक 'पोलादबंद' का अभिनय किया गया था और अनेक यांत्रिक दृश्य दिखाये गये थे।[४९]

टिवोली थियेटर—आज जहाँ 'टाइम्स आफ़ इंडिया' का कार्यालय है वहाँ पर यह थियेटर बोरीबंदर (विक्टोरिया टर्मिनस) स्टेशन के सामने बना था। इस का निर्माण कुंवरजी पाघटीवाला के लिए हुआ था। सन् १८८६ में यह वर्तमान था परन्तु इस के निश्चित निर्माण काल का पता नहीं। यह थियेटर आलफ्रेड नाटक मंडली के लिए बनाया गया था। नाट्यशाला काम चलाऊ नाट्यशाला थी। आल्फ्रेड नाटक मंडली के मालिक उन दिनों नाना भाई रुस्तम जी राणीना थे। उन्होंने यह नाटक मंडली कावसजी पालन जी खटाऊ से मोल ले ली थी।[५०]

नावेल्टी थियेटर—इसका निर्माण भी बोरीबंदर रेल्वे स्टेशन के सामने वाले मैदान में ही हुआ था। इसके निर्माता प्रसिद्ध अभिनेता और एक समय विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी के एकमात्र मालिक खुरशेद जी बालीवाला थे। यह थियेटर बड़ा लोकप्रिय था। इसी कारण इसके पास बैठने वाले सोडा-लेमन और बादाम-पिस्तों की थैलियाँ बेचनेवाले अच्छा लाभ उठाते थे। इसमें आरकेस्ट्रा की प्रवेश फ़ीस १) या १॥) रुपया थी और पिट की केवल ।) आने। परन्तु नाटक देखने का आनन्द दोनों स्थानों पर बैठने वालों को समान रूप से मिलता था। 'पारसी प्रकाश' में इसका निर्माण काल सन् १८८७ बताया गया है। आज इसी के स्थान पर 'एक्सेलशियर थियेटर' खड़ा है।

बालीवाला ने एक अन्य थियेटर ग्रांट रोड पर निर्मित कराया था जिसका नाम 'ग्रांड थियेटर' था। इस के बनवाने में बालीवाला ने बहुत धन व्यय किया था। कहा जाता है कि इसके कारण उन की आर्थिक स्थिति भी संकट पूरित हो गई थी परन्तु बालीवाला बड़े साहसी व्यक्ति थे। वह जैसे-तैसे अपनी नैया विपद-सागर से पार निकाल ले गये। परन्तु आपत्तियाँ अकेली नहीं आती। इस थियेटर में आग लग गई और यह जलकर राख हो गया। रयावक्षा के लेखानुसार इसका उद्घाटन उस समय (१९०७) पुलिस कमिश्नर एस० एम० एडवर्ड्स ने किया था।

नेशनल थियेटर—इसके निर्माता द्वारकादास लल्लूभाई थे। यद्यपि यह थियेटर

---

४९. क़ैसरे हिंद, २री दिसम्बर, सन् १९२८।
५०. वही, २री दिसम्बर, सन् १९२८।

पारसियों के द्वारा निर्मित नहीं हुआ था परन्तु यहाँ इसका उल्लेख कर दिया गया है। इसके विषय में अधिक ज्ञात नही।[५१]

रायल ओपेरा हाउस—यह शानदार थियेटर जागीर जी फ़ारदून जी कड़ाका ने साढ़े सात लाख रुपया लगाकर बनवाया था। इसके बनवाने में बैंडमैन कम्पनी के मैरिस बैंडमैन ने अपनी सलाह देकर उसमे सहायता प्रदान की थी। इसके निर्माण का कार्य सन् १६२५ में पूरा हुआ और उसके दस वर्ष बाद ही इसे सिनेमा हाउस में परिवर्तित कर दिया गया।

रिपन थियेटर—इसके विषय में कुछ ज्ञात नहीं होता।

विक्टोरिया थियेटर—सन् १८६८ मे जब विक्टोरिया थियेट्रिकल मंडली की नींव पड़ी तो यह समस्या पैदा हुई कि उसके नाटको का अभिनय किस स्थान पर किया जाय? वैसे तो रथावक्षा के अनुसार सन् १८५३ मे ही पाँच थियेटर वर्तमान थे परन्तु विक्टोरिया नाटक मडली के उद्भव के समय उल्लेख योग्य केवल शंकर सेट की ग्रांट रोड नाट्यशाला ही थी। संभवतः अन्य नाट्यशालाएँ समाप्त हो चुकी थी। अतएव ग्रांट रोड थियेटर में ही एलफ़िस्टन, जोरास्ट्रियन और विक्टोरिया नाटक मडलियों को अभिनय करना पड़ता था। इस कारण प्रत्येक नाटक मडली को एक सप्ताह मे बहुत कम दिन अभिनय करने को मिलते थे जिससे उन्हें अधिक आर्थिक हानि उठानी पडती थी।

सन् १८७० में जब विक्टोरिया नाटक मंडली दादी पटेल के हाथ मे आई तो उन्होंने एक नया थियेटर बनवाने की सलाह की। ग्रांट रोड पर ही एक भूखण्ड लेकर विक्टोरिया थियेटर बनवाया गया जिससे विक्टोरिया नाटक मडली को, जो उस समय भी सब से बड़ी नाटक मडली थी, नाटकों के खेलने मे कोई असुविधा न हो।

विक्टोरिया थियेटर का कोई चित्र अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। अतएव उसके विषय में जानकारी देना असंभव है। परन्तु कुछ लोगों ने उसे भैंस के तबेले के समान बताया है। जो भी हो उपयोगिता की दृष्टि से यह थियेटर बहुत प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण था।

वेलिंगटन सिनेमा—इसके निर्माता शेठ रुस्तम जी दोराब जी थे। सन् १६२५ में इस का उद्‌घाटन बम्बई के राज्यपाल सर लेस्ली विल्सन ने किया था। सन् १६३० में यह भी टाकीज़ में परिवर्तित हो गया।

---

५१. क़ैसरे हिन्द, २ री दिसम्बर, सन् १६२८।

हिन्दी नाट्यशाला—इस नाटकशाला के निर्माता दादाभाई रतन जी ठूंठी थे। जब दादी पटेल के हाथ में विक्टोरिया नाटक मंडली आ गई तो दादा भाई ठूंठी उससे पृथक् हो गये क्योंकि दादा भाई ठूंठी और दादी पटेल के विचारों में एकता नहीं थी। पृथक् होकर दादा भाई ठूंठी ने एक नया क्लब 'हिन्दी नाटक क्लब' और एक नई नाट्यशाला 'हिन्दी नाट्यशाला' नाम से स्थापित करने की बात सोची। ग्रांट रोड पर उन्होंने एक बहुत बड़ा मकान लिया जिसमें नाटक के रिहर्सल होते और उसी के कम्पाउण्ड में हिन्दी नाट्यशाला का निर्माण अपनी देखरेख में आरंभ कर दिया। सुबह से लेकर शाम तक दादा भाई ठूंठी नाट्यशाला के काम पर निगरानी रखते, वहीं दिन का भोजन करते, और सायं ७ बजे से नाटक का रिहर्सल आरंभ कर देते। उस समय इसके पास कुछ प्रसिद्ध पारसी अभिनेता थे, यथा—

१. दादा भाई रतन जी ठूंठी (मंडली मालिक, अभिनेता और डिरेक्टर)
२. दादी अस्पदयार जी मिस्त्री (दादी जादूबाज)
३. अरदेशर शराफ़ (एक व्यवसायी)
४. जेहांगीर जी पेस्तन जी खंबाता (जहांगीर लाम्बो)
५. कावस जी कलीगर (काऊ कलीगर)
६. नवरोजी बाटला
७. नवरोजी एदलजी तबोली
८. कावस जी पालन जी खटाऊ
९. कावस जी मिस्त्री (काऊ हांडो)
१०. फ़राम जी गुस्ताद जी दलाल
११. जमशेद जी का० दाजी (जमसू मनीजेह)
१२. जहांगीर नवरोजी मीनवाला (जहांगीर नाल्लो)
१३. डोसाभाई फराम जी कॉंगा (व्योपारी)
१४. माणक जी म० मिस्त्री (माकु घानसाख)
१५. बरजोर जी कुटार

इत्यादि, इत्यादि।

इस नाट्यशाला में सबसे पहला नाटक 'फ़रेदून' खेला गया जो कैखुसरो कावरा जी का लिखा हुआ गुजराती नाटक था। फिर बेजन-मनीजेह और बेनज़ीर-बद्रेमुनीर भी अभिनीत हुए जो उर्दू में थे। अन्त में यह नाट्यशाला एक ऐसे धनी के हाथ में आ गई जिसने दादाभाई ठूंठी को ऋण दिया था और जिसे वह चुकता न कर पाये।

(अ) पारसी थियेटर के पारसी नाटककार

निस्संदेह पारसी थियेटर के प्रधान लेखक आरंभ में स्वयं पारसी ही थे। ये पारसी गुजराती भाषा में ही लिखा करते थे। सब से पहला नाटक, जैसा लिखा जा चुका है, सन् १८५३ में अभिनीत हुआ था। इसके लेखक का पता नहीं चलता और न कहीं उसकी कोई प्रति ही उपलब्ध होती है। पारसी नाटक मंडली द्वारा अभिनीत होने वाले उक्त नाटक के पीछे वाले नाटकों के लेखक का भी कुछ प्रमाणित विवरण नहीं मिलता। इन्हीं दिनों एक अन्य नाटक 'करण घेलो' का उल्लेख आता है जिसे कुंवर जी नाजर ने अभिनीत किया था। करण गुजरात का अन्तिम हिन्दू सम्राट था और उसी के कथानक को लेकर यह नाटक लिखा गया था। हिन्दू संस्कृति के आधार पर लिखा होने के कारण इसमें अनेकों ऐसी घटनाएँ और दृश्य थे जिनकी जानकारी के लिए विशेष रूप से हिन्दू जानकारी रखने वालों को रखा गया था जिससे वे पारसी अभिनेताओं को उनके सम्पन्न करने की विधि से अवगत कर सके। पर्याप्त तैयारी के पश्चात् नाजर ने इस नाटक के खेलने का साहस किया था। उन्हें इसमें सफलता भी मिली थी और इस अभिनय ने पारसी थियेटर के उद्भव में प्रेरणा-स्रोत का काम किया था। परन्तु इस के लेखक का भी पता नहीं चलता। नाटक भी उपलब्ध नहीं है। संभवत. आरंभ के ये सभी नाटक मुद्रित ही नहीं हुए। वे हस्तलिखित प्रतियों के रूप में ही रहे और कालान्तर में नष्ट हो गये। यही स्थिति उन प्रहसनों और उनके लेखकों की है जो आरंभिक नाटकों के साथ रंगमंच पर खेले जाया करते थे। यद्यपि ये प्रहसन प्रायः हिन्दुस्तानी में होते थे परन्तु लेखक इनके भी पारसी ही होते थे।

पारसी नाटककारों के विषय में, दो-चार को छोड़कर, प्राप्त सामग्री की मात्रा नहीं के बराबर है। कहीं-कहीं उनके उल्लेख इधर-उधर की पुस्तकों में मिल जाते हैं परन्तु विस्तृत वर्णन कहीं नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में, जैसी नाट्यशालाओं की बात है, जो कुछ प्राप्त हो सका है उसे संग्रहीत करके यहाँ लिख दिया गया है। एक प्रकार से कैखुसरो नवरोजी कावरा को पारसी नाटककारों में सर्वप्रथम माना जा सकता है परन्तु अन्य नाटककारों के जन्म-मृत्यु आदि का निर्णय न होने के कारण जो कुछ प्राप्त हो सका है, वही यहाँ दिया जा रहा है।

१. आपख्त्यार, नशरवान जी दोराब जी

नशरवान जी दोराब जी आपख्त्यार एक प्रसिद्ध और विद्वान पारसी सद्गृहस्थ थे। उन्हें संगीत में बड़ी रुचि थी; स्वयं भी गाने का शौक था और संगीत सुनने का भी चाव था। वह नाटककार थे, लेखक थे और पत्रकार थे।

आपल्यार 'पारसी पंच' पत्र के अधिपति थे। यद्यपि यह पत्र सन् १८५४ में दादाभाई सोहेरी ने पहले पहल चलाया था परन्तु सन् १८७८ में यह पत्र आपल्यार के हाथ में आया, और मृत्यु पर्यन्त वह उसे चलाते रहे।

आपल्यार का जन्म सन् १८३५ में हुआ था। आरंभ में इनकी अटक 'कीकादावर' थी परन्तु जब सन् १८५४ में इन्होंने 'आपल्यार' नाम का पत्र निकाला तो इनके नाम के साथ आपल्यार लगने लगा। आपल्यार और कैखुसरो कावरा जी में बड़ी शत्रुता थी। एक ओर विक्टोरिया नाटक मंडली कैखुसरो का 'बेजन-मनीजेह' और एदल जी खोरी का 'रुस्तम सोहराब' अभिनीत कर रही थी तो दूसरी ओर आपल्यार ने संगीतमय 'सोहराब-रुस्तम' खेलने का निश्चय किया।

'सोहराब-रुस्तम' की कथा को संगीत का रूप देने का काम आपल्यार का था और सौभाग्य से उन्हें माणक जी वारमाया मिल गया। वारमाया का गला बड़ा मीठा और आकर्षक था। अतएव सोहराब की भूमिका माणक जी वारमाया ने ली और रुस्तम की भूमिका स्वयं आपल्यार ने तथा तहमीना की भूमिका में जमशु कादेवाला रंगमंच पर प्रगट हुए। 'सोहराब-रुस्तम' गुजराती का सबसे पहला 'ओपेरा' था। यह दर्शकों में बहुत प्रिय हुआ।

आपल्यार ने कई एक 'स्केच' भी तैयार किए थे। इनमें भी संगीत का समावेश होता था। उनके स्केचों में 'कजोडाने स्केच' बड़ा लोकप्रिय था। इसमें एक बूढ़े के साथ एक बारह बरस की कन्या का विवाह दिखाया गया था। ये स्केच आपल्यार की मंडली 'पारसी स्टेज प्लेअर्स' खेला करती थी। आपल्यार के संगीत का प्रभाव यह पड़ा कि कैखुसरो कावरा जी ने भी अपने गद्य नाटकों में गाने रखने शुरू कर दिए और एदल जी खोरी भी अपने नाटकों में उदयराम रणछोड़ भाई से गाने लिखवा कर उनमें सम्मिलित करने लगे। फिर तो यह परम्परा ही चल निकली।

इस दृष्टि से भी आपल्यार का योगदान पारसी नाटक में बड़ा महत्वपूर्ण था।

२. कावरा जी, कैखुसरो नवरोजजी

(जन्म २१ अगस्त, १८४२; मृत्यु २५ अप्रैल, १९०४)

नाट्य साहित्य और नाट्यशाला एवं रंगमंच के लिए कैखुसरो कावराजी का योगदान बड़ा महान् और अनुपम था। वह केवल

'रास्तगोफ़्तार' के अधिपति एवं सफल सम्पादक ही नही थे वरन् उच्चकोटि के नाटककार भी थे।

विक्टोरिया नाटक मंडली की स्थापना का श्रेय कैखुसरो को ही दिया जाना चाहिए। उसी के लिए उन्होंने अपना सर्वप्रथम नाटक 'बेजन-मनीजेह' गुजराती भाषा में लिखा। रचनाकाल सन् १८६९ था। इस नाटक का कथानक फ़िरदौसी के शाहनामे से लिया गया है। नाटक देखने में नहीं आया अतएव इसके विषय में अधिक नहीं कहा जा सकता। सुना जाता है कि अभिनय की दृष्टि से इसे वह सफलता प्राप्त नहीं हुई जिसकी आशा की गई थी। इसमें जमशेद दाजी ने मनीजेह का पार्ट किया था और दर्शक-मंडली से 'जमसु मनीजेह' की उपाधि प्राप्त की थी। कावराजी ने जमसु को एक बेनिफिट नाइट दी और उसमें स्वयं मनीजेह का पार्ट किया।

कैखुसरो कावरा जी का दूसरा नाटक 'जमशेद' था। इसकी रचना सन् १८७० में हुई थी और इसे भी उन्होंने विक्टोरिया नाटक मंडली के लिए लिखा था। जमशेद की कथावस्तु भी शाहनामे में ही ली गई है, परन्तु दोनों में बड़ा भेद है। लेखक ने अपने नाटक की भूमिका में स्वयं इन बातों पर प्रकाश डाला है। उन्हीं के शब्दों में—

".....आ बे (बेजन-मनीजेह और जमशेद) दास्तानो वचे केटलाक तफावत (अंतर) छे। अगर जो बेजननु दास्तान सृंगाररसथी भरेलुंहतुं तो जमशेदनुं दास्तान करुणरस थी पुर छे। पहेलामा गमत (मनोरंजन) तो बीजा मा तवारीख वधारे छे, अने तेटला माटे नाटक लखवानुं काम नाटक थी वाकेफ़गार लखनारने माटे नामाकित गोल्डस्मिथ (Goldsmith) गमे एवं सहेल विचारे छे, तोपण जमशेदनां दास्ताननें एक रमुजु (मनपसद) ईआ रसीला नाटकनु रुप आपवुं ओ बेजनना दास्तान करतावी वधारे मुशकेल अनुं मेहनतनुं काम छे। बेजनना दास्तानमायी एक नाटक ने लायक साधनो तथा जोगवाइओ (अवसरपरक) थोड़ा घडां आइतां मली आवे छे। तथा जुदा जुदा बनावो (दृश्य) एक पछे एक चहडतुं धेआन खेचती रीते एककेने अठडावीने (सप्ताह) गोठ वेला छे। पण जमशेदनुं दास्तान गोया एकनीएक, पीजन जेवी (पृष्ट-पेषण जैसी) वारताने लायेक बनावोना रस वगरनी तवारीख छे, अने जे पछवाडेथी जमशेदने मोहबतना फादामा फसवानो सजोग जोडेलो नही होय तो फिरदोशी (कवि) ना यादगारी भरेला 'शाहानामा मधे 'सरुथी लखु दास्तान जमशेदनुं गणाय छे।

"पादशाह जमशेदनुं मगज पोतानी जाह्ने जलाली थी फुली गयुं; तेणे हेंकारथी (अहंकार के कारण) खोदाई (ईश्वरत्व) दावो कीधो, जेथी तेना राजमां बलवो (विद्रोह) थयो अने ते हार मार तथा पायेमाल थईने फकीरी हालत मां मरण पांमयो, एटलाज बोलोमां फीरदोशीना आरंगीन दास्तानमो सघलो सारांउस (साराश) आवी रहे छे। जमशेदना माहान करमो अने तेनी जाहो जलालीनुं गमे एवुं बारीक वर्णन मोटी फमाहतथी फ़ीरदोसीए करेलुं छे, मगर एक नाटकना सांघा गोठववामां तोवअेआन थोडाज कामनुं छे; केमके एक नाटकमा मैं हेवालोना करता बनावोनी वधारे जरूर छे। बीवधाभना मतरीजा चमोक्षायते ईआने जमशेदना जाहोजलाली मरेला राजमा एवा शुं बनाव बनया के ते यजदान-लालाथी नवेजाला पादशाहनु मंजु एकाएक फुली गयुं; अने ते हेंकारथी फुली गयो तो एवा शुं बनाव बनया के जेथी रईएतने (रयीअत) बलवो करवो पड्यो अने अते तेजुं राज गयुं, ते सघला बनावोने आ 'पुरवतरफ़ना होमरे' पोताना वांचनाराओनी अटकल ऊपर राखया छे। ते बनावोनी गेरहाजरी आ साएरोना (कवियों का) शाहना शाहनामां जेवी केताब मध्ये चाली जाय, पण एक नाटक मां तो ते बनावो नजर आगल बनावी देखाउवा वना चाले नहीं।

"एटला माटे आ नाटक मधे जमशेदना राजाने लगता सघला बनावो बना-वटथी बनाववा पड्या छे तथा फिरदोशीअे मातर जमशेदनी सानशाहातनूं जे दुखदायक परीनामज वरणवयुं छे, तेना वधारे दुखदायक कारणो कलपणाथी आ नाटक मधे ऊभा करवां पडयां छे। जमशेदना हेंकारथी तेनु राज पड़ी भागुं एटले शुं ऊनें ? केम बने, ते आ नाटक मधे बतावा ऊपर सारा धेआन आपवामां आवयुं छे अने एकामनो मारो पलान (Plan) टुकमा समजावी जवो घटेछे। परथम पादशाह पोतानी जाहोजलाली अने कावुनी, पोताना दबदवा अने दोरनी सुशाली थी गोया धराई पोताने मऊथी चहुउतो गणीने ते ऊपरनी अभीमानी तथा तकोवरी अेखतियार करे छे। ते अवी अे गहरी धीमे धीमे वधती जाय छ, तेम हेंकारना आतराने माहारथी खुशामतनो पवण लागे छे अने खुशामतने वस थयला पादशाहना खोदाई दावाओने कोई भोला ओ गरां दिलथी मांनीने, तो कोई दगाराओ खानगी मतलब हईडे धरी ने पादशाहना आ गुमाननो धीमे धीमे वधारो आरेछे, ते तेना अंदरपे दरजामा वधतुं जनुं देखाडवानी आ नाटकमां कोशेश कीधे छे।

"अे रीते जारे आ नाटकमां अगनान तथा आप मतलबीया लोकोने पादशाहने मलता राखया छे तारे दुरअंदेश तथा समजु लोकोने पादशाहनी आवदी पर

वेदील थता देखाड्या छे। अने अगतकरी ने तेना दाहायशावाला मसलती आ तथा मददगारोने तेना गुमान ने तोड़वानी कोशिश करता चीतार्‌या छे।

....

....

अंते तेनी गरूरी जुलमातनूं रूप पकडे छे, पोतानो खोदाई दावो ते जासतीथी कवूल करावा मांगे छे अने तेनी विरुघनी सलाहने खातर अे पादशाह पोताना अेलम अने कुवत ऊपर मुसताक रही, पोताना हाथ पग सरीखा दाहाया दरवारीओने अनेक रीते पोतानी दूर करी, पछे अगतने वखते तेओनी सलाहा तथा मदद वगर पोताने लाइलाज तथा लाचार हालत मां आवेलो जुवे छे, तेनी तकोबरी धीमे धीमे कोताथई जाय छे, अने शेवटे तेने पसतावानो वखत आवे छे, मगर ते वखते सघलुं असुरुं थवाथी तेणे राज खोही अेक भटकीया भिखारीनी हालत मां आववुं अेखुदरतनी परीनामनी मीशाले आ नाटक मां देखाडयु छे।"[५२]

इस तीन अंकी नाटक की कथावस्तु, नाट्यकला एवं लेखक की कला-कुशलता के सम्बन्ध मे इससे अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। यदि रंगमंच पर सफलता और दर्शकों की लोकप्रियता किसी नाटक की उत्कृष्टता का प्रमाण माना जा सकता है तो जमशेद की गणना उच्च नाटकों में ही होनी चाहिए।

जमशेद के पश्चात् 'फ़रेदून' नाटक की रचना हुई। उसका आधार भी शाह-नामा ही था। जमशेद की तरह 'फ़रेदून' भी इतिहासपरक नाटक है और ऐति-हासिक दृष्टि से ईरान की राज्यवशावली मे जमशेद के काफ़ी बाद आता है। कैखुसरो ने फ़रेदून के दीवाचे में भी, जमशेद की तरह, अपनी सफ़ाई प्रस्तुत करते हुए उसके विषय की समस्त आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला है। कावरा जी के विचार उन्हीं की भाषा में इस प्रकार है—

"..:...सघली कीसमना नाटकोमां तवारीखने लगता नाटको लखवा सऊथी कठण थई पडेछे। नाटकनी रचनामां तेनी फतेहमदीने माटे जोइतां वीवीतरपणानो अने उलट पलट देखावोनी बनावटने तवारीखमां जोईती सचाई साथ अेक जातनी दुश्मनी रेहे छे। जेम अेक साअेर खरी तवारीख आपवामा नीशफल थाय छे—जे माहाकवी फीरदोशीमा आपणे जोयुं छे—तेम अेक नाटककार अगर खरेखरी तवारीखनेज वलगी रेहेवा मागतो होय तो नाटकने लगतुं पोतानुं काम चुके छे। अेमनीअेम तवारीखने तख्ता ऊपर करी देखाडी होय तो नाटक दाखल ते नीशफल थाय, माटे थोडी घणी कलपना तो नाटक

---

५२. दीबाचा, जमशेद। मुद्रक बेहरामजी होरमसजी, कोर्ट स्ट्रीट नं० ६, १८७०।

लखनारने करवी जोईअेछे। पण वली सरी बावतोमा ते कल्पना करी शक्तो न थी .....जेम जमशेद तेमज फरेदूननी तवारीख नाहानी अने घणा बनावो वगरनी साधारण छे। 'जमशेद' नी सघली तवारीख मातर अेटलामाज समावेली छे के ते घणो जाहोजलाली भरेलो अने बेगामवरी दरजानो शाह थई गयो, पण पाछल थी तेणे खोदाई दावो करवाथी तेना हँकारे तेने तोड्यो, पायमाल करयो तथा जोहाकने हाथ कतल करयो।" परन्तु कैखुसरो के कथनानुसार, फिरदौसी को यह आवश्यक नहीं था कि वह यह बताता कि जमशेद के साथ यह सब कैसे बीती, परन्तु नाटककार अपने नायक के साथ न्याय करने के लिए अपनी कल्पनाशक्ति का प्रयोग करेगा ही अन्यथा चरित्र असंपूर्ण रहेगा। लेखक ने फरेदून को दो भागों मे विभाजित किया है। पहले भाग में दो अंक है। प्रथम अक मे चार प्रवेश हैं और दूसरे अंक मे पाँच। इसी प्रकार दूसरे भाग मे प्रथम अक मे पाँच प्रवेश और दूसरे अक मे भी पाँच प्रवेश हैं। नाटक का प्रथम भाग कल्पित अधिक है और दूसरा भाग इतिहासजन्य अधिक है।

लेखक ने स्वीकार किया है कि जमशेद नाटक मे उसने जमशेद की सम्पूर्ण जिन्दगी को चित्रित करने का प्रयास किया जो नाटक की दृष्टि से उपयुक्त नहीं क्योंकि दो तीन घटे के लिए लिखे गये नाटक मे इतना सब कुछ भरने का प्रयत्न स्वयं में एक भूल है। परन्तु फ़रेदून मे उसने यह दोष अपनाया नहीं। अपनी रचना के उद्देश्य के विषय मे नाटककार का कथन है--

"....मारी मुखीयअ मतलब तो अेटलीज छे के हाल जारे पारसीओ पोताना वंतन, पोतानो दोर, पोतानी जाहोजलाली अने पोतानी परजा तरीकेनी लागणीओ (मनोधर्म) भुलता गया छे, तारे तेओ आगल ते आगला राजनो काई रमुज तथा ज्ञानमेंगो (ज्ञान सम्मिलित) चीतार (चित्रण) धरीने ते आगला दोरनी कांई याद ताजी करवी, अने पारसीओमा अे बावतना जोसानो वधारो करवामां आ मारी नवली कोशेश थी अगरजो काई पण मदद मलेतो ते हुं पुरतो बदलो समजुश।" ५३

उक्त शब्दो से स्पष्ट है कि लेखक पारसियों को पुरानी स्मृति दिलाकर उनमे एक नया उत्साह भरना चाहता है और निस्सदेह इसमे वह सफल भी है।

कैखुसरो सुधारक प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने पारसी समाज के सुधार के लिए अनेकों आन्दोलन किए, लेख लिखे, नाटक लिखे और यहाँ तक कि

---

५३. फ़रेदून; दोबाचा, अप्रैल १८७४। मुद्रक–बेहरामजी फ़रदूनजी कंपनी, कोट, बेहरामजी होरमसजी स्ट्रीट नं० ६ तथा ११।

संगीत की शिक्षा के लिए 'संगीत उत्तेजक मंडली' की भी स्थापना की। पारसी स्त्रियों की सामाजिक कीर्ति के उत्थान के लिए 'स्त्रीबोध' जैसी पत्रिका निकाली।

कैखुसरो ने केवल पारसी इतिहास और संस्कृति का ही प्रतिपादन नहीं किया, उन्होंने हरिश्चन्द्र[५४], सीताहरण, लवकुश और नदवत्रीसी जैसे नाटक लिखकर तथा शोधकर हिन्दू धर्म को भी प्रोत्साहित किया। यद्यपि हरिश्चन्द्र और सीताहरण क्रमशः मूलरूप मे रणछोड़ भाई उदयराम तथा नर्मदाशंकर के नाटक थे परन्तु उन्हें अभिनय योग्य बनाने में उन्होंने इतनी सहायता दी थी कि वे कैखुसरो लिखित ही माने जाने लगे थे। नंदबत्रीसी उनका मौलिक नाटक था।

'निदाखानुं' की कथावस्तु अंगरेज़ी कवि और नाटककार शेरिडन (Sheridan) के प्रसिद्ध नाटक The School for Scandal से ली गई थी परन्तु लेखक ने उसे तत्कालीन पारसी समाज की स्थिति के उपयुक्त बना दिया है। 'मोलीजान' की कथावस्तु भी Collin Baun के आधार पर स्थित है परन्तु बड़ा उपदेशप्रद नाटक है। प्रसिद्ध अभिनेत्री मेरी फेंटेन ने इसी नाटक में गुल नामक नायिका का अभिनय बड़ी सफलता से किया था। "Wife as they are, Maids as they were" के आधार पर "सुडी वचे सोपारी" (सरोते में सुपारी) की रचना हुई है। परन्तु धनजी भाई पटेल का यह विचार ठीक नहीं प्रतीत होता। कैखुसरो का यह नाटक अप्रैल सन १८८४ मे लिखा गया और उसी वर्ष नानाभाई रुस्तमजी राणीना के यूनियन प्रेस मे छपा। अपनी प्रस्तावना मे लेखक कहता है कि यह नाटक मिसेज सेंटलीवार नाम की प्रसिद्ध लेखिका के अगरेजी नाटक "The Wonder' के आधार पर लिखा गया है। इसमें भी पारसी संसार की हालत का चित्रण है। पृष्ठ ७ तथा ८६ पर हिंदुस्तानी भाषा के शब्द लेकर ध्रुपद और गज़ल सम्मिलित कर दी गई है।

"पारसी वच्चो—काका पाहलण" एक अन्य नाटक है। इसका दूसरा नाम 'शेहेरीयांनी सफाई, विरुध गामडियन सादाई' भी है जो इसकी विषय-वस्तु पर अधिक प्रकाश डालता है। दृश्यों या घटना के स्थान मलेसर एवं नवसारी है।

---

५४. पा० प्र० सं० २, पृ० ५६२ पर लिखा है—"हरिश्चन्द्र नाटक रा० रा० रणछोड़भाई उदयरामे असल ऊपरथी गुजरातीमां करेलुं। तेमनी रजाथी नाटक उत्तेजक मंडली ने माटे फेरफार करीने ४ अंकमां रचनार..... मुंबई, आशकार छापाखाने मध्ये बेहरामजी फ़रदूनजी कंपनीए छाप्युं छे।"

'Hunt of the Red Hill Mountain' के आधार पर 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' नाटक की रचना की गई है।

निस्संदेह कैखुसरो एक सफल नाटककार और अभिनेता थे। उन्होंने जिस पात्र को लिया उसे अपनी लेखनी से ऐसा सुन्दर रंग दिया है कि आदि से अंत तक उसका चरित्र निखरता चला गया है। नाटककार, स्वाभाविक रीति से, अपने पात्रों का, अन्य पात्रों के परस्पर विरोध में, चित्रण करता है व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप दोनों से। अन्यथा उसका चरित्र-चित्रण स्वाभाविक और आकर्षक नहीं बन पाता। कावरा जी में चरित्र-चित्रण की यह कला प्रस्तुत है। उनके पात्रों में जंगली, जनूनी, दुराचारी और खूनी सभी तरह के व्यक्ति हैं। विशेषता यही है कि पापी पापी के रूप में, ढोंगी ढोंगी के रूप में और सत्यवादी सत्यवादी के रूप में सामने आया है। राजा और प्रजा, शूर और बुज़दिल, पापी और परहेज़गार, ऊँच और नीच, प्रेमी एवं प्रेमिका सभी अपनी-अपनी रूपरेखा में अंकित है। जमशेद की पुकार, अरजास्प की बुद्धिमानी, जामास्प की वीरता, प्यार में घुलती सपनजान, प्रेम की ज्वाला में भस्म होने वाली अरनवाज़, दिवानी शेहरनवाज़, प्रेम की तान में खिंची हुई मनीजेह, वियोगिनी सीता, पति-पुत्र के वियोग में बिलखती हुई तारा, सत्य पर प्राण देने के लिए तत्पर हरिश्चन्द्र—सभी अपने-अपने स्थानों पर मानव गुणों और लक्षणों का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई पड़ते हैं। सिद्ध हस्तलेखक की कला-कुशलता का प्रमाण इससे अधिक और क्या मिल सकता है।

सब कुछ मिलाकर कैखुसरो नवरोजी कावराजी का योगदान पारसी थियेटर के लिए बड़ा उपयोगी और अनुपम है। नाटक साहित्य और नाट्य अभिनय को स्थिरता प्रदान करने का श्रेय उन्हीं को है। अतएव उन्हें 'देसी तख्तानो बाप' कहना सर्वथा उचित है।[५५]

३. खोरी, एदलजी जमशेदजी

एदलजी खोरी ने अप्रैल सन् १८६५ में मैट्रीक्यूलेशन परीक्षा पास की थी। परन्तु मालूम होता है कि लिखने-पढ़ने की रुचि जन्मजात थी। सन् १८६५ में ही उन्होंने अपने दो अन्य पारसी मित्रों के साथ का गुजराती में अनुवाद किया।

---

५५. कैखुसरो नवरोजी कावराजी के विषय में यदि अधिक जानने की जिज्ञासा हो तो देखिये अरदेशर फ० खबरदार द्वारा सम्पादित 'स्त्रीबोध' नो खास वधारो कैखुसरो नवरोजी कावराजी स्मारक अंक; प्र० स्त्रीबोध आफ़िस, मेम्यू रोड, गिरगांव, बम्बई, सन् १६०४।

यह अनुवाद माननीय जीजाभाई, रुस्तमजी जमशेदजी को जो अपने समय में पारसी जाति के एक बड़े प्रतिष्ठित सज्जन थे, अर्पण किया गया था। उनकी ओर से तीनों विद्यार्थियों को बड़ा प्रोत्साहन भी मिला था।

एदलजी खोरी को इतिहास लिखने का भी शौक़ था। १८ जुलाई, सन् १८७१ में उनकी लिखी हुई 'फ्रांस अने जर्मनी वच्चे नी लड़ाई' प्रकाशित हुई। इसी प्रकार १० फरवरी सन् १८७८ में 'एशिया अने टर्की वच्चेनी लड़ाई' प्रकाशित हुई। इस इतिहास को खोरी से लिखाने वाले मुंबई समाचार के मालिक शेट माणिक जी बरजोर जी मीनोचहर होमजी थे। यह मुंबई छापेखाने में ही छपी थी और चित्रों सहित कई भागों में प्रकाशित हुई थी।

एदलजी की अन्य साहित्यिक रचना में उनकी कृति 'प्राणी-विद्या' का भी नाम उल्लेखनीय है। यह पुस्तक चार-हाथ वाले प्राणी, पाख-वाले प्राणी, फीणा जानवरों, ऊपर जीने वाले प्राणी, कातरी करडी खाने वाले प्राणी और मास खाने वाले प्राणियों पर लिखी गई थी। इसका प्रकाशन १ जून, १८८० को आस्कार प्रेस से हुआ था।

एदलजी खोरी ने जो नाटक लिखे वे मूल गुजराती में थे। उनमें से अधिकांश का अनुवाद ख़ाँ साहब 'आराम' ने हिन्दुस्तानी में किया था।

एदलजी ने अपने नाटक गुजराती में लिखे थे और भिन्न-भिन्न नाटक मंडलियों के पास उनके अधिकार थे। इनका सर्वप्रथम नाटक सम्भवतः 'लेडी आफ़ लिआन' था जिसका आधार अंगरेज़ी का नाटक (Lady of Lyon) था, अंगरेज़ी लेखक बल्वर लिटन (Bulwor Lytton) थे। बम्बई की जनता का यह बड़ा लोकप्रिय अंगरेजी नाटक था। इस नाटक की रचना खोरी ने सन् १८६८ में की थी। जैंटिलमैन अमेच्योर्स मंडली के मालिक फ़रामरोज गुस्तादजी दलाल (फलुघुस) के लिए लिखा गया था और उसी में अभिनीत भी हुआ। कहा जाता है कि इसी नाटक के रिहर्सल में फ़रामरोज जोशी और फलुघुस से परस्पर मनमुटाव हो गया था जिसके कारण फ़रामरोज जोशी मंडली छोड़कर दूसरे स्थान पर चले गये और बाद में मंडली भंग हो गई।

दूसरा नाटक 'रुस्तम अने सोराब' था। यह पाँच अंक का नाटक था और फ़िरदौसी के शाहनामा के आधार पर लिखा गया था। विक्टोरिया नाटक मंडली के मालिकों ने इसे २८ अप्रैल सन् १८७० में दफ्तर आश्कार प्रेस बम्बई से प्रकाशित किया था। लेखक ने यह नाटक तीन सौ रुपये में नाटक मंडली को बेचा था। कैखुसरो काबराजी के विक्टोरिया नाटक मंडली से पृथक् होने पर दादी पटेल उक्त मंडली के मंत्री बने और कुछ दिनों बाद ही उसके एकमात्र

मालिक भी बन गये। अपने स्वामित्व काल मे उन्होंने खाँ साहब 'आराम' से इस नाटक का हिन्दुस्तानी में अनुवाद कराया और उसका अभिनय किया। रुस्तम की भूमिका दादी पटेल की ही थी।

तीसरा नाटक 'हजमवाद अने ठगनबाज' था जो १५ मई सन् १८७१ को दफ्तर आश्कार प्रेस से प्रकाशित हुआ। यह भी विक्टोरिया नाटक मंडली ने ही प्रकाशित कराया था और उसी ने इसे अभिनीत किया था। उन दिनों कुंवर सोराबजी नाजर और दादा भाई पटेल दोनों ही विक्टारिया नाटक मंडली के मालिक थे। कहा जाता है कि इस नाटक मे मंडली को सफलता नही मिली।

डा० नामी ने इस नाटक का नाम 'हजम आवाद और थगनी तार' दिया है। परन्तु 'पारसी प्रकाश' मे जो नाम दिया गया है मैंने उसी नाम को ठीक माना है।

चौथा नाटक 'खुदाबख्श' था। तीन अंक का यह नाटक ५ जून सन् १८७१ में जामे-जमशेद प्रेस से प्रकाशित हुआ। लेखक ने इसे जोरास्ट्रियन नाटक मंडली के लिए लिखा था।

इसका हिन्दुस्तानी भाषा मे अनुवाद संभवतः खाँ साहब 'आराम' ने किया था। गुजराती नाटक काफी लोकप्रिय रहा।

इस नाटक की कथावस्तु कुछ विचित्र-सी है। नादिरशाह नामक एक नवयुवक दमिश्क की एक सुसम्पन्न परिवार की कन्या परीबानू का समाचार सुनकर उस पर मोहित हो जाता है और उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अपनी इच्छा को वह अपने मित्र जफरउद्दीन से प्रकट करता है। समस्त समाचार सुनकर जफरउद्दीन भी मन ही मन परीबानू पर आसक्त हो जाता है। परिणाम यह होता है कि दोनों मित्र परस्पर शत्रु हो जाते हैं और दोनों ही अपनी प्रेमिका को पाने के लिए लम्बी यात्रा का सामान करते हैं। मार्ग मे डाकू उन्हें लूट लेते हैं और निस्सहाय दोनों अपनी यात्रा पर चलते हैं। खुदाबख्श डाकू को जब यह समाचार मिलता है कि परीबानू के माता-पिता नादिरशाह को शक्ल-सूरत से नही पहचानते तो वह नादिरशाह बनकर दमिश्क पहुँचता है और छल-कपट से परीबानू के साथ विवाह करने में सफल हो जाता है।

मोरी का पाँचवाँ नाटक 'सुनानी भूलनी खोरशेद' है। इसका प्रकाशन २८ अक्टूबर सन् १८७१ को दफ्तर आश्कार मे हुआ था। हिन्दुस्तानी भाषा में इसका अनुवाद शेट बेहरामजी फरदूनजी मर्जबान ने किया था। उर्दू वाले इसे उर्दू भाषा का पहला नाटक मानते हैं। यह विक्टोरिया नाटक मंडली में दादी पटेल के निर्देशन मे खेला गया था। प्रसिद्ध पारसी अभिनेता बालीवाला ने

नायिका खुरशेद की भूमिका ली थी और उनके पिता मनचेरजी वालीवाला खुरशेद के पिता बने थे। दूसरे प्रसिद्ध अभिनेता पेस्तनजी मादन थे। नाटक बड़ा लोकप्रिय रहा। एक हँसी की बात यह थी कि बूढ़ा बाप मनचेर वालीवाला खुरशेद का पिता बनकर अपने लड़के खुरशेद वालीवाला को बेटी के खरीदने और गृहस्थी में फँसाने का जाल फैलाता है।

छठा नाटक 'नूरजेहान' था जिसका हिन्दुस्तानी अनुवाद खांसाहेब 'आराम' ने किया था। इसका अभिनय एलफिस्टन नाटक मंडली ने किया था। इसके प्रकाशक एलफिस्टन के भागीदार कुंवरजी नाजर और दादाभाई पटेल थे। ३ दिसम्बर सन् १८७२ में तीसरी दिसम्बर को यह आपत्स्यार छापेखाने से नशरवान जी दोराब जी आपत्स्यार ने निकाला था। उन दिनों एलफ़िस्टन और विक्टोरिया दोनों नाटक मंडलियाँ नाज़रजी और दादी पटेल की भागीदारी में थी अतएव दोनों नाटक मंडलियों के चोटी वाले अभिनेताओं ने इस नाटक को मंच पर प्रस्तुत किया था।

'नूरजहाँ' नाटक देखने के लिए दादा भाई पटेल ने हैदराबाद के प्रधान मंत्री सर सालार जंग को आमंत्रित किया। सर सालार जंग अभिनय देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने दादाभाई पटेल को अपनी मंडली के साथ हैदराबाद आने का निमंत्रण दिया।

एदलजी खोरी का नाटक 'जालम जोर' जोरास्ट्रियन नाटक मंडली के लिए लिखा गया था और मूल गुजराती में था। परन्तु बाद में उर्दू में इसका अनुवाद 'आराम' ने किया। यह १२ जनवरी सन् १८७६ में प्रकाशित हुआ।

कुल मिलाकर एदलजी खोरी ने लगभग १८ नाटकों की रचना की थी जिनमें से नौ नाटकों का अनुवाद 'आराम' ने उर्दू में किया था।

४. राणीना, नानाभाई रुस्तमजी

नानाभाई रुस्तमजी राणीना पारसी समाज के बड़े विख्यात लेखकों में से थे। बालकों की पोथी से लेकर और त्रिभाषी कोष तक की रचनायें इनकी प्राप्त होती है।

सामाजिक कार्यों में भी नाना भाई राणीना की बड़ी रुचि थी। अपने जीवन में वह अनेकों सभा-सोसाइटियों के सदस्य रहे। उनका अपना एक प्रेस भी था जिसमें उनकी तथा अन्य लेखकों की पुस्तकें छपा करती थी। नाना भाई राणीना कई बरस तक पत्रों के सम्पादक भी रहे। उन्हें पत्र-कला में भी बड़ी रुचि थी।

राणीना ने शेक्सपियर नाटक मंडली के लिए 'कामेडी आफ एरर्स' तथा 'ओथेलो' का गुजराती अनवाद किया था जो आश्कार दफ्तर से २२ दिसम्बर सन् १८६० मे प्रकाशित हुआ।[५६] 'कामेडी आफ एरर्स' के अनुवाद का केवल एक अक ही छपा था। यह नाटक डोसाभाई फ़ारामजी राणडेलिया के नाम पर है। तीसरा नाटक 'रोमियो एण्ड जूलियट' का अनुवाद था। यह रोमियो-जूलियत सन् १८७६ की २८वी अक्टूबर को फ़ारेट प्रिंटिंग प्रेस से निकला था। अनुवादक का नाम 'डेल्टा' छपा था। मालूम नही नानाभाई राणीना ने इस पर अपना पूरा नाम क्यों नही दिया ? धनजीभाई पटेल का कहना है कि वास्तव मे इसके लेखक दोराभाई फ्रामजी राडीलिया थे। राणीना ने केवल उसे दोहराया था।[५७] नानाभाई राणीना के अन्य नाटको के नाम इस प्रकार हैं:—

१. करणी तेवी पार उतरणी
२. काल्ला मेठा
३. होमलो हाउ
४. नाजा-शीरीन
५. वेहमायली जर
६. सती सावित्री

'करणी तेवी पार उतरणी' एव 'नाजां शीरीन' से पता चलता है कि नानाभाई प्रहमन और व्यग्य लिखने मे अच्छे सिद्धहस्त थे। नाजां-शीरीन प्रहसन कन्या-विवाह की समस्या को लेकर लिखा गया है। उचित वर की खोज से माँ-बाप चिंतित है। वर-पक्ष उधार लेकर शान जमाता है परन्तु अन्त मे सारी पोल खुल जाती है। हिन्दी वालो ने भी इस प्रसंग को अपने नाटकों और प्रहसनों मे उठाया है। समाज की यह समस्या सभी जातियों मे प्रायः एक सी है।

नानाभाई राणीना के नाटक सावित्री की कथावस्तु तो प्रसिद्ध कथा के आधार पर ही वर्णित है परन्तु नाटक कैसे और क्यों लिखा गया, इसका एक रोचक दृश्य लेखक ने अपनी भूमिका मे दिया है।

५. भेदवार, शाहपुर न०

इनके लिखे हुए केवल एक नाटक का पता चलता है जिसका नाम 'हक-इन्साफ़' था। धनजी भाई ने इस नाटक के अभिनय के विषय मे लिखा है कि

---

५६. पारसी प्रकाश, खण्ड २, पृ० १७२।
५७. वही, खण्ड १, पृ० ५७२।

इसमें अनेक लड़कियाँ काम करती हैं। प्रत्येक की साड़ी का रंग भिन्न-भिन्न था। अतएव इतनी अधिक संख्या में साड़ियाँ बनवाने और खरीदने में मालिक कम्पनी की रुचि नहीं थी परन्तु लेखक डायरेक्टर भी था अतएव कम्पनी मालिकों को खर्च रूपी जहर का प्याला पीना ही पड़ा।[५८]

६. संजाना, शेठ पेस्तनजी फावसजी

इन्होंने 'वेरोनेट क्लब' के लिए 'बरजो अने मेहर सीमीन' नाटक लिखा था। दूसरे नाटक का नाम 'शहजादा एरच' था। कथा का आधार पुराना पारसी इतिहास था। सजाना 'वेरोनेट क्लब' के डिरेक्टर भी थे। शहजादा एरिच की रचना 'बाम्बे अमेच्योर्स' के लिए हुई थी।[५९]

७. खंबाता, हीरजी

'आवे इवलीस' इनका प्रसिद्ध नाटक है। प्रधानतः हीरजी एक सफल अभिनेता और डिरेक्टर थे। उक्त नाटक के अभिनय के पश्चात् ही वह पारसी रंगमच से पृथक् हो गये और सरकारी नौकरी में अपना जीवन व्यतीत किया।

८. खंबाता, जहाँगीर

हीरजी खंबाता के भानजे थे। नाटक कला में बड़ी रुचि थी। इन्होंने उर्दू में एक नाटक 'खुदादाद' लिखा था। शेष नाटक गुजराती मे लिखे गये थे। इनकी रचनाओं में 'जुद्दीन झगड़ो', 'कोहीयार कन्फ्यूज़न', 'मेड हाउस', 'माकी मील' तथा 'धरती कप' प्रसिद्ध है।[६०]

विषय की दृष्टि से जहाँगीर पारसी संसारी अर्थात् सामाजिक नाटक लिखने में अधिक रुचि रखते थे। स्वयं अच्छे अभिनेता और नाटक मंडली के मालिक होने के नाते इनकी रचनायें बड़ी सफल रहीं।

९. वाडिया, मेरवानजी नसरवानजी

यह सामाजिक और उपदेशपरक नाटक रचयिता थे। इनका नाटक 'सतनो निगहवान खुदा' बहुत लोकप्रिय रहा।[६१] इनका दूसरा नाटक 'हनीमून' था।

---

५८. कैसरे हिन्द ७ अप्रैल सन् १६२६।

५९. वही, २८ अप्रैल सन् १६२६।

६०. वही, २१ अप्रैल सन् १६२६ तथा पा० त० त० पृ० ३७०।

६१. पा० त० त०, पृ० ३६८।

खेला गया था। इसमें मैरी फैन्टन और मुन्नी बाई ने अभिनय किया था। इस नाटक का विषय ग्राम के निर्दोष जीवन एव नगर के गर्वीले जीवन की तुलना करना है।

'मोलीगुल' का आधार श्रीमती हेनरी हुड का उपन्यास 'ईस्ट लीन' है।

वहमनजी नवरोजी कावरा प्रसिद्ध पारसी लेखक एवं सुधारक कैखुसरु जी नवरोजी कावरा के भाई थे।

११. पटेल, अरदेशर बेहरामजी

यह अधिकतर प्रहसन लिखा करते थे। सबसे पहले 'ननीवाई विरुद्ध जूनीवाई' लिखकर आल्फ्रेड नाटक को दिया परन्तु सफलता नही मिली। उसके पश्चात् तक़दीरनी तकसीर' लिखा। उसमें भी विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी। 'असलाजी' ने उन्हें एकदम लाकर पहली पंक्ति में खड़ा कर दिया। फिर तो उनके प्रहसन पर्याप्त ख्याति देने वाले निकले। 'सुघरेनी शीरीन ठिकाणे आवी' तथा 'काका मामा कहैवाना ने गाठे होम ते खावाना' काफ़ी सफल सिद्ध हुए।

१२. फ़रामरोज, खुरशेदजी वपनजी

'पाकदामन गुल्नार' पुरानी एलफ़िंस्टन नाटक मंडली के लिए लिखा। आरम्भ में यह समझा गया था कि इस नाटक के रचयिता नानाभाई राणीना थे परन्तु उनके पुत्र ने बताया कि वास्तविक लेखक फ़रामरोज ही थे। राणीना ने केवल कुछ सुधार नाटक में किए थे।[६२] फरामरोज के दो अन्य नाटक भी गुजराती रंगमंच के सफल नाटक थे। इनका नाम था 'जेहांबख्श-गुलरुख सार' और 'शहजादा शियावख्श'।

१३. तारापुरवाला, दाराशा सोराबजी

यह लेखक एक संभ्रान्त गृहस्थ थे। आरम्भ में कुछ लिखा करते थे। 'एक जवान पारसी' के उपनाम से वार्तायें लिखने की रुचि थी। सन् १८६७ ई० में 'वेलायती गोरी गोलामडी' नामक वार्ता लिखी और प्रकाशित होने के कुछ दिन पश्चात् ही बिक गई। सन् १८६८ ई० मे जनानखानानी बीबिओ' लिखी और वह भी बड़ी प्रसिद्ध हुई। नाटक की ओर भी इनकी रुचि थी। अतएव विक्टोरिया नाटक मंडली में प्रवेश किया। विक्टोरिया नाटक मंडली को "कैंकाऊस अने सफ़ेद देव" नामक नाटक लिखकर दिया। सफ़ेद देव का अभिनय

६२. पा० त० स०, पृ० १४।

स्वयं लेखक ने किया। अन्य अभिनेताओं में कैकाऊस (फलुघुस), रुस्तम (काकावाल), गुरगीन (कावसजी वा) आदि इस नाटक को सफल करने में फलीभूत सिद्ध हुए। कुछ दिनों बाद दादाशा तारापुरवाला ने विक्टोरिया मंडली से विदा ले ली।

अब इन्होंने 'दी खोजा ड्रामेटिक क्लब' के नाम से अपनी नई मंडली चलाई। इसके लिए *'कैकाऊस अने सौदाबा'' नाटक लिखा। कावसजी खटाऊ* ने इसमें सौदावा की भूमिका निभाई। तीसरा नाटक 'दुखियारी भूल' था। इसमें भी तारापुरवाला ने स्वयं पार्ट लिया था। फिर नाटक संसार से पृथक् हो गये।

गुजराती के अतिरिक्त इन्हें इटालवी भाषा का भी अच्छा ज्ञान था। इस कारण यह इटालवी शिप कम्पनी 'रुवेती' के मैनेजर भी हो गये थे। बम्बई छोड़कर यह सिंगापुर चले गये और वहीं इनकी मृत्यु हुई।[१३]

१४. बाटलीवाला, फ़ीरोज

इनके दो ही नाटक प्रसिद्ध हैं। 'नेकबख्त तहमीना' एक तीन अंक का नाटक है जो बाटलीवाला की विक्टोरिया नाटक मंडली के लिए लिखा गया था। इसका दूसरा नाम 'रंजनो बदले गंज' भी है। लेखक ने इसमें ईरानी दौर दमाम और राहरस्म का प्रकाशन किया है। ईरानी और तूरानी संस्कृति का भेद भी बतलाया गया है। नामकरण नाटक की नायिका पर है। यह कवितावद्ध नाटक है।

लेखक का अन्य नाटक 'खरीदेलो खाविंद' भी है। इसका अभिनय पारसी नाटक मंडली ने किया था।

बाटलीवाला ने 'सरोदे अवस्ता' तथा 'फ़िरोज़ी गायन' शीर्षक से दो अन्य रचनायें भी प्रकाशित की थीं।

१५. नाजर, कॅवरजी सोराबजी

नाटक तो केवल एक ही लिखा जिसका नाम था 'कडक कन्याने खीसेला परण्या', परन्तु अंगरेज़ी में अधिक लिखा है।

१६. ढोंडी, एदलजी फ़रामजी

'सितमे-हसरत' नाम का नाटक लिखा।

---

१३. कैसरे हिन्द १० मार्च, १८९६।

१७. भरूचा, फ़रामजी सोराबजी

'अलादीन अने जादुई फ़ानेस' लिखा जो एलफिस्टन नाटक मडली में खेला गया।

१८. एदू कोलेजर (एदलजी दादाभाई मिस्त्री)

कैखुसरो कावराजी की एक वार्ता के आधार पर 'दुखियारी बंचु' लिखा और दूसरी वार्ता के आधार पर 'पइसा पइसा' लिखा।

'दुखियारी बचु' के सृजन की एक बड़ी मनोरजक कथा है। एदू कोलेजर जिनका वास्तविक नाम एदलजी दादाभाई मिस्त्री था, मित्रता के नाते 'पारसी नाटक मडली' के रिहर्सलो में आया-जाया करते थे। यह पारसी नाटक मडली धनजी भाई के तीन मित्रो ने स्थापित की थी जिनके नाम थे फरामजी दादा भाई अपु के भाई दीनशाह दादाभाई अपु, बापूजी जमशेदजी मिस्त्री और दादी वा। एक दिन एदलजी मिस्त्री ने 'गुलो बुलबुल' नाम का सगीतपरक नाटक लिखकर दीनशाह अपु को दिया। परन्तु इस रचना मे अधिक सफलता नहीं मिली। बाद में ऐदू कालेजर ने उन्हे यह सलाह दी कि एक नाटक पारसी पोशाक मे खेला जाय। अपु कहने लगे—"अरे मर-मर! स्टेज ऊपर आखो खेल पारसी डगला-पाघरी अने सारी-पोलका पेहरीने करे तो लोकोने शुं गमे? अरे छुटी गंडेरी पडे।" इस पर ऐदू कालेजर ने उत्तर दिया कि ज़ोरास्ट्रियन वाले प्रहसनों को पारसी वेश में ही खेलते है।

इस घटना के बाद ऐदू कालेजर ने कैखुसरो कावराजी की वार्ता 'दुखियारी वचुना दुखना पहाड' शीर्षक वार्ता को नाटकीय रूप देकर अपु को दिया। इसमें फरामजी अपु ने वचुनां खाविंद और ऐदू ने 'लफगा' का पार्ट किया। खेल बड़ा सफल रहा; खूब वाह-वाही लूटी। पारसी रंगमंच पर 'ससारी खेल' अर्थात् सामाजिक नाटक खेलने का यह प्रथम प्रयास था।

अपनी सफलता से प्रेरित होकर ही ऐदू ने 'पइसा पइसा' लिखा। यह भी कावराजी की वार्ता का ही नाटकीय रूपान्तर था। इस नाटक मे अरदेशर मामा ने बड़ा प्रशंसनीय पार्ट किया।[६४]

१९. धामर, दोराबजी रुस्तमजी उर्फ दोलू

सन् १८७५ मे नाटक के घधे में कुछ मदी आ गई। जोरास्ट्रियन कम्पनी पीछे हटने लगी, परन्तु ईरानी खेल जारी रखे। आल्फ्रेड नाटक मंडली भी

६४. क़ैसरे हिन्द १७ मार्च सन् १९२९।

इस समय बंद पड़ी थी। सन् १८७६ में कम्पनी ने एदलजी खोरी से 'आलम-गौर' नाटक लिखाया। यह Pizaro का रूपान्तर था।

इन्हीं दिनों तुर्रे और ख्यालों के गायक धामर ने उर्दू के खेलों में कुछ अपने और कुछ दूसरों के गाने मिलाकर उनका अभिनय आरम्भ किया।

'शाह आलम नाटक मंडली' के नाम से नई नाटक मंडली स्थापित की और उसमें 'जाने आलम और अजुमन आरा' नाटक का अभिनय किया। अंजुमन आरा की भूमिका बेहरामजी कातरक ने की थी।

धामर ने अपने लिखे नाटक का विचित्र लम्बा-सा नाम रखा—

"आवुली सेलम अने अफ़लातून जीन।
गुललाला परी ने पाकदामन शीरीन।"

इस नाम में कई नाटकों के नाम सम्मिलित हैं जिससे यह परिणाम निकलता है कि धामर एक ही नाटक में अन्य नाटकों की खूबियाँ रखना चाहते थे। यह नाटक केवल तीन बार अभिनीत हुआ, उसके बाद जैसे गहरी नींद में सो गया।

धामर स्वयं अच्छे अभिनेता और डिरेक्टर थे। एक दिन कोई पारसी अभिनेता शराब लेकर स्टेज पर पीने लगा। धामर ने यह देखकर उसे तत्काल ग्रीन-रूम में भेज दिया और शराब उठाकर फेंक दी। बाद में कहा—"दारू पीईने काम करवुं होय तो मारी क्लब मां आवता ना।'

अभिनेता के रूप में धामर ने अजुमन आरा वाले नाटक में हीजड़े की बड़ी सफल भूमिका निभाई थी। कहते हैं उनके हाव-भाव बड़े स्वाभाविक और आकर्षक थे।[६५]

२०. बाली वाला, खुरशेदजी

प्रधानतया अभिनेता, डिरेक्टर और मंडली मालिक थे परन्तु प्रहसन लिखने में भी सिद्धहस्त थे। इनके गुजराती प्रहसनों के नाम हैं—'मतलब बेहरो', 'खुदाबख्श' 'गुस्ताद धामर' और 'कावलानीं कचुम्बर'।

२१. 'बंदेखुदा', दादा भाई एदलजी पोंचखानेवाला

यह पारसी लेखक अपने तीन नाटकों के लिए प्रसिद्ध है, जिनके नाम हैं—'मजदेजर्द', 'बरजोर अने म्हेर सीमीन ओजार' तथा 'खुदाद शीरीन'। दूसरा

---

६५. क़ैसरे हिन्द ३ मार्च, सन् १८९६।

नाटक ५ नवम्बर सन् १८७१ में प्रकाशित हुआ था। यह चार अंक का नाटक है जो 'परशियन जोरास्ट्रियन नाटक मंडली' की फ़र्मायश पर लिखा गया था। इसके कुछ पात्र ईरानी है, कुछ तूरानी हैं, कुछ जाबुली हैं और कुछ हबशी तथा देव है। इस नाटक के पात्रों की सख्या बहुत अधिक थी। नाटक के नायक बरजो का पार्ट पेशतन फ़रामजी बेलाती ने किया था और मेहेर-सीमीन की महिला पात्री की भूमिका में अरदेशर जहांगीरजी चिनाई रंगमच पर आये थे।

लेखक ने इसमें यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि सच्चा प्रेम मनुष्य के आत्मा के अधकार को प्रकट कर देता है और जो प्रेम में डूबा रहता है वह सदैव उपकार और नेमत का भागी होता है। नाटक मे गद्य और पद्य दोनों हैं।

२२. पटेल, धनजी भाई नौरोज जी

धनजी भाई पटेल पेशे से डाक्टर थे परन्तु नाटक लिखने और खेलने का बड़ा शौक था। इनके बनाये हुए छः नाटक कहे जाते है—"खस्लते-शैतान', 'फेराऊन', 'तूफान', 'लैला', 'रुस्तम सोहराब' (संगीत मे) और 'हाबील' (मिल्टन के 'पैरेडाइज़ लास्ट' के आधार पर)।

२३. पारख, डा० नसरवानजी नौरोज जी

स्वयं अभिनेता और लेखक थे। 'सुलेमानी शमशीर' नाटक जिसका दूसरा नाम 'निर्दोष नूरानी' भी था २५ अक्टूबर सन् १८७३ ई० में प्रकाशित हुआ।[६६] इसकी प्रेरणा मे कुवरजी नाज़र का हाथ था। 'इन्दर-सभा' में सफलता मिलने के बाद कुवरजी नाज़र ने यह नाटक डा० पारख से लिखवाया। अभिनय में भी बड़ी सफलता मिली। लेखक एवं जमशेदजी फ़रामजी माडन इस नाटक के प्रमुख अभिनेता थे। अभिनय के समय इसका एक अन्य साथी 'आसमान चल्ली' प्रहसन भी खेला गया। यह प्रहसन बड़ा ही लोकप्रिय रहा। नायिका का पार्ट जमशेदजी फ़रामजी माडन किया करते थे। इसमें अनेक चमत्कारिक दृश्य दिखाये गये हैं।

दूसरा नाटक 'फलकसूर सलीम' था जो पहले नाटक के एक वर्ष बाद प्रकाशित हुआ।

---

६६. पा० प्र० खं० २, पृ० ४५६।

२४. 'आराम', नसरवानजी मेरवानजी खांसाहब

'आराम' के नाम से कई नाटक प्रसिद्ध हैं परन्तु उन्होंने सब मौलिक रूप से नहीं लिखे। अधिक संख्या उन नाटकों की है जो उन्होंने ऐदलजी खोरी के गुजराती नाटकों में से उर्दू में अनुवादित किये थे। अनुवादित नाटक इस प्रकार है—'क़मरुज्ज़मा' (अप्रैल सन् १८७४), 'नूरजहाँ' (३ दिसम्बर सन् १८७२), 'जहाँगीर' (सन् १८७२), 'मज़हबे इश्क उर्फ़ बकावली ताजुल-मलूक' (१८ जून १८७२), 'बकावली-ताजुलमलूक', 'गुल बकावली', 'हातिम' (अक्टूबर सन् १८७२), 'सोने के मोल की खुरशेद' (१८७१), 'हुज़मनवाद अने ठगननाज', 'जालमजोर' (१२ जनवरी सन् १८७६)।

इन अनुवादों के अतिरिक्त उनके मौलिक नाटक भी थे, यथा 'जेहांगीर शाह गौहर', 'बेनजीर-बदरेमुनीर', 'गुलवासनोवर च कुर्द', 'छैल बटाऊ मोहना रानी', 'पद्मावत', 'शकुन्तला', 'लालो गौहर', 'फ़र्रुखसमा', 'चंद्रावली'।

पारसियों में उर्दू भाषा में लिखने वालों में 'आराम' प्रथम पंक्ति के नाटककार थे, दोनों दृष्टियों से अर्थात् संख्या और साहित्यिक। परन्तु इनकी भाषा बड़ी कठिन होती थी। सामान्य उर्दू जानने वाला उसे सुगमता से नहीं समझ सकता था। इसका समाधान केवल यही है कि 'उर्दू अथवा व्रज काईं मारी स्वभाषा नथी।[६७] 'बदरेमुनीर-बेनजीर' आराम का पहला संगीतबद्ध नाटक था। दूसरा संगीतबद्ध नाटक 'जहाँगीरशाह गौहर' है। यह १० जून सन् १८७४ में प्रकाशित हुआ। 'जहाँगीरशाह गौहर' की भाषा अपेक्षाकृत सरल है। वह तत्कालीन हिन्दुस्तानी का अच्छा उदाहरण है। परन्तु 'गुल वासनोवर च कुर्द' (गुल ने सनोवर से क्या कहा?) की उर्दू काफ़ी सक़ील (कठिन) है। कुछ लोगों ने 'सोने के मूल की खुरशेद' को उर्दू का पहला नाटक माना है।

६७. दीबाचो, जहाँगीरशाह और गौहर, प्र० कूपर कम्पनी (१८७४)

पारसी रंगमंच के कुछ उर्दू नाटककार । ४

१. 'अब्बास', अब्बास अली

मीर गुलाम अब्बास इनका नाम था परन्तु अब्बास अली के नाम से ही प्रसिद्ध थे। इनका जन्म लाहौर मे सन् १८८६ में हुआ और मृत्यु सन् १९३२ मे बम्बई नगर में हुई। इनके जीवन के बहुत से समाचार नही मिलते। मालूम होता है कि लाहौर से बम्बई आये और वही बस गये। लाहौर में ही जो नाटक मंडलियाँ आती थी उनमे जाने का चस्का लगा। कुछ कविता मे भी रुचि हुई। इन सबका परिणाम यह हुआ कि थियेटर देखने लगे और कुछ-कुछ लिखने भी लगे।

संभवतः अब्बास का पहला नाटक 'नैरगे सितमगर' था जो सन् १९०६ में लिखा गया था। जिस नाटक मडली के लिए यह लिखा गया था उसका नाम 'स्टार थियेट्रिकल कम्पनी' था। उसका जन्म लाहौर मे ही हुआ था। परन्तु परस्पर के मनमुटावो के कारण कम्पनी चली नही और नाटक रगमच पर नही आ सका। परन्तु इसके कारण अब्बास की कुछ ख्याति अवश्य हो गई और इसका लाभ उन्हे उस समय मिला जब कुछ दिनों मे ही लाहौर में वालीवाला की विक्टोरिया नाटक मडली पहुँची।

अब्बास ने वालीवाला को अपने नाटक के कुछ दृश्य पढ़कर सुनाये। वालीवाला ने कुछ अन्य दृश्य लिखवाकर भी उनकी परीक्षा ली और अन्त में प्रसन्न होकर उन्हें अपनी मंडली में मुंशी के पद पर नौकर रख लिया। बस, अब्बास विक्टोरिया नाटक मडली के नाटककार बन कर बम्बई आये और वही रहने लगे।

वालीवाला ने अब्बास को ब्योमांट फ्लेचर का एक ड्रामा लेकर उसका प्लाट बताया और उस पर एक नाटक लिखने को कहा। परिणामस्वरूप 'जजीरे-गौहर' की रचना शुरू हुई। सन् १९०७ मे लखनऊ में नाटक का रिहर्सल आरम्भ हुआ और बम्बई लौटने पर वालीवाला के ही 'ग्रांट थियेटर' में अभिनीत हुआ। नाटक के निर्देशक प्रसिद्ध अभिनेता हरमुजजी तातरा थे। अभिनेताओं में स्वयं निर्देशक, पेशावरी ब्रदर्स, बिजली, फ़ातिमा और

खुरशेद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। बालीवाला ने नाटक देखने के लिए तत्कालीन नाटककार तालिब, हश्र, मुरादअली और बेताब वगैरह को भी बुलाया और उन्होंने उसकी सफलता पर बधाई दी।

यह नाटक बालीवाला ने अपने जीवन-काल में और बाद में उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी पुत्री और मंडली की मालिक मेहरबाई ने छपवाया था।[६८]

ज़ंजीरे-गौहर नाटक में नौरोज़ अपने चचा की हत्या करके उसके सिंहासन पर बैठता है और अपने भतीजे राजकुमार मज़हर को बड़े दुख देता है क्योंकि मज़हर नहीं चाहता कि उसकी बहिन गौहर नौरोज़ से प्रेम करे। परन्तु गौहर नौरोज़ को ही अपना जीवन-संगी बनाना चाहती है। मज़हर अपनी बहिन की हत्या कराना चाहता है परन्तु ठीक समय पर पहुँचकर नौरोज़ जल्लाद को पिस्तौल से मार गिराता है और गौहर को बचा लेता है। बहिन भाई को गिरफ्तार करा देती है, परन्तु नौरोज़ मज़हर को बचा देता है और अंत में नौरोज़ और गौहर विवाह-बंधन में बँध जाते हैं।

मुसलमानी संस्कृति के हिसाब से ये हत्याएँ धर्महीन नहीं मानी जातीं। अतएव ये ट्रेजिक घटनाएँ ऐसा महत्व नहीं रखतीं जो ड्रामा को ट्रेजिडी मानने में सहायक हों। कथ्य का यह रूप पारसी नाटकों में एक सामान्य रूप-बंध था। अब्बास की कल्पना कोई अपवाद नहीं है।

डा० नामी ने अब्बास द्वारा लिखित नाटकों की संख्या इक्कीस बताई है।[६९] ये नाटक भिन्न-भिन्न मंडलियों के लिए लिखे गये थे। सबसे अधिक संख्या विक्टोरिया नाटक मंडली के लिए लिखे जाने वाले नाटकों की थी। वे नाटक थे—१. ज़ंजीरे गौहर, २. नैरंग नाज़, ३. नूरजहाँ उर्फ नूरोनार।

अन्य मण्डलियों के लिये लिखे गये नाटक ये थे—'नैरंगे सितमगर' (लाहौर की स्टार थियेट्रिकल कम्पनी के लिए), 'दुखिया-दुल्हन' (फ्रामजी अप्पू की मंडली के लिए), सन् १९११ में यही नाटक 'जहाँनारा' के नाम से नए सिरे से बतलम केशो नायक की नाटक मंडली (शेक्सपियर नाटक मंडली) के लिए लिखा। 'नूरे-इस्लाम' और 'जाँ-निसार' (दक्षिणी सुबोध नाटक मंडली के लिए) नाटक को 'शमशीर इस्लाम' के नाम से कारोनेशन थियेटर बम्बई में न्यू जोधपुर-बीकानेर थियेट्रिकल कम्पनी ने अभिनीत किया। इसके बाद 'इज्ज़ानये-दीन' (१९१६ में), 'नई ज़िन्दगी' (१९१७ में) और 'किसकी

६८. मेरे पास सन् १९०८ की छपी एक प्रति है।
६९. उर्दू-थियेटर, भाग २, पृ० २९०-९१।

भूल' (सन् १९१८) में लिखे। ये नाटक अकोला और अमरावती मे अभिनीत हुए।

अब्बास अली 'नाट्यकला प्रवर्तक मंडली' में भी नौकर रहे। कहा जाता है कि 'पजाब-मेल' उसी के लिए सन् १९१९ में लिखा। परन्तु जे० एस० संतसिह द्वारा प्रकाशित नाटक 'पंजाब मेल' पर लेखक का नाम दिलावरशाह लिखा है और सन् १९२४ में उन्होंने यह नाटक अपने गुरु को समर्पण किया है। विचारणीय यह है कि डा० नामी सन् १९१९ में इसे लिखा बताते हैं और संतसिह का सस्करण उसे सन् १९२४ मे दिलावरशाह द्वारा समर्पित बताता है। पहली बात तो रचना-काल के विषय में ही सदेह उत्पन्न करती है। हो सकता है कि असली रचना-काल सन् १९१९ ही हो परन्तु लेखक के विषय में तो बड़ा भ्रम पैदा हो जाता है। इस विषय में अभी और अधिक छानबीन की आवश्यकता है।

एक अन्य दुविधा की बात यह है कि संतसिह संस्करण पंजाब-मेल को 'अलेक्जेंड्रिया मडली' का नाटक बताता है और डा० नामी उसे रहमूबाई की 'मोरेलाइजिंग थियेट्रिकल कं०' के लिए लिखा बताते है।[७०]

अब्बास अली के अन्य नाटकों में श्रीमती मजरी और मोहिनी वी० ए० नाम से लिखे गये नाटक बडे प्रसिद्ध हैं। विशेषकर श्रीमती मंजरी बड़ा लोकप्रिय हुआ। उसके बाद 'फ़र्जो-वफा' और 'कल क्या होगा' लिखे गये। ये नाटक भी नाट्यकला प्रवर्तक मडली के लिए ही लिखे गये थे। जब नाट्यकला प्रवर्तक मंडली मंडारा रियासत के महाराजा गनपतराव पांडे के हाथ बेच दी गई तो उन्होंने इसका नाम बदलकर 'द राइजिंग मून स्टार थियेट्रिकल कंपनी' रख दिया। इस मडली मे अब्बास अली का नाटक 'नूर इसलाम' बदल कर "दारुस्सलाम" के नाम से अभिनीत हुआ। 'लेडी लाजवन्ती' भी अब्बास अली का ही लिखा हुआ और सेठ चन्दूलाल की मडली में खेला गया था। इसे 'श्रीमती मंजरी' का दूसरा भाग भी कहा जाता है।

सन् १९२८ से अब्बास अली ने फिर नाट्य प्रवर्तक मंडली मे नौकरी कर ली और उसके लिए आठ नाटकों की रचना की—'सेवक-धर्म', 'एक ही पैसा', 'सोने की चिड़िया', 'पोस्ट-मास्टर', 'मुमताज', 'इदर-विजय', 'शादी की पहली रात', और 'पूरनमल' (दो भाग)।

---

७०. उ० थि० २, पृ० २९६।

सन् १६३० में मादन थियेटर्स के लिए 'नेक ख़ातून' लिखा और इसी साल सेठ मोतीलाल की 'जार्ज थियेट्रिकल कम्पनी आफ़ बम्बई' के लिए 'शाने-रहमत' और 'शाही फ़रमान' की रचना की जो हैदराबाद में अभिनीत हुए।

अब्बास अली का अन्तिम नाटक 'सती सुन्दरी' था जिसे वह पूरा न कर सके।

संक्षेप में अब्बास अली ने थियेट्रिकल मंडलियों को कुल मिलाकर ३०-३२ नाटक लिखकर दिए। इन नाटकों की भाषा उर्दू, हिन्दुस्तानी और हिन्दी थी। कविता उच्चकोटि की तो नहीं है परन्तु जैसी उन दिनों रंगमंच पर चलती थी उसी प्रकार की है। कुछ नाटक स्वभावतया इस्लामी परिवेश में लिखे गये और कुछ उन दिनों के राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रभाव से हिन्दू-मुस्लिम एकता को दृढ़ करने वाले लिखे गये। संभवतः जितना संबंध अधिक से अधिक नाटक मंडलियों के साथ अब्बास अली का था, उतना किसी और मुंशी का नहीं रहा।

इनके प्रायः सभी नाटक जे० एस० सन्तसिंह एण्ड सन्स लाहौर ने छापे थे परन्तु वह सब साहित्य अलभ्य है।

२. 'महशर' मोहम्मद इबराहीम अंबालवी

पूरा नाम मोहम्मद इबराहीम था और 'महशर' उपनाम। 'महशर' का अर्थ 'प्रलय' होता है। इससे मालूम पड़ता है बड़े जोशीले और अंगार भरे विचारों के व्यक्ति थे। कम से कम उनकी मनोभावना ऐसी ही थी। अंबाला नगर के निवासी होने के कारण अपने को 'अंबालवी' लिखते थे।

डा० नामी इनके निम्नलिखित नाटक मानते हैं :—

१. दुश्मने ईमान, २. जोश तौहीद उर्फ़ रेलिजन आफ़ यूनान, ३. दोज़खी हूर, ४. खूनी शेरनी उर्फ़ चमकती बिजली, ५. खूने जिगर उर्फ़ शाम जवानी, ६. सुनहरी खंजर उर्फ़ इन्तकाम (बदी का बदला) रूह, ७. आतशी नाग उर्फ़ बाप का कातिल, ८. गुनहगार बाप, ६. शकुन्तला उर्फ़ गुमशुदा अंगूठी, १०. मीराबाई उर्फ़ कृष्णदेव की भक्ति, ११. सत्याग्रह, १२. रसीला जोगी उर्फ़ योगशक्ति, १३. गरीब हिन्दुस्तानी उर्फ़ इंकलाब याने स्वदेशी तहरीक (आन्दोलन), १४. हश्र महशर, १५. खुद परस्त उर्फ़ दौलत का गुलाम, १६. जंगे जर्मन उर्फ़ लालची क़ैसर, १७. निगाहेनाज़, १८. कृष्ण अवतार (जे० एस० सन्तसिंह एण्ड सन्स द्वारा प्रकाशित नाटक में 'राजा सखी व कृष्ण अवतार' नाम आता है जो अधिक ठीक है); १६. हमारा खुदा।

'दुश्मने-ईमान'—एक प्रकार की ट्रेजिडी है। आरम्भ में हुस्न (सौदर्य) और इश्क (प्रेम) में परस्पर झगड़ा होता है। शैतान फ़ैसला करता है। आविद नाम का बादशाह पुर्तगाल के बादशाह की लडकी को, जो हिजरत करने आई थी और जिसने आविद की शरण ली थी, बड़ा कष्ट देता है। एक दिन वह उसके साथ बलात्कार करने का प्रयत्न करता है और मारा जाता है। इस प्रकार स्त्री के धर्म (ईमान) की रक्षा होती है।

'जोशे-तौहीद' (अद्वैतवाद का जोश)—एक प्रकार का धार्मिक नाटक है जिसमें पात्रों द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकृत करते हुए बताया गया है। 'दोजखी हूर' में स्त्री की कटोरता और विनाशकारी प्रकृति दिखाकर नाटक लिखा गया है। ये दोनों नाटक 'आरफस थियेट्रिकल कम्पनी' के लिए लिखे गये। इस कम्पनी के मालिक जेकब साहब थे।

'खूनी-शेरनी'—यह भी एक कठोर स्त्री की कथा-वस्तु के आधार पर लिखा गया है। हत्या और स्त्रीजनित अविश्वास की घटनाओं से परिपूर्ण है। घटनायें यूनान और रूमानिया में होती हैं। अन्वीतियों का कोई ध्यान नही है।

'खूने-जिगर'—इसमे भी शहज़ादी नौबहार अपनी गोली के करिश्मे दिखाती है। हत्याओ और षड्यन्त्रों से पूर्ण है।

'सुनहरी खंजर'—यह भी शहज़ादियों के प्रेम और षड्यंत्रों से परिपूर्ण नाटक है। हत्याओं का बोलबाला है। घटनाये रूमानिया और बलगारिया मे घटित होती हैं।

'आतशीनाग'—सिंहासन के लिए झगड़ा और हत्या इसका भी विषय है। अन्त सुखद दिखाया गया है।

'गुनहगार बाप'—यह एक हिन्दू परिवार की कथा से सम्पन्न नाटक है। राजकुमार चंदरसिंह और बालसिंह के पिता का नाम राजा विक्रम है और माता का नाम निर्मला। सभी आराम का जीवन व्यतीत करते हैं परन्तु किसी के विवाह के अवसर पर राजा विक्रम की भेंट मदनकला नामक एक वेश्या से हो जाती है और वह उससे विवाह कर लेता है। स्वतः निर्मला और मदनकला में कलह हो जाती है। विक्रम का मित्र सज्जनसिंह अपनी पुत्री रूपवती के साथ राजकुमार चन्दरसिंह का विवाह करने के लिए विक्रम के पास जाता है। रूपवती भी उसके साथ आती है। रूपवती निर्मला और मदनकला दोनों से मिलती है। परन्तु मदनकला रूपवती से राजकुमार चन्दरसिंह की अनेको बुराइयाँ करती है। परिणामतः रूपवती राजकुमार से सम्बन्ध नहीं करती।

मदनकला महाराजा समरसिंह के दरबार की गायिका थी। वह राजा विक्रम को अपनी गायिका वापिस भेजने के लिए संदेश भेजता है परन्तु विक्रम मदनकला को नहीं भेजता। समरसिंह की सेना विक्रम पर आक्रमण करती है। विक्रम मदनकला को लेकर भाग जाता है। निर्मला और चन्दरसिंह को भी भागना पड़ता है। सब पृथक्-पृथक हो जाते हैं।

महाराज सोपतसिंह की पुत्री सूरजबाई के स्वयंवर का समाचार पाकर चन्दरसिंह वहाँ पहुँचता है और उसके साथ उसका विवाह हो जाता है। बालसिंह किसी की सहायता से पुनः अपने पिता के सिंहासन पर बैठता है और जब उसे पता चलता है कि चन्दरसिंह राजा बन गया है तो वह उससे मिलने आता है।

विक्रम मदनकला के साथ जंगल में अनेकों कष्ट पाता है। अन्त में मदनकला पुनः मौजसिंह के साथ भाग जाती है। विक्रम चन्दरसिंह के पास फैसले के लिए आता है। मदनकला सर्पदंशन से मर जाती है; निर्मला भी भटकती हुई उसी राजमहल में आ जाती है। माँ, बाप, बेटे फिर एक हो जाते हैं।

मुसलमानी संस्कृति के नाटकों से इस नाटक में बड़ा भेद है। 'महशर' इस नाटक के लिखने के बाद हिन्दू इतिहास की ओर आए प्रतीत होते हैं क्योंकि बाद में उन्होंने शकुन्तला लिखा जो प्रसिद्ध शकुन्तला उपाख्यान पर आधारित है।

'मीराबाई'—जनश्रुत कथानक के आधार पर लिखा गया है।

'सत्यागरह उर्फ़ सुकन्या सावित्री'—सावित्री-सत्यवान की कथा पर आधारित है। लेखक ने अपनी कल्पना की भी पर्याप्त पुट दी है।

'रसीला जोगी उर्फ़ योगशक्ति'—इस नाटक की कथा-वस्तु बड़ी विचित्र है। राजा सलामत सिंह के बीमार पड़ने पर लालसिंह उन्हें राजवैद्य को लालच देकर विष दिलवाना चाहता है, परन्तु राजवैद्य इस पर तैयार नहीं होता। आखिर राजा सलामत सिंह स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त होता है और उसकी कन्या राजकुमारी महलावती राजमहल में लालसिंह को बुलाकर उससे विवाह करने का वचन देती है, परन्तु राज्य के प्रधान वीरमदेव और सेनापति करनसिंह को इस भेद का पता चलता है तो वह लालसिंह की हत्या करवा देते हैं। महलावती बड़ी क्रुद्ध होती है और पुरुषों को पदों से हटाकर उनके स्थान पर महिलाओं को नियुक्त कर देती है। वह केसरीसिंह नामक व्यक्ति के विवाह-प्रस्ताव को भी ठुकरा देती है जिसके कारण केसरीसिंह राज्य पर आक्रमण कर देता है। ऐसी परिस्थिति में महलावती गुरु मछन्दरनाथ से

विवाह कर लेती है और उनकी योगशक्ति द्वारा शत्रु को परास्त करती है। बारह बरस बाद मछन्दरनाथ का चेला गोरखनाथ अपने गुरु को आकर अपने साथ ले जाता है। केसरीसिंह इस अवसर का लाभ उठाकर पुनः आक्रमण करता है परन्तु इस बार भी मछन्दरनाथ के बेटे से हार जाता है क्योंकि मछन्दरनाथ और गोरखनाथ दोनों उसकी सहायता करते हैं। अन्त मे गोरख उसके सिर पर ताज रखकर उसे छत्रपति होने का आशीर्वाद देते है।

कथानक स्वयं इस बात का द्योतक है कि 'महशर' हिन्दू-संत परम्परा से नितान्त अनभिज्ञ हैं। मछन्दरनाथ का महलावती से विवाह केवल एक दुष्कल्पना है। और फिर उनके पुत्र द्वारा राजकाज की बात और भी विचित्र है। योगियों के विवाह और इस प्रकार के कार्यकलाप मुसलमान नाटककार की एक खाम-ख्याली के अतिरिक्त और कुछ नही है। बेसिरपैर की मनगढ़न्त घटनाओं से नाटक में अतिमानवता का चमत्कार तो आ गया है परन्तु और सभी दृष्टियों से यह कलाहीन नाटक है।

'ग़रीब हिन्दुस्तान उर्फ स्वदेशी तहरीक' (आन्दोलन)—प्रधान विषय तो स्वदेशी आन्दोलन होने के कारण समीचीन ही है जैसा कि इस पंक्ति से प्रकट होता है—

"जो चाहो जिन्दगी अब भी खरीदो अपनी चीजों को।
हुनर सिखलाओ घर के जाहिलों को बदतमीजों को ॥
पढ़ाओ इल्म अपनी बीवियों को और कनीजों को॥"

विषय प्रतिपादन के लिए जो कथानक बनाया गया है वह बडा विचित्र है। सूरजसिंह विलायत से बैरिस्ट्री पास करके लौटता है। स्टेशन पर उसका बुड्ढा बाप मिलने जाता है और अपने पुत्र से 'फूल' की उपाधि प्राप्त करता है। हरि पाडे और शिव पाडे तथा मौलाना वशीर उद्दीन मे छूत-छात पर बहस हो जाती है। ईद के दिन वहीद और अजीज गौ-बलि करना चाहते है और मौलाना अपने बच्चे को गाय के स्थान में बलि देने को कहकर दोनों को रोकते है। ठाकुर हरि-सिंह अपने पुत्र सूरजसिंह को घर से निकाल देते हैं। सूरजसिंह होश में आता है और पिता से अपने कुकर्मों के लिए क्षमा माँगता है। ठाकुर प्रसन्न हो उसे गले से लगा लेते है।

विदेश में सीखी हुई शिक्षा अधूरी और निकम्मी प्रमाणित होती है। स्वदेशी का जोर होता है। यही अजीव कथावस्तु इस नाटक की है। यह हिन्दुस्तान की ग़रीबी का परिणाम है।

ह्श्र-महशर—हत्या करके अधिकारी को हटा कर अनधिकार से सम्पत्ति हड़प करने का क़िस्सा है।

'महशर' के नाटक अधिकतर कत्ल और धोखे-धड़ी की घटनाओं से भरे पड़े हैं। निस्सदेह उनमे से कुछ देश की तत्कालीन समस्याओं को लेकर भी लिखे गये हैं परन्तु उनका माध्यम वही पुराना वातावरण है जिसमें अनधिकारी अधिकारी को हटाकर अपना सिक्का जमाना चाहता है। एक पाप दूसरे पाप का बीज बनता है और पर्याप्त खाना-खराबी के बाद कथानक सीधे मार्ग पर आता है।

३. 'ज़रीफ़' हुसैनी मियाँ

'ज़रीफ' के विषय मे भी, उनके समकालीनों और अन्य नाटककारों की तरह, कुछ अधिक नही मिलता। निस्संदेह वह बम्बई में रहते थे और कहा जाता है कि जमनादास मेहता, पुस्तक विक्रेता एवं मुद्रक के पास तीन रुपये मासिक पर नौकर थे। बाद में कुछ कविता करने लगे और नाटक-रचना मे भी रुचि उत्पन्न हो गई। ज़रीफ के किसी मौलिक नाटक के दर्शन नही होते परन्तु उन्होंने अनेको प्रचलित नाटकों को हेरफेर करके अपने शब्दो मे अवश्य लिखा है क्योंकि उनमे उनका उपनाम 'ज़रीफ़' अनेकों बार आया है। उदाहरण के लिए 'ज़रीफ' के नाटकों मे 'गुल-सनोबर' का नाम आता है। सर्वप्रथम नसरवानजी मेरवानजी खाँसाहब 'आराम' ने लिखा था। उनके नाटक का शीर्षक था 'गुल्बा सनोबर च कर्द' (गुल ने सनोबर से क्या कहा?)। एक पुराने क़िस्से को लेकर यह कथा-वस्तु तैयार की गई है। 'ज़रीफ' ने नाटक में क्या-क्या परिवर्तन किए इसका पता तो तभी चल सकता है जब दोनो की तुलना की जाए, परन्तु 'ज़रीफ़' के अधिकाश नाटक प्राप्य नही हैं। यही अवस्था ज़रीफ़ के लिखे 'छैल बटाऊ', 'लालो-गौहर', 'फर्रुखसमा', 'हातिमताई', 'तमाशाये अलादीन उर्फ़ चिरागे अजीब', 'हवाई मजलिस', 'लैला मजनूं' और 'गुलबकावली' की है। ये सभी नाटक 'आराम' के लिखे हैं। परस्पर के परिवर्तन द्रष्टव्य हैं।

इसी प्रकार अन्य लेखकों के नाटकों में भी ज़रीफ द्वारा किए गए रूपान्तर का पता चलता है। वैसे उपरोक्त नाटकों के अतिरिक्त ज़रीफ के निम्नलिखित नाटक प्रसिद्ध हैं:—

नतीजये-अस्मत, खुदादोस्त, चांदबीबी, तोहफ़ये-दिलकुशार, बुलबुले-बीमार, तोहफ़ये दिलपज़ीर, शीरीं-फरहाद, अलीबाबा, चित्रा बकावली, बदरे मुनीर, नक्शे सुलैमान, अक्सीरे-आज़म, इशरत सभा, हुस्नअफ़रोज़, नैरंगे-दहर, सितमें हामान, फ़रेब फ़ितना, नासिर ओ हुमायूं, मातमे जफ़र, बज़्मेसुलैमान और खुदादाद।"[१]

७१. रामबाबू सक्सेना : ए हिस्ट्री आव उर्दू लिटरेचर, पृ० ३५४।

इस सूची में से बेनज़ीर-बदरेमुनीर, हुमायूँ-नासिर, सितमहामान, नक़्शे सुलेमानी, तथा फ़रेब फ़ितना नाम के नाटक मुंशी 'रौनक' ने भी लिखे थे। संभवत: ज़रीफ़ ने उन्हीं का रूपान्तर किया होगा क्योंकि रौनक़ का रचनाकाल ज़रीफ से पहले आता है।

डा० नामी ने इनके कुछ अन्य नाटकों का नाम और परिचय दिया है जो देखने योग्य है।[७२]

ज़रीफ़ मियाँ का सब से बड़ा योगदान यही है कि उन्होंने पुराने लोकप्रिय नाटकों को नये ओपेरा में परिवर्तित किया। यह कुछ पता नहीं चलता कि इनके नाटक कहीं खेले भी गये या केवल वे पढ़ने वालों की ही एकमात्र सम्पत्ति रहे और जमनादास मेहता ने केवल पुराने और नये नामों की एकता के कारण पर्याप्त धन कमाया।

४. डेविड जोज़ेफ़

इनके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। इतना पता चलता है कि इनका सम्बन्ध कई नाटक मंडलियों से रहा। आर्य सुबोध नाटक मडली पूना में यह 'ख़ूने नाहक़' में हेमलेट का अभिनय बड़ी सफलता से करते थे। प्रसिद्ध अभिनेता सोहराब मोदी इन्हें अपना गुरु मानते है।

न्यू पारसी नाटक मंडली में इन्होंने कई नाटकों का सफल निर्देशन किया जिनमें 'धूप-छाँह', 'हार-जीत', 'काली नागन' और 'दुख़तर-फ़रोश' प्रसिद्ध हैं। ये प्राय: सभी नाटक शेक्सपियर के नाटकों के रूपान्तर थे।

अलेक्ज़ेंड्रिया नाटक मडली में 'इन्तक़ाम', 'आहमज़लूम', 'सुनहरी ख़ंजर', 'हसीन क़ातिल' और 'ख़ूनी शेरनी' नाटकों का निर्देशन किया।

इम्पीरियल नाटक मंडली में 'नकली शहज़ादा', 'अन्दाज़ जफ़ा', 'मोला शिकार', 'तीरे हविस', 'हूरे-आब', 'ख़ाकी पुतला', 'मतलबी दुनिया', 'ग़ाफ़िल मुस्तफ़िर', 'एशियाई सितारा', 'नूरे-वतन', 'संसार-नौका', बागे ईरान', 'कर्म प्रभाव', 'शेर-काबुल', 'क़ौमी दिलेर' और 'नूर मंनार' का निर्देशन किया।

नेशनल नाटक मंडली के लिए 'आफ़ताबे-दकिन' का निर्देशन किया।

कभी-कभी यह नाटक मडलियों में भागीदार भी रहे। कहा जाता है इन्होंने निम्नलिखित नाटकों की रचना की है—'दारा सिकन्दर', 'जोशे-वतन', 'दुनिया जीतने वाला', 'ख़ुरशेदे ईरान', 'दरियाये नूर', 'तस्वीरे शराफ़त', 'पुराना गुनाह',

---

७२. उ० थि०, भाग २, पृ० ११८-१३४।

'शरीफ़ शहज़ादा', 'हिज़हाईनेस', 'जुल्मे-नारवा', 'हुस्नपरस्त', 'तेग़े सितम' और 'हिटलर मैरिड'।

जोज़ेफ डेविड ने लम्बा जीवन प्राप्त नहीं किया। वह केवल तीस साल जीवित रहे। पारसी रंगमंच जोज़ेफ़ डेविड की सेवाओं को न कभी भूला है और न कभी भुला सकेगा।

५. 'रौनक़' महमूद मियाँ बनारसी

डा० नामी का कहना है कि 'रौनक' का पूरा नाम महमूद अहमद था। शेख़ महमूद उनका स्वयं का नाम था और शेख़ अहमद उनके पिता का नाम था। दक्षिण मे नाम लिखने की परिपाटी के अनुसार वह 'महमूद अहमद' कहलाते थे यद्यपि पारसी अपनी बोली के अनुसार उन्हे 'मामूद मियाँ' ही कहते थे। महमूद मियाँ का उपनाम 'रौनक़' था और पता नही चलता वह 'बनारसी' किस तरह पुकारे जाने लगे।

रौनक बम्बई मे आकर बसे और वही २५ अप्रैल सन् १८८६ ई० में ६१ वर्ष की आयु मे उनका देहान्त हुआ। रौनक की आजीविका का आरम्भ एक मिल में नौकरी करने से हुआ था और अन्त नाटककार की हैसियत से। वह विक्टोरिया नाटक कम्पनी मे ही नौकर थे और अन्त समय तक वही रहे।

रौनक़ के नाटको को पढने से पता चलता है कि वह फ़ारसी और उर्दू के अच्छे विद्वान थे। उनके नाटकों की संख्या बहुत अधिक है। डा० नामी की दी हुई सूची इस प्रकार है :—

१. बेनजीर-बदरे मुनीर, २. लैला-मजनूं, ३. अंजाम-उल्फ़त उर्फ़ हुमायूं नासिर, ४. पूरन भगत, ५. सैफ़ सुलेमान उर्फ़ मासूम मासूमा, ६. सितम हामान उर्फ़ फ़रेब इज़राईल, ७. आशिक़ का खून उर्फ़ हीर-रांझा, ८. हातिम बिन तै उर्फ़ अफ़सर सख़ावत, ९. तिलस्म ज़ोहरा उर्फ़ रंज का बदला गंज, १०. फ़साने अजायब उर्फ़ जान आलम-अंजुमनआरा, ११. इंसाफ़ महमूद शाह गजनवी उर्फ़ इस हाथ दे उस हाथ ले, १२. इंसाफ़ महमूदशाह उर्फ़ जुल्म उमरान, १३. आशिक का खून और दामन पर धब्बा, १४. अजायब परिस्तान उर्फ़ बहारिस्ताने-इश्क़, १५. जुल्मे-अज़लम उर्फ़ जैसा बोना वैसा पाना, १६. ख्वाबगाहे इश्क उर्फ़ बेदाद बहशत, १७. ख्वाबे मोहब्बत उर्फ़ नादान की दोस्ती जी का जंजाल, १८. गरूर बादशाह उर्फ़ चंदा हूर व खुरशैद नूर, १९. संगीन बकावली, २०. नक़्श सुलेमान उर्फ़ शदादी बहिश्त, २१. फ़रेब फ़ितना उर्फ़ चाहत ज़र, २२. कालका भोग उर्फ़ घड़ी कि घड़ियाल, २३. नूरुद्दीन और हुस्न अफ़रोज़, २४. चमेली गुलाब, २५. मियाँ पिस्सू और बीबी खटमल।

इन नाटकों का विवरण इस प्रकार है—

'बेनजीर-बदरेमुनीर' : सन् १८७२ में जब दादी पटेल विक्टोरिया नाटक मंडली के स्वामी थे तो उनके मस्तिष्क में यह बात आई कि उर्दू भाषा में एक ओपेरा लिखाकर अभिनीत किया जाय। अतः उन्होंने नदारवानजी खाँ साहब से ऐसा ओपेरा लिखने के लिए कहा और खाँ साहब ने 'बेनज़ीर-बदरेमुनीर' नाम का ओपेरा दादी पटेल को लिखकर दे दिया। दादी पटेल ने बड़ी सफलता से उसे अपनी मंडली द्वारा अभिनीत कराया और लोकप्रियता प्राप्त की।

खाँ साहब का यह मूल नाटक अब कहीं भी प्राप्त नहीं होता। बाद में इसी कथानक को लेकर रौनक़ ने बेनज़ीर-बदरेमुनीर ओपेरा की रचना की। सम्भवतः यह सन् १८७९ में लिखा गया परन्तु इसकी एक प्रामाणिक प्रति सन् १८८० की छपी हुई मैंने देखी है। यह प्रति विक्टोरिया ग्रुप के द्वारा ही गुजराती वर्णमाला में छपाई गई है। रौनक़ की रचना और खाँ साहब की कृति में क्या समानता और विभिन्नता है यह बताना तब तक कठिन है जब तक दोनों के पाठों की तुलना न की जाय। और वर्तमान स्थिति में यह असंभव बात है। वैसे डा० नामी का कहना है कि दादाभाई रतनजी ठूठी जो एक समय विक्टोरिया मंडली के मालिक भी थे, कहा करते थे कि "मुंशी रौनक़ ने हमारी और दूसरी कम्पनियों के ड्रामे अज़-सरेनौ (नए सिरे से) लिखकर अपने नाम से छपवाये थे।" परन्तु मुझे इस कथन की सत्यता में, कम से कम सर्वांगीण रूप से कहने में, संदेह है। यदि रौनक़ के ड्रामे अपने नाम से कहीं और प्रकाशकों द्वारा छपवाये गए होते तो दादाभाई ठूंठी का कथन सत्य माना जा सकता था। परन्तु बेनज़ीर-बदरेमुनीर तो स्वयं विक्टोरिया ग्रुप ने छपवाया था और लेखक के स्थान पर रौनक का नाम छापा गया था। यदि यह नाटक खाँ साहब के नाटक को ठीक-ठाक करके छापा गया होता तो रौनक को लेखक न छापकर यहाँ लिखा जाता कि 'नाटक खाँ साहब के उक्त नाटक के ऊपर से मुंशी रौनक़ ने लिखा'। ऐसा लिखने का उन दिनों चलन था। अतएव यह मानकर ही चलना होगा कि नाटक रौनक़ की ही रचना है।

नाटक का कथानक : पहले अंक में माहरुख नाम की परी पूरब के शहज़ादे से अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करती है परन्तु नकारात्मक उत्तर पाती है। माहरुख उसे प्रसन्न रखने के लिए अपना उड़न-खटोला देती है। जब बेनज़ीर के माँ-बाप बेटे के अदृश्य होने की सूचना पाते हैं तो वियोगी होकर जंगल की ओर निकल जाते हैं। दूसरे अंक में सरनदीप की राजकुमारी बद्रेमुनीर अपने बाग में सैर करते हुए दिखाई देती है। उसी समय बेनज़ीर अपने उड़न-खटोले पर सवार

होकर उधर से निकलता है और बद्रेमुनीर को देखकर उस पर आसक्त हो जाता है। बेनजीर को देखकर बद्रेमुनीर की भी यही दशा होती है। माहरुख के पास एक देव द्वारा जब यह समाचार पहुँचता है तो वह बेनज़ीर को कैद कर देती है। बद्रेमुनीर अपने प्रेमी के वियोग में विलाप करती है और अपनी विशिष्ट सहेली नजमुन्निसाँ को उसे ढूंढने के लिए भेजती है और नजमुन्निसाँ जोगिन के भेस में बेनजीर को ढूंढ़ने निकल जाती है।

तीसरे अंक में बद्रेमुनीर के साथ बेनजीर के माँ-बाप की भेंट कराई गई है। अब सब मिलकर बेनज़ीर की खोज में निकलते हैं।

एक जंगल में नजमुन्निसाँ और जीन के बादशाह फीरोजशाह का मिलन होता है। फीरोजशाह की मदद से बेनजीर क़ैद से छूटता है। फ़ीरोज़शाह बेनज़ीर के माँ-बाप को बुलवा भेजता है और अंत में दोनों का हाथ मिला देता है। माहरुख परी को माफी मिलती है और चेतावनी दी जाती है कि भविष्य में किसी पर आसक्त न होवे।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से माहरुख की आसक्ति देखिये—

माहरुख — राज़ी रखूंगी मैं तुम्हें हरदम मेरी जान
आंखों से लाऊंगी बजा तेरा नित फ़रमान।
रात रहो मेरे पास तुम दिन को करना सैर
और को देना दिल नहीं जान की चाहो जो खैर।

बेनज़ीर — चाहने वाली तू मेरी है अय गुले गुलज़ार,
छोड़ के तुझको और मैं हरगिज हूँ न निसार
देवो घोड़ा तू मुझे मानूं तेरा अहसान,
है हवाई सैर का दिल में मेरे अरमान।

रौनक ने इस ऑपेरा में एक ग़ज़ल फ़ारसी भाषा में बद्रेमुनीर से और दूसरी बेनजीर से गवाई है। एक मौलाना 'जामी' की लिखी है और दूसरी 'फ़ोग़ानी' की। रौनक़ शायद इतनी फ़ारसी नहीं जानते थे अथवा फारसी में कविता नहीं कर पाते थे। कुछ-कुछ उन दिनों फ़ारसी ग़ज़लों का रिवाज सा हो गया था। शायद इसीलिए कि उर्दू के नाटक में पारसी दर्शकों को फ़ारसी की ग़ज़लों के गवाने से आकर्षित किया जाय अथवा उर्दू को ऊँचा उठाने के लिए उसमें फारसी की पुट मिलाई जाय।

रौनक़ के बाद इस कथानक को और भी कई नाटककारों ने अपनी रचना का केन्द्र बनाया। इससे प्रतीत होता है कि कथानक बड़ा लोकप्रिय था और नाटक

में जादुई दृश्य के कारण दर्शकों की प्रशंसा का पात्र था। इसी कारण हाफ़िज़ मोहम्मद अबदुल्ला और फ़क़ीर मोहम्मद 'तेग़' ने अपने-अपने ढंग से इस कथानक को नाटक रूप में प्रस्तुत किया।

'जफ़ायें सितमगर उर्फ़ घड़ी या घड़ियाल' : डा० नामी ने इसका नाम 'काल का भोग उर्फ घड़ी या घड़ियाल' रखा है। उन्होंने यह नहीं बताया कि इस नाम से उक्त नाटक के मुद्रक और प्रकाशक कौन है अतएव यह निष्कर्ष निकालना कि प्रति प्रमाणित है या नही, संभव नही है। मेरे पास जो प्रति है उस पर लिखा है...."नाटक तीन बाब का; वास्ते गिरोहे विक्टोरिया नाटक के तस्नीफ किया मरहूम मुनशी माहमूद मियां मुतखल्लुस बे रौनक ने और तीसरी वक़्त छाप के इज़हार किया वास्ते खासो आम के मालेकों ने गिरोहे विक्टोरिया नाटक के हुकम से, दी० लखमीदास की कंपनी ने, ज़बाने उर्दू व हर्फ़े गुजराती।" इस विवरण से यह प्रति प्रमाणित मालूम होती है क्योंकि इसका प्रकाशन विक्टोरिया नाटक मंडली के मालिकों की आज्ञा से बताया गया है। अतएव यह नाम भी डा० नामी के दिए हुए नाम से अधिक प्रमाणित होना चाहिए।

वैसे विषय-वस्तु की दृष्टि से 'काल का भोग' शीर्षक भी उचित ही है क्योंकि इस नाटक मे जो घटना वर्णित है उसका आधार 'समय' पर काम होने या न होने पर ही अवलम्बित है। घटना इस प्रकार है—

सितमगर नाम का एक गरीब सिपाही जादू के कारण रोशनाबाद का बादशाह बन जाता है। वह कालका नामक देवी का पुजारी है और हर वर्ष पूनम की रात को १२ बजे देवी को प्रसन्न करने के लिए एक नर-बलि देता है। देवी का वरदान है कि जब तक वह नर-बलि देता रहेगा उसका शासन समाप्त नही होगा, परन्तु जब वह ऐसा करने में असमर्थ होगा तो स्वयं उसकी बलि देवी द्वारा दे दी जायगी। अतएव १२ बजे का समय एक ऐसा समय है जो परिणाम का द्योतक है।

सितमगर किसी प्रकार पूर्व बादशाह के लड़के नेकबख्त को पकड़ लेता है और उसकी बलि देकर देवी को भी प्रसन्न रखना चाहता है तथा अपने राज्य के किसी उत्तराधिकारी को भी समाप्त करना चाहता है। परन्तु लड़का उसके कब्जे से भाग निकलता है। जैसे-तैसे वह नूरआलम नाम की एक दहक़ानी लड़की के पास आ जाता है। नूरआलम उसे अपनी जान से ज्यादा अजीज समझती है और भरसक उसकी रक्षा करती है। सितमगर नूरआलम को अपनी पत्नी बनाना चाहता है और एक दिन अकस्मात् उसे नेकबख्त उसके घर पर मिल जाता है और वह उसे पकड़कर अपने महल में पुनः क़ैद कर लेता है। नूरआलम उसे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते

वहाँ पहुँच जाती है। उसके पहुँचने का समय लगभग वही होता है जब नेकबख्त का बलिदान दिया जाने वाला था। नूरआलम लड़के की रक्षा करती है और सितमगर नूरआलम को ही बलि देने पर तत्पर हो जाता है। इसी संघर्ष में नेकबख्त वहाँ से भागकर निकल जाता है और घडी मे १२ बजा देता है। सितमगर १२ बजे बलि देने मे समर्थ नही होता जिसके कारण देवी क्रुद्ध हो जाती है और प्रकट होकर स्वय सितमगर को ही खा जाती है। इस प्रकार घड़ी सितमगर के लिए घडियाल बन जाती है और सितमगर की जफा (अन्याय) उसे काल के मोंग का ग्रास बना लेती है।

नाटक का अन्त नूरआलम और सुर्ख़चेहर की शादी पर होता है। नाटक ओपेरा है।

"आशिक का खून, दामन पै धब्बा उर्फ़ दौलत का प्यार चाहत से आर" : डा० नामी ने उपरोक्त नाटक का पहला नाम ही अपनी सूची में लिखा है, दूसरा नही। अन्य नाटकों की तरह उन्होंने इसका कोई विवरण भी नहीं दिया जिससे अनुमान होता है कि यह नाटक उनकी दृष्टि में आया ही नही। 'आशिक़ का खून' नाम के एक नाटक का उल्लेख डा० नामी ने 'तालिब' के नाटकों की सूची में दिया है और लिखा है "यह ड्रामा रौनक का है और तालिब ने इसमें बहुत मामूली रद्दो-बदल किया है। सरेवर्क पर दर्ज है—"मरहूम मुंशी महमूद मियाँ मुतख़ल्लिस बे रौनक के लिखे हुए नाटक से नये तर्ज़ पर मुशी विनायक प्रसाद तालिब ने तस्नीफ किया।" इसके अलावा एक शेर भी दर्ज है—

"जफ़ा की तेग़ से आशिक का खून करते हैं।
जो सीमतन हैं फ़क़त सीमोज़र से मरते हैं॥

किताब के आख़िर में तालिब दर्ज है।...."[७३]

मेरे पास जो नाटक की प्रति है वह सन् १९०३ की छपी है। चौथा संस्करण है और उस पर "खुरशेदजी मेहेरवानजी वालीवाला, मालिक कम्पनी (विक्टोरिया नाटक कम्पनी) मज़कूर ने छापकर इज़हार किया" लिखा है। अतएव यह प्रमाणित प्रति है जो गुजराती वर्णमाला में छपी है। इस प्रति पर भी वही शेर लिखा है जो डा० नामी ने अपनी प्रति पर बताया है। अतएव इसमें संदेह नहीं रह जाता कि उक्त नाटक के मूल लेखक रौनक ही है।

यह दो बाब (अंक) का ओपेरा है। इसकी घटनाओं का स्थल 'किनियान' नामक काल्पनिक स्थान है। कथ्य यह है कि मस्तेनाज़ नाम की एक लड़की है जिसके

७३. डा० नामी : उ० थि० २, पृ० १२७-१८।

पिता की मृत्यु हो चुकी है। उसके तीन प्रेमी है। नाम हैं आशिक, शुजा और इब्नेमीर। मस्तेनाज़ सबसे पहले आशिक से प्रेम करती है और अपने पत्रो मे उससे विवाह का वचन दे देती है। शुजा को वह हिलगाये रखती है। बाद में दौलत की चाह जोर मारती है और उसका रुझान इब्नेमीर की तरफ़ हो जाता है। वह आशिक़ से प्रार्थना करती है कि उसे अपने वचन से मुक्ति दे दे। आशिक़ की चचेरी बहन दिलनवाज़ अपने भाई को मस्तेनाज़ की चालाकी और बेवफ़ाई से चेतावनी देती है परन्तु प्रेम का अंधा आशिक़ दोनों में से एक की बात नही मानता। परिणामस्वरूप मस्तेनाज़ आशिक़ की हत्या का षड्यंत्र करती है और कहवाखाने के एक खूनी अफ्लक को दो हजार रुपये देकर उसकी हत्या कराती है। अफ्लक हत्या करने से पहले उसे समझाता है, प्रेमिकाओं के कठोर-हृदय होने की शिकायत करता है—

"खूने आशिक का नहीं मिटता है धब्बा हरगिज़,
हश्र तक धोते रहा करते गो दामन तुम हो।
रहम करते तुम्हें देखा न कभी आशिक पर
सीने में दिल की जगह रखते क्या आहन तुम हो।
काफ़िरो डरते बहुत तुम हो गुनहगारों से
बेगुनाहों की सदा मारते गरदन तुम हो।"

—I. २. पृ० ६।

परन्तु अन्त मे दिखाया यही गया है कि आशिक की हत्या हो जाती है। इस समाचार को सुनकर दिलनवाज़ को बड़ा दुख होता है परन्तु मस्तेनाज़ समझती है कि उसकी बेवफ़ाई को प्रकट करने वाला एक काँटा निकल गया।

जैसे-तैसे मस्तेनाज इब्नेमीर से शादी का प्रबंध करती है परन्तु सारा रहस्य खुल जाता है। रहस्य के उद्घाटन में रौनक ने अद्भुत और अतिमानवता का आश्रय लिया है। चमत्कारी दृश्य दिखाये हैं जिससे दर्शक आकर्षित हों और वाह-वाह करें।

अन्त मे मस्तेनाज़ आशिक़ का खून कराने का अपराध स्वीकार करती है और कटार मारकर मर जाती है। आशिक़ जो अभी जिन्दा था दिलनवाज़ से शादी कर लेता है; इब्नेमीर बेवफ़ा बीबी के पंजे से निकलता है, अफ्लक को फाँसी दी जाती है। नाटक समाप्त होता है।

यद्यपि नाटक ओपेरा होने के कारण पद्य-बद्ध है परन्तु कही-कही रौनक़ की कविता का सौंदर्य भी उभरा है।

'ज़ुलमे अजलम उर्फ़ जैसा वो वैसा लो'[७४] : यह ओपेरा नूरुन्निसां नाम की एक सुन्दर युवती के सतीत्व की रक्षा की कहानी है। नूरुन्निसां और शम्सरू भाई-बहिन थे और तुमान नामक द्वीप के एक तुर्क अमीर की सन्तान थे। इसी द्वीप के एक हबशी ज़ालिम नवाब अजलम की दृष्टि नूरुन्निसा पर पड़ गई और वह उससे शादी करने की तदबीर सोचने लगा परन्तु नूरुन्निसां तैयार न हुई। इस पर भाई-बहिन उसके अत्याचार के भागी हुए और अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए वहाँ से भाग निकले। अजलम ने उनका पीछा किया। शम्सरू का जहाज़ एक नदी में तूफ़ान आने से टूट गया और भाई-बहिन एक दूसरे से पृथक् हो गए। नूरुन्निसा को पानी में बहते देखकर एक अमीर ने जो बसरे का रहने वाला था, अपने गाड़ीवान से उसे निकाल लाने को कहा। गाड़ीवान सफल हुआ और अमीर नूरुन्निसां को लेकर अपने घर आया और बड़ी नम्रता तथा आदर से उसे आश्रय दिया परन्तु मालिक और नौकर दोनों ही उस पर आसक्त हो गये। अनेकों प्रयत्न करने पर भी किसी की दाल न गली। इस पर उन्होंने नूरुन्निसा को बदनाम करना चाहा। संयोग से अजलम की नाव भी पानी में डूब गई और वह बचकर उसी अमीर के घर पहुँचा। अमीर ने उसे भी आश्रय दिया। नूरुन्निसां अपने भाई की याद में उदासीन रहने लगी और अजलम उसे अपनी बहिन बताकर स्वयं मुखमलीन रहने लगा। गाड़ीवान से दोस्ती हो जाने पर उसने छद्म रूप से अजलम को नूरुन्निसा तक पहुँचा दिया। अजलम फिर से नूरुन्निसां को तंग करने लगा। आखिर अमीर ने यह समझकर कि नूरुन्निसां और अजलम में परस्पर प्रेम है उन्हें बदनाम करके सरेबाज़ार बेचने की आज्ञा दे दी। शम्सरू जो अकस्मात् बच गया था, उस समय बाज़ार से निकला तो यह घटना देखी। वह बहिन को पहचान गया। उसने दोनों को मोल ले लिया। उसे संदेह हुआ कि उसकी बहिन ने अपने सतीत्व को गवाँ डाला। इस कारण वह उसे मार डालने पर उतारू हो गया। ये सारी घटनाएँ शाम नामक देश में घटीं। शाम का राजकुमार मुनव्वरहुस्न नूरुन्निसा को देखकर आसक्त हो गया और अपने पिता से उसके साथ विवाह करने की प्रार्थना की। पिता ने जब नूरुन्निसा के साथ अजलम, अमीरआला और उसके गाड़ीवान के सम्बन्ध की चर्चा सुनी तो पुत्र को विवाह न करने के लिए बहुत समझाया परन्तु राजकुमार अपनी हठ पर जमा रहा।

एक दिन सारा रहस्य खुल ही गया। अजलम, अमीरआला और गाड़ीवान तीनों ने नूरुन्निसां की मर्यादा की बात बताई, शम्सरू को भी संतोष हुआ और

---

७४. प्र० का० १६ जून, १८८३।

अंत में मुनव्वरहुस्न और नूरुन्निसां का विवाह हो गया। सबको अपने-अपने किए का फल मिला परन्तु नूरुन्निसां ने सब का अपराध क्षमा कर दिया।

रौनक़ के इस नाटक में नाटक की अन्वितियों का ध्यान नहीं रखा गया है। लेखक ने अपने कथानक को जैसे चाहा है मोड़ लिया है। परन्तु दर्शकों को ध्यान में रखकर अनेक अद्‌भुत दृश्यों का समावेश किया गया है, यथा—बहता हुआ दरिया और उसमें तूफ़ान आने पर नावों का परस्पर टकराना और टूट जाना, नूरन्निसां के तमाचे से अमीर की एक आँख का निकल पड़ना और एक पीर मर्द का जादुई शीशा देना आदि, आदि।

नाटक में कई गज़लों का समावेश है जिनमें से कुछ में 'रौनक़' नाम आया है। प्रेम-भरे संवाद अच्छे हैं परन्तु कविता की दृष्टि से उच्चकोटि का नाटक नहीं कहा जा सकता।

'हातिम बिन ताई उर्फ़ अफ़सरे सख़ावत' : डा० नामी ने इसका नाम 'हातिम बिन ते' दिया है परन्तु विक्टोरिया ग्रूप की ओर से जो नाटक प्रकाशित किया गया है उसमें 'ते' के स्थान पर 'ताई' शब्द का प्रयोग है। यह दो अंकों का नाटक है।

नाटक क्या है कुछ घटनाओं का संग्रह है जो लेखक ने हातिम के उदार और परोपकारी चरित्र का प्रदर्शन करने के लिए एकत्र की हैं।

नाटक की मुख्य घटना का सम्बन्ध हुस्नबानो नामक एक सुन्दर स्त्री का मुनीरशामी से विवाह है। हुस्नबानो ने कुछ ऐसे सात प्रश्न रखे थे जिनके सफल उत्तर देने वाला ही उसे पत्नी रूप में ग्रहण कर सकता था। बहुत से लोग आये और असफल होकर चले गये। हुस्नबानो की दाया उसे बहुत समझाती है कि वायदे पर क़ायम न रह परन्तु वह मानती नहीं यद्यपि उसका मन भी मुनीरशामी के ऊपर आसक्त हो जाता है। मुनीरशामी उसके ३ सवाल लेकर आता है और बड़ा व्याकुल रहता है। उसी दशा में उसकी भेंट हातिम से होती है। हातिम अपनी सहायता का वचन देता है और प्रश्न लेकर उनके उत्तर के लिए निकल जाता है। दैवयोग से उसे ऐसे फ़क़ीर मिलते हैं जिनसे उसे उत्तर मिल जाता है और यह लाकर मुनीरशामी की ओर से हुस्नबानो को देता है। एक प्रकार से हुस्नबानो का प्रण पूरा हो जाता है और हातिम उसका विवाह मुनीरशामी से करा देता है।

परन्तु नाटक इतना ही नहीं है। लेखक ने कुछ अन्य पात्रों को लेकर हुस्नबानो और मुनीरशामी के चरित्र को खूब तपाया है। इस प्रयोग में कुछ हास्य की पुट भी आ गई है।

नाटक का अन्त हातिम और जर्रीनपोश तथा मुनीरशामी और हुस्नबानो के विवाह की मुबारकबादी पर होता है।

घटनाओं का समीकरण कुछ ऊँचे दर्जे की कला-कुशलता का द्योतक नहीं है। जहाँ आवश्यकता पडी है कोई न कोई अतिमानवी तत्व ने घटना का मोड बदल दिया है। चरित्र-विकास की कमी है और नाटक नाट्यकला की दृष्टि से उच्चकोटि का नहीं है।

इसी प्रसग को लेकर 'आराम' और हाजी अब्दुल्ला ने भी अपने नाटक लिखे है। परन्तु वे प्राप्य नही है अतएव उनसे रौनक़ की तुलना नही की जा सकती।

मेरे पास रौनक़ की एक रचना और भी है। उसका नाम 'मोलेमियाँ' है परन्तु वह अधूरी है। यह एक प्रहसन (नक़ल) है। जब तक सम्पूर्ण प्रति न मिले कुछ नही कहा जा सकता कि लेखक उसमे क्या दिखाना चाहता है। यह प्रहसन अंकों (बाबों) मे विभाजित नही है, परदों (दृश्यो) में विभक्त है। मेरे पास उसके छः दृश्य सम्पूर्ण और सातवाँ अधूरा है। डा० नामी ने इस रचना का उल्लेख अपनी सूची मे नहीं किया है। यह सन् १८८२ का प्रकाशन है।

इसमें संदेह नही कि 'रौनक' और 'ज़रीफ़' पारसी थियेटर के सबसे पुरान गैर-पारसी लेखक थे। परन्तु 'जरीफ़' ने तो प्रायः सभी पुराने नाटकों को, जैसा कहा जाता है, नये रूप देकर आगे बढ़ाया। रौनक ने अवश्य कुछ पुराने नाटकों को जो पारसियों ने लिखे थे नये सिरे से लिखा और कुछ की मौलिक रचना की।

उनके नाटकों मे दो ही तत्व प्रधान रूप से दिखाई देते हैं। उनके नाटक नेकी और आदर्शवादिता के परिणाम पर समाप्त हुए हैं। उनका नाटक-न्याय यही है कि पात्र को अपने किए का फल भोगना ही पडा है। दूसरे उनके नाटकों में ओपेरा होने के कारण तुकबंदी अधिक है। उच्चकोटि की कविता उनमें नही मिलती। प्रेम-भावना से पूर्ण जो उनकी ग़ज़लें है वे भी उच्च स्तर तक नही पहुँचतीं। संभवतः इसीलिए 'खुमख़ानये जावेद' के लेखक ने उनका बहुत ही संक्षिप्त परिचय देकर छोड़ दिया है। अतएव उन्हें मध्यम कोटि के कवि ही मानना पड़ेगा।

अन्त में यह भी एक जानने योग्य बात है कि रौनक़ के कुछ नाटक ऐसे भी हैं जिनमें दूसरे लेखकों ने परिवर्तन किया है और आज वे परिवर्तित अवस्था मे ही उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ रौनक का ड्रामा 'सगीन बकावली' मुंशी 'तालिब' ने परिवर्तित किया था। हाफ़िज़ मोहम्मद अबदुल्ला ने भी और गुलाम हुसैन 'ज़रीफ़' ने भी इसे नये सिरे से लिखा था। 'खानदान हामान' की दशा भी यही हुई थी। 'पूरन-भगत' भी हाजी अबदुल्ला, 'ज़रीफ़' और मौलवी बख्श इलाही द्वारा नये तरीके से लिखा गया था। 'अंजामे उलफत' को 'ज़रीफ' और 'नेग' ने

नया रूप प्रदान किया था। 'सैफुस्सुलेमान' ज़रीफ और हाजी अबदुल्ला ने अपने नाम से छपवाये थे। इस प्रकार रौनक़ के कई नाटक दूसरों के हाथों में पड़कर कुछ बदली हुई सूरत में जनता के सामने आये परन्तु दोनों की एक साथ अप्राप्ति के कारण यह कहना कठिन है कि किस लेखक को कितना श्रेय दिया जाय।

'तालिब' मुन्शी विनायक प्रसाद

'तालिब' का जन्म बनारस मे हुआ था। ये जाति के कायस्थ थे। आरम्भ से ही कविता का व्यसन था। खुमखामये जावेद मे इनके विषय मे थोडी-सी जानकारी मिलती है।

बनारस छोड़कर 'तालिब' बम्बई चले आये थे और अंतिम समय तक बम्बई ही में रहे। सन् १९२२ ई० में इनका देहावसान हुआ।

'तालिब' के नाटक :

डा० नामी ने इनके नाटकों की सूची इस प्रकार दी है—

१. लैलोनिहार उर्फ खूबिये तकदीर
२. नल दमयन्ती
३. फसाने अजायव (ओपेरा)
४. चमने-इश्क़
५. निगाहे-गफलत
६. दिलेर दिलशेर
७. खजानये-गैब
८. करिश्मये-कुदरत
९. तिलस्मात गुल
१०. गोपीचन्द
११. हरिश्चन्दर
१२. संगीनवकावली
१३. अल्लादीन
१४. विक्रमविलास

उपरोक्त तालिका के अतिरिक्त 'रामलीला' और 'अलीबाबा और चालीस चोर' उर्फ़ 'नसीब का ज़ोर' मेरे देखने मे आये है। संगीनवकावली के लिए कहा जाता है कि उसे मूल रूप मे 'रौनक' ने लिखा था परन्तु बाद में 'तालिब' ने उसमें कुछ परिवर्तन और शोधन किया। जे० सन्तसिंह के यहाँ से जो संस्करण संगीनवकावली का निकला है उसमें पहले ही दृश्य मे ईश-स्तुति में 'तालिब'

का नाम आया है। इसी दृश्य के अन्त में भी एक गाने में तालिब का नाम आया है। इन्दर ने जो सजा बकावली को दी है उसमें 'तालिब' उपनाम का प्रयोग हुआ है—

"....अस्ल हो हाल तेरा, वस्ल हो 'तालिब' का, है तेरी यह सजा"

दूसरे दृश्य में 'रौनक' उपनाम आया है। दृश्य आरम्भ होते ही ताजुलमलूक आता है और कहता है—

"...शमा की तरह मे जल जल के हूँ बस मैं भी तमाम
'रौनके' बदले रकीब आज वह मेरा यार हुआ ।"

भाई दयासिंह एण्ड सन्स के यहाँ से एम० एम० जौहर द्वारा सम्पादित सगीनवकावली मे भी यही पाठ है। अतएव यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि 'रौनक़' ने पहले संगीनवकावली लिखी और फिर तालिब ने उसमें परिवर्तन किये। इसका प्रमाण विक्टोरिया मण्डली द्वारा प्रकाशित संस्करण है। परिवर्तन के स्वरूप और सीमा का अनुमान दोनो के संस्करणो को देखकर ही लगाया जा सकता है परन्तु इस समय रौनक की 'संगीनवकावली' उपलब्ध नही है। खुरशेदजी वालीवाला द्वारा प्रकाशित नाटक की एक प्रति मेरे पास है जो सन् १८९१ ई० की है। सगीनवकावली : जैसा नाम से प्रगट है इसमें बकावली और ताजुलमलूक के प्रेम का कथानक है। वकावली राजा इन्दर के अखाड़े की परी है और ताजुलमलूक नामक इसान पर आसक्त होने के कारण इन्दर की कोप-भाजन बनती है। इन्दर के शाप से वकावली का नीचे का आधा भाग पत्थर (सग) का हो जाता है। इसीलिए संगीन (पत्थर वाली) विशेषण का प्रयोग किया गया है। बाद मे राजा उससे प्रसन्न होकर क्षमा कर देता है और दोनो प्रणयसूत्र में बँध जाते हैं।

इसी नाटक में एक दूसरा उपाख्यान भी चलता है जिसका सम्बन्ध चत्रावत और चतुर्वध तथा निर्मल एवं साईम के प्रेम-बंधन से है। दोनों आख्यान साथ-साथ चलते हैं यद्यपि दोनों में कोई मेल नही है। मालूम नहीं लेखक ने नाटक को यह रूप क्यो दिया ?

यद्यपि संगीनवकावली बडा लोकप्रिय नाटक रहा और विक्टोरिया नाटक मंडली के अतिरिक्त कई कम्पनियों द्वारा इसका अभिनय किया गया परन्तु साहित्यिक दृष्टि से इसमें तालिब के अन्य नाटकों जैसी उत्कृष्टता नहीं, संभवतः इसका कारण यह भी हो सकता है कि तालिब ने रौनक़ के लिखे नाटक को नए सिरे

से न लिखकर, मालिकों के कहने पर, केवल उसमें थोड़े से परिवर्तन-परिवर्धन मात्र करके छोड़ दिए जिससे अनेक बार अभिनय होने से नाटक पुराना और अरुचिकर प्रतीत न होने लगे।[७५]

अलीबाबा और चालीस चोर उर्फ नसीब का ज़ोर[७६] :

यह तीन बाब का नाटक है जो विक्टोरिया नाटक कम्पनी के लिए लिखा गया था। इसकी क्रिया-स्थली 'पारस' देश है। अलीबाबा की कहानी एक प्रसिद्ध कहानी है और उसी के आधार पर इसकी रचना हुई है।

कथा-वस्तु :

अलीबाबा पारस देश का एक गरीब लकड़हारा है। उसकी पत्नी का नाम ज़रीना है और बेटे का गानिम। माँग-ताँग कर मजदूरी करके और कर्ज़ के आधार पर अलीबाबा का परिवार अपना जीवन-यापन करता है। परन्तु जब गिरवी रखकर ऋण लेने के लिए भी कोई वस्तु नहीं रह जाती तो बड़ा दुखी होता है। उसकी ऐसी दशा देखकर उसकी नौकरानी की तरह रहने वाली लौंडी मुजैय्यन अपने पास बचे हुए पैसे उसे खर्च करने के लिए कहती है। इतना ही नहीं, वह अलीबाबा से प्रार्थना करती है कि उसे बेचकर वह दूसरों का ऋण चुका दे और जो कुछ बचे उससे कोई कारोबार शुरू कर दे। परन्तु अलीबाबा उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर देता है। मजबूर होकर अलीबाबा अपने बड़े भाई क़ासिम के आगे गिड़गिड़ाता है, परन्तु वहाँ से भी वही उत्तर पाता है। क़ासिम का नौकर सत्तार भी अलीबाबा की मुसीबत देखकर अपनी कमाई का पैसा उसे देना चाहता है पर अलीबाबा नहीं स्वीकार करता। सब ओर से निराश अलीबाबा जंगल की ओर जाता है और लकड़ी काटकर बोझ को एक स्थान पर रखकर दुनिया की दशा पर विचार करता है। यह विचारधारा भंग होती है उसके बेटे गानिम के प्रवेश से। उसी समय चोरों की एक टोली कुछ गाती सुनाई देती है। बाप-बेटे छुपकर उनकी करामात देखते है। उसी से पता चलता है कि चोरों ने अपना खजाना कहाँ लाकर रखा है और किस प्रकार 'खुलो सुमसुम' और 'बंद हो सुमसुम' की आवाज पर कोषगृह का फाटक खुलता तथा बंद होता है। बस, दोनों के हाथ मालदार होने की कुंजी लग जाती है और चोरों के नई मुहिम पर रवाना होने के बाद दोनों खूब माल बटोर कर घर रवाना होते है। घर पहुँचकर माल को तोलने के लिए ज़रीना अपनी जिठानी से तराजू लाती

---

७५. खुरशेदजी बालीवाला द्वारा सन् १९०० में प्रकाशित नाटक के आधार पर।

७६. खुरशेदजी मेहरबानजी बालीवाला द्वारा प्रकाशित सन् १९००-मुद्रक-जामे जमशेद स्टीम प्रेस, मुंबई।

है, मगर चतुर जिठानी तराजू की तल में गोद लगा देती है जिससे सारा भेद खुल जाता है। कासिम अलीबाबा से सब भेद पाकर स्वयं माल लाने के लिए जाता है परन्तु निकलने से पहले चोरो का वहाँ आगमन होता है और वे उसे जान से मार डालते है।

अलीबाबा, अपनी भावज के रोने-पीटने पर, कासिम की लाश घर ले आता है और एक दर्जी से उसका कफन सिलवाता है। दर्जी की आँखें बंद कर दी जाती है जिससे वह घर मे आने-जाने का रास्ता न देख पाये। चोर इस ताक में हैं कि उनके कोष का धन कौन चुराकर ले जाता है। अतएव वे भी अपनी छान-बीन मे लगते है। मुस्तफा दर्जी मे अलीबाबा के घर का पता चल जाता है। चोर तरह-तरह से अलीबाबा को मार डालने का प्रयत्न करते हैं परन्तु सफल मनोरथ नही होते।

अन्त में चोरों को सफलता नही मिलती, चोरी का दण्ड मिलता है और अलीबाबा शान के साथ जीवनयापन करता है। ग़ानिम और मुर्जीयन विवाह-सूत्र में बँधकर प्रसन्न होते है।

यह नाटक अधिकाश में कवितावद्ध है। भाषा उर्दू मिश्रित हिंदी है। कोई साहित्यिक सौन्दर्य दिखाई नही पड़ता। सगीत ने, संभव है, उसे इस दशा तक पहुँचा डाला है।

चरित्र की दृष्टि से इसमें धूर्त भी हैं, शरीफ भी हैं; छोटे से कार्य-काल की सीमा मे लेखक ने पूरी कहानी कह डाली है।

नाटक में चमत्कारी दृश्य भी हैं। चोरों का खजाना और 'सुमसुम' के नाम पर उसके द्वार का खुलना एवं बद होना स्वय एक चमत्कार है। मुर्जीयन द्वारा कुप्पों में बैठे चोरों और उनके सरदार को मार डालना भी चमत्कार से शून्य नहीं है। ऐसे ही दृश्यों को देखकर जनता प्रसन्न हुआ करती थी। नाटक में कार्य-गति तरल है। कथानक दर्शक मडली को आकर्षित किए रहता है।

विक्रम-विलास :[७७]

इस नाटक का दूसरा नाम 'सात अंधे' भी है। विक्रम उज्जयननगर का राजा है। विक्रमविलास की पदवी उसने अपने पुत्र 'राजरतन' को प्रदान की है। अतएव उसी के नाम पर नाटक का शीर्षक रखा गया है। नाटक में सात प्रधान पुरुष पात्र है—राजा विक्रम, राजकुमार राजरतन, विक्रम के लश्कर के

---

७७. वालीवाला द्वारा सन् १६०८ की छपी। दी जमशेदजी नशरवानजी पेटीट पारसी आरफ़नेज, कपतन प्रिंटिंग वर्क्स के आधार पर।

अफ़सर हीरालाल, मानिकलाल और मोतीलाल तथा विक्रम के दरबार के दो मसख़रे दंगल और मंगल। ये सातों स्त्रियों के प्रेम में आसक्त होकर अपनी बुद्धि का तिरस्कार कर बैठे और ऐसे-ऐसे काम कर डाले जो अन्यथा संभव न थे।

नाटक की कथावस्तु बड़ी विचित्र है। उज्जयन देश के राजा विक्रम ने करनाटक के ज़मीदार की बेटी मदनमंजरी से कभी विवाह कर लिया और फिर उसे वहीं उसके देश में छोड़कर उज्जयन चला आया। राजरतन उसी का पुत्र था। माँ-बेटे किसी प्रकार अपना जीवनयापन करते रहे। बड़े होने पर बेटे ने एक दिन अपने नौकर की सहायता के लिए माँ की आभूषण-मंजूषा खोली तो उसमें से एक पत्र मिला जिससे उसे पता चला कि वह राजा विक्रम का पुत्र है। माँ को साथ लेकर वहाँ से तत्काल ही राजरतन उज्जयन को रवाना होकर यथासमय वहाँ पहुँच गया। राजा के बाग की मालिन सेवती और उसके पुत्र चमन की सहायता से राजा के पास एक पत्र भिजवाया जिसमें लिखा था—

"तू ऊँचे आसन पर बैठा है वाला,
मैं हूँ तेरे माथे का चढ़ने वाला।
सारा जग आकर तेरा पग चूमेगा,
मैं वह हूँ जिसका तू भी डग चूमेगा।
है राज हमारा कहाँ, कहाँ धन रतन हमारा ?
है कहाँ तुम्हारा क़ौल, किधर है वचन तुमारा ?
अब छोड़ तख़्त, आया मैं करने दावा
मैं चोर तेरा हूँ, तू है चोर का बाबा।
फिरता हूँ वहां जो देस; राज है मेरा
जो पकड़े मुझको वही ताज है मेरा।
—प्रीतम का पूत"

राजा 'वचन' की बात सुनकर चौंक पड़ा और कहने लगा—"....याद नहीं। हो तो कोई आय, साबित कर दिखाय।" आज्ञा दी कि इस चोर को पकड़ा जाय! इस आज्ञा पर ही नाटक की समस्त कार्यगति निर्भर है। दंगल और मंगल चोर पकड़ने का बीड़ा उठाते हैं परन्तु अपने प्रयत्न में स्वयं ही राजरतन और चमन की बुद्धिमानी का शिकार हो जाते है। ये दोनों (राजरतन और चमन) स्त्रीवेश में उनके सामने आते है। दोनों दंगल और मंगल उन पर रीझ कर अपना आपा खो बैठते हैं और क़ैदी बनते है।

एक दिन राजा मंदिर में आते हैं और राजरतन तथा चमन उन्हें भी बंदी बना देते हैं। मंदिर का बाहर से ताला बंद कर देते हैं और अनुनय-विनय करने पर भी छोड़ते नहीं। इसी दृश्य में विक्रम और राजरतन तथा मदनमंजरी का परस्पर मिलन होता है। राजा अपनी प्रिया को पहचानता है और अपने गंधर्व विवाह का स्मरण करता है तो उसे याद आती है कि उसके ससुर ने मदन-मंजरी को यह शाप दिया था—"अय कुलकलंकनी ! जैसे तूने मेरा दिल दुखाया, तू भी दुख पाय, तेरा पिया तुझे भूल जाय और जब तू उसके सामने हो तभी उसे तेरी याद आय ।"

वास्तव में तो इस मिलन पर ही नाटक समाप्त हो जाना चाहिए था। परन्तु लेखक ने पहले अंक की समाप्ति पर उसे समाप्त नहीं किया।

दूसरे अंक में लेखराज ठाकुर की पुत्री मनोरमा से राजरतन का विवाह होना बताया गया है। परन्तु मनोरमा नारी-चरित्र को पुरुष-चरित्र से उत्कृष्ट बनाती है और विक्रम के कोप का पात्र बन बंदीगृह में डाल दी जाती है। किसी ने राजा विक्रम की प्रशंसा में लिखा—

"जग में होगा इस तरह का कम चरित्र
सब चरित्रों में बड़ा विक्रम चरित्र"

परन्तु मनोरमा ने उसके स्थान पर लिखा—

"कौन विक्रम, और क्या उसका चरित्र ?
सब चरित्रों में बड़ा त्रिया चरित्र ।"

इसी त्रिया चरित्र का विकास लेखक ने दिखाया है और बताया है कि मनोरमा की सखी चपला किस प्रकार अपनी बुद्धि द्वारा मनोरमा को बंदीगृह से निकालती है और प्रमाणित करती है कि उपरोक्त सातों व्यक्ति अंधे हैं। नाटक के दूसरे नामकरण का यही रहस्य है।

नाटक की भाषा हिन्दी है।

चरित्र-चित्रण में स्त्री-बुद्धि को विभिन्न प्रसंगों के संदर्भ में दिखाया गया है। कोई प्रेम में अंधा है, कोई भ्रम में अंधा। राजा विक्रम भोला है, मदन-मंजरी पहली ही भेंट के पश्चात् रंगमंच से सदा के लिए पृथक् हो जाती है। मनोरमा ने जो दोहा लिखा था उसकी सत्यता प्रमाणित होती है। सब अपनी-अपनी कमजोरियों को स्वीकार करते हैं।

कई चमत्कारी दृश्यों का समावेश किया गया है। जब राजा विक्रम राज-सिंहासन के ऊपर बैठने के लिए ऊपर सीढ़ियों पर चढ़ते हैं तो पहले ही एक पुतली प्रश्न पूछती है—

"अय राजा विक्रमबली, वर्णन कर विस्तार,
सिहासन की हैं तेरी, कौन सीढ़ियां चार।"

राजा उत्तर देता है—

"न्याय, सत्यता, दान ये तीन सीढ़ियां जान,
चौथी सीढ़ी है दया, चारों को पहचान।"

राजा चार सीढ़ियां चढ़ता है, तब दूसरी पुतली पूछती है—

"इन चारों पर कौन हैं और दूसरी चार,
उनका भी वर्णन करो, अय धर्मावतार।"

राजा कहता है—

"नेम, संत, भक्ति भली और नम्रता मान,
ये चारों हैं दूसरी चार सीढ़ियां जान।"

विक्रम और चार सीढ़ी ऊपर चढ़ता है। तब तीसरी पुतली पूछती है—

"और तीसरी कौन हैं इन चारों पर चार,
वो भी तुमको याद हैं, अय मेरे सरकार।"

विक्रम उत्तर देता है—

"धीरज है, संतोष है, साहस है, सरताज,
चौथी दृढ़ता है जिसे जानूं सुख का साज।"

तब जाकर राजा सिंहासन पर बैठता है। ये तीनों पुतलियां तीन पुतली-खचित स्तम्भो के पीछे छुपी रहती है। जैसे-जैसे राजा ऊपर चढ़ता है एक-एक स्तम्भ गिरता है और पीछे से पुतलियां दिखाई देती हैं।

एक अन्य दृश्य प्रथम अंक का छठा दिखाव है जिसमें नदी के किनारे महादेव का मंदिर है। इस दृश्य में राजरतन और चमन नदी में पत्थर पर पीट-पीट कर कपड़े धोते हुए दिखाये गये है। बहती नदी का पानी दिखाना रंगमंच पर चमत्कार का ही प्रभाव था।

लेखक की शिल्पविधि तो तत्कालीन नाटको के जैसी ही है, परन्तु कथा-वस्तु बड़ी शिथिल और बहुत ही मध्यमकोटि के हास्य से युक्त है। हास्योक्तियों में शिष्टता की पुट कम है, फूहड़पन ही अधिक दिखाई देता है।

'तालिब' का यह नाटक उनकी उत्कृष्ट रचनाओं के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

निगाहे ग़फ़लत उर्फ़ भूल में भूल, काँटों में फूल :

'तालिब' ने यह नाटक विक्टोरिया नाटक मंडली के लिए लिखा था। इसमें चार बाब (अंक) है, मुख-पृष्ठ पर लिखा है—

"जुनून कहता है जिसको आलम, उसी में है जो उतावला है
किसी का क्या खूब कौल है यह 'उतावला है सो बावला है।"

उपरोक्त शेर नाटक के कथानक पर पूरा लागू होता है। नाज़िम नाम का एक किसान, शातिर नामक एक धूर्त के छलावे में आकर, अपनी सच्चरित्र पत्नी नरगिस के विषय मे, यह धारणा बना लेता है कि वह कुलटा है और किसी दूसरे पुरुष पर आसक्त है। अतः बहुत प्यार करने पर भी वह अपने उतावलेपन में उस पर अनेकों लांछन लगाता है और अंत मे अपने छोटे पुत्र काज़िम तथा पत्नी को छोड़कर कहीं चला जाता है। माँ-बेटे बड़ी कठिनाई में अपने दिन व्यतीत करते हैं। नाज़िम का चचा सलीम और उसकी पत्नी जीनत दोनों की बड़ी सहायता करते हैं। नरगिस दूसरों के कपड़े सी-सी कर अपना जैसे-तैसे गुज़ारा करती है। शातिर दूर से नाज़िम को दिखाता है कि एक औरत किस प्रकार एक पुरुष से प्रेम प्रगट कर रही है। वास्तव में यह स्त्री नरगिस की सौतेली बहिन सम्बुल है और पुरुष उसी का पति मसरूर है जो बड़ा ही दुश्चरित्र व्यक्ति है। सम्बुल की शक्ल नरगिस से बहुत कुछ मिलती है और चूँकि नाज़िम केवल उसकी पीठ ही देखता है अतएव उसे शातिर की बातों पर विश्वास हो जाता है तथा वह उसके जाल मे फँस जाता है। शातिर और औरंग अपनी-अपनी ठग-विद्या से पर्याप्त सम्पत्ति एकत्रित कर लेते हैं। परन्तु अन्त में पकड़े जाते हैं। नोटों के बंडलों से पता चलता है कि सारा माल फ़ैयाज़ ने अपनी दोनों लड़कियों के नाम से बाँट रखा था। अतएव वह माल दोनों को मिल जाता है। मगर इस बीच में मसरूर भी सम्बुल को छोड़ देता है और किसी अन्य स्त्री से प्रेम करने लगता है। विपदा की मारी सम्बुल उसी नदी में डूबने के लिए आती है जिसमें नाज़िम अपनी जान देकर नरगिस की जुदाई के सदमे से छूटना चाहता है। नाज़िम अपनी साली सम्बुल को बचा लेता है। उसके होश आने पर सारी कलई खुलती है और कथा-वस्तु स्पष्ट हो जाती है। बहन बहन से मिलती है और पत्नी अपने पति से। शहर-कोतवाल शेरखाँ और चचा सलीम सहायक होते हैं। शातिर और औरंग गिरफ्तार होकर अपने किए की सज़ा पाते हैं।

इस प्रकार लापरवाही की नज़र अर्थात् "निगाहे गफ़लत" एक कैसा अजीबो-गरीब दृश्य उपस्थित कर देती है कि दो-दो जानें अपनी जान देकर मुसीबत से छुटकारा पाना चाहती है परन्तु होता वही है जो 'मंजूरे खुदा होता है'।

'तालिब' ने नाटक की कथा-वस्तु समाज में होने वाली प्रति दिन की घटनाओं से ली है और अपनी कल्पना से उसे चमत्कारिक रंग दिया है। निश्चय ही स्त्री-जाति की हीनता और पुरुषों की कामुकता पर एक व्यंग्य है। नाटक की भाषा हिन्दुस्तानी है। अधिकांश में नाटक पद्य-बद्ध है। कविता उच्चकोटि की नहीं है। लेखक ने ऐसे चरित्र भी नही लिये जिनके चरित्र-चित्रण में संवेदनाओं का प्रकाशन बहुत आवश्यक होता। चलाऊ मध्यमकोटि का कथानक है जिसे देखकर अठन्नी वाले खुश हो जाते है। एक संवाद देखिए—

"शातिर — क्या कहिये बात कहने के क़ाबिल नहीं जनाब ?
हैरत है ! जागता हूँ कि मैं देखता हूँ ख्वाब ?
शुबह था छः महीने से जिस बात का मुझे,
वो आज साफ़ साफ़ नजर आ गया मुझे,
मैं किस जबान से कहूँ नरगिस ने क्या किया ?
जिस पर भलाई खत्म थी उसने बुरा किया।

नाजिम — दोस्त वह शख्स है जो दोस्त का आईना हो
साफ़ पानी की तरह साफ़ सदा सीना हो।
खैरख्वाह और वफ़ादारी का गंजीना हो
दिल से बस दूर करे दिल में अगर कीना हो।
छः महीने से गुमां तूने जो था यार ! किया,
दोस्त कैसा है कि मुझको न खबरदार किया।

शातिर — आदमी वह है कि जो सोच के हर काम करे
और हर लहजा हरेक बात का अंजाम करे
किस तरह दोस्त को अपने कोई बदनाम करे
वह करे, अक़्ल से जिसको कि खुदा खाम करे।
जब तलक आँख से देखूँ न भला ऐब कोई
किस तरह मैं कहूँ, मालूम नहीं गैब कोई।"

—२. २. पृ० २६-२७

नाटक की घटनाओं का स्थल मिश्र देश है।

निगाहे गफलत उर्फ़ भूल में भूल, कांटों में फूल :

'तालिब' ने यह नाटक विक्टोरिया नाटक मंडली के लिए लिखा चार बाब (अंक) हैं, मुख-पृष्ठ पर लिखा है—

> "जुनून कहता है जिसको आलम, उसी में है जो उतार
> किसी का क्या खूब कौल है यह 'उतावला है सो बावला

उपरोक्त शेर नाटक के कथानक पर पूरा लागू होता है। ना एक किसान, शातिर नामक एक धूर्त के छलावे में आकर, अपनी नरगिस के विषय में, यह धारणा बना लेता है कि वह कुल्टा दूसरे पुरुष पर आसक्त है। अतः बहुत प्यार करने पर भी वह अ में उस पर अनेकों लांछन लगाता है और अंत में अपने छोटे पु पत्नी को छोड़कर कहीं चला जाता है। माँ-बेटे बड़ी कठिनाई व्यतीत करते हैं। नाज़िम का चचा सलीम और उसकी पत्नी बड़ी सहायता करते हैं। नरगिस दूसरों के कपड़े सी-सी कर गुज़ारा करती है। शातिर दूर से नाज़िम को दिखाता है कि प्रकार एक पुरुष से प्रेम प्रगट कर रही है। वास्तव में यह सौतेली बहिन सम्बुल है और पुरुष उसी का पति मसरूर दुश्चरित्र व्यक्ति है। सम्बुल की शक्ल नरगिस से बहुत कुछ मि नाज़िम केवल उसकी पीठ ही देखता है अतएव उसे शाति विश्वास हो जाता है तथा वह उसके जाल में फँस जाता है। अपनी-अपनी ठग-विद्या से पर्याप्त सम्पत्ति एकत्रित कर लेते पकड़े जाते हैं। नोटों के बंडलों से पता चलता है कि सा अपनी दोनों लड़कियों के नाम से बाँट रखा था। अतएव मिल जाता है। मगर इस बीच में मसरूर भी सम्बुल क किसी अन्य स्त्री से प्रेम करने लगता है। विपदा की मारी डूबने के लिए आती है जिसमें नाज़िम अपनी जान देक के सदमे से छूटना चाहता है। नाज़िम अपनी साली सम्ब उसके होश आने पर सारी कलई खुलती है और कथा- है। बहन बहन से मिलती है और पत्नी अपने पति से। और चचा सलीम सहायक होते हैं। शातिर और औरंग किए की सज़ा पाते हैं।

कथावस्तु :

नाटक की कथावस्तु प्रसिद्ध रामचरित है। उसका आरम्भ मिथिलापुरी में सीता-स्वयंवर से होता है और अन्त रावण की मृत्यु के पश्चात् राम-सीता मिलन तथा अयोध्या चलने की तैयारी पर। इस बीच के समय की प्रायः सभी मुख्य घटनायें नाटक मे आ गई हैं।

पात्र :

सभी प्रसिद्ध पात्रों का समावेश है। मंथरा के पति भूषण एक ऐसे पात्र हैं जो लेखक की कल्पना-शक्ति की उपज है। इसकी सृष्टि के दो कारण प्रतीत होते है। प्रथम कारण यह है कि इस पात्र को लाकर लेखक ने नाटक मे हास्य-रस की योजना बनाई है जो आवश्यक है। दूसरा कारण यह भी है कि रामचन्द्र के वनवास और भरत के संन्यास की अवस्था की घटनाओ का तारतम्य मिलाने के लिए लेखक ने भूषण को एक कड़ी के रूप मे रखा है। वह राम का हाल भरत को और भरत का राम को लाकर और ले जाकर सुनाता है। 'तालिब' की यह नई सूझ है। सभी पात्रो का चरित्र-चित्रण उनकी मनोदशा के अनुकूल करने का प्रयत्न किया गया है परन्तु राम और सीता जब उर्दू का प्रयोग अपने संवादों में करते हैं तो बडा अटपटा सा लगता है। मालूम होता है सती साध्वी सीता अपने पति राम से नही वरन् कोई बेगम अपने शौहर से बात कर रही है। प्रथम एक्ट के तीसरे दृश्य को देखिये—

सीता— दिखलाव अपना चेहरये ताबाँ कभी कभी
जर्रे को कर दो मेहरे दरख्शां कभी कभी ॥

राम— पहलू में जब रहो तुम अय बिलकीस रू मेरे
हो जाऊँ मैं भी रश्के-सुलेमां कभी कभी ॥

सीता— जो जाते हैं हम अपने मसीहा को देखके
मुश्किल हमारी होती है आसां कभी कभी ॥

राम— उल्फ़त ने यह कमाल दिखाया जवाल में
रहता हूँ ख्वाब में भी तुम्हारे खयाल में ॥

सीता— तुम मिल गये जो मुझको तो गोया खुदा मिला
जाहिर है उसका नूर तुम्हारे जमाल में ॥

राम— बाद अज फ़ना भी 'तालिब' जाना रहेंगे हम,
आ जाए सूये गोरे ग़रीबां कभी कभी ।

आदि, आदि।

लयलो-निहार उर्फ़ तक़दीर का खेल :

मेरे पास इस नाटक का जो संस्करण है वह खुरशेदजी वालीवाला, मालिक विक्टोरिया मंडली, ने सन् १९०४ ई० में प्रकाशित किया था। इसमें आवृति का उल्लेख नहीं है। डा० नामी ने इस नाटक का नाम "लालो निहार उर्फ़ खूबिये तक़दीर" दिया है जिससे पता चलता है कि उन्होंने जो संस्करण देखा है वह किसी निजी प्रकाशक का है। उसे इतना प्रामाणिक नहीं माना जा सकता जितना अधिकृत रूप से वालीवाला द्वारा प्रकाशित संस्करण।

नाटक का मूलस्रोत लार्ड लिटन का प्रसिद्ध उपन्यास 'नाइट एण्ड मार्निंग' है। उसी के कथानक को घटा-बढ़ा कर 'लयलो निहार' की रचना हुई है। मुख-पृष्ठ पर एक बैत लिखी गई है—

"फ़रिश्ते भी न जब छूटे जहाँ में दामे इस्याँसे
खता ही से मुरक्कब है, खता हो क्यूँ न इंसा से"

(जब फ़रिश्ते भी पाप के जाल से नहीं छूट सके तो अपराधों से बना मनुष्य अपराध से कैसे मुक्त हो सकता है?)

लेखक ने इसी कथ्य को नाटक का मुख्य विषय बनाया है। जालसाज़ और धोखेबाज़ पात्रों को दण्ड दिलाकर वास्तविक सत्य को प्रकट किया है। फीरोज़ और दिल अफरोज़ तथा अशरफ और नस्तरन परस्पर प्रेम-बंधन में बँधते हैं। विपदाओं के हटने के पश्चात् उन्हें शान्ति मिलती है।

रामलीला :[७८]

'तालिब' ने यह नाटक विक्टोरिया नाटक मंडली के लिए लिखा था। उन्हीं के शब्दों में यह नाटक "हिंदू क़िस्सा होने के सबब से हिंदी भाषा में तस्नीफ़ किया।" इस नाटक में चार बाब हैं और इसकी रचना गद्य-पद्य में हुई है। लेखक ने मुखपृष्ठ पर जो शेर लिखा है वही उसका उद्देश्य प्रतीत होता है— लेखक कहता है—

"अपने पिन्दार[७९] से मग़रूर[८०] को क्या मिलता है?
तर्क कर दे जो खुदी उसको खुदा मिलता है।"

---

७८. खुरशेदजी मेहरवानजी वालीवाला द्वारा प्रकाशित—मुद्रक—दी ज० नं० पेटिट पारसी आरफ़नेज कप्टन प्रिंटिंग प्रेस, मुम्बई।

७९. गर्व या कल्पना।

८०. अहंकारी।

कथावस्तु :

नाटक की कथावस्तु प्रसिद्ध रामचरित है। उसका आरम्भ मिथिलापुरी में सीता-स्वयंवर से होता है और अन्त रावण की मृत्यु के पश्चात् राम-सीता मिलन तथा अयोध्या चलने की तैयारी पर। इस बीच के समय की प्रायः सभी मुख्य घटनायें नाटक में आ गई है।

पात्र :

सभी प्रसिद्ध पात्रों का समावेश है। मंथरा के पति मूपण एक ऐसे पात्र हैं जो लेखक की कल्पना-शक्ति की उपज हैं। इसकी सृष्टि के दो कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम कारण यह है कि इस पात्र को लाकर लेखक ने नाटक में हास्य-रस की योजना बनाई है जो आवश्यक है। दूसरा कारण यह भी है कि रामचन्द्र के वनवास और भरत के संन्यास की अवस्था की घटनाओं का तारतम्य मिलाने के लिए लेखक ने मूपण को एक कड़ी के रूप में रखा है। वह राम का हाल भरत को और भरत का राम को लाकर और ले जाकर सुनाता है। 'तालिब' की यह नई सूझ है। सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण उनकी मनोदशा के अनुकूल करने का प्रयत्न किया गया है परन्तु राम और सीता जब उर्दू का प्रयोग अपने संवादों में करते है तो बड़ा अटपटा सा लगता है। मालूम होता है सती साध्वी सीता अपने पति राम से नही वरन् कोई बेगम अपने शौहर से बात कर रही है। प्रथम एक्ट के तीसरे दृश्य को देखिये—

सीता— दिखलाव अपना चेहरये ताबां कभी कभी
जर्रे को कर दो मेहरे दरख्शां कभी कभी ॥

राम— पहलू में जब रहो तुम अय बिलक़ीस रू मेरे
हो जाऊँ मैं भी रश्के-सुलेमां कभी कभी ॥

सीता— जी जाते हैं हम अपने मसीहा को देखके
मुश्किल हमारी होती है आसां कभी कभी ॥

राम— उल्फत ने वह कमाल दिखाया जवाल में
रहता हूँ ख्वाब में भी तुम्हारे खयाल में ॥

सीता— तुम मिल गये जो मुझको तो गोया खुदा मिला
जाहिर है उसका नूर तुम्हारे जमाल में ॥

राम— बाद अज फ़ना भी 'तालिब' जाना रहेंगे हम,
आ जाए सूये गोरे ग़रीबां कभी कभो।

आदि, आदि।

मन राहिल की ओर खिंच जाता है। राहिल एक यहूदी सौदागर अलीएज़ार की पाली-पोसी लड़की है। उसने राहिल की जलती आग से बचाकर रक्षा की थी और इसलिए वह उसी की पुत्री मानी जाती थी। वास्तव में राहिल का नाम पालीना था और वह आर्डिया नगर के धार्मिक पेशवा पान्टीफ ब्रूटस की लड़की थी। अतएव यहूदन न होकर रोमन थी।

मार्कस राहिल को देखकर उस पर न्योछावर हो जाता है और किसी न किसी प्रकार उसे उड़ा ले जाने का मार्ग निकालता है । तुर्कमान नसीरबे इस काम में सहायक होता है। राहिल का पोषक पिता नहीं चाहता कि वह मार्कस से बातचीत करे परन्तु काम के बाण किसे बिद्ध नही करते । परिणाम यह होता है कि मार्कस अपनी प्रेमिका डेसिया से स्पष्ट कह देता है—

"नाहि जान जलाना, जानो मेरे लिए—
दिल का तुम्हें क्या भेद बतायें
दिल न लगाना, जानो मेरे लिए।

क्योंकि—

अब दिल कहीं लगाने के क़ाबिल नहीं रहा,
जिस दिल पै मुझको नाज़ था, वह दिल नहीं रहा।"

सारा नाटक इसी प्रकार की बेवफाइयों से भरा है।

अन्त में मार्कस और राहिल का विवाह हो जाता है । डेसिया स्वयं अपना अधिकार छोड़ देती है और राहिल की वास्तविकता का रहस्य खुल जाता है। नाटक मे गद्य और पद्य दोनो है।

मालूम नही तालिब ने यह अभारतीय कथ्य अपने नाटक का विषय क्यों बनाया ? संभव है इसकी कथा-वस्तु किसी अंगरेज़ी नाटक या उपन्यास पर आधारित हो।

हरिश्चन्द्र :

सत्य हरिश्चन्द्र का आख्यान बड़ा प्रचलित है। हिन्दुओ को आकर्षित करने के लिए विक्टोरिया मंडली ने यह नाटक तालिब से लिखवाया था। इसके पहिले उदयराम रणछोड़ भाई का गुजराती में लिखा हरिश्चन्द्र नाटक उत्तेजक नाटक मंडली मे बड़ी सफलता प्राप्त कर चुका था।

मेरे पास हरिश्चन्द्र नाटक की जो प्रति है उस पर 'पारसी अमेच्योर ड्रामेटिक सोसाइटी' का मोनोग्राम छपा है। उस पर यह भी लिखा है कि प्रति 'फार प्राइवेट यूज़' है और वह 'रिहर्सल कापी' है जो बिक्री के लिए नहीं है। परन्तु

नाटक उपदेशप्रद है और आश्चर्यजनक दृश्यों से युक्त होने के कारण दर्शकों को अतिप्रिय है।

दिलेर दिलशेर :

नाटक का नामकरण उसके वीर नायक पर हुआ है। दिलशेर एक लुटेरा, ठग, धूर्त और जालसाज व्यक्ति है जो अपने छल-कपट से खूब मौज उड़ाता है और अंत में कोतवाल द्वारा पकड़ लिये जाने पर, हिकमत करके जेब में से जहर की शीशी निकाल कर उसे पी लेता है और इस प्रकार जान दे देता है। एक सौदागर मुशर्रफ की भतीजी दिलाराम उससे प्रेम करती है और उसके दुश्चरित्र को जानते हुए भी उसके प्रेमपाश में फँस जाती है। कोतवाल द्वारा दिलशेर के पकड़ लिये जाने पर वह भी सदमा खाकर दम तोड़ देती है। दोनों का अंत एक ही समय और स्थान पर होता है।

नाटक एक अजीब ट्रेजिडी है। चोरों और लुटेरों द्वारा मुसाफिरों और अमीरों की हत्या तथा अपनी बीवी अल्लामा द्वारा बहराम ठग की हत्या जैसे दृश्यों की उसमें बहुतायत है। सारा नाटक धोखे और चालबाजी के जाल में जकड़ा हुआ है। अधिकांश पद्यबद्ध है, इससे मालूम होता है कि 'तालिब' ने इसे उस समय लिखा था जब पारसी रंगमंच पर 'ओपेरा' का बोलबाला था।[८१]

करिश्मये क़ुदरत उर्फ अपनी या पराई :

इस नाटक की जो प्रति मेरे पास है उसका मुखपृष्ठ फटा हुआ है अतएव प्रकाशक का नाम एवं प्रकाशन-काल का पता नहीं चलता। परन्तु बाह्य रूप से यह भी बालीवाला द्वारा प्रकाशित नाटक ही दिखाई पड़ता है। डा० नामी ने इसका नाम 'करिश्मये मुहब्बत' दिया है। यह नामकरण भी इसका प्रमाण है कि भिन्न-भिन्न प्रकाशक कुछ परिवर्तन करके ही प्रसिद्ध नाटकों को अपना बनाकर छाप दिया करते थे।

नाटक की घटनाओं का स्थान रोम का एक नगर आर्डिया है जिसके राजा का नाम टाइटस है और जो बड़ा क्रूर बताया गया है। नाटक में तीन जातियों के पात्र सम्मिलित हैं—रोमन, यहूदी और तुर्कमान।

कथानक :

टाइटस का पुत्र मार्कस पहले अपनी चचेरी बहन डेसिया के प्रति आकर्षित होता है और दोनों का विवाह निश्चित हो जाता है परन्तु बाद को उसका

८१. बालीवाला द्वारा सन् १९०१ में, जामे जमशेद प्रेस में छपवाकर, प्रकाशित नाटक के आधार पर।

मन राहिल की ओर खिंच जाता है। राहिल एक यहूदी सौदागर अलीएजार की पाली-पोसी लड़की है। उसने राहिल की जलती आग से बचाकर रक्षा की थी और इसलिए वह उसी की पुत्री मानी जाती थी। वास्तव में राहिल का नाम पालीना था और वह आर्डिया नगर के धार्मिक पेशवा पान्टीफ ब्रूटस की लड़की थी। अतएव यहूदन न होकर रोमन थी।

मार्कस राहिल को देखकर उस पर न्योछावर हो जाता है और किसी न किसी प्रकार उसे उड़ा ले जाने का मार्ग निकालता है । तुर्कमान नसीरखे इस काम में सहायक होता है। राहिल का पोषक पिता नही चाहता कि वह मार्कस से वातचीत करे परन्तु काम के वाण किसे विद्ध नही करते । परिणाम यह होता है कि मार्कस अपनी प्रेमिका डेसिया से स्पष्ट कह देता है—

"नहि जान जलाना, जानी मेरे लिए—
दिल का तुम्हें क्या भेद बतायें
दिल न लगाना, जानी मेरे लिए ।

क्योंकि—

अब दिल कहीं लगाने के क़ाबिल नहीं रहा,
जिस दिल पै मुझको नाज़ था, वह दिल नहीं रहा ।"

सारा नाटक इसी प्रकार की बेवफाइयो से भरा है।

अन्त मे मार्कस और राहिल का विवाह हो जाता है । डेसिया स्वयं अपना अधिकार छोड़ देती है और राहिल की वास्तविकता का रहस्य खुल जाता है। नाटक मे गद्य और पद्य दोनो हैं।

मालूम नही तालिव ने यह अभारतीय कथ्य अपने नाटक का विषय क्यों बनाया ? संभव है इसकी कथा-वस्तु किसी अंगरेज़ी नाटक या उपन्यास पर आधारित हो।

हरिश्चन्द्र :

सत्य हरिश्चन्द्र का आख्यान बड़ा प्रचलित है। हिन्दुओं को आकर्षित करने के लिए विक्टोरिया मंडली ने यह नाटक तालिब से लिखवाया था। इसके पहिले उदयराम रणछोड़ भाई का गुजराती मे लिखा हरिश्चन्द्र नाटक उत्तेजक नाटक मंडली में बड़ी सफलता प्राप्त कर चुका था।

मेरे पास हरिश्चन्द्र नाटक की जो प्रति है उस पर 'पारसी अमेच्योर ड्रामेटिक सोसाइटी' का मोनोग्राम छपा है। उस पर यह भी लिखा है कि प्रति 'फार प्राइवेट यूज़' है और वह 'रिहर्सल कापी' है जो बिक्री के लिए नही है। परन्तु

इसका मुद्रण जामे जमशेद प्रेस में ही हुआ है जहाँ से विक्टोरिया मंडली के प्राय: अधिकांश नाटक छपे थे। अतएव यह प्रामाणिक प्रति ही मानी जाएगी ।

हरिश्चन्द्र नाटक की कथावस्तु में कोई नवीनता नहीं है । इन्द्र की राज-सभा में वशिष्ठ और विश्वामित्र के बीच विवाद मे हरिश्चन्द्र की सत्यता की परीक्षा का प्रस्ताव स्वीकृत होता है और विश्वामित्र ने जो-जो सकट हरिश्चन्द्र और उसके कुटुम्ब पर डाले उन सब कथाओ और घटनाओ का समावेश तालिब ने अपने नाटक में किया है । इस योजना मे विश्वामित्र का सबसे बड़ा सहायक उनका शिष्य नक्षत्र है जो हास्य की उत्पत्ति मे भी प्रधान पात्र है । वैसे विदूषक की भूमिका पंडित मंगल मिश्र की है जो कार्य-भीरु और वाक्य-वीर है ।

हरिश्चन्द्र नाटक की विशेषता उसकी हिन्दी भाषा है। तालिब प्रधानतया उर्दू लिखने के अभ्यस्त थे परन्तु इस नाटक मे उन्होंने बता दिया कि बनारस का रहने वाला कायस्थ हिन्दी भी उसी सरलता से लिख सकता है जिस सुगमता से वह उर्दू मे लेखनी चला सकता है ।

हरिश्चन्द्र के आख्यान को लेकर हिन्दी मे कई नाटक लिखे गये है। भारतेन्दु का 'सत्य हरिश्चन्द्र' प्रसिद्ध है। धार्मिक भावनाओ को उत्तेजित करने के लिए यह कथ्य बड़ा आकर्षक है। तालिब को इसे लिखने में पर्याप्त सफलता मिली है।

गोपीचन्द :

इस नाटक के तीन संस्करण मेरे पास हैं । सबसे प्राचीन सन् १८९३ का छपा और शेष दो क्रमश. १९०१ तथा १९०४ मे प्रकाशित हुए । प्रकाशक तीनो के विक्टोरिया गिरोह मडली के मालिक है।

तालिब ने यह नाटक नौशेरवान जी मेहरबानजी खाँ साहब के लिखे हुए नाटक से "बारे दीगर, नये तर्ज पर... तस्नीफ किया।" इसमे बगाल के राजा गोपीचंद के योगी होकर अपनी काया को अमर बनाने की कथा है । यह कार्य जलंधरनाथ और कानिफ योगी की सहायता से होता है। गोपीचन्द की माता मैनावती इस कार्य मे बड़ी सहायक होती है।

नाटक की कथा प्रसिद्ध लोक-साहित्य के आधार पर चली है । उसमे अनेको अद्‌भुत दृश्यो और अप्राकृतिक घटनाओ का समावेश किया गया है जो एक ओर तो योग और योगियों की अद्‌भुत शक्ति की परिचायक हैं और दूसरी ओर चमत्कारी दृश्यों को दिखाकर दर्शक-मंडली की अद्‌भुत देखने की पिपासा को शान्त करने वाली हैं।

लोटन के चरित्र में लेखक ने हास्य की पूर्ति करने का प्रयास किया है। एक दृश्य मे लोटन एक जोगिन से कोड़े की मार खाता है और नाचता है। एक बार जब वालीवाला स्वयं लोटन की भूमिका कर रहे थे तो नाचते-नाचते उनके पैर मे एक लोहे की कील चुमती चली गई परन्तु वालीवाला ने अपना नृत्य जारी रखा और उफ़ तक न की। बाद में उनके पैर मे बहुत दिनो तक पीडा रही।

मैरी फेंटन के लिए भी प्रसिद्ध है कि जोगन की भूमिका के लिए उनकी नई और विशिष्ट पोशाक बनवाई गई थी जिसमे उनका रूप बड़ा आकर्षक बन गया था।

नाटक की भाषा, योगियो के प्रति जनता, विशेषकर हिन्दू जनता की श्रद्धा, अद्‌भुत दृश्य, आकर्षक अभिनेता आदि सभी तत्वो ने गोपीचन्द को बडा लोक-प्रिय बना दिया था।

तालिब की कवित्व-शक्ति का पता हरिश्चन्द्र और गोपीचन्द नाटको से ही अधिक चलता है।

'बेताब', नारायण प्रसाद

'बेताब' का जन्म सन् १८७२ ई० में बुलंदशहर (उत्तरप्रदेश) के औरंगाबाद नामक कस्बे मे हुआ था। पिता का नाम ढुल्लाराय था। जाति के ब्रह्मभट्ट थे। कुल बड़ा निर्धन था। आरम्भ में एक हलवाई की दूकान पर नौकरी करते थे। बाद मे प्रेस में कम्पोज़ीटर हो गए। प्रेस देहली में था। अतएव एक रोज वहाँ जमादार साहिब की नाटक मंडली आई और कोतवाली के पास रामा थियेटर में नाटक दिखाने का उपक्रम किया। उसी सम्बन्ध मे विज्ञापन छपाने प्रेस में मडली के व्यवस्थापक गए। वहाँ 'बेताब' का परिचय मालिक-मडली से हो गया और ड्रामा देखने का मुफ्त आमंत्रण भी मिल गया। बस 'बेताब' को नाटक का चस्का लगा। कुछ दिनों बाद 'न्यू आल्फ्रेड नाटक मंडली' देहली पहुँची और 'मुराद' के नाटक 'खुर्शीदे ज़रनिगार' का विज्ञापन छपाने का भार 'बेताब' वाले प्रेस को दिया। विज्ञापन के एक मिसरे को बेताब ने ज़रा बदल दिया जिसपर नाटककार की उनसे बहस हो गई। आखिर नाटककार ने अपनी ग़लती मान ली। बेताब का रोब गालिब हो गया। कुछ संगीत का ज्ञान, कुछ कविता की रुचि, बेताब चमकने लगे।

बेताब का प्रथम नाटक 'हुस्ने-फ़रंग' था। उसके बाद 'कत्ले नज़ीर' लिखा। नज़ीर नाम की वेश्या का उन्ही दिनों कत्ल हुआ था। गरम-गरम प्रसंग था। मंडली को अच्छी आय हुई। लाहौर में उसकी धूम मच गई। जमादार की थियेट्रिकल

कम्पनी के पैर जम गए। बेताब का तीसरा नाटक 'कृष्णजन्म' और चौथा 'मयूर-ध्वज' असफल रहे।

अब बेताब 'पारसी थियेट्रिकल कम्पनी आफ बाम्बे' में आए जो मागी-दारो की कम्पनी कहलाती थी। इसके मालिक सेठ फरामजी अप्पू, सेठ रतनजी अप्पू, सेठ दादाभाई मिस्तरी और सेठ बर्जो थे। डायरेक्टर अमृतलाल केशवलाल नायक थे। इसके बाद 'कसौटी' और 'मीठा जहर' तथा 'जहरी साँप' लिखे। अमृतलाल की स्मृति मे एक नाटक 'अमृत' भी लिखा। इसके बाद पारसी थियेट्रि-कल से छुट्टी पा ली।

सन् १९०९ मे बेताब कावसजी खटाऊ की मडली आलफ्रेड के साथ कल-कत्ते गये। वहाँ से क्वेटा पहुँचे और 'गोरख-धधा' लिखा जिसका आधार शेक्स-पियर का 'कामेडी आफ एरर्स' था।

२९ जनवरी सन् १९१३ को देहली मे 'महाभारत' का अभिनय हुआ। मंडली को खासी आमदनी हुई। इस नाटक का प्रभाव सबसे बडा यह हुआ कि पारसी रगमंच पर जो उर्दू भाषा का बोलबाला था वह हवा हो गया। मंडली-मालिको ने दर्शको की नाडी को पहचाना और हिन्दी मे नाटक लिखवाने तथा खेलने आरम्भ कर दिए। तीन बरस बाद १६ अगस्त सन् १९१६ को लाहौर मे बेताब की 'रामायण' का अभिनय किया गया। इसी के बाद कावसजी खटाऊ की मृत्यु हुई और बेताब भी मडली छोडकर घर आ बैठे। कुछ दिनो बाद आलफ्रेड मंडली के मालिक जहाँगीर खटाऊ ने पुन बेताब को बुला लिया और ५००) मासिक वेतन कर दिया। इस अन्तर मे उन्होने 'पत्नी-प्रताप' नाटक लिखा। इस खेल के पश्चात् बेताब ७५०) मासिक पर माडर्न थियेटर्स कलकत्ते मे चले गए। उनके अनुबंध मे 'गणेशजन्म' लिखा गया।

३० जून १९३१ ई० को बेताब की भेंट सेठ चन्दूलाल जे० शाह और सेठ दयाराम जे० शाह—मालिक रणजीत फिल्म कंपनी—से हुई। और उनके अनु-बँध पर 'देवी देवयानी' नामक फिल्म लिखी। अब बेताब फिल्मी दुनिया मे आ गये।

१५ सितम्बर सन् १९४५ ई० मे नारायण प्रसाद 'बेताब' की मृत्यु हो गई। बेताबजी का यह दावा गलत है कि उनका 'महाभारत' नाटक ही हिन्दी का पहला नाटक था। उनसे पहिले 'तालिब', 'हरिश्चन्द्र' और 'गोपीचन्द' हिन्दी में तथा 'रामलीला' हिन्दी-उर्दू मे लिख चुके थे।

बेताब के सम्बन्ध में उनकी पुत्री श्री विद्यावती ने अपना शोध-प्रबंध बम्बई विश्वविद्यालय मे पी-एच० डी० के लिए प्रस्तुत कर डिग्री प्राप्त कर ली है। अत-एव उनके सम्बन्ध में विशेष लिखना केवल मात्र पिष्टपेषण होगा।

'हश्र', आग़ा मोहम्मद शाह काश्मीरी

'हश्र' का जन्म १ अप्रैल सन् १८७९ को बनारस में हुआ था। यद्यपि वे काश्मीरी थे परन्तु उनके मामा शाल-दुशालों का व्यापार करने भारत में आए थे और बनारस में बस गये थे।

हश्र का पहला नाटक 'आफ़तावे मुहब्बत' था जो सन् १८९७ ई० में प्रकाशित हुआ। उसके बाद वह बम्बई जाकर कावसजी पालजी खटाऊ की आल्फ्रेड मंडली में नौकर हो गए। इस मंडली के लिए उन्होंने 'मुरीदे-शक', 'मारे-आस्तीन' और 'असीरे हिर्स' लिखा। डा० नामी का कहना है कि हैमलेट को आधा लिख था कि नौकरी छोड़ दी। उसे अहसन ने 'ख़ूने नाहक़' लिखकर पूरा किया। परन्तु यह बात समझ में नहीं आती क्योंकि अहसन ने या अन्य किसी ने इस तथ्य पर प्रकाश नहीं डाला। 'ख़ूने नाहक़' एक स्वतंत्र और सम्पूर्ण ड्रामा है, वह अधूरा नहीं है। यह अवश्य है कि कुछ लोग 'ख़ूने नाहक़' का नाम 'मारे-आस्तीन' भी लिखते हैं।

१ जून सन् १९०१ में कावसजी खटाऊ ने 'मारे-आस्तीन' नामना उर्दू खेलनो सार तथा अे खेलमा गवाता गायणो' प्रकाशित किया था। उससे पता चलता है कि 'मारे-आस्तीन' हश्र का लिखा हुआ नाटक है। उसका जो सार उक्त पुस्तक में दिया है उसको देखने से 'हैमलेट' का कोई प्रभाव नाटक के कथ्य पर दिखाई नहीं देता। कथा-वस्तु नितान्त स्वतंत्र मालूम होती है। अतएव हैमलेट का वह भाग जो हश्र द्वारा निर्मित बताया गया है कहीं और ही होगा या संभव है न भी हो और एक किंवदन्ती के रूप में यह प्रवाद प्रचलित हो गया हो।

आल्फ्रेड मंडली छोड़कर हश्र किसी छोटी मंडली से संबंधित हो गए। इसके लिए उन्होंने 'मीठी छुरी या दुरंगी दुनिया' और 'दामे हुस्न' नाम के नाटक लिखे। परन्तु यहाँ उनकी पटी नहीं और वह वापिस खटाऊ की मंडली में आ गये। अब की बार उन्होंने 'शहीदे-नाज़' और 'अछूता दामन' लिखे । फिर मंडली छोड़ दी और न्यू आल्फ्रेड में सोराबजी ओग्रा के पास चले गये। यहाँ उन्होंने 'ख़्वाबे हस्ती' और 'ख़ूबसूरत बला' का निर्माण किया।

अब हश्र के मस्तिष्क में अपनी मंडली बनाने का विचार उठा और 'इंडियन शेक्सपियर थियेट्रिकल कम्पनी' बना डाली। कलकत्ते में इस मंडली ने कई नाटकों का अभिनय किया। इलाहाबाद में आने पर यह मंडली बंद हो गई। हश्र 'मेडन थियेटर्स' में नौकर हो गये। इसी में उनके प्रसिद्ध नाटक 'मधुरमुरली', 'भगीरथ गंगा', 'हिन्दुस्तान', 'तुर्की हूर' और 'आँख का नशा' लिखे गये।

आगा हश्र की यह विशेषता थी कि हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। उनके नाटकों को पढ़कर कोई भी पाठक भाषा की अशुद्धि सुगमता से नहीं निकाल सकता। हिन्दू कथानकों में उनकी गति वैसी ही थी जैसी मुसलमानी किस्सों में। सामाजिक और धार्मिक नाटक भी उन्होंने सफलतापूर्वक लिखे और ये सभी लोकप्रिय हुए। वास्तव में देखा जाय तो हश्र के कवि-हृदय को पहुँचने वाले कम लेखक हैं।

पारसी रंगमंच के उत्कृष्ट नाटककारों में 'तालिब', 'अहसन', 'बेताब' और 'हश्र' के नाम सुगमता से लिये जा सकते हैं। पं० राधेश्याम ने भी अनेकों नाटक लिखे परन्तु नाट्यकला का उत्कर्ष उनके 'अभिमन्यु' को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है।

२८ अप्रैल सन् १९३५ को लाहौर में हश्र का देहावसान हुआ।

आगा हश्र के नाटकत्व पर किसी महिला ने अपना शोधप्रबंध बम्बई विश्वविद्यालय में पी-एच० डी० के लिए प्रस्तुत किया है। अतएव उनके कृतित्व का अधिक विवेचन यहाँ वांछित नहीं है। हश्र और राधेश्याम के संबंध में जानकारी श्री पवनकुमार के शोध-प्रबंध 'पारसी रंगमंच' से भी मिल सकती है। पाकिस्तान से दो-तीन आलोचनात्मक पुस्तकें हश्र पर प्रकाशित हुई हैं। वे भी उनके सम्बन्ध में कुछ जानकारी देती है।

उर्दू ड्रामों के अन्य लेखक :

उर्दू नाटककारों की संख्या बहुत बड़ी है। उपरोक्त तालिका में केवल थोड़े लोकप्रिय और चोटी के लेखकों का विवरण दिया जा सका है। शेष लेखकों में उल्लेखनीय हैं—

१. 'आरजू', सैय्यद अनवर हुसैन लखनवी
२. 'जायक', मोहम्मद अबदुल अज़ीज़
३. 'शाद', अबदुल लतीफ
४. 'नाजां', गुलाम मुहीउद्दीन देहलवी
५. 'नश्तर', सैय्यद काजिम हुसैन रिजवी लखनवी
६. 'शैदा', पं० तुलसीदत्त आदि, आदि।

पं० राधेश्याम कथावाचक

पं० राधेश्याम बरेली के रहने वाले थे। आरम्भ में कथा कहकर आजीविका चलाते थे। इस कला में उन्हें पर्याप्त ख्याति और सम्पत्ति प्राप्त हुई। उनकी रामायण अत्यन्त लोकप्रिय रही और अब भी है।

पंडितजी ने अनेकों नाटक लिखे हैं। उनके सम्बन्ध में पवनकुमार जी ने अपने शोध-प्रबंध में पर्याप्त विवरण दिया है, अतएव यहाँ अधिक लिखना आवश्यक नहीं है। पंडितजी का विशेष सम्बन्ध नई आलफ्रेड नाटक मंडली से रहा। सूर्य-विजय नाटक मंडली में भी उनके एक-दो नाटक खेले गये।

अपनी पुस्तक 'मेरा नाटक-काल' में उन्होंने विशेष रूप से अपने नाटकों के सम्बन्ध में चर्चा की है।

'अहसन', मेहदी हसन

लखनऊ के रहने वाले थे। पिता फौज में नौकर थे। इनके नाना वैद्यक और कविता में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। आरम्भिक अध्ययन फ़ारसी और अरबी से हुआ था। कहते हैं कुछ-कुछ अंगरेजी का अभ्यास कर लिया था। संगीत में भी रुचि रखते थे। कविता की ओर झुकाव स्वाभाविक था।

'अहसन' के घर के पास कोई बड़ी इमारत थी जिसमें नाटक मंडलियाँ बाहर से आकर नाटक दिखाया करती थीं। 'अहसन' भी कभी-कभी नाटक देखने जाया करते थे। दोराब शा की नाटक मंडली, एक बार वहाँ पर 'गिज़ाला-माहरू' और 'जश्न-कंवरसेन' खेल रही थी। बस उसी को देखकर ड्रामा लिखने का शौक हुआ। कुल मिलाकर 'अहसन' के दस नाटक माने जाते हैं—

१. ज़हरे-इश्क़ उर्फ़ दस्तावेज़ मोहब्बत।

२. चंद्रावली नेकनियत उर्फ़ गुलिस्तान अस्मत।

३. खूने-नाहक उर्फ़ मारे-आस्तीन (हैमलेट)।

('मारे-आस्तीन' नाम का एक खेल और भी है जो इससे पृथक् है और आलफ्रेड नाटक मंडली में खेला जाता था। मैंने उसके गायन देखे हैं जो 'खूने-नाहक' के गानों से भिन्न हैं अतएव यही निष्कर्ष निकलता है कि 'मारे-आस्तीन' 'खूने-नाहक' से पृथक् नाटक है। पता नहीं डा० नामी ने खूने-नाहक के साथ 'मारे-आस्तीन' का जोड़ कैसे मिला दिया?)

४. बज़्मे फ़ानी उर्फ़ गुलनार-फ़ीरोज़

५. दिलफ़रोश।

६. भूल-भुलैया।

७. चलता पुर्ज़ा।

८. शरीफ़ बदमाश।

९. कनकतारा।

१०. ओथेलो।

भूल-भुलैया

डा० नामी का कथन है कि "अहसन ने यह ड्रामा सोहराबजी ओग्रा के बतलाये हुए शेक्सपियर के 'कामेडी आव एरर्स' के प्लाट से सन् १९०१ मे भूल-भुलैया के नाम से कलमबद किया।" परन्तु डा० नामी का यह कथन सत्य नही है। शेक्सपियर का उक्त नाटक दो भाइयों के समान रूप की कथा पर अवलंबित है। परन्तु भूल-भुलैया में भाई और बहिन की समान-रूपता का उल्लेख किया गया है और जो भ्रम फैला है उसका मुख्य कारण भाई-बहिन की समान-रूपता है, भाई-भाई की समान-रूपता नही। अतएव 'अहसन' का नाटक 'कामेडी आफ एरर्स' पर आधारित न होकर शेक्सपियर के 'ट्वेल्वथ नाइट' नाटक पर अवलंबित है जिसमे भाई-बहिन की एकरूपता के कारण सारा भ्रमजाल फैलाया गया है।

यद्यपि 'अहसन' ने यह नाटक शेक्सपियर की रचना के आधार पर लिखा है परन्तु उनकी कृति में मूल से पर्याप्त अन्तर है। पहली बात तो यह है कि 'अहसन' ने सारे पात्रो के नाम मुसलमानी रख दिये है। उन्होंने उसे एक मुसलमानी रंग मे रँगने का प्रयत्न किया है। उन्होंने घटनाओं का अस्तित्व तातार प्रदेश में माना है। इस दृष्टि से भी वह शेक्सपियर से पृथक् है। मूल में मेलवोलियो, सर एण्ड्रयू एगूचीक और मैरिया का एक बड़ा रोचक उपाख्यान है जिसमें शेक्सपियर ने तत्कालीन सम्भ्रान्त सामन्तों के विलास-प्रिय जीवन का खाका खींचा है, परन्तु 'अहसन' ने उसके स्थान पर अपने नाटक मे अब्दुलरहीम, फजीता और वफादार का भोंडा उपाख्यान जोड दिया है जो नीचे किस्म के लोगों को खुश करने वाला है, क्योंकि उसमें स्त्री की चंचलता और बेवफाई का चित्र खींचा गया है। अपने चित्र को स्पष्ट करने के लिए लेखक को चोरों वाली घटना की भी कल्पना करनी पड़ी है।

जहाँ तक मूल आख्यान का सम्बन्ध है, वह शेक्सपियर की कथा-वस्तु से मिलता है। दोनों में भाई-बहिन एक दैवी दुर्घटना के कारण परस्पर बिलग होते हैं। शेक्सपियर ने इस दुर्घटना में उनके पोत को समुद्री तूफान मे ग्रस्त बताया है और 'अहसन' ने एक रेलगाड़ी को नदी के पुल पर जाते समय बिजली पड़ने से पुल तोड़कर नदी मे डूबते हुए दिखाया है। दोनों में नायिका को पुरुष-वेश में, राजा की प्रेमिका के पास उसका प्रेम-संदेश ले जाते दिखाया है और बताया है कि राजा का संदेश उसकी प्रेमिका अस्वीकार करती है परन्तु संदेशवाहक के प्रति प्रेमासक्त हो जाती है। दोनों में भाई-बहिन के अकस्मात् मिल जाने पर राजा की प्रेमिका (मूल मे ओलीविया और रूपान्तर में जमीला) का विवाह दिलाया

(मूल की वायला) के भाई जाफ़र (मूल में सिवेश्चियन) के साथ तथा दिलारा का विवाह राजा के साथ दिखाया है ।

शेक्सपियर ने सर टोबी और एण्ड्रूय एगूचीक तथा मैरिया का उपाख्यान रखा है परन्तु 'अहसन' ने अब्दुलकरीम को रफीकउद्दीन बनाकर अय्यारा के साथ उसे हसीना (जमीला की बहिन) बनाकर शादी कराने का ढोंग रचा है । यद्यपि यह उपाख्यान शेक्सपियर की योजना से कुछ मेल खाता है परन्तु शैली और संस्कृति की दृष्टि से भिन्न है । अन्त दोनों मे एक-सा है ।

शेक्सपियर का ड्यूक सगीत-प्रेमी और विरही है और उसकी यह दशा दिखाते हुए ही नाटक का आरम्भ हुआ है, परन्तु 'अहसन' ने अपनी रचना का आरम्भ जमीला और जाफर को शत्रु के आक्रमण के कारण जंगल मे शरण लेने के लिए भेज दिया है। अहसन की योजना तत्कालीन पारसी रंगमच पर अद्भुत दृश्यो को दिखाकर दर्शकों को आकर्षित करने वाली परम्परा का एक भाग है ।

इस प्रकार दोनों में समानताएँ भी है और विभिन्नताएँ भी है। शेक्सपियर नियतिवादी है ।

'अहसन' की काव्य-कुशलता के अनेकों उदाहरण उन सवादों मे मिल जाएँगे जो नवाब और जमीला मे समय-समय पर होते हैं ।

दिल-फ़रोश :

'अहसन' के इस नाटक का मूल आधार शेक्सपियर का 'दी मर्चेन्ट आफ़ वेनिस' है । अंगरेजी पात्रों मे से पोर्शिया (अहसन की शीरी) के साथ विवाह करने के इच्छुकों को छोड़ दिया गया है। केवल एक ही व्यक्ति उसके विवाह का इच्छुक है और वह है महमूद जो क़ासिम (वेसनियो) का भाई है परन्तु उसे सफलता नही मिलती है और वह अपना-सा मुंह लेकर लौट आता है । वास्तव मे कासिम के भाई का अस्तित्व 'अहसन' की कल्पना है और यह दिखाने के लिए है कि कासिम का सारा माल और सम्पत्ति भाई हड़प कर लेता है और उसे गरीबी की दशा में जीवन व्यतीत करने को विवश करता है । शायलाक को अहसन ने ज्यो का त्यों रखा है और जार को (मूल का एण्टोनियो) उसमे कासिम के लिए छः हजार रुपये उधार लेते हुए बताया गया है । ऋण की शर्त मूल के अनुरूप हैं । मोहसिन (शेक्सपियर का लारेन्ज़ो) शायलाक की लड़की तल्हा (मूल की जैसिका) को लेकर भाग जाता है । मंजूषा-दृश्य (कास्केट सीन) उस प्रकार नही दिखाया गया है जिस प्रकार मूल में है परन्तु उसकी एक झलक मात्र दिखाई गई है । शेष कथानक मूल के अनुरूप है । जज की अदालत में शीरी (पोर्शिया) रहम करने के लिए कहती है परन्तु शेक्सपियर की भाषा में जो प्रभावोत्पादकता

है, जो हृदय को वशीभूत कर लेने की शक्ति है, वह 'अहसन' की शीरी मे नही है। मालूम होता है एक लकीर पीटी जा रही है। सबका परिणाम शायलाक की धन-सम्पत्ति लेकर तल्हा-मोहसिन को देना है।

अन्त मे कासिम-शीरी, तल्हा-मोहसिन और ममूद-मुल्हा तीनों युग्म विवाह बधन मे बँधकर आनंद मनाते हैं।

यद्यपि मूल-मुलैया की अपेक्षा दिल-फरोश की भाषा कुछ सरल है परन्तु जहाँ अवसर मिला है लेखक उसे कठिन बनाने से चूका नही है। 'अहसन' की शायरी के कुछ नमूने इस नाटक मे भी देखने को मिलते है। शेक्सपियर ने जिन विभिन्न घटनाओ को मिलाकर अपने नाटक का निर्माण किया है वे सभी तत्व 'अहसन' की रचना मे है परन्तु उनका गुफन मूल की अपेक्षा शिथिल है।

चलता-पुर्जा :

नाटक का आरम्भ दो फरिश्तो के सवाद से होता है। एक का नाम है 'फरिश्तये अक्ल' (अक्ल या बुद्धि का फरिश्ता) और दूसरे का नाम है 'फरिश्तये अमल' (याने व्यवहार का फ़रिश्ता)। समस्या यह है कि 'पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य ससार के रंगमंच पर अपना पार्ट किस तरह अदा करते हैं।' व्यवहार का फरिश्ता उत्तर देता है कि मनुष्य अपनी उत्पत्ति का रहस्य दबाकर केवल नरक का पेट भरने के लिए जंगली जानवरो के गुणो को अपना बैठा है। बस आगे के नाटक में मानवता के ह्रास और दानवता के उद्भव का चित्र नाटकीय रूप में चित्रित किया गया है। सिकन्दरखाँ नाम का डाकू शरीफ़ बनकर जाल फैलाता है और आखिर मे पकड़ा जाता है। परन्तु पुलिस की निगरानी से भी भाग जाता है। यही चलता-पुर्जा है जो हत्या भी करता है, जेल भी जाता है, शरीफ भी बनता है और आखिर उसका भंडाफोड़ हो जाता है।

दुनिया के ऐसे छद्मवेशी पात्रों को लेकर 'अहसन' ने यह ड्रामा न्यू आलफ्रेड मंडली के लिए लिखा था। मडली के डायरेक्टर सोराबजी ओग्रा को यह नाटक बहुत पसन्द था और वह स्वयं इसमें सिकन्दर का पार्ट किया करते थे। स्त्री-भूमिका मे अमृतलाल नायक (अप्पू) और नर्मदाशंकर ने बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। मडली ने इस नाटक के सेट पर्याप्त धन व्यय करके बनवाये थे और इससे बहुत कुछ आर्थिक लाभ उठाया था।

निस्सदेह चलता-पुर्जा एक गतिशील नाटक है। उसके संवाद बड़े चुस्त हैं और चरित्र-चित्रण स्वाभाविक है।

खूने-नाहक :

इस नाटक का मूल आधार शेक्सपियर का हैमलेट नामक नाटक है। परन्तु अन्य नाटकों की तरह अहसन ने इसके रूपान्तर मे भी मूल की अपेक्षा अनेकों परिवर्तन कर दिए हैं। अहसन के नाटकों के पात्र मुसलमान हैं और नाटक की घटनाओ का केन्द्र दमिश्क नगर है। अहसन ने केवल तीन अंकों मे सारी कथा-वस्तु का समावेश कर दिया है। मूल में पाँच अक है। इससे स्पष्ट है कि मूल के कथानक को कितना छोटा कर दिया गया है। पात्रो की संख्या मे भी कमोवेशी की गई है। हैमलेट (जहाँगीर) के मित्रों की संख्या कम कर दी है और ओफीलिया (मेहरबानू) की सहेलियों की सख्या बढ़ा दी है।

मूल में नाटक का आरम्भ एल्सीनोर के दुर्ग पर रहने वाले पहरे से किया गया है। इसका कारण शेक्सपियर की अतिमानव तत्वों के प्रति रुचि है और वह मृत-आत्मा के प्रवेश कराने के लिए उचित वातावरण प्रस्तुत करता है क्योकि हैमलेट को प्रतिशोध लेने के लिए प्रोत्साहन देने का उत्तरदायित्व इसी मृत-आत्मा पर है। 'अहसन' ने ऐसा उचित नही समझा। पहले अंक के पाँचवें दृश्य मे नाटककार जहाँगीर (हैमलेट) का स्वगत कथन कराता है और उसी में वह अपने पिता की मृत-आत्मा के दिखाई देने के समाचार को अपने मुँह से कहता है। बाद में वह मृत-आत्मा का आह्वान करता है और कहता है—

अपनी हसरत का न मालूम था अंजाम हमें।
किस लिये छोड़ दिया आपने न काम हमें॥

इस पर मृत-आत्मा एकदम प्रगट होती है और कहती है—

मर गये पर न हुआ कब्र में आराम हमें।
शर्म आती है बताते हुए अब नाम हमें॥

इस प्रकार दोनों का सवाद कराया गया है। अन्त मे जहाँगीर कहता है (अपने चचा को संबोधन करके)—

तू काला नाग फूँक के उसको गया है मार।
जिंदा तुझे छोड़ूँ तो मुझे क़हरे-किर्दगार॥

यही पर प्रथम अक समाप्त होता है और जहाँगीर की भावी कार्यविधि का आभास मिलता है। इसी अंक मे यह दिखाया गया है कि मलिका (जहाँगीर की माँ) अपने मंत्री हुमायूँ (पोलोनियस) से फ़र्रुख़ (क्लाडियस) को सिंहासनारूढ करने की इच्छा प्रकट करती है परन्तु हुमायूँ उससे सहमत नही होता। इसी अंक मे जहाँगीर और मेहरबानू के परस्पर आकर्षण का चित्र भी खींचा गया है। मेहरबानू के शब्द एक वास्तविक प्रेमिका के वचन हैं परन्तु जहाँगीर के उत्तर बिखरे

हुए और छिड़के हुए है। वह केवल स्त्रियों की मक्कारी, बेवफाई और जालसाजी का ही रोना रोता है। मेहरबान् अपने प्रेम का कोई प्रत्युत्तर नहीं निकाल पाती।

रिहाना (मेहरबान् की सहेली) और सल्मान (जहाँगीर का नौकर) की प्रेमवार्ता नाटक मे हास्य की पुट के लिए रखी है जो उपयुक्त नहीं प्रतीत होती।

शेक्सपियर ने कही भी हैमलेट मे स्पष्ट शब्दों में यह नही कहलाया है कि उसकी माँ अपने प्रथम पति का चित्र देखे। परन्तु 'अहसन' ने दिखाया है कि जहाँगीर अपनी माँ को अपने पिता का चित्र दिखाता है और बताता है कि उसके चचा ने उसके पिता की हत्या की है।

अन्त मे जहाँगीर फर्रुख को पिस्तौल का निशाना बनाता है और स्वयं भी मर जाता है। यहीं खूने-नाहक समाप्त होता है।

'खूने-नाहक' बड़ा लोकप्रिय ड्रामा रहा है। अनेको मंडलियों ने इसे बार-बार खेला है। जोजेफ डेविड, सोहराब मोदी जैसे अभिनेताओं ने इसमे जहाँगीर (हैमलेट) की भूमिका ली और बड़े सफल हुए। जयपुर के एक मुसलमान अभिनेता को इस भूमिका मे बड़ा सफल बताया जाता है। चलचित्र पर भी इस नाटक को खेला गया है परन्तु फिल्मी संसार मे इसे वह लोकप्रियता नही मिली जो रगमंच पर प्राप्त हुई।

चन्द्रावली :

एक हिन्दू कथा को 'अहसन' ने इस नाटक मे गूँथने का प्रयत्न किया है। 'मुराद' बरेल्वी ने 'चित्रावकावली' नाटक लिखा था जो बड़ा लोकप्रिय हुआ था। उसकी लोकप्रियता पर रीझ कर ही दादा भाई अरदेशर ठूठी ने अहसन से उसी के समान एक नाटक लिखने के लिए कहा। बस, 'अहसन' ने चन्द्रावली लिख डाला। सर्वप्रथम लखनऊ ही में इसका अभिनय हुआ। भाग्यवान 'अहसन' को अपनी ही जन्मभूमि और अपने ही जन्मस्थान पर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। बाद मे यह नाटक आलफ्रेड और न्यू आलफ्रेड नाटक मंडलियों मे बड़ी धूमधाम से खेला गया।

नाटक का केन्द्र-बिन्दु स्त्रियों का अपने पतिव्रत धर्म की रक्षा है। राजा राममोहन और उसके मंत्री में यह विवाद होता है कि स्त्रियाँ अपनी आत्म-मर्यादा नही रख सकतीं। राजगुरु जो 'महात्मा' के नाम से पार्ट करता है इस बात का बीड़ा उठाता है कि चन्द्रावली को पतिव्रत धर्म से डिगा कर दिखावेगा परन्तु सफल नहीं होता।

अन्त में चन्द्रावली अपने स्त्री-धर्म पर स्थित दिखाई गई है और महात्मा को बड़ा लज्जित प्रदर्शित किया गया है।

चित्रावकावली में दो उपाख्यान एक साथ चलते हुए दिखाये गये है जिसके कारण उसमें जीवन की स्वाभाविकता का ह्रास हो गया है, परन्तु चन्द्रावली में कथानक एक ही सूत्र से आवद्ध है अतएव उसके संवादों में शृंखलाबद्धता है और कथावस्तु में एकात्मता है। परन्तु 'अहसन' मुसलमानी रंगीनी को इस नाटक मे भी लाना नहीं भूले हैं। गूंगी कुटनी का समावेश इसका द्योतक है।

बज़्मे-फ़ानी :

'अहसन' का यह नाटक शेक्सपियर के 'रोमियो-जूलियट' के आधार पर लिखा गया है। सदा के अनुसार उसमें भी मूल पात्रों के नाम मुसलमानी कर दिये गये हैं। इसी कारण यह नाटक 'गुलनार-फ़ीरोज़' के नाम से भी प्रसिद्ध है। कथावस्तु का विकास 'अहसन' ने अपने ढंग से किया है। वैसे दिखाया यही गया है कि ग़फ़ूरुद्दौला और जहूरुद्दौला दोनों फ़ीरोज़ाबाद के नामी नागरिक हैं। फ़ीरोज़ गफूरुद्दौला का पुत्र है अतएव मूल के अनुसार उसका घराना 'मांटेगू' है और गुलनार जहूरुद्दौला की लड़की है अतएव उसका वश 'केपुलेट' है। शेष पात्रों में 'अहसन' ने प्रधान पंक्ति मे शाह, वजीर, जरीफ (शाह का विदूषक), मसूद और अंजम (फ़ीरोज के मुसाहिब), मिर्ज़ा (जहूरुद्दौला का भतीजा) तथा मुशर्रफ़ (गुलनार से विवाह का इच्छुक) रखे है। महिला पात्रो में गुलनार के अतिरिक्त जहूरुद्दौला और गफ़ूरुद्दौला की पत्नियाँ हैं।

मुशर्रफ़ और फ़ीरोज में लड़ाई होती है जिसमें मुशर्रफ़ मारा जाता है। गुल्नार की शादी फीरोज़ से हो जाती है। अहसन ने रोमियो-जूलियट की ट्रेजिडी को सुखान्त में बदल दिया है जिसके कारण मूल की बिल्कुल ही कायापलट हो गई है। शेक्सपियर ने अपने युग का जो दृश्य अंकित किया था जिसमें दो सम्भ्रान्त घराने परस्पर द्वेष के कारण अपनी संतान की मृत्यु पर पुन: एक हो जाते है, वह प्रभाव अहसन के नाटक में नही है। जीवन की विडम्बना का जो चित्र शेक्सपियर ने खीचा है उसका आभास तक भी 'बज़्मे-फ़ानी' में नही आ पाया। डंक चुभा तो रहा परन्तु उसकी पीड़ा का कोई असर नही हुआ।

ओथेलो :

यह भी शेक्सपियर के नाटक का रूपान्तर बताया जाता है परन्तु देखने को नहीं मिला।

कनकतारा
चहरे-इश्क
शरीफ़ बदमाश } ये तीनों नाटक अप्राप्य हैं।

'अहसन' की नाट्य-कला :

'तालिब' के बाद 'अहसन' ही ऐसे नाटककार हैं जिन्होंने पारसी रंगमंच को अपनी शक्तिशाली रचनाओं से गुंजायमान रखा। उनकी भाषा कठिन उर्दू है, उनकी कविता में भावुकता है और उनके संवाद पुष्ट एवं मर्मभेदी है। उनमें यदि कोई अभाव है तो यही कि उनकी कथा-वस्तु का कथ्य जीवन की किसी गहराई का चित्रण नही करता। समाज की सतही वस्तुओ पर उनकी दृष्टि गई है। संभवत: इसका कारण उनके युग की थोथी माँग भी हो सकती है। दर्शक निकृष्ट कोटि के हास्य मे आनंद लेते थे, उच्च कोटि का रोमांस उनकी कल्पना की बात नही थी। समाज की किसी समस्या को लेकर 'अहसन' ने नहीं लिखा। उनके संरक्षक भी रुपया कमाना ही अपना ध्येय रखते थे। परिणामत: 'अहसन' भी हमें ऐसे नाटक नही दे सके जो नाटक-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति होते।

पारसी नाटक मंडलियाँ । ५

जोरास्ट्रियन थियेट्रिकल क्लब (जूनी)

सन् १८६६ में, अर्थात् लगभग विक्टोरिया नाटक मडली से दो वर्ष पहिले, जोरास्ट्रियन थियेट्रिकल क्लब की स्थापना हुई।[८२] इस सम्बन्ध मे 'रास्त गोफ़्तार' पत्र का जो उपयोग किया गया वह केवल नाटक में रुचि रखने वालों की सहायता मात्र लेने के लिए। जिन लोगो के मन में बड़े पैमाने पर यह मंडली स्थापित करने का विचार आया उन्होंने यही सोचा कि मडली की स्थापना करने पर उसमें नये-नये खेल खेले जायें। शंकर सेठ वाली नाट्यशाला अभिनय के लिए प्राप्य थी ही। अभिनेता तत्पर थे और नाटककारों में 'बंदे खुदा' तथा जाबुली रुस्तम का सहयोग स्थापकों को मिल गया था। कुछ रंगमंच विषयक सामग्री भी एकत्रित कर ली गई थी। अंत में निम्नलिखित सज्जनो ने निश्चय किया कि नाटक करवाये जायें। उन्होने तन, मन और धन से मंडली चलाने का निश्चय किया—

क्लब के स्तंभ :

१. नशरवानजी बेहरामजी फ़ोरब्स
२. धनजी भाई राणा
३. डोसाभाई वीलिया
४. पेस्तन जी दादाभाई पावरी
५. रुस्तम जावुली (नाटककार)
६. धनजी भाई बीमादलाल
७. दादाभाई पस्ताकिया
८. फ़रामजी कावसजी मेहता
९. दादाभाई पोचखाना वाला (बंदेखुदा)
१०. आनन्दराव (एक मराहठी पेंटर)

---

८२. पा० त० त०, पृ० १६२ ।

इन दस के अतिरिक्त सम्मत्यार्थ शेठ मंचेरशाह बेजनजी मेहरहोमजी और शेठ मंचेरजी होशंगजी जागोश का नाम भी सम्मिलित कर लिया गया। इस कमेटी में नशरवानजी फोरब्स ने इस पर बड़ा जोर दिया कि एदलजी खोरी (नाटककार) को भी सम्मिलित कर लिया जाय। उनकी मान्यता थी कि ऐसा करने से एदलजी खोरी अपनी रचना किसी अन्य नाटकमंडली को नहीं देंगे और ग्रांट रोड की नाट्यशाला में केवल जोरास्ट्रियन का ही डंका बजता रहेगा। इस अवसर पर यह स्मरण रखना आवश्यक है कि 'जेंटेलमैन अमेच्योर्स' और 'म्यूजिकल स्केचेज़' नामक मंडलियां पहले से ही अपना-अपना काम कर रही थीं। इन्हें नाटक लिखकर देने वाले सामान्यतया एदलजी खोरी ही थे। परन्तु एदलजी एक स्वतंत्र पक्षी की तरह विचरण करने वाले व्यक्ति थे। अतएव वह इस फंदे में तो नहीं फंसे परन्तु उन्होंने यह वायदा कर लिया कि अपनी कृति वह पहिले जोरास्ट्रियन क्लब को देंगे और उसके न लेने पर किसी अन्य मंडली को देंगे।

अपने वायदे के अनुसार जब विक्टोरिया नाटक मडली वालों ने उनके लिए लिखा 'खुदाबख्श' नाटक लेने मे आनाकानी की तो एदलजी ने उसे जोरास्ट्रियन क्लब को दे दिया। जोरास्ट्रियन क्लब ने सन् १८७१ में इस नाटक को शंकर सेठ की नाट्यशाला में खेला। उससे मंडली की बड़ी ख्याति बढ़ी और तब विक्टोरिया नाटक मडली वालों को अपनी भूल पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। इस क्लब की जान तो वास्तव मे नशरवानजी फ़ोरब्स ही थे।

खुदाबख्श नाटक से पहिले जोरास्ट्रियन क्लब 'बंदेखुदा' का लिखा 'खुशरु अने शीरीन' नाटक का अभिनय कर चुका था और उसमें उसे प्रसिद्धि भी मिली थी। इस नाटक में नशरवानजी फ़ोरब्स ने परवीज के रफ़ीक शाहपुर की भूमिका बड़े सुन्दर और आकर्षक रूप मे पूरी की थी। धनजी भाई का विचार है कि सभवतः खुशरु-शीरीन के पश्चात् नशरवानजी फ़ोरब्स जोरास्ट्रियन क्लब को छोड़ गये क्योंकि क्लब द्वारा अभिनीत किसी नाटक में उन्हें रंगमंच पर देखा नही गया। उनकी अनुपस्थिति दर्शकों को ऐसी खलती थी कि वे परस्पर बात-चीत में कहने लगते कि "इस खेल में नशरवानजी फोरब्स दिखाई नही देते।"

तत्कालीन नाटक मडलियों से जोरास्ट्रियन में कुछ विशेषताएँ थीं। एक विशेषता यह थी कि अभिनय आरम्भ होने से पहले तीन अभिनेता समवेत रूप से ईश्वर-स्तुति (हम्देखुदा) करते थे। ईश्वर-स्तुति पूरी होने के पश्चात् कोई एक अभिनेता ड्रापसीन के बाहर आता और एक 'प्रोलोग' (प्रस्तावना) बोलता। नाटक समाप्त होने पर एक अभिनेता दर्शकों के प्रति मंडली का

उपकार प्रगट करता और एक 'सलाम' गाता । जब तक नशरवानजी क्लब में रहे तब तक वह 'बैंड' के साथ सलाम गाते रहे। खुशरु-शीरीन में जो सलाम उन्होंने गाया वह यह था—

करिये सलाम, करिये सलाम,
खाब (स्वप्न) खोई आया, तमो खरचीने दाम ।

नशरवानजी के चले जाने से मंडली थोड़ी मंद पड़ गई, परन्तु काम धीमे-धीमे चलता रहा।

जोरास्ट्रियन मंडली मे नशरवानजी के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे व्यक्ति थे जिनकी कला के आधार पर मंडली की ख्याति बनी रही । इनमें एक हिन्दू भागीदार आनंदराव भी था जो पूना में रहता था और पर्दे आदि पेंट किया करता था। दादाभाई मचेरजी पस्ताकिया केवल भागीदार ही नहीं थे वरन् एक कुशल हास्यरस अभिनेता भी थे। उनका स्वभाव इतना अच्छा था कि सब लोग उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे। फ़रामजी कावसजी मेहता बड़े कुशल नर्तक थे यद्यपि उनका नृत्य अंगरेजी-नृत्य हुआ करता था। मित्रमडली में 'फलु फ़ोटो-ग्राफ़र' के नाम से विख्यात थे।

मंडली को रुस्तमजी कावसजी जावुली जैसे लेखक की सहायता भी मिल गई थी। घनजीभाई बीमादलाल जोरास्ट्रियन के विख्यात हास्य-अभिनेता थे ।

जोरास्ट्रियन नाटक मंडली ने कई नाटक खेले परन्तु उसकी सब से अधिक प्रसिद्धि 'खुशरु-शीरीन' नाटक से ही हुई । ईरानी कथा-वस्तु और ईरानी ही पोशाकें, बस सोने में सुगंध पैदा हो गई। इस नाटक की दो-तीन वस्तुओं ने लोगों को मोहित कर लिया।

वीरान वन में मदायन शहर की ओर जाते हुए शीरीन अपने सिर के बालों की धूल को साफ़ करने के लिए एक चश्मे में उतरती है और बालों को खोलकर उन्हें साफ़ करती है। यह दृश्य वड़ा मनमोहक और दृष्टव्य था। अनेकों दर्शक कई बार इस एक ही दृश्य के देखने के लिए आते थे । चश्मे के पानी में नग्न परन्तु श्लील रूप से बैठकर बाल धोती हुई शीरी अपना सौंदर्य बिखेर कर सभी के मन को मोह लेती थी। दूसरा मोहक दृश्य खुशरु परवेज़ के सामने बेहराम द्वारा रण मे उठाया हुआ कियानी समूह था। इसमें दिखाया गया था कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे किस प्रकार एक आग धधक रही थी। तीसरा दृश्य खुशरु परवेज का 'दखमु' था । गुजराती में 'दखमु' उस बुर्ज को कहते हैं जो छिपने के लिए बनाया जाता है। यह बुर्ज एक पहाड़ के टीले पर बना हुआ दिखाया गया था। बुर्ज के अन्दर प्रवेश करने वाली सीढ़ियाँ उसके द्वार के बाहर दिखाई

गई थीं। द्वार को खोलते ही उसके अंदर का दृश्य दिखाई दे जाता था। समस्त बुर्ज एक गम्भीर मौनता का वातावरण प्रस्तुत करता था। इन्हीं सीढ़ियों के ऊपर चढ़ कर शीरीं अपने खुशरु का दर्शन कर उसे माथा नवाती है और बाहर निकलती है और छुरी मारकर ऊपर से नीचे गिर पड़ती है। हृदय को बेध डालने वाला यह करुण दृश्य फ़ारसी इतिहास के पुरातन समय की घटना को नया जीवन प्रदान करने वाला था। शीरीन की भूमिका खुरशेदजी बेहरामजी हाथीराम ने निभाई थी।

जोरास्ट्रियन मंडली में नाटकों के अतिरिक्त समय के अनुकूल प्रहसन भी प्रदर्शित होते थे। ऐसे प्रहसनों में एक 'पटेटीनी फजेती' नाम का प्रहसन भी था। इसमें भी अन्य प्रहसनों के समान, हँसी-मजाक़ के बाद कोई न कोई नसीहत भरी बात बताई जाती। इस प्रहसन में मंडली के सभी प्रमुख अभिनेता भाग लेते थे। मंडली के भागीदार धनजीभाई राणा, डोसाभाई बीलिया, दादाभाई पस्ताकिया एवं अन्य अभिनेता अभिनय करते थे। परिणाम स्वरूप मंडली की कीर्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। दूसरी छोटी मंडलियाँ इससे द्वेष रखती थी और चाहती थी कि किसी तरह जोरास्ट्रियन मंडली अपकीर्ति को प्राप्त हो जाय। अतएव एक बार किसी ने गैलेरी से एक पुरानी चप्पल मंच पर फेंकी जो फुटलाइट के पास आकर गिरी। डोसाभाई बीलिया इस घटना पर बड़े गुस्सा हो गए और उन्होंने तत्काल पर्दे के बाहर आकर इस कार्य के करने वाले की घोर निंदा की। दर्शकों ने भी उनका साथ दिया।

परन्तु उसी दिन से मंडली की जोत कम होने लगी। उधर खुशरू हाथीराम अपनी बीमारी के कारण और एक अन्य अभिनेता होरमसजी हाथीराम मंडली से पृथक् हो गए। मंडली धीमी हो गई। पर वह मंडली का अन्त नहीं कहा जा सकता।

डोसाभाई बीलिया ने पुनः शक्ति लगाकर एदलजी खोरी का 'जालमजोर' नाटक शंकरसेट की नाट्यशाला में अभिनीत किया। यह नाटक अंगरेजी लेखक शेरीडन के "पिज़ारो" के आधार पर लिखा गया था।

जोरास्ट्रियन नाटक मंडली जिसे 'जूनी जोरास्ट्रियन मंडली' कहा जाता है—बड़ी धजा के साथ अपना समय काटती रही। इसके कुछ अभिनेताओं के नाम ऊपर आ गये हैं। शेष में उल्लेखनीय हैं—डोसाभाई, फ़रामजी कौंगा जिन्होंने 'जालमजोर' का मुख्य अभिनय किया; मेरवानजी पेस्तनजी मेहता और होरमसजी बेहरामजी हाथीराम जो स्त्री पार्ट किया करते थे। इसी मंडली ने

कावसजी दीनशाह जी केआश का तीन अंकी नाटक 'बेहराम गोर अने बानु होसग' नाम का नाटक २ अगस्त सन् १८७३ मे प्रगट किया।[८३]

नोट:—(१) जोरास्ट्रियन थियेट्रिकल क्लब को 'जूनी जोरास्ट्रियन नाटक मंडली' भी कहा जाता है, क्योकि सन् १८७७–७८ में 'दी जोरास्ट्रियन ड्रामेटिक सोसाइटी' के नाम से एक नई नाटक मडली की स्थापना हुई।

(२) १० दिसम्बर सन् १८७० मे 'परशियन जोरास्ट्रियन क्लब' की स्थापना हुई। यह क्लब मूल या जूनी जोरास्ट्रियन थियेट्रिकल क्लब से भिन्न था। इसका नाम 'ईरानी नाटक मंडली' भी था। इसने ग्रांट रोड वाले थियेटर में 'रुस्तम अने बरजोर' नाटक फ़ारसी भाषा मे खेला।[८४]

परशियन जोरास्ट्रियन क्लब

इसका जन्म सन् १८७० ई० मे हुआ। ईरानी नाटक मंडली से मुक्त होकर पेस्तनजी फ़रामजी बेलाती ने इसकी स्थापना की। इसके अभिनेता अधिकाश मे ईरानी थे पारसी नही, यद्यपि दादी पटेल इसके मुख्य समर्थको और सहायकों में से थे।

परशियन जोरास्ट्रियन क्लब ने 'बदेखुदा' का लिखा हुआ 'बरजोर अने मेहरसीमीन ओझार' नामक नाटक का अभिनय किया। इस नाटक में कई यान्त्रिक दृश्य दिखाये गये थे। पोक्तादवंद देव तथा मोरजान जादुगरनी ने इस नाटक में दर्शको का ध्यान अधिक खीचा था।

पेस्तनजी बेलाती स्वयं एक अच्छे अभिनेता थे। उक्त नाटक में एक स्थान पर मोरजान जादूगरनी अपने तख्त के ऊपर बैठी हुवा मे उडी जा रही थी। उस समय उसे देखकर पेस्तनजी कहता—"गेई! गेग्रेई! गेई-गेई" परन्तु जिस हावभाव तथा अभिनय के साथ इन शब्दों का उच्चारण करता वे जनता को इतने प्रिय लगे कि वे पेस्तनजी को 'गेई-गेई' कहकर ही पुकारते।

यह नाटक सन् १८७१ में शंकर सेठ की नाट्यशाला मे खेला गया था। परन्तु व्यवसाय की दृष्टि से लाभ न देखकर क्लब ने गुजराती नाटको की अपेक्षा हिन्दुस्तानी के नाटक खेलने आरम्भ कर दिये।

क्लब के सामने वही कठिनाई आई जो सदा सभी मंडलियों के सामने आती थी। स्त्री-पार्ट करने वाले छोकरे कहाँ से लायें? आख़िर पेस्तनजी ने अपने सगे

८३. पा० प्र० खंड २, पृ० ४५२।
८४. (क) रास्तगोफ्तार, ४ दिसम्बर, १८७०।
(ख) पा० प्र० खण्ड २, पृ० ३५२।

भाई कावसजी फ़रामजी बेलाती को तैयार किया। क्लब अधिक दिन तक नहीं चल पाया। कावसजी फ़रामजी बेलाती भिन्न-भिन्न नाटक मंडलियों में काम करता रहा—हिन्दी-गुजराती दोनों प्रकार के नाटकों में। अन्त में अस्वस्थ होने के कारण रंगमंच से विदा ले ली।

पेस्तनजी फरामजी बेलाती भी असफल होने पर नाटक-धंधे से निराश हो गये और लिखने-पढ़ने का काम करने लगे।

दी जोरास्ट्रियन ड्रामेटिक सोसाइटी

सन् १८७७-७८ में शेक्सपियर नाटक मंडली भंग हो गई। तब उसके कुछ प्रमुख अभिनेताओं ने एक नई नाटक मंडली की स्थापना करने की बात सोची। आखिर तीन गृहस्थियों ने नई मंडली भागीदारी में चलाने का निश्चय किया। इसमें एक पेस्तनजी दीनशाह कॉंगा थे जो अच्छे क्रिकेट के खिलाड़ी भी थे। इस नाटक मंडली का नाम 'दी जोरास्ट्रियन ड्रामेटिक सोसाइटी' रखा गया। पेस्तनजी कॉंगा ने यह सूचना अपने मित्र वेहराम कलेक्टर—एक सफल हास्यरस अभिनेता—एवं वेहराम कामिक—मिल उद्योग में लग्न—को दी। साथ में कुछ नये अभिनेता जो क्रिकेट के खेल के साथी थे ले लिये। वहारकोट में अलाही वाग के पड़ोस की गली में स्थित दीनशाह मास्टर के स्कूल में इस मंडली को स्थापित किया गया। स्थापना के साथ-साथ उसी रात्रि को धनजी भाई पटेल को इसलिए आमंत्रित किया गया कि क्लब में क्या-क्या किया जाय और कौन-कौन से खेल खेले जायें।

निश्चय किया गया कि 'रुस्तम अने सोहराब नो ओपेरा' का अभिनय किया जाय। तत्पश्चात् और भी भागीदार मंडली में सम्मिलित हो गये। अब इस जोरास्ट्रियन ड्रामेटिक सोसाइटी के पाँच भागीदार बने—

१. वेरामजी पेस्तनजी कलेक्टर
२. वेरामजी न० कामक
३. पेस्तनजी दीनशाह कॉंगा
४. फ़रामजी होरमसजी लालकाका
५. रुस्तमजी होरमजी वामजी।

'रुस्तम अने सोहराब नो ओपेरा' के लेखक धनजीभाई पटेल थे, परन्तु उनका आधार एदलजी खोरी का लिखा हुआ नाटक था। नाटक बैंतबाजी एवं ऊँचे प्रकार के गायनों से मढ़ा हुआ था। गायनों के ऊँचे प्रकार के रखने का कारण यह भी था कि इस नाटक के पहले दादाभाई ठूंठी उर्दू नाटक अलादीन ओपेरा

में अच्छे गायन रखकर उसे विक्टोरिया नाटक मंडली की ओर से खिलवा चुके थे और उसमें स्वयं अवनेजार जादूगर का अभिनय कर चुके थे। अतएव उस स्तर से नीचे उतरने से व्यवसाय में असफलता होती।

उक्त नाटक में वेरामजी कलेक्टर ने गुरगीन की भूमिका बड़ी कुशलता से निभाई थी। वेरामजी कात्रक ने पहलवान हजीर, पेस्तनजी कांगा पादशाह कैकाऊस, रुस्तमजी वामजी अफ़रासियान वजीर के पहलवान होमान बने थे। रुस्तम जी वामजी ने सोहराब को ऐसे धोखे में रखा कि जब भी होमानरंगमचके ऊपर प्रगट होता तत्काल दर्शक 'धूर्त, शेम-शेम' की पुकारों से प्रेक्षागृह को गुंजा देते थे। रुस्तम वामजी का यह प्रशंसनीय गुण था कि जिस प्रकार वह गम्भीर पार्ट करते वैसी ही कुशलता से हास्यरस का भी निर्वाह करते थे।

इस सोसाइटी में 'रताई मदम' नाम का एक प्रहसन भी अभिनीत किया गया। प्रहसन के लेखक स्वय पेसु पेत्रीज थे। रुस्तम वामजी ने इसमें एक मोवेद (धर्माचारी) का पार्ट किया जिसके कारण कोटवाजार स्ट्रीट के दादा लोग वामजी तथा मडली दोनो से वडे नाराज हो गये।

सन् १८७९–८० में नाटकशाला की कमी के कारण वड़ी गड़वड हो रही थी। शंकर सेठ की नाटकशाला में विक्टोरिया नाटक मडली अपने नाटक खेलती, विक्टोरिया नाटकशाला में एलफ़िंस्टन अपने नाटकों का अभिनय करती। ऐसी अवस्था में नाटक उत्तेजक मडली की काठ की वनी नाटकशाला जो क्राफर्ड मार्केट के सामने बनी थी और जिसे "एस्प्लेनेड थियेटर' कहते थे, केवल एक ऐसी नाटकशाला थी जिसमें जोरास्ट्रियन नाटक मंडली अपने नाटकों का अभिनय कर सकती थी। अतएव उसी में ३० रु० प्रति रात्रि के हिसाब से भाड़ा देकर वह अपने नाटको का अभिनय करती थी। ये अभिनय शनिवार एवं बुधवार को छोड़कर होते थे क्योंकि इन दिनों नाटक उत्तेजक मडली स्वयं अपने गुजराती नाटक खेला करती थी। कुछ दिनों तक काम ठीक चलता रहा, परन्तु एक रात को बडी गड़वड़ हो गई।

'रताई मदम' प्रहसन में रुस्तमजी वामजी मोवेद का पार्ट कर रहा था; कहा जाता है कि दीनशाह हारवर नामक एक पारसी इस पर वड़ा उत्तेजित हो गया था। वह दोपहर को दो एक और साथियों को लेकर आया था और दोपहर में नाटकशाला के मैनेजर से कह गया था कि "यदि रुस्तम वामजी ने पहले की तरह प्रहसन मे कुछ किया तो मैं तत्काल रंगमंच पर आकर पर्दे की रस्सी काट दूंगा। इस सा...की क्या शक्ति जो ऐसा फ़ार्स करे।" इस समाचार के मिलने पर कसरती जवान और कम्पनी का एक भागीदार पेस्तनजी कांगा हँस पड़ा और वामजी से कहा चिंता न करो काम चलने दो।

एक अन्य घटना यह और घटी कि फ़रामजी कावसजी मेहता ने 'सोहराब रुस्तम' के गायनों की एक किताब अपने व्यय से छपवाई और पूरी एक हज़ार प्रतियाँ नाटक के लेखक धनजीभाई पटेल को अर्पित कर दी। फ़रामजी मेहता ने गायन की एक-एक प्रति तत्कालीन पत्रों को रिव्यू के लिए भी भेज दी। उन दिनों बेरामजी मलाबारी का पत्र "इण्डियन स्पेक्टेटर" फ़रामजी के क़ैसरे-हिन्द प्रेस में छपा करता था। बेरामजी मलाबारी ने नाटक की कुछ प्रशंसा अपने पत्र में छापी जिसे पढ़कर कैखसरु कावराजी भी उक्त नाटक को देखने नाट्यशाला में गये। कावराजी जैसे व्यक्ति का किसी नाटक को देखने जाना स्वयं में एक महत्वपूर्ण बात थी। पास में बैठे हुए नाटक उत्तेजक मंडली के मैनेजिंग भागीदार फ़रामजी गुस्तादजी दलाल ने कावराजी से कहा—"अरे अंने थातुं अेटलु वधुं उत्तेजन आपवु जोइये।"

कावराजी ने उत्तर दिया— "जेने घटे तेने काय नही उत्तेजन आपीअे, मने तो गायन घणाज गमे छे।"

कावराजी को गायन रुचिकर प्रतीत हुए इससे अच्छा प्रमाणपत्र नाटक के गायनों के लिए और क्या हो सकता था? इस वार्तालाप के पश्चात् कावराजी ने एक आलोचना अपने 'रास्त गोफ़्तार' पत्र में सोहराब-रुस्तम की निकाली, उससे फरामजी गुस्ताद को इतनी ईर्ष्या हुई कि उन्होंने जोरास्ट्रियन नाटक मंडली को कहा कि अब उनको नाटकशाला उसे नहीं मिलेगी क्योंकि शुक्रवार को अभिनय करने से नाटक उत्तेजक मंडली की शनिवार की शो में आमदनी कम हो जाती है।

एस्प्लेनेड थियेटर न मिलने के कारण जोरास्ट्रियन नाटक मंडली का द्वार बंद हो गया। ग्रांट रोड पर ईरानी नाटक चलने की सभावना नहीं थी क्योंकि ऐसे नाटक वहाँ न चलने के कारण ही उर्दू नाटकों का अभिनय उसमें आरम्भ किया गया था। इस समाचार का प्रभाव अभिनेताओं पर बड़ा खराब पड़ा। वे लगभग ११ बार सोहराब-रुस्तम का अभिनय कर चुके थे और अब बेजन-मनीजेह के अभिनय की तैयारी कर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि नाटक मंडली बिखरने लगी।

विक्टोरिया नाटक मंडली

"अे नाम काई मुबईनी तेमज हिन्दुस्याननी प्रजानें अजाण्युं नथी। अेवी अेक मशहूर नाटक कम्पनीनी तवारीख रजु करया वगर, पारसी नाटक तख्तानी तवारीख संपूरण गणाय नहीं।"

—धनजी भाई पटेल

बस, विक्टोरिया नाटक मंडली अस्तित्व में आ गई। इसका नाम एक 'पारसी विक्टोरिया नाटक क्लब' भी था, परन्तु प्रसिद्धि 'विक्टोरिया नाटक मंडली' नाम की रही। कैखशरु ने एक काम यह और किया कि कुछ अभिनेताओं को इस मंडली का मालिक बनाया जिनके नाम पहले दे दिये गये हैं, कुछ अभिनेताओं को वेतनभोगी करके रखा, उनकी सेवा के लिए कायदे-कानून बनाये और इन सब पर दृष्टि रखने तथा मंडली के काम को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक प्रबंधक समिति की भी स्थापना की। इस समिति के सभासद नगर के प्रतिष्ठित गण्यमान्य नागरिक लोग थे जिनके नाम थे—

१. विनायक जगन्नाथ शंकर सेट—सभापति
२. डा० भाउदाजी
३. सोराबजी शापुरजी बंगाली
४. खुरशेदजी रुस्तमजी कामा
५. अरदेशर फ़रामजी मुस
६. जहांगीरजी मेरवानजी प्लीडर
७. मेरवानजी माणेकजी शेठना
८. कैखशरु नवरोजी कावरा (सेक्रेटरी)
९. पेस्तनजी धनजी भाई मास्टर (डाइरेक्टर)
१०. खुरशेदजी नशरवानजी कामा

विक्टोरिया नाटक मंडली के अस्तित्व में आते ही नाटक अभिनीत करने की तैयारी आरम्भ हो गई। कैखशरु ने उसके लिए 'बेजन अने मनीजेह' का निर्माण किया। पूरी तैयारी के बाद, जिसमें मालिकों का काफ़ी धन व्यय हुआ, परन्तु कावराजी के निर्देशन की वजह से, जिसे उन्हें ज़बरदस्ती अपने गले उतारना पड़ा, यह खेल २० मार्च सन् १८६९ को अभिनीत हुआ। लगभग २०-२५ अभिनेताओं ने जो सब पारसी ही थे, इसमें भाग लिया। कहा जाता है कि न्यूनाधिक पचास रात यह नाटक खेला गया। इस संख्या से पारसियों की तद्विषयक रुचि और संतोषवृत्ति का पता चलता है।

अभिनेताओं में से कुछ तो ऐसे कुशल निकले कि जनता ने उनके नाम के साथ उनके द्वारा खेला गया नाटकीय पात्र नाम भी सम्मिलित कर दिया और उन्हें उसी नाम से पुकारा जाने लगा, यथा धनजु बेजन, जमशु मनीजेह, डोसू गोदरेज, खुशरु कोवाद, कावसजी गुरगीन, दाराशा अफ़रासियाब आदि। यह खेल ईरान के इतिहास से सम्बन्ध रखता था अतएव इसके पात्रों की वेशभूषा ईरानी ही थी।

'बेजन मनीजेह' से मालिकों को अच्छी आय हुई, परन्तु फिर भी वे अधिक संतुष्ट नही थे। उनके असंतोष को देखकर कावराजी ने एक अन्य नाटक 'जमशेद' की रचना की। प्रथम नाटक की अपेक्षा यह अधिक लोकप्रिय रहा और मंडली के मालिक भी उसकी आय से अपनी जेबें भर कर अति प्रसन्न रहे। तीसरा नाटक 'फरेदून' अभिनीत किया गया। यह भी कावराजी का ही लिखा हुआ था। इस समय तक विक्टोरिया नाटक मडली अच्छी तरह स्थापित हो गई और बड़े धूम-धड़ाके से नाटकों का अभिनय करने लगी। इतना ही नही वरन् उसकी समकालीन अन्य मडलियाँ पीछे छूट गई। वे सारे नाटक 'जूनी नाट्यशाला' मे ही हुआ करते थे। अतएव सप्ताह भर में केवल एक या दो दिन ही मंडली को ऐसा मिलता था जिस दिन वह अपना नाटक खेल सकती थी। मालिको के मन मे यह विचार उठा कि ऐसी स्थिति मे मंडली का खर्चा अधिक होता है। अतएव यदि अपना थियेटर हो तो मंडली अधिक दिन तक अभिनय कर सकती है और उसकी आय मे पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। इस निर्णय के पश्चात् दादा भाई ठूठी तथा अन्य तीनों मालिक ग्रांट रोड पर ही किसी उपयुक्त भूखण्ड की खोज मे निकले और प्रयत्न करने पर उन्हे ६० रु० मासिक पर एक स्थान मिल भी गया। इसी जगह उन्होने एक थियेटर का निर्माण कराया जिसका नाम 'विक्टोरिया थियेटर' रखा गया। सन् १८७० में यह बनकर तैयार हुआ और विक्टोरिया नाटक मडली अपना सारा सामान जूनी नाट्यशाला से उठाकर अपने नये थियेटर में ले आई। अब यहा पर मंडली के नाटकों का अभिनय आरम्भ होने हुआ।

परन्तु जैसा लगता है मंडली का काम सुचारु रूप से नही चल पा रहा था। उसकी प्रबंध कमेटी और मालिको मे कभी-कभी मतभेद हो जाया करता था। परिणाम यह हुआ कि सन् १८६९ मे कावराजी ने प्रबंधक कमेटी के सचिव पद से त्यागपत्र दे दिया। स्वाभाविक था कि कावराजी के त्यागपत्र का प्रभाव मंडली पर पड़ता ही। परन्तु मंडली जैसे-तैसे काम करती रही, भंग नही हुई। अब सब को एक नये सचिव की खोज करनी पड़ी। आखिर दादी पटेल एम० ए० विक्टोरिया नाटक मंडली की प्रबंध समिति के नये सचिव बने। दादी पटेल एक बड़े घर के पुत्र थे। अव्यवसायी अभिनेता थे और प्रभावशाली व्यक्ति थे। उन्होंने अन्य सभासदों को ध्यान में न रखते हुए अपने ही विचार के अनुसार मंडली को चलाना आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप कमेटी मे विघ्न उत्पन्न हो गया और अन्त मे कमेटी भंग हो

गई। अव दादी पटेल मनमाने रूप से मंडली का सचालन करने लगे परन्तु मालिको को यह वात पसन्द नही आई।

सन् १८७० मे अपना थियेटर बन जाने के वाद विक्टोरिया मंडली ने पुन 'वेजन मनीजेह' और 'जमशेद' का अभिनय किया। उसके वाद एदलजी खोरी का 'रुस्तम अने सोहराव' का अभिनय किया। पश्चात् 'हजमवाद अने दगननाज' खेला गया। यह भी खोरी का लिखा हुआ था।

दादी पटेल अभी तक विक्टोरिया नाटक मडली मे अपना प्रभाव रखते थे। सन् १८७१ मे उन्होने खोरी से एक उर्दू का नाटक लिखने का आग्रह किया। परन्तु खोरी को उर्दू नही आती थी, अतएव उन्होने गुजराती मे 'मुना-ग मूलनी खुरशेद' नामक नाटक लिखा। सेठ वेहरामजी फरदूनजी मर्जवान ने उसका अनुवाद हिन्दुस्तानी भाषा मे किया। तव इसका अभिनय विक्टोरिया मडली द्वारा विक्टोरिया थियेटर मे किया गया। इसी की देखा-देखी नाज़रजी ने अपनी एलफिस्टन द्वारा 'नूरजहाँ' नाटक खोरी से लिखवा कर और नगरवानजी मेहरवानजी खाँ साहव से उसका उर्दू उल्था कराकर, ग्राकर सेठ की नाट्यशाला मे अभिनीत किया था।

दादी पटेल के मस्तिष्क मे पहले पहल हिन्दुस्तानी या उर्दू नाटक का अभिनय करने की वात उठी थी। उन्होने अपने विचार को कार्यान्वित भी कर डाला। वाद मे उनके मस्तिष्क मे एक उर्दू ओपेरा लिखवाने और उसे अभिनीत करने का विचार उठा। खाँ साहव से उन्होने 'वेनज़ीर वदरे मुनीर' नाटक लिखवाया और उसका अभिनय भी विक्टोरिया नाटक मंडली मे किया। यह ओपेरा वड़ा सफल रहा। इसकी सफलता मे खुरशेदजी वालीवाला और पेस्तनजी फरामजी मादन का वडा भाग था। वालीवाला ही आगे चलकर विक्टोरिया नाटक मडली के एकाधिपति बने।

यह प्रश्न पैदा हो सकता है कि सन् १८७०-७१ में दादी पटेल का विक्टोरिया नाटक मडली से क्या सम्बन्ध था? क्या वह केवल भंग हुई प्रबंध समिति के सचिव मात्र थे अथवा उक्त मडली मे उनकी कोई भागीदारी भी थी? धनजी भाई तथा अन्य इतिहासकारो ने इस वात पर कोई प्रकाश नही डाला। परन्तु यह निश्चित है कि सचिव होने के अतिरिक्त दादी पटेल का अन्य कोई सम्बन्ध मंडली से अवश्य रहा होगा। दादी पटेल ने एक अन्य कार्य यह किया कि मडली को दो भागो मे विभाजित कर दिया—'डे क्लव' तथा 'नाइट क्लब'। जो अभिनेता दिन मे कही अन्य स्थान पर नौकरी करते थे वे रात में आकर मंडली मे अभिनय करते और जो मंडली के

चौबीसों घंटे के वेतनभोगी थे वे दिन में काम करते। दिन मे काम करने वालों में खुशरु कोवाद, पेसु आवान और खशरु कोवाद के पिता मनचेरजी वालीवाला प्रमुख थे । वालीवाला–पिता-पुत्र–दोनों को उन्होने Byculla Education Sociaty Press में कम्पोज़ीटर की नौकरी से हटा कर अपनी मंडली में पूरे वेतन पर नौकर रख लिया था ।

इसी बीच में हैदरावाद के सर सालारजंग वम्वई आये । दादी पटेल ने उनको नाट्यशाला में आमंत्रित किया । सर सालारजग ने दो-एक नाटक देखे और प्रसन्न होकर हैदरावाद आने का निमत्रण दे गये । मडली हैदरा-वाद जाने की तैयारी करने लगी । यह घटना सन् १८७२ की है।

आखिर कठिनाइयों का सामना करती हुई मंडली हैदरावाद पहुँची । यह 'डे क्लब' की प्रथम यात्रा थी क्योंकि 'नाइट क्लब' वाले तो अन्य स्थानों पर नौकर होने के कारण जा ही नही सकते थे । हैदरावाद मे मंडली को बड़ी सफलता मिली । अमीरों-उमरावो ने उसकी आवभगत की । स्वयं निज़ाम भी बहुत खुश हुए और कुछ नाटक ज़नानी ड्योढ़ी पर भी अभिनीत किये गये । हैदराबाद की यात्रा समाप्त कर मंडली वहाँ से वापिस बम्बई चल दी ।

हैदरावाद से लौटकर मंडली पुनः वम्वई में धूम मचाती रही। इस अन्तराल में दादी पटेल ने उसके मान में और वृद्धि कर डाली। एदलजी खोरी से उन्होने कई नाटक लिखाये और उनका अभिनय किया तथा कराया। हातिम विन ताई नाटक में वह स्वयं रंगमंच पर हातिम की भूमिका में प्रगट हुए। इस नाटक का वहुत बड़ा प्रभाव दर्शक मंडली पर पड़ा। इसी प्रकार 'आलमगीर' नाटक भी बड़ा सफल रहा।

यहाँ यह वात भूलनी नहीं चाहिए कि दादी पटेल एलफ़िंस्टन नाटक मंडली मे भी नाज़रजी के साथ भागीदार थे । परन्तु कुछ दिनो से दोनों मे वनती नही थी । अतएव सन् १८७३ मे विक्टोरिया नाटक मंडली नाज़रजी के हाथ में सौप कर दादी पटेल उससे पृथक् हो गये । दो वरस तक नाज़रजी इसके मालिक रहे ।

सन् १८७४ में दिल्ली में एक सरकारी उत्सव था । नाज़रजी ने विचार किया कि विक्टोरिया नाटक मंडली को उर्दू खेल दिखाने के लिए दिल्ली ले जाया जाय और अपने भाग्य की परीक्षा की जाय। इस काम में एक वाधा यह आ पड़ी कि विक्टोरिया मंडली से पृथक् होकर दादी पटेल ने एक नई मंडली 'द ओरीजिनल विक्टोरिया थियेट्रिकल क्लब' के नाम से स्थापित

कर ली और विक्टोरिया मंडली के कई अभिनेता उनके साथ चले गये। इनमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अभिनेता स्त्री भूमिका करने वाला पेसु आवान था जो दादी पटेल के साथ नई मंडली में चला गया था और जिसके अभाव मे विक्टोरिया मंडली एक महान् अभाव का अनुभव कर रही थी। नाजर-जी चिंतित थे कि गाने वाले और स्त्री भूमिका करने वाले के न होने से उन्हें सफलता कैसे मिलेगी ? आखिर नये छोकरों की खोज आरम्भ हुई और बड़ी कठिनाई तथा परिश्रम से दो छोकरे हाथ लगे—एदलजी दादाभाई उर्फ़ एदू कालेजर तथा अरदेशर उर्फ अदो ।

विक्टोरिया मडली दिल्ली पहुँची और पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर अच्छा धन पैदा किया । मंडली के साथ जो अभिनेता एवं अन्य कार्यकर्त्ता गये थे उनमें प्रमुख ये थे—

१. सी० एस० नाज़र (मालिक)
२. खुरशेदजी मेरवानजी बालीवाला (खसरू कोवाद)
३. फ़रामजी दादाभाई अपु (फराम अपु)
४. डोसाभाई फ़रदूनजी मगोल (डोसू एकदस्त)
५. धनजी भाई खुरशेदजी घड़ियाली (धनजु घड़ियाली)
६. मेरवानजी मनचेरजी बालीवाला (खसरू कोवाद के पिता)
७. कावसजी माणकजी कनत्राक्टर (वहुजी)
८. पेस्तनजी रु० लाली (पेसु लाली)
९. नसरवानजी लाली (नसवान लाली)
१०. एदलजी दादाभाई (एदू कालेजर)
११. अरदेशर (अदो)
१२. सोराबजी बादशाह (जर्नलिस्ट)
१३. पेस्तनजी मादन (पेंटर)
१४. क्राउस (जर्मन पेंटर)
१५. अरदेशर चीनाई (अरदेशर मामो)
१६. बमनजी गरदा
१७. एक पारसी बावरची

दिल्ली में विक्टोरिया नाटक मंडली कितने दिन रही, उसने कितने और कौन-कौन से नाटक खेले तथा कितनी सम्पत्ति एकत्रित की—इन बातों का पता नहीं चलता।

दिल्ली प्रवास में एक दुर्घटना का उल्लेख किए बिना आगे बढना कठिन है। गोपीचंद नाटक का अभिनय हो रहा था। खुरशेदजी बालीवाला लोटन की भूमिका में और कावसजी कम्बाटर (बहुजी) जोगिन की भूमिका में रगमंच पर अभिनय कर रहे थे। लोटन जोगिन के चाबुक की मार से नाच रहा था। दुर्भाग्यवश मच पर कुछ कीलें सुथार की लापरवाही से पड़ी रह गई थीं। वे कीलें बालीवाला के पैर में चुभी जा रही थीं, अतएव खुरशेदजी को बड़ी पीड़ा हो रही थी परन्तु फिर भी वह अपने कर्त्तव्य में दत्तचित्त थे। कभी-कभी सफल अभिनय बड़ा महँगा पड़ता है !!

एक अन्य घटना 'सोने के मोल की खुरशेद' नाटक में भी घटी। नाटक चल रहा था। नाटक का एक पात्र शहर कोतवाल जफरखाँ और दूसरा पात्र जहाँबख्श, जो एक राजपरिवार का वारिस था, में तलवार की लड़ाई चल रही थी। कुँवरजी नाज़र अपने कुछ योरोपीय मित्रों सहित पहली पंक्ति में मंच के पास बैठे नाटक देख रहे थे। डोसाभाई (जहाँबख्श) ने जफरखाँ की तलवार पर इतने ज़ोर से वार किया कि कोतवाल की तलवार बीचोबीच से टूट गई और उसका एक टुकड़ा नाज़र जी के शरीर पर जा गिरा। नाज़र जी एकदम आपे से बाहर हो गये और डोसाभाई को बुरा-भला कहने लग गये। उस समय तो डोसाभाई ने कुछ नही कहा परन्तु खेल समाप्त होने के बाद वह भी नाज़र जी को उसी भाषा में बुरा-भला कहने लगे। धनजी-भाई घडियाली तथा पेसु लाली ने बीच-बचाव किया।

दिल्ली का 'सीज़न' समाप्त कर मंडली लखनऊ पहुँची। मंडली विषयक किसी घटना का उल्लेख धनजीभाई ने अपने लेखों में लखनऊ प्रवास के सम्बन्ध में नहीं किया।

लखनऊ से मंडली कलकत्ते पहुँची। कलकत्ते में मंडली एक पारसी के आलीशान मकान में जाकर ठहर गई। सन् १८७४ से पहले कोई भी पारसी नाटक कम्पनी कलकत्ते नही गई थी। कलकत्ते जाकर नाज़रजी ने चौरंगी मे स्थित 'लुईस थियेटर' को किराये पर ले लिया। बाद मे यह थियेटर 'रायल थियेटर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बंगाली गाने-बजाने मे बड़ी रुचि रखते है, अतएव बड़ी व्यग्रता से वे पारसी गायको की प्रतीक्षा कर रहे थे। कई प्रसिद्ध बंगाली गायकों ने पारसी गायकों को अपने घरो पर आमंत्रित किया। उनसे काफ़ी चर्चा संगीत आदि के विषय मे की। बंगाल में उस समय organ का रिवाज चल चुका था, बम्बई में तबला और सारंगी चलता था। केवल कहीं-कहीं fiddle भी

प्रयोग मे आती थी । इन संगीत चर्चाओ का प्रभाव यह पड़ा कि पारसी गायक संगीतशास्त्र की जानकारी और पक्के राग-रागिनियों के ज्ञान से महरूम निकले जिसके कारण उनका प्रभाव बंगालियों पर अच्छा नहीं पड़ा। बालीवाला ने स्पष्ट रूप से पारसी संगीतज्ञों के इस अभाव का आभास कुँवरजी नाजर को दे दिया था । इस समाचार से नाजर को बड़ी निराशा हुई और वह किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये । फिर हिम्मत बाँधी और इंदर-सभा (ओपेरा) की तैयारी आरम्भ कर दी। बम्बई से दादाभाई रतनजी ठूंठी, डा० नसरवानजी नवरोजी पारख और डोसाभाई दुवाश को भी तार भेजकर बुलवा लिया गया। इन तीनों की विशेषता यह थी कि ये कभी भी इंदर-सभा का अभिनय किसी भी स्थिति मे कर सकते थे । इस नाटक मे उन्हे विशेष दक्षता प्राप्त थी ।

कलकत्ते मे इन्दर-सभा चली । राजा इन्दर की भूमिका दादी ठूंठी, गुलफ़ाम की डा० पारख और लालदेव की डोसाभाई दुवाश ने पूरी की । दादाभाई ठूठी के गाने-बजाने और अभिनय के हाव-भाव तथा सुन्दर आकृति का बड़ा प्रभाव दर्शकों के ऊपर पड़ा । परन्तु अभिनेताओ मे परस्पर थोड़ा मनोमालिन्य हो गया । डोसाभाई मंगोल, खुरशेद बालीवाला जो क्रमशः इन्दर और गुलफ़ाम का अभिनय करते थे, अवसर न मिलने से कुछ मलिन हो गये।

कलकत्ते मे और कौन से नाटको का अभिनय हुआ, इसका कोई वर्णन नही मिलता । कुछ दिन रहने के बाद नाजरजी ने बम्बई वापिस जाने का कार्यक्रम बनाया । परन्तु सोचा चलते-चलते एक-दो खेल बनारस में भी दिखा दिये जावें तो अच्छा है । अतएव कलकत्ते से मंडली बनारस आई। बनारस मे अभिनीत किसी खेल का समाचार नही मिलता ।

यहाँ एक बात ध्यान देने की है । भारतेन्दु ने अपने 'नाटक' निबंध मे (र० का० १८८३) में पारसी मंडली द्वारा खेले गये जिस शकुन्तला नाटक का उल्लेख किया है, क्या यह नाटक विक्टोरिया थियेट्रिकल मंडली का ही शकुन्तला (ओपेरा) तो नही था जिसकी रचना खाँ साहब नसरवानजी ने की थी ? आज यदि यह नाटक प्राप्त हो जाता तो यह जिज्ञासा शान्त हो जाती । अस्तु ।

विक्टोरिया नाटक मंडली बनारस से बम्बई वापिस आ गई । बम्बई आकर पुनः पूना का सीज़न सामने देखकर वापिस वहाँ चली गई।

पूना से लौटने पर मंडली की आर्थिक दशा क्या रही, इसके विषय में तो स्वयं नाजरजी ही जानते होंगे। दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ते, बनारस

और पूना प्रवास में खेले गये नाटकों की सूची या कोई वर्णन प्राप्त नहीं होता। वस्तुस्थिति इतनी ही है कि विक्टोरिया नाटक मडली के प्रवास काल में एलफिंस्टन मंडली मे दादाभाई ठूठी डायरेक्टर थे और उनको सब संभलाकर ही नाज़रजी, जो उसके भी मालिक थे, अपनी नाटक-यात्रा पर निकले थे। इस प्रकार बम्बई से विक्टोरिया मंडली दूसरी बार बाहर गई—दादी पटेल के साथ हैदराबाद आदि में (सन् १८७२)और नाज़रजी के साथ सन् १८७४ में।

पूना से वापसी पर कुछ दिन तो विक्टोरिया मंडली नाटक खेलती रही और नाज़रजी एलफिंस्टन और विक्टोरिया दोनों के मालिक रहकर उन्हें चलाते रहे। परन्तु एक दिन उनके मन मे यह बात आई कि विक्टोरिया मंडली से छुटकारा पाया जाय। यह विचार मन मे आते ही उन्होने एक दिन अपने घर पर बड़े-बड़े वेतनभोगी—जिन्हें ६० रुपये से लेकर ३० रुपये तक वेतन मिलता था—अभिनेताओं की एक सभा बुलाई। नाज़र ने स्पष्ट कहा कि मंडली की जोखमदारी उठाने में वह असमर्थ है और मंडली के बड़े अभिनेताओं को चाहिए कि मंडली को खरीद कर अपने हाथों मे लें और उसे व्यावसायिक ढंग से चलावें। नाजरजी का प्रस्ताव सुनकर सभी चकित हो गए परन्तु अन्त मे परिणाम यह हुआ कि पाँच अभिनेताओं ने 'हाँ' करके कम्पनी अपने हाथों में ले ली। ये पांच अभिनेता थे—दादा खुरशेदजी बाली-वाला, डोसाभाई मंगोल, धनजी भाई घडियाली और फ़रामजी अपु। पाँचवें कावसजी कन्त्राक्टर ने क्लब के चलाने की जोखम अपने सिर पर लेने से इनकार कर दिया, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर अभिनेता रूप से भाग लेने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी।

सन् १८७६ में एक प्रकार से विक्टोरिया नाटक मंडली का यह चौथा जन्म था। प्रथम कैखसरु काबरा की स्थापना वाला, दूसरा दादी पटेल की मिलकियत का, तीसरा नाज़रजी की मिलकियत का और अब चौथा अभिनेताओ की मिलकियत का। सन् १८६८ से लेकर सन् १८७६ तक का यह संक्षिप्त इतिहास है।

जनवरी सन् १८७६ में विक्टोरिया नाटक मंडली के इतिहास मे एक नया अध्याय खुला। सम्पत्तिवालों के चंगुल से छूटकर मंडली अभिनेताओं के हाथ में आई। परन्तु इन नये मालिकों के सामने यह समस्या थी कि उसे किस प्रकार चलाया जाय? अपनी अभिनय-कला में वे कुशल अवश्य थे परन्तु मंडली के प्रबंध आदि का अनुभव उन्हें नही था। अधिक मौन रहने का अर्थ

था अभिनेताओं का वेतन और थियेटर आदि के भाड़े की राशि घर में से चुकाना। अतएव बालीवाला का यह सुझाव सब को पसन्द आया कि दादाभाई ठूंठी के पास चला जाय। उस समय ठूठी एलफिन्स्टन मडली मे सौ रुपये मासिक पर डायरेक्टर और एक्टर थे। फिर भी सब उनके पास पहुँचे और कहा—"आप कम्पनी के बडे बाप है।" इसके भागीदार बनकर इसकी डाईरेक्टरी स्वीकार करो और हम सब मिलकर मंडली के मालिक एवं भागीदार बनें। दादी ठूठी की सारी शर्तें स्वीकार की गई और इस प्रकार मंडली के चार के स्थान पर पाँच नये मालिक बने। मडली की गाड़ी नये रूप में आगे बढी।

मडली की बागडोर हाथ मे आते ही दादाभाई ठूठी ने पहला काम यह किया कि पुरानी ड्रेसों को सुधारा, पुराने परदो को 'टच-अप' कराया। पुराने खेलो के अतिरिक्त कोई नया खेल पुरानी ड्रेसों मे नही होने दिया। एक नया काम यह आरम्भ किया कि प्रत्येक नाटक के आरम्भ मे एक 'जलसा' का श्रीगणेश किया गया। इस जलसे मे प्रत्येक गायक एक-एक गाना गाता और बाद मे सब मिलकर कोरस में सम्मिलित होते। स्वयं दादाभाई ठूंठी भी उसमे भाग लेते अतएव किसी अभिनेता का साहस 'ना' करने का नहीं होता था। इस नई वस्तु से सगीत के शौकीन बडे प्रसन्न होते। दर्शकों की सख्या बढती। आगे चलकर इसकी नकल अन्य उर्दू नाटक खेलने वाली मडलियाँ भी करने लगी थी।

पहले की तरह विक्टोरिया नाटक मंडली पुनः प्रवास यात्रा पर निकली और अब की बार कलकत्ता, बनारस, दिल्ली, लाहौर तथा जयपुर में अपने नाटक खेले। परन्तु सन् १८७७ में पुनः परिवर्तन हुआ। फ़रामजी अपु तथा दादाभाई ठूठी उसकी भागीदारी से पृथक् हो गये। शेष तीन साथी भागीदार सन् १८७८ मे मडली को फिर यात्रा पर ले गये। इस बार मडली समुद्रपार रंगून, सिंगापुर आदि स्थानों मे अपनी कला-कुशलता की ध्वजा फहराती रही।

दादाभाई ठूठी के पृथक् होने पर खुरशेदजी बालीवाला मंडली के डाईरेक्टर बन बैठे और अपने अनुभव से काम चलाने लगे। सन् १८८१ मे माडले के राजा थीबू ने मंडली को अपने यहाँ आमंत्रित किया और ३५ नाटकों के अभिनय पर ४३००० रुपया देने की बात पक्की हो गई। इन दिनों माडले अंगरेजी राज्य के अन्तर्गत नही था। अतएव वहाँ जाना एक पूरी जोखम का काम था। फिर भी बालीवाला ने हिम्मत से काम लिया।

विक्टोरिया नाटक मंडली सन् १८८१ में मांडले पहुँची । माडले की यात्रा में मंडली में २७ व्यक्ति थे जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—

१. खुरशेदजी मेरवानजी बालीवाला (मालिक)
२. धनजी भाई रा० घड़ियाली (मालिक)
३. डोसाभाई फ़रदूनजी मगोल (मालिक)
४. पेस्तनजी खुरशेदजी मादन (पेंटर)
५. मेरवानजी पेस्तनजी मेहता
६. नशरवानजी बीरजी गोइपुरिया
७. धनजी भाई धरजोरजी अंजूरबाग
८. होरमसजी शापुरजी तांतरा (होमलू लईली)
९. दोराबजी कावसजी वंजा
१०. बेरामजी कावसजी तातरा
११. होरमजी कावसजी मुल्ला
१२. बमनजी कावसजी गरदा
१३. रुस्तमजी पेस्तनजी मेहता
१४. फ़ैलगरु होरमजी लाला
१५. बापूजी होरमजी पुणेगर
१६. पेस्तनजी होरमजी लाली
१७. पेस्तनजी जीजीभाई बाटलीवाला

आदि, आदि ।

बर्मी भाषा समझने के लिए बालीवाला ने एक रंगून निवासी पारसी श्री कावसजी गांधी को भी दुभाषिये के तौर पर अपने साथ रख लिया था।

माडले में मंडली की बड़ी आवभगत हुई । एक दिन राजा के नौकर टोकरियों में भर कर छोटी-छोटी नारंगियाँ अतिथियों के खाने के लिए लाये। अतिथियों ने उस भेंट को मामूली सी भेंट समझकर एक कोने में टोकरे रख दिये । परन्तु जब कुछ लोगों ने खाने के लिए उन्हे छीला तो अंदर से उन्हें हीरा और माणिक मिले जो छिपाकर उनमें रख दिए गए थे। वास्तव में नारंगियाँ खाने के लिए नही थी। उनमें तो हीरे माणिक केवल भेंट स्वरूप आगन्तुकों का स्वागत करने के लिए छिपाये गये थे । इस समाचार के फैलते ही मंडली के लोग नारंगियों पर टूट पड़े। जिसके हाथ जितने फल आये उतनी ही भेंट उसके पास आ गई। यह थी बर्मा के राजा की उदारता और आतिथ्य-सत्कार। एक दिन और भी राजा थीबू ने ऐसा ही किया। एक छोटा-सा गड्ढा

खुदवाकर उसमें रुपये भरवा दिए और प्रत्येक अभिनेता से कहा कि दोनों हाथों से भरकर जितने रुपये उसकी अंजली में आयें ले जाय। अभिनेता बड़े प्रसन्न हुए और प्रायः सभी के हाथ एक अच्छी रकम लगी परन्तु दोराब वंजा मोटे-मोटे हाथों के कारण केवल सौ सवा सौ रुपये ही पा सका। राजा द्वारा मूल्यवान भेंटो के अतिरिक्त मंडली वालो को निजी रूप में भी वर्मा के लोगों से पर्याप्त भेंट प्राप्त हुई। कहा जाता है कि प्रत्येक का औसत लगभग ४०० से ५०० रुपये और कुछ हीरे-माणिक का रहा। सब खर्चा निकालकर मंडली ५०,००० रुपया गाँठ बाँध कर घर लौटी।

विक्टोरिया मंडली ने एक नये साहस पर कमर बाँधी। सन् १८८५ में लंदन में Colonial Exhibition हुई। वालीवाला अपनी मंडली को वहाँ ले गये। परन्तु वहाँ उन्हें कोई सफलता नहीं मिली, वरन् ऐसा हुआ कि कुछ कायदे-कानून की अजानकारी के कारण उन पर बडा जुर्माना हुआ और वह रकम इतनी भारी थी कि उसकी वजह से मंडली की सारी सम्पत्ति बिक बिका गई। घर लौटने तक के लिए किराये के पैसे न रहे। जसे-तैसे घर पहुँचे। वर्मा की कमाई लंदन मे गँवाई।

मंडली लौट कर आई तो सन् १८८६ में एक दुर्घटना यह घटी कि धनजीभाई घड़ियाली मंडली से पृथक् हो गए। संभवतः इसका कारण लंदन में धन खर्च हो जाना था। तो अब तीन के स्थान पर दो ही व्यक्ति मंडली के मालिक रह गये। सन् १८८९ मे जब मंडली उत्तर भारत में यात्रा कर रही थी तो दिल्ली में डोसाभाई मंगोल ज्वर रोग से पीड़ित हुए और उसी में उनकी मृत्यु हो गई। बस, खुरशेदजी वालीवाला अकेले ही विक्टोरिया मंडली के मालिक बने।

पाठक यह न भूले होंगे कि सन् १८७६ में मडली अभिनेताओं के हाथ में आई थी। उस समय से सन् १८८९ तक तेरह वर्ष का जीवन किन-किन उथल-पुथलों से सिंचित रहा, इसकी संक्षिप्त रूपरेखा यहाँ दे दी गई है। परन्तु इस बीच में विक्टोरिया नाटक मंडली के इतिहास का एक अन्य अध्याय भी है। यह मडली की रजवाडों की यात्रा से सम्बन्ध रखता है।

सन् १८८० में विक्टोरिया मंडली जयपुर में गई। उस समय महाराज रामसिंह गद्दी पर विराजमान थे। उन्हें नाटक देखने और करवाने का बड़ा शौक था। अपना शौक पूरा करने के लिए उन्होंने जयपुर में एक नाट्यशाला भी बनवाई थी जिसका नाम आज रामप्रकाश सिनेमा है। जयपुर के 'गुनीजन'[८६]

८६. इस शब्द का प्रयोग व्यवसायी कलाकारों के लिए होता था जिनमें वेश्याएँ भी सम्मिलित थीं।

को नाट्य-शिक्षा देने के लिए उन्होंने दादाभाई ठूंठी को राज्य में वेतनभोगी डाईरेक्टर बनाकर रख लिया था। दादाभाई ठूंठी के साथ कुछ और भी पारसी छोकरे जयपुर दरबार की सेवा मे रख लिये गये थे। इसी प्रकार पटियाला महाराज ने भी सन् १८९१ ई० में अपने नगर में पारसी कम्पनियों के लिए एक नाट्यशाला का निर्माण कराया था। विक्टोरिया मडली ने अनेको खेल इन रजवाड़ों में धर्मादि के कामों में पैसा देने के लिए मुफ्त किए थे। इनमें से कुछ दान ये हैं—

१८८२	माडले मे कुएँ के लिए	४००)
१८८४	रंगून की दरे-मेहर फंड	१२००)
१८८५	लार्ड रिपन स्मारक फंड	६५८)५०
	प्रोफेसर फ़ास्ट की यादगार में	६७२)७५
१८८८	लेडी रेएवालां मेडिकल वीमेन्स फंड	८६३)
	जरथोस्ती ओनां रहेयाणोंनां फंड	७६१)
१८८९	पंजाब मेकनिक इंस्टीट्यूट	२००)
१८९०		३००)
१८९२	पारसी पूना जिमखाना	३००)
१८९३	आंबाबाई भावनगरी होम फार नर्सिंग	५७२)

आदि, आदि [८७]

जिस समय स्त्री-अभिनेत्रियों को मडलियों मे प्रविष्ट कराने की चर्चा चल रही थी उन दिनों विक्टोरिया मडली के सामने भी यह प्रश्न था कि स्त्री-अभिनेत्रियों को दाखिल किया जाय या नहीं ? बालीवाला ने अंत में यह निश्चय किया कि कुछ अभिनेत्रियों को गाने और नाचने के लिए भर्ती कर लिया जाय। परिणामस्वरूप मिस गौहर, मिस मलका और मिस फातिमा विक्टोरिया नाटक मंडली मे काम करती थी।

विक्टोरिया नाटक मंडली की लम्बी कहानी बड़े संक्षेप मे यहाँ कही गई है। परन्तु उसे समाप्त करने से पहिले उसकी एक अन्य यात्रा का वर्णन करना आवश्यक है। यह यात्रा श्रीलंका की थी। घनजीभाई पटेल अथवा जहाँगीर खंबाता आदि किसी ने भी इस यात्रा का उल्लेख नहीं किया है। सर्वप्रथम सन् १८८९ में विक्टोरिया मंडली श्रीलंका गई थी और वहाँ इसने 'अल्लादीन' तथा 'तिलस्म जोहरा' नाटकों का अभिनय किया था। इनके अतिरिक्त 'इन्दरसभा', 'हुमायूं

८७. पा० प्र० खं० २, पृ० २५३।

नासिर', 'मोहम्मदशाह', 'लैला-मजनूं', 'संगीन वकावली उर्फ़ इन्द्रश्राप', 'सैफे-सुलेमान' और 'हवाई मजलिस' भी श्रीलंका में अभिनीत किये गये थे। इसी वर्ष मंडली ने दो नाटकों को सिंहली भाषा में अनूदित कर उनका अभिनय दिखाया था। एक बार पुनः मंडली दिसम्बर १९१६ से मार्च सन् १९१७ के बीच श्रीलंका गई थी। इस अंतराल में वहाँ ये नाटक खेले थे—अलादीन, आशिक का खून, अली-बाबा, इन्दरसभा, करिश्मये कुदरत, खुरशीदे आलम, खूबसूरत बला, हीर-रांझा, तिलस्माते गुल, दिलेर दिलशेर, नूरजहाँ, नैरगे नाज़, नाज़ां, फ़साने अजायब, फरेब-फ़ित्तना, पाकज़ाद परीन, महाभारत, मारु, रामलीला या रामायण, लैलो-निहार, विक्रम विलास, संगीन वकावली, सैफे-सुलेमान, जंजीर-गौहर, सावित्री, जुल्मे अज़लम, सितमगर, सती अनुसूया, हरिश्चन्द्र और हवाई मजलिस। इस यात्रा में मंडली के डाईरेक्टर होरमजी तांतरा थे।

उपरोक्त तालिका से प्रतीत होता है कि बालीवाला कितने साहसी व्यक्ति थे। अपनी मंडली के लिए उन्होंने बम्बई में एक खास नाट्यशाला का भी निर्माण कराया था, जिसका नाम रखा था 'ग्राड थियेटर'। यह नाट्यशाला ग्राट रोड पर ही बनी थी। दुर्भाग्य की बात यह थी कि सितम्बर सन् १९२३ में बाली-वाला लकवे (पक्षाघात) की बीमारी के कारण ६१ वर्ष की आयु में इस ससार से विदा हो गये। उनके पीछे मंडली कुछ दिन लंगड़ाती-लंगड़ाती चली, परन्तु अन्त में कलकत्ते के मादन थियेटर ने उसे खरीद लिया। मंडली बड़े उत्साह से बनी और धीरे-धीरे शान्त हो गई।

> महफ़िले यार से उठने को उठे तो लेकिन,
> दर्द की तरह उठे, गिर पड़े आंसू की तरह।

एम्प्रेस विक्टोरिया नाटक मण्डली

इस मडली के संस्थापक जहांगीर पेस्तनजी खंबाता थे। ज्वाइंट स्टाक कम्पनी लिमिटेड के रूप में इसकी स्थापना सन् १८७६ में देहली में हुई थी। इसमें कई शेयर-होल्डर्स थे। सबसे अधिक शेयरों के मालिक ला० लालसिंह दूल्हसिंह थे। जहांगीर खंबाता उसके निर्देशक-बोर्ड के सदस्य थे।

श्यावक्ष के अनुसार वतुमल के लीलाखाने में विक्टोरिया नाटक मंडली नाटक कर रही थी। उसके विज्ञापन बाँटने वाला एक व्यक्ति दादी पोलादवंद नाम का था। लालाजी ने दादी से एक बड़ी थियेट्रिकल कम्पनी की स्थापना करने की अपनी इच्छा प्रगट की और दादी को अच्छा इनाम देने का वायदा किया। दादी पोलादवंद ने खंबाता से इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने का

प्रोत्साहन दिया। खंबाता इसलिए तत्पर नहीं हुए कि उनके पास डायरेक्टर बनने के लिए आवश्यक शेयर खरीदने के लिए धन की कमी थी। लालाजी ने यह कमी भी पूरी कर दी और जहाँगीर कम्पनी के निर्देशक-बोर्ड में आ गये।[८८]

मैनेजिंग डायरेक्टर बनने के बाद पहला काम जहाँगीर ने यह किया कि विक्टोरिया नाटक मंडली के विख्यात चित्रकार श्री पेसु भादन को अपनी मंडली में बुला लिया। तत्पश्चात् कुछ अभिनेता भी वहाँ से आकर जहांगीर की मडली में सम्मिलित हो गये। इन अभिनेताओ मे कावसजी खटाऊ, ऐदू सैलानी, नसलु सरकारी जैसे सुरीले कंठवाज़ तथा दोराबजी सचीनवाला जैसे आल-राउड-ऐक्टर सम्मिलित थे।

कावसजी खटाऊ के साथ मिलकर जहाँगीर ने 'इंदरसभा' तैयार की और एक वोहरे मुंशी को नाटक लिखने का काम सौंपा। इंदरसभा में कावसजी खटाऊ ने गुलफ़ाम का और नसलु सरकारी ने सब्ज़परी का पार्ट किया। दोराब सचीन ने पुखराज परी और लाल देव की भूमिका काऊ कलगीर ने पूर्ण की। राजा इंदर का पार्ट कावसजी हाडा ने किया था। नाटक बड़ा सफल रहा और मंडली को अच्छी ख्याति मिली। सामान्य जनता जहागीर खवाता द्वारा प्रस्तुत नाटक देखने के लिए उमडी पड़ती थी। इंदरसभा के पश्चात् 'छैल बटाऊ मोहना रानी' नाटक का अभिनय हुआ। कावसजी खटाऊ छैलबटाऊ और नसरवानजी सरकारी (नसलु सरकारी) मोहना रानी का पार्ट करते थे। 'लैला-मजनूं' मे भी लैला का पार्ट नसलु सरकारी तथा मजनूं का पार्ट कावसजी खटाऊ का रहता था। 'गुलबकावली' में खटाऊ ताजुलमलूक और बकावली वही नसलु सरकारी बनते थे। जहांगीर के नाटक देखने के लिए रजवाड़े के राजा लोग तक आया करते थे। किसी एक राजा की इच्छा के अनुकूल एक नया नाटक खेला गया, जिसका नाम था 'खुदाबख्श'। यह एदलजी खोरी की रचना थी। इसमें कावसजी खटाऊ ने नादिर का पार्ट किया। नाटक बहुत सफल रहा और राजाजी को भी पसन्द आया। तत्पश्चात् 'अलीबाबा चालीस चोर' का नाटक संगीतवद्ध तैयार कराया गया। सारे गीत कावसजी के लिखे हुए थे। नाटक मे चोरो के सरदार का पार्ट जहांगीर खवाता ने स्वयं किया। कावसजी अलीबाबा बने और मरजीना का पार्ट नसलु सरकारी ने लिया था। नाटक रंगमंच पर खूब जमा और मंडली की प्रसिद्धि मे चार चाँद लग गये। 'खुदाबख्श' नाटक के बाद दिल्ली में और कौन-सा नाटक खेला गया, इसका विवरण नहीं मिलता। परन्तु दिल्ली

---

८८. पारसी नाटक तख्तो, पृ० ११३।

की एक घटना स्मरण रखने योग्य है। एक दिन दोपहर को रिहर्सल समाप्त होने पर एक चपरासी ने आकर कावसजी से कहा—"आप से कोई मेमसाहब मिलने आई है।" यह सुनकर जहांगीर खबाता उससे मिलने चले। देखते ही दंग रह गये—दमामदार देखाव, नाजुक बदन, चाँद सा मुखड़ा। खंबाता सोचने लगे कि संगमरमर से निकाली हुई यह पुतली, आकाश की एक हूर एक देशी आदमी से मिलने कौन आ गई है। परन्तु थोड़ी ही देर बाद पता चला कि वह लड़की मेरी फेन्टन थी। बाप मिलिटरी का पेंशनर था और वह अपने पिता के साथ मैजिक लैन्टर्न शो दिखाया करती थी। जिस स्थान पर खंबाता की मंडली ठहरी थी, उसी स्थान को भाडे पर लेने के लिए आई थी, जिससे नाटक न होने वाले दिन वह अपनी शो दिखला सके। रविवार के लिए अपना मंडवा भाड़े पर देने के लिए खबाता तैयार हो गये। यह आयरिश लड़की अपने पिता से पूछ कर जवाब देने का वायदा कर वहाँ से चली गई। जहांगीर ने उसे अपने नाटक मे आने का प्रवेश-पत्र दे दिया। इंदरसभा के नाटक में मेरी फेंटन आई तो बाद को नाटक देखने का चस्का ही उसे लग गया। भारत मे रहने के कारण वह अच्छी हिन्दी और उर्दू बोल लेती थी। नाटकों में नाटक का पार्ट करने वाले कावसजी खटाऊ की ओर उसका विशेष आकर्षण था। इस प्रकार कावसजी से मेरी फेंटन की मित्रता मजबूत होती चली गई। जब कम्पनी दिल्ली से मेरठ गई तो मेरी फेंटन भी कावसजी के साथ वहाँ पहुँची। परन्तु उसका बाप वहाँ से उसे ले आया। इस पर कावसजी पुन. दिल्ली आये और मेरी को अपने साथ मेरठ लिवा ले गये। आगे क्या हुआ यह सब अन्य अवसर पर लिखा जायगा।

एक अन्य घटना जहाँगीर के साथ यह घटी कि पुलिस से उसकी कुछ खटपट हो गई। कारण मुफ्त पास न देना था। एक दिन जहाँगीर जिस गाड़ी मे बैठे अपने नाटक के विज्ञापन बाँट रहे थे उससे एक लडका जख्मी हो गया और अस्पताल जाकर मर भी गया। पुलिस ने यह अवसर देखकर जहाँगीर को परेशान करना आरम्भ कर दिया। मुकदमा चला। अंत मे खबाता मुक्त तो हो गये, परन्तु अनुभव बडा कटु रहा। पाँच-छः महीने मंडली मेरठ में रही।

मेरठ से मडली लाहौर गई। हीरामंडी मे मंडवा बनाया। मडली के सब अभिनेता एक 'गुलाब-बाग' नामक पारसी मकान में जाकर ठहरे। उसी के पास किसी बंगले मे कावसजी और मेरी फेंटन भी ठहरे। १९ जनवरी सन् १८७८ को शनिवार की रात 'खुदादाद' नाटक का अभिनय हुआ। टिकट दोपहर तक ही बिक चुके थे परन्तु भीड़ टूटी पड़ रही थी। रात के ८॥ बजे नाटक आरम्भ

हुआ। संख्या की अधिकता के कारण अंतिम क्लास का मंच टूट गया। भारी शोर मच गया। अच्छा यही था कि किसी को चोट नहीं आई । लाहौर में मंडली लगभग पाँच महीने रही। वहाँ 'अलीबाबा' चीनी वेशभूषा में खेला गया। दृश्य आदि भी चीनी ही थे। उन दिनों जमशेद जी फ़रामजी मादन की एल्‌फ़िस्टन नाटक मंडली अमृतसर में अपने नाटक खेल रही थी । रंगून वाले डा० नशरवानजी नवरोजी पारख उसके एक भागीदार थे। एक दिन ये कम्पनी वाले लाहौर की सैर करने के लिए आए । खंबाता का नाटक देखकर पारखजी बहुत प्रसन्न हुए और उनकी सफलता पर बधाई देने लगे ।

एम्प्रेस विक्टोरिया नाटक मंडली का एक वर्ष का कार्य-काल पूरा हो रहा था। अभिनेताओं ने नोटिस दिया कि उनका वेतन दुगना कर दिया जाय अन्यथा वे त्यागपत्र दे देंगे। उनका मंडली के साथ जो अनुबंध था उसका कार्य-काल केवल एक वरस था। जहाँगीर का माथा ठनका। उसने समझ लिया किसी की चाल है। बाद को उसे मालूम पड़ा कि कोई पारसी सज्जन अभिनेताओं को फुसलाकर उन्हें अपनी नई कम्पनी मे बुलाना चाहते थे। खंबाता ने उन्हें बहुत समझाया कि उनका वेतन घन मारा जायगा, परन्तु उनकी समझ मे नही आया। इसी प्रसंग को लेकर खंबाता ने एक प्रहसन भी लिखा जिसका शीर्षक था 'भंगड सभा'। इसमें दिखाया गया है कि एक ले-मगू व्यक्ति किस तरह कम्पनी खोलकर सब को डुबो डालता है।

लाहौर से मंडली अमृतसर गई। परन्तु वहाँ तो पहले से ही विक्टोरिया और एल्‌फिस्टन मंडलियाँ पर्याप्त धन खीच चुकी थी। गरमी का मौसम था। अमृतसर भट्टी की तरह जल रहा था। अधिकांश अभिनेता बम्बई चले गये। रह गये केवल मेरी फेंटन, कावसजी, नसरवानजी सरकारी तथा तीन-चार अन्य अभिनेता। इन्हें लेकर खंबाता दिल्ली पहुँचे। पहले कम्पनी के सामान का सब चार्ज ला० लालसिंह को दिया। दिल्ली मे आकर लालसिंह के ही होटल मे ठहरे थे। यह होटल भी कुछ दिनों से बंद था। जहाँगीर तो बिलकुल गरीब थे। पास मे एक कौड़ी भी नही थी। लालाजी ही खाने के लिए भी रुपये देते थे। मंडली बंद हो गई।

एम्प्रेस विक्टोरिया नाटक मंडली ने अपने उपरोक्त नाटकों के अतिरिक्त 'जुल्मे-नारवा' भी 'ट्रिवोली थियेटर' मे खेला था।

धनजी भाई के लेखानुसार रुस्तम सचीनवाला तथा दोराब सचीनवाला नामक दोनों भाई जो बाद मे विक्टोरिया नाटक मंडली मे प्रविष्ट हुए, पहले इसी एम्प्रेस थियेट्रिकल मंडली मे थे। बाद में आल्फ्रेड नाटक मंडली में ऐ:

सेलानी' के नाम से प्रसिद्धि पाने वाला अभिनेता एदलजी मगलो हजाम ने इसी मंडली में काम किया था। प्रसिद्ध मोरावजी आग्रो भी खबाता की मंडली की उपज थे।

खबाता के नाटक 'ट्रिवोली थियेटर' में हुआ करते थे। जिन दिनों कावसजी खटाऊ 'नावेल्टी' में खूने-नाहक नाटक का अभिनय करते थे, उन दिनों खबाता 'ट्रिवोली' में जुल्मे-नारवा का अभिनय करने में सलग्न थे। यह जुल्मे-नारवा संभवतः शेक्सपियर के 'ओथेलो' अथवा 'सिम्बेलीन' का रूपांतर था।

खबाता की कम्पनी के अन्य अभिनेताओं में अरदेशर विनाई और मेहरजी एन० सरवेअर का नाम भी बड़े आदर के साथ लिया जाता है। यही मेहरजी सरवेअर खबाता की कम्पनी छोड़कर बाहर आ गए और अपनी नई मंडली 'दी पारसी रिपन थियेट्रिकल क०' के नाम से स्थापित कर ली। मेहरजी सरवेअर लगभग ५०-५२ भारतीय नगरों में घूमे और नाटक दिखाये।

खबाता की कम्पनी और अभिनेताओं की कार्यकुशलता से दादा भाई ठूठी इतने प्रसन्न हुए थे कि उन्होंने कम्पनी में भागीदार बनने की इच्छा प्रकट की परन्तु ऋणवद्ध होते हुए भी खबाता इस पर राजी न हुए।

आल्फ्रेड नाटक मण्डली

सन् १८६८ की बात है। प्रसिद्ध पारसी महाशय फ़रामजी गुस्तादजी दलाल उपनाम 'फलुधुस' अपना एक क्लब चलाते थे, जिसका नाम 'जैंटिल्मैन अमेच्योर्स' था। इस क्लब का प्रसिद्ध नाटक अगरेज़ी के Lady of Lyons का गुजराती रूपान्तर था। नाटक में महिला-पात्र का अभिनय फ़रामजी जोशी करते थे। एक दिन फलुधुस के कानों में यह आवाज़ पड़ी कि उनके क्लब के कुछ अभिनेता क्लब छोड़कर कोई नई मंडली की स्थापना करना चाहते हैं। फलुधुस तीखे स्वभाव के मनुष्य थे। क्रोध में आकर रिहर्सल रूम में ही अपना क्रोध दिखाते हुए उबल पड़े और फरामजी जोशी से उनकी गर्मागर्म झड़प हो गई। परिणाम यह निकला कि फ़रामजी जोशी ने 'जंटिल्मैन अमेच्योर्स' को छोड़ दिया और एक नई नाटक मंडली की स्थापना का विचार मन में स्थिर कर डाला।

सन् १८७१ में फ़रामजी जोशी ने जो नाटक मंडली स्थापित की उसका नाम 'आल्फ्रेड नाटक मंडली' रखा। इस सम्बन्ध में डा० धनजी भाई पटेल का कहना है—"आल्फ्रेड नाटक मंडली मुंबई माँ १८७१ ना सालमां कार्इक चमत्कार करवा बरपा थई हती।"[८९] डा० पटेल के अनुसार मंडली के एक

---

८६. पा० ना० त०, पृ० २०६।

संस्थापक खुरशेदजी वापा सोला भी थे जो स्वयं तो बहुत बड़े अभिनेता नहीं थे परन्तु उनका सुगठित शरीर और ऊँचा कद था तथा लम्बा पारसी कोट और मोहोरानी पगड़ी पहनते थे। 'जहाँबख्श अने गुलरुखसार' नाटक में उन्होंने 'जिन' (देव) का अभिनय किया था जो उनके शरीर आदि पर खूब फबता था। सन् १८७१ ही में इस मंडली ने 'शहजादा शियाबरश' नाटक का अभिनय किया। नाटक की कथावस्तु ईरान के इतिहास से सम्बन्ध रखती थी। फरामजी जोशी ने उसमें 'फिरंगीस' नामक महिला का पार्ट किया था। नाटक बड़ा सफल रहा और ऐसी धूम मची कि आलफ्रेड नाटक मंडली नई मंडली होते हुए भी अपनी समकालीन विक्टोरिया एवं जोराम्ट्रियन मंडलियों की पंक्ति में प्रविष्ट हो गई। 'जहाँबख्श अने गुलरुखसार'[९०] में फरामजी जोशी गुलरुखसार की भूमिका में रंगमंच पर आए थे। इसी नाटक में, कहा जाता है, सब से प्रथम यांत्रिक दृश्यों का आविष्कार हुआ था। पहाड़ का फटना, पृथ्वी से देव का बाहर निकलना और परियों का हवा में उड़कर रंगमंच पर आना आदि दृश्य देखकर दर्शक बड़े प्रसन्न होते थे। चमत्कार की इस दृश्यावली ने आलफ्रेड की प्रसिद्धि में विशेष सहायता की थी।

मंडली के निर्देशक हीरजी खंबाता थे जो अपने समय के एक माने हुए कलाकार थे। मंडली का दुर्भाग्य था कि सन् १८७१ ई० में ही फरामजी जोशी केन्द्रीय मुद्रालय के अधीक्षक होकर उससे पृथक् हो गए और उसी वर्ष स्वरचित नाटक 'आबे इबलीस' के प्रदर्शन एवं निर्देशन के पश्चात् हीरजी खंबाता ने भी मंडली से विदा माँग ली। मंडली ने उपरोक्त दो नाटकों के अतिरिक्त शेक्सपियर के नाटक Taming of the Shrew का गुजराती अनुवाद कराकर अभिनय किया और फिर बंद हो गई।

आलफ्रेड नाटक मंडली का यह जीवन-काल कितने वर्ष का रहा इसका कुछ पता नहीं चलता। एक अन्य स्रोत से पता चलता है कि सन् १८७६ में भी 'शहजादा स्यावक्ष' का अभिनय इसमें हुआ था परन्तु लेखक ने इसका कोई प्रमाण उद्धृत नहीं किया।[९१]

---

९०. इसके लेखक खुरशेदजी वमनजी फ़रामरोज़ थे और यह चार अंक का नाटक २५ अप्रैल, सन् १८७१ में छपकर प्रकाशित हुआ।

९१. (क) उर्दू थियेटर, डा० नामी (अप्रकाशित अंश)।
(ख) मानकशाह बलसारा ने भी स्थापना सन् १८७६ में बताई है। (भेंट में)

सन् १८८१ के लगभग नानाभाई रुस्तमजी राणीना जो 'पारसी नाटक मंडली' के भी भागीदार रह चुके थे पुन. आलफ्रेड को संजीवन देने के लिए आगे आए। कावसजी पालनजी खटाऊ, मानकजी मास्टर और इब्राहीम मोहम्मद अली फिर उनके साझीदार बने। मंडली को स्थिर करने के लिए इन मालिकों ने 'नाटक उत्तेजक मंडली' का सारा सामान अपनी मंडली के लिए खरीद लिया। रिहर्सल आरम्भ हो गए और तैयारी होने के पश्चात् मंडली ने प्रवास यात्रा आरम्भ कर दी। सन् १८८१ ही में देहली में 'चंद्रावली' नाटक का सफल अभिनय हुआ। अब मंडली कभी बम्बई रहती और कभी बाहर चली जाती। सन् १८८३ में बम्बई में 'हरिश्चन्द्र' नाटक का अभिनय हुआ और फिर लाहौर में सन् १८८४ में यही नाटक बड़े धूमधाम से खेला गया। इस समय तक मंडली को प्रसिद्ध अभिनेता और निर्देशक सोराबजी ओगरा की सेवाएँ प्राप्त हो गई थीं। संभवतः ये दोनों नाटक मुराद अली मुराद के लिखे हुए थे, परन्तु निश्चित विवरण इस सम्बन्ध में प्राप्त नहीं है। तीन बरस तक आलफ्रेड नाटक मंडली धन और ख्याति बटोरती रही और अन्त में सन् १८८६ में पुन. बंद हो गई। इस प्रकार आलफ्रेड के दूसरे जीवन-काल की अवधि केवल पांच बरस की रही।

तीसरी आवृत्ति में मंडली में कावसजी पालनजी खटाऊ के हाथ में इसकी बागडोर आ गई परन्तु कावसजी के पास धनाभाव के कारण उसे चलाने में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पुन. मुहम्मद इब्राहीम ने कावसजी की धन से मदद की और मंडली का उद्धार किया। इन दिनों मंडली में सोराबजी ओगरा 'निर्देशक', अमृतलाल 'प्रधान अभिनेता' और मेरी फेन्टन 'प्रधान अभिनेत्री' थी। मेरी फेंटन के आने से पारसी रंगमंच पर एक नई बात पैदा हो गई। अब तक आलफ्रेड में कोई भी महिला अभिनेत्री नहीं रखी जाती थी परन्तु कावसजी का जोर होने से कोई अधिक बोल नहीं सका। फिर भी मंडली के अभिनेताओं और भागीदारों में असंतोष की एक लहर फैल गई। सामान्य दर्शक मंडली इसके विरोध में थी।

प्रस्तुत आवृत्ति में मुराद अली 'मुराद' मंडली के प्रमुख नाटककार (मुंशी) थे और उनके नाटकों का ही दौरदौरा रहता था। परन्तु 'बेताब' का महाभारत सन् १९१३ में इसी में खेला गया। मंडली पूना, हैदराबाद और अहमदनगर की यात्रा पर निकली और जब लौटकर आई तो बम्बई के 'रायल थियेटर' में, जो अब 'रायल सिनेमा' के नाम से प्रसिद्ध है, अपने-खेल दिखाने लगी।

श्री मानकशाह बलसारा का कहना है कि मेरी फेन्टन के कारण विशेष रूप से भागीदारों में नाचाकी हो गई और जब मंडली क्वेटा से लाहौर जाने

की थी (सन् १८८९-९०) कि कावसजी को आलफ्रेड नाटक मंडली सौंपकर मोहम्मद अली इब्राहीम उससे अलग हो गए। लाहौर का सीजन मंडली के लिए अच्छा साबित हुआ।

नारायण प्रसाद 'बेताब' के आत्मचरित से मालूम पड़ता है कि सन् १९०९ में वह मंडली के साथ कलकत्ते गये थे। उन दिनों वह कम्पनी में १७५ रु० पर नौकर थे। अतएव खटाऊ की मिलकियत में मंडली चलती रही।[९२] सन् १९१६ में जब मंडली लाहौर में थी तो कावसजी की वहाँ मृत्यु हो गई। उनके पुत्र जहाँगीर खटाऊ ने यथाशक्ति मंडली को चलाने का प्रयत्न किया परन्तु सन् १९२७ में यह मंडली 'मादन थियेटर्स' के हाथ में चली गई। इसका अंतिम नाटक 'पत्नी-प्रताप' था जिसके लेखक नारायण प्रसाद 'बेताब' थे।

आलफ्रेड नाटक मंडली की यही कथा है। सन् १८७१ से लेकर १९२७-३२ तक कम से कम ५६ वर्ष अन्यथा ६१ वर्ष तक मंडली में अनेक उतार-चढ़ाव आये। मिलकियत बदली, अभिनेता बदले और फिर न जाने क्या-क्या हुआ।

न्यू आलफ्रेड नाटक मण्डली

मोहम्मद इब्राहीम आलफ्रेड मंडली से सन् १८९०-९१ में पृथक् हो गए, यह पहले कहा जा चुका है। पृथक् होने पर आलफ्रेड या मूल आलफ्रेड नाटक मंडली कावसजी खटाऊ की मिलकियत में चली गई और मोहम्मद इब्राहीम ने मानकजी मास्टर के सहयोग में अपनी दूसरी नाटक मंडली बना ली जिसका नाम रखा 'न्यू आलफ्रेड नाटक मंडली'। इस प्रकार न्यू आलफ्रेड पुरानी आलफ्रेड की ही एक स्वतंत्र शाखा थी। मोहम्मद इब्राहीम ने अपने नाटक बम्बई में 'रायल थियेटर' में जो अब 'रायल सिनेमा' कहलाता है, खेलने आरम्भ किए।

सोहराब जी ओगरा जो रंगमंच पर स्त्रियों को लाने के नितान्त विपरीत थे, न्यू आलफ्रेड में निर्देशक बनकर चले आये। जगन्नाथ महाशंकर, भगवान अमृतलाल, अब्दुल रहमान काबुली, इलाइजर, निसार और पुरुषोत्तम तथा हास्य-अभिनेता नसरवानजी जीवाजी दादर और रतनशाह जीवाजी दादर नाम के दोनों भाई भी न्यू आलफ्रेड में सम्मिलित हो गये। अमृतलाल, नर्वदाशंकर, निसार और मोतीलाल आरम्भ में स्त्री-पार्ट किया करते थे।

मंडली ने 'मुराद' के 'अलाउद्दीन' नाटक से अपना जीवन प्रारम्भ किया। उसके बाद 'मुराद' के ही कई नाटकों का अभिनय 'न्यू आलफ्रेड' में हुआ। सन्

---

९२. आत्म-चरित, पृ० ८३। इसी आलफ्रेड के डायरेक्टर अमृतलाल केशवलाल नायक थे।

१९१०-११ में न्यू आलफ्रेड के ही थियेटर में भयंकर आग लगी और मंडली बंद हो गई।

मानकशाह बलसारिया के कथनानुसार सन् १९१४ में मंडली को संजीवन मिला। अर्देशर घड़ियाली ने अपनी भागीदारी समाप्त कर दी थी और मोहम्मद अली की मृत्यु हो चुकी थी, संभवत. आग लगने और मंडली में हानि होने के संदर्भ से। अतएव अब मंडली में मिलकियत मानकजी मास्टर की थी। इस बार उसने अपना कार्य 'अछूता दामन' खेलकर प्रारम्भ किया। छ: महीने की तैयारी के पश्चात् मंडली बाहर निकल गई और बरेली भी पहुँची। तीन साल बाद मंडली घूमघाम कर वापिस बम्बई लौट आई। इस बार लगभग तीन वर्ष तक वह बाहर जाकर धूम मचाती रही। दो-तीन बरस प्रवास यात्रा में रहने के पश्चात् मंडली वापिस आ गई।

सन् १९१८ में मंडली की भागीदारी में पुन: परिवर्तन हुआ। अब मानकजी मास्टर, मानकशाह बलसारिया और मेहरबानजी कापड़िया उसके मालिक बने। सन् १९२० में मंडली सूरत, अहमदाबाद और मुरादाबाद की प्रदर्शनी में गई। मुरादाबाद में ही मैंने पहली बार मंडली का 'अभिमन्यु' और 'चलता-पुर्जा' नाटकों का अभिनय देखा था। राजा बहादुर प्रहसन में मंडली के निर्देशक सोराबजी ओगरा का अभिनय देखते ही बनता था। उनका तकिया कलाम था -'तारीफ तो यही है।' सोराबजी को रंगमंच पर देखते ही दर्शक उनके तकिया-कलाम को दोहराने लगते थे। उनके अभिनय की यही प्रशंसा थी। पाँच बरस के बाद मंडली फिर बम्बई आ गई।

न्यू आल्फ्रेड कई वर्षों तक नाटक दिखाती रही और बम्बई में वह बहुत ख्याति प्राप्त करने में सफल रही। सन् १९३२ में मंडली ने जयपुर के वर्तमान महाराजा सवाई मानसिंहजी के कथन पर जयपुर में डेरे डाले। वहाँ पहले से ही महाराजा रामसिंहजी का बनवाया हुआ थियेटर-हाल था ही। मंडली ने बड़े चाव से अपने कई नाटकों के अभिनय यहाँ किए। उसी वर्ष मंडली बम्बई वापिस आ गई।

इस बार बम्बई आने से पहिले जब मंडली लाहौर में थी तो उसके मालिकों (बलसारिया और कापड़िया) को मानकजी मास्टर का तार मिला और वे लाहौर से बम्बई वापिस आये। मानकजी मास्टर उस समय बीमार थे। मानकजी ने अपना आधा हिस्सा भी अन्य दोनों साझियों को बेच दिया और उसके बाद केवल ५०० रु० महीना अपने खर्च के लिए जीवन भर लेते रहे। अब न्यू आलफ्रेड के केवल दो ही भागीदार रह गये।

सन् १९३७ मे जब मंडली देहली में थी तो कुछ कारणो से उसे बंद कर दिया गया। मालिकों ने मंडली के पर्दे और ड्रेसें तथा सारा सामान ला० मुकुन्द लाल को सुपुर्द कर दिया। उन्होंने उसका एवज़ाना देने का वायदा करके भी आज तक कोई पैसा नहीं दिया।

मंडली के निर्देशकों में सोरावजी ओगरा का नाम ऊपर आ चुका है । उन्होंने मंडली की ख्याति के लिए जो प्रयत्न किये आज भी जब बलसारियाजी ८६ वर्ष के हो गये हैं तो बड़े स्नेह और सम्मान से उसका स्मरण करते है। उनका कहना है कि 'हम तो सोरावजी के हाथ मे थे। वह जैसा चाहते करते हम कभी उनके मामले में दखल नहीं देते थे। सोराबजी की ख्वाहिश पूरी करने के लिए हमें अगर कोई चीज़ कही बाहर से मँगानी पड़ती तो भी हमे मँगाकर उसे उन्हें देना पड़ता था।

सोरावजी पक्षाघात के कारण जब मंडली से पृथक् हो गये तो भोगीलाल उसके निर्देशक बने । बाद मे पं० राधेश्याम सहायक के रूप मे काम करते थे। पं० राधेश्यामजी ने 'मेरा नाटक काल' मे बड़ी अतिशयोक्तियों से काम लिया है । बलसारिया साहब ने मुझे बताया कि उन्हें कभी भी एकमात्र निर्देशक का पद नहीं दिया गया । इसमें सन्देह नहीं कि पण्डितजी के व्यवहार से बलसारियाजी की पुत्री बड़ी दुखी प्रतीत हुई । परन्तु बलसारियाजी उन्हें यह कहकर मना कर दिया "जो हो गया उसका जिकर क्या।" ये शब्द उनकी उदारता और महानता के सूचक हैं। वास्तव मे चाहे पं० राधेश्याम हों, चाहे ला० मुकुन्दलाल हों उनके मन मे किसी के प्रति कोई आक्रोश नहीं है। उन्होने अपनी क्षतियों को जीवन की उदारता के वशीभूत हो, उदासीनता का बाना पहना दिया है ।

न्यू आलफ्रेड मडली ने आरम्भ में 'मुराद' लखनवी, 'दिल', 'हश्र' और 'अहसन' आदि के बनाये हुए नाटक खेले परन्तु बाद मे राधेश्याम के हिन्दी नाटको की प्रधानता रही । डा० नामी ने अपने अप्रकाशित 'उर्दू-थियेटर' मे एक स्थान पर लिखा है कि मोहम्मद अली ने इस शर्त पर आलफ्रेड को धन से सहायता दी थी कि उसमें 'उर्दू के नाटक खेले जायें' । मैंने बलसारिया जी से, जो आलफ्रेड के मैनेजर थे और न्यू आलफ्रेड से भी जिनका इतना सम्बन्ध था, इस विषय मे चर्चा की तो उन्होंने बताया कि किसी भागीदार की कोई शर्त नही रहती थी । जिसका जितना हिस्सा होता था उसी के अनुपात में वह मंडली के लाभ और हानि का उत्तरदायी था । सब मालिक अपना-अपना काम परस्पर बाँट लिया करते थे ।

१९१०–११ मे न्यू आलफ्रेड के ही थियेटर में भयंकर आग लगी और मंडली बंद हो गई।

मानकशाह बलसारिया के कथनानुसार सन् १९१४ में मंडली को सजीवन मिला। अर्देशर घड़ियाली ने अपनी भागीदारी समाप्त कर दी थी और मोहम्मद अली की मृत्यु हो चुकी थी, सम्भवतः आग लगने और मंडली मे हानि होने के सदमे से। अतएव अब मंडली मे मिलकियत मानकजी मास्टर की थी। इस बार उसने अपना कार्य 'अछूता दामन' खेलकर प्रारम्भ किया। छः महीने की तैयारी के पश्चात् मंडली बाहर निकल गई और बरेली भी पहुँची। तीन साल बाद मंडली घूमधाम कर वापिस बम्बई लौट आई। इस बार लगभग तीन वर्ष तक वह बाहर जाकर धूम मचाती रही। दो-तीन बरस प्रवास यात्रा मे रहने के पश्चात् मंडली वापिस आ गई।

सन् १९१८ मे मंडली की भागीदारी मे पुनः परिवर्तन हुआ। अब मानकजी मास्टर, मानकशाह बलसारिया और मेहरवानजी कापडिया उसके मालिक बने। सन् १९२० मे मंडली सूरत, अहमदाबाद और मुरादाबाद की प्रदर्शनी में गई। मुरादाबाद में ही मैंने पहली बार मंडली का 'अभिमन्यु' और 'चलता-पुर्जा' नाटको का अभिनय देखा था। राजा बहादुर प्रहसन मे मंडली के निर्देशक सोराबजी ओगरा का अभिनय देखते ही बनता था। उनका तकिया कलाम था 'तारीफ तो यही है।' सोराबजी को रंगमंच पर देखते ही दर्शक उनके तकिया कलाम को दोहराने लगते थे। उनके अभिनय की यही प्रशंसा थी। पाँच बरस के बाद मंडली फिर बम्बई आ गई।

न्यू आलफ्रेड कई वर्षों तक नाटक दिखाती रही और बम्बई मे वह बहुत ख्याति प्राप्त करने में सफल रही। सन् १९३२ मे मंडली ने जयपुर के वर्तमान महाराजा सवाई मानसिंहजी के कथन पर जयपुर मे डेरे डाले। वहाँ पहले से ही महाराजा रामसिंहजी का बनवाया हुआ थियेटर-हाल था ही। मंडली ने बड़े चाव से अपने कई नाटकों के अभिनय यहाँ किए। उसी वर्ष मंडली बम्बई वापिस आ गई।

इस बार बम्बई आने से पहिले जब मंडली लाहौर में थी तो उसके मालिकों (बलसारिया और कापडिया) को मानकजी मास्टर का तार मिला और वे लाहौर से बम्बई वापिस आये। मानकजी मास्टर उस समय बीमार थे। मानकजी ने अपना आधा हिस्सा भी अन्य दोनों साझियों को बेच दिया और उसके बाद केवल ५०० रु० महीना अपने खर्च के लिए जीवन भर लेते रहे। अब न्यू आलफ्रेड के केवल दो ही भागीदार रह गये।

सन् १९३७ में जब मंडली देहली मे थी तो कुछ कारणों से उसे बंद कर दिया गया। मालिकों ने मंडली के पर्दे और ड्रेसें तथा सारा सामान ला० मुकुन्द लाल को सुपुर्द कर दिया। उन्होंने उसका एवज़ाना देने का वायदा करके भी आज तक कोई पैसा नही दिया।

मंडली के निर्देशको में सोराबजी ओगरा का नाम ऊपर आ चुका है। उन्होंने मंडली की ख्याति के लिए जो प्रयत्न किये आज भी जब बलसारियाजी ८६ वर्ष के हो गये हैं तो बड़े स्नेह और सम्मान से उसका स्मरण करते हैं। उनका कहना है कि 'हम तो सोराबजी के हाथ में थे। वह जैसा चाहते करते हम कभी उनके मामले में दखल नही देते थे। सोराबजी की ख्वाहिश पूरी करने के लिए हमें अगर कोई चीज कही बाहर से मँगानी पड़ती तो भी हमे मँगाकर उसे उन्हें देना पड़ता था।

सोराबजी पक्षाघात के कारण जब मंडली से पृथक् हो गये तो भोगीलाल उसके निर्देशक बने। बाद में पं० राधेश्याम सहायक के रूप में काम करते थे। पं० राधेश्यामजी ने 'मेरा नाटक काल' में बडी अतिशयोक्तियो से काम लिया है। बलसारिया साहब ने मुझे बताया कि उन्हे कभी भी एकमात्र निर्देशक का पद नही दिया गया। इसमें सदेह नही कि पडितजी के व्यवहार से बलसारियाजी की पुत्री बडी दुखी प्रतीत हुई। परन्तु बलसारियाजी उन्हें यह कहकर मना कर दिया "जो हो गया उसका जिकर क्या।" ये शब्द उनकी उदारता और महानता के सूचक है। वास्तव मे चाहे पं० राधेश्याम हों, चाहे ला० मुकुन्दलाल हों उनके मन में किसी के प्रति कोई आक्रोश नहीं है। उन्होंने अपनी क्षतियों को जीवन की उदारता के वशीभूत हो, उदासीनता का बाना पहना दिया है।

न्यू आलफ्रेड मंडली ने आरम्भ में 'मुराद' लखनवी, 'दिल', 'हश्र' और 'अहसन' आदि के बनाये हुए नाटक खेले परन्तु बाद में राधेश्याम के हिन्दी नाटकों की प्रधानता रही। डा० नामी मे अपने अप्रकाशित 'उर्दू-थियेटर' मे एक स्थान पर लिखा है कि मोहम्मद अली ने इस शर्त पर आल्फ्रेड को धन से सहायता दी थी कि उसमें 'उर्दू के नाटक खेले जायें'। मैंने बलसारिया जी से, जो आलफ्रेड के मैनेजर थे और न्यू आलफ्रेड से भी जिनका इतना सम्बन्ध था, इस विषय मे चर्चा की तो उन्होंने बताया कि किसी भागीदार की कोई शर्त नही रहती थी। जिसका जितना हिस्सा होता था उसी के अनुपात मे वह मंडली के लाभ और हानि का उत्तरदायी था। सब मालिक अपना-अपना काम परस्पर बाँट लिया करते थे।

न्यू आलफ्रेड के अभिनेताओं मे सोराबजी ओगरा, मोगीलाल, अमृतलाल (अम्बू), उमर भाई, कादर भाई, एलाइजर (मदूडी), निसार, पुरुषोत्तम और नर्वदाशंकर प्रधान थे। अमृतलाल के विषय मे बलसारिया जी ने एक घटना बड़ी मनोरंजक बतलाई। जब मंडली लखनऊ मे नाटक खेल रही थी तो वह ज्वर से पीड़ित थे और डाक्टर ने उन्हे हिलने-डुलने से बिल्कुल मना कर दिया था। ज्वर का तापमान बहुत अधिक था। स्वाभाविक था कि उनकी भूमिका कोई अन्य व्यक्ति करे। जब अम्बू को यह मालूम हुआ कि उसकी भूमिका दूसरे अभिनेता को दे दी गई है तो उससे न रहा गया और ज्वर मे ही भागता-भागता मडली के नाटक-मंडप तक पहुँचकर अन्दर चला गया। बड़ी हठ करके उसने अपना पार्ट स्वयं किया। मालिको ने मना भी किया लेकिन उसकी समझ में कोई बात नही आई। मजबूरी से मालिको को झुकना पड़ा। परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि अम्बू का ज्वर जाता रहा और उसे फिर कोई पीड़ा नहीं हुई।

मडली के दृश्यों को चित्रित करने वाले मियाँ हुसैन खाँ अंगूठाछाप आदमी थे। अपने काम में बड़े कुशल। उन दिनों मंडली उन्हें १५००) महीना देती थी। बाद मे उनके सहयोगी दीनशा ईरानी बन गये।

आलफ्रेड तथा न्यू आलफ्रेड के नाटको में से निम्नलिखित नाटक अधिक प्रसिद्ध हुए :—

हरिश्चन्द्र (ले० मुरादअली), चन्द्रावली उर्फ 'ताजेनेकी' (ले० वही), लैला मजनूं (ले० 'दिल'), नादिरशाह (ले० वही), शीरी फरहाद, गुलरू-जरीना, मुस्तफाबेनज़ीर (ले० इफ़तख़ार हुसैन), श्रीमती मजरी (ले० अब्बास अली), नूरानी मोती (ले० वही), नूरे-इस्लाम (ले० वही), शाही फ़रमान (ले० वही), देहली दरबार (नैश्यर अम्बालवी), मुस्तफा कमालपाशा (ले० वही), आलम-आरा (ले० वही), सुल्ताना डाकू (ले० वही), बंगाल का जादू (ले० वही), जहरे-इश्क (ले० वही), माशूक अरब (ले० वही), ईद का चाँद (ले० वही), महाभारत (ले० बेताब), सीताबनवास (हश्र), बनदेवी (हश्र), सूरदास (हश्र), आँख का नशा (हश्र), इदरसभा (अमानत), जल्लाद आशिक (महशर अम्बालवी), दर्दे जिगर (वही), मोहब्बत का फूल (वही), वावफ़ा कातिल (वही), रोमन दिलरुबा (राहत मुरादाबादी), नूर की पुतली (वही), चलता पुर्ज़ा (वही), खूबसूरत बला (राहत मुरादाबादी), अछूता दामन (वही), मशरकी हूर (वही), यहूदी की लड़की (वही), अभिम[illegible] राधेश्याम), भक्त प्रह्लाद (वही), परिवर्तन ([illegible]) आदि-आदि।

आलफ्रेड और न्यू आलफ्रेड नाटक मंडलियो के सम्बन्ध मे दो-एक बातो पर ध्यान आकर्षित करना अति आवश्यक है। डा० नामी ने अपने अप्रकाशित शोध ग्रंथ के अंत में 'पारसी नाटक कम्पनी' को आलफ्रेड नाटक मडली की स्थापना के साथ मिलाकर आलफ्रेड मडली को सन् १८५४ में स्थापित माना है और उसे आलफ्रेड नाटक मंडली सख्या १ का नाम दिया है। यह ठीक नहीं है। सन् १८५३ में पारसी नाटक मंडली की स्थापना हुई थी।[९३] किसी-किसी ने सन् १८५३ के स्थान पर इसे १८५४ माना है। सभवतः इसी कारण डा० नामी ने भी १८५४ ही लिख लिया है। डा० धनजी पटेल ने स्पष्ट रूप से आलफ्रेड की स्थापना १८७१ मे मानी है।[९४]

"गुजरातनी नाट्यशताब्दी महोत्सव स्मारक ग्रंथ" प्र० का० सन् १९५२ ई० मे रमणीक श्रीपतराय देसाई का एक लेख है 'गुजरात नाटक कम्पनियोनी सूची'। इसमे भी आलफ्रेड नाटक मंडली की कई सूचनाएँ है। उनके आधार क्या-क्या हैं? कुछ पता नही चलता। परन्तु यह अवश्य है कि इन सूचनाओ से एक भ्रम पैदा हो जाता है कि कौन-सा तथ्य ठीक है और कौन-सा गलत है।

यदि कुछ और प्रामाणिक सामग्री मिल सके तो इन झमेलों को स्पष्ट किया जा सकता है।

नाटक उत्तेजक मण्डली (१८७६–९२)

विक्टोरिया नाटक मडली के मत्री पद से कैखसरू काबराजी ने इस्तीफ़ा दे दिया। परन्तु नाटक जैसी कला की वृद्धि के लिए उनके मन में असीम उत्साह था। अतएव सन् १८७५-७६ मे, लगभग विक्टोरिया मडली से पृथक् होने के छः बरस बाद, उन्होंने 'नाटक उत्तेजक मंडली' की स्थापना की। इसके मूल मालिक फरामजी गुस्तादजी दलाल (फलुघुस) थे।

मंडली की स्थापना मे कई कारण काम कर रहे थे। पहली बात थी विक्टोरिया मडली की मालिकी मे परिवर्तन। दूसरी बात यह थी कि ग्राट रोड के ऊपर ठाकर शेठ की नाटकशाला मे खूब चहल-पहल थी और दर्शकों में नाटक देखने की लालसा तीव्रतर होती जा रही थी। तीसरी बात यह थी कि रंगमंच पर स्त्री अभिनेत्रियो का भाग लेना आरम्भ हो गया था और इस प्रथा का पर्याप्त विरोध था और चौथी बात यह थी कि यान्त्रिक दृश्यों की बहुलता ने नाट्य-कला को जादूगीरी के खेलो में परिवर्तित कर दिया था। अधिकांश दर्शक इन

---

९३. पा० त० त०, पृ० २।
९४. वही, पृ० २०६।

आश्चर्य भरे दृश्यों को देखने के लिए आने लगे थे। अभिनय कला की उत्कृष्टता की ओर उनका ध्यान नही जाता था। अतएव कैखसरु कावराजी के मन मे यह बात उठी कि नाट्य-कला और अभिनय-कला दोनों की सुरक्षा इसी मे है कि ऐसी मंडली स्थापित की जाय जो उपरोक्त त्रुटियों से मुक्त हो। इसी कारण उन्होंने नाटक उत्तेजक मंडली की नाटकशाला भी पृथक् निर्मित कराई और उसका स्थान ग्रांट रोड न रखकर क्राफर्ड मारकेट के सामने का एक भूखण्ड निश्चित किया। परन्तु इस नाटकशाला के बनने से पहिले मंडली धोबी तालाब पर फ़रामजी कावसजी हाल में प्रत्येक शनिवार को अपना नाटक खेला करती थी।

मंडली के नाटकों की भाषा गुजराती थी। सर्वप्रथम नाटक जिसका अभिनय हुआ कावराजी का लिखा 'सुडी वच्चे सोपारी' (सरौते में सुपारी) खेला गया। मंडली को सबसे अधिक ख्याति 'हरिश्चन्द्र' नाटक द्वारा मिली। यह नाटक रणछोड़ भाई उदयराम का लिखा हुआ था और लगभग १०० रातों तक चला। जिन दिनों नाटक उत्तेजक मंडली 'हरिश्चन्द्र' नाटक खेल रही थी, उन दिनों एल्फिन्स्टन नाटक मंडली शंकर सेठ की नाटकशाला मे 'अलादीन' नाटक चला रही थी और दादी पटेल हैदराबाद की बेगमों के साथ इन्दर-सभा में संलग्न थे।

'हरिश्चन्द्र' नाटक मे भाग लेने वाली मंडली के भागीदार एवं अभिनेता सभी सम्मिलित थे। इनमें प्रमुख होरमसजी धनजी भाई मोदी (हरिश्चन्द्र), फ़रामजी गुस्तादजी दलाल (विश्वामित्र), और कावसजी गुरगीन (नक्षत्र) थे। तारामती का पार्ट अर्देशर हीरामाणिक करते थे।

'हरिश्चन्द्र' नाटक द्वारा मालिकों ने एक अच्छी धनराशि पैदा की। फरामजी कावसजी हाल तो केवल एक वर्ष में भाड़े पर लिया गया था। अतएव इस अवधि के समाप्त होते-होते, जैसा पहले कहा जा चुका है, मंडली ने क्राफर्ड मारकेट के सामने वाले मैदान में अपना 'एस्प्लेनेड थियेटर' बनवा लिया। यहीं रणछोड़ भाई का दूसरा नाटक नल-दमयन्ती खेला गया। इस नाटक को देखने के लिए हिन्दुओं की बड़ी संख्या नाटकशाला मे आने लगी। स्त्रियाँ विशेष रूप से आती थी, अतएव उनके बच्चों के लिए मंडली ने पालने लगवा कर और कुछ नौकर उनकी रखवाली के लिए मुकर्रिर कर स्त्रियों को उनकी चिन्ता से मुक्त कर दिया। यदि कोई बालक रोता तो द्वारपाल उसकी माँ को मंडवे में जाकर सूचना दे देता और माँ वहाँ से आकर अपने बच्चे को चुप करा जाती।

कैखसरु का मस्तिष्क इन सभी योजनाओं में काम कर रहा था और मालिकों की जेबें धन से भरती जा रही थीं। परन्तु मालिक ऐसे नाशुकरे निकले कि अपनी कमाई का कोई भी भाग उन्होंने कावराजी को नहीं दिया।

नाटक मंडली १६ बरस तक निरंतर चलती रही। मंडली का एक आकर्षक छोकरा जो मुडी वच्चे सोपारी मे मनीजेह नामक स्त्री का पार्ट करता था,[उसे पहले जोरास्ट्रियन वालो ने ललचा लिया और पीछे वहाँ से वह विक्टोरिया नाटक मंडली मे चला गया। इसका नाम मेहरवानजी पेस्तनजी मेहता था।

नाटक उत्तेजक मंडली का तीसरा नाटक 'फरीदून' था। यह वही नाटक था जो कैखसरु कावराजी ने दादी ठूठी की हिन्दी नाटक मंडली के लिए लिखा था। परन्तु दादी ठूंठी उसका मूल्य नही चुका पाये थे इसलिए कावराजी ने कुछ हेरफेर करके उसे नाटक उत्तेजक मंडली को दे दिया। कुछ महीनों तक यह नाटक भी अच्छा चला।

इसके पश्चात् चौथा नाटक 'सीताहरण' खेला गया। इसके लेखक नरमदाशकर थे। नरमदाशकर स्वयं भी एक बडे विख्यात अभिनेता थे। इस प्रसग मे एक अन्य 'सीताहरण' नाटक की याद आ गई जिसे दामोदर रतनजी शोमाणी ने लिखा था। यद्यपि इसका प्रकाशन १ अक्टूबर सन् १८८४ मे हुआ था परन्तु नाटक में लेखक द्वारा दी गई सूचना के अनुसार—

"सवत १९३४ मा (१८७७ ई०) प्रसिद्ध पंडीत गटुलालजी घनस्यामजीनी देखरेख नीचे चालती नीतीदर्शक नाटक मडलीअे आ नाटक रंगभूमी ऊपर भजवी बताव्यो हतो।" अतएव स्पष्ट है कि नरमदाशकर के सामने एक माडल मौजूद था। क्योंकि नाटक उत्तेजक मंडली का सीताहरण सन् १८७० के बाद लिखा गया था। सीताहरण के संदर्भ में एक बात याद रखने की है। जिस समय राम और सीता प्रथम बार रंगमंच पर आये उसी समय एकदम सारी हिन्दू दर्शक मंडली अपनी अपनी सीटों से उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़कर नमस्कार करने लगी। यह थी उस युग की धार्मिक भावना की अभिव्यंजना।

नाटक उत्तेजक मडली ने पारसी और हिंदू दोनों के आख्यानों को लेकर नाटक लिखवाये और अभिनीत किये। इन नाटकों में अधिकाश कावराजी के लिखे नाटक थे जिन्होंनें हिन्दू कथाओं पर भी अपनी लेखनी चलाई यथा नदवत्रीसी, लवकुश आदि। सन् १८८३ ई० में कैखसरु ने एक नाटक 'निदाखानु' लिखा। इसका आधार अंगरेजी लेखक शेरीडन का 'स्कूल ऑव स्कैण्डल'

था। परन्तु इसमें तत्कालीन पारसी संसार का रंग दिया गया था। परिणाम यह रहा कि नाटक बड़ा सफल रहा और मंडली ने अच्छा पैसा कमाया। इस नाटक में एक पात्र 'नाजामायनसकोर' था जिसका पार्ट दाराशा नवरोजजी पटेल ने इतनी कुशलता से किया कि समाचारपत्रों तक में उसकी प्रशंसा छपी। इसी अभिनेता ने 'काला मँढ़ाँवाला' नामक एक पारसी संसारी नाटक में शीरीन का पार्ट करने में बड़ा कमाल दिखाया था। स्त्री-भूमिका में दाराशा पटेल को जो सफलता मिली वह इसी से मालूम पड़ती है कि नल-दमयन्ती में दमयंती, सुभद्राहरण में सुभद्रा, आबे इबलीस में उरीका और रुस्तम-सोहराव में तहमीना की भूमिका को देखकर दर्शक मंडली अति संतुष्ट हुई।

नाटक उत्तेजक मंडली के कुछ प्रसिद्ध अभिनेता ये थे—

१. मनचेरशाह रुस्तम करामना
२. दोराबजी वर्जा
३. नवरोजजी दीतिया
४. सोराबजी रुस्तमजी बाच्छा
५. पेमु हुतसेना उर्फ पेसु ढेडी

यद्यपि नाटक उत्तेजक मंडली लगभग पूरे १६ वरस तक चली परन्तु इस काल में कुछ उतार-चढ़ाव भी हुए। एक समय ऐसा भी आया कि फरामजी गुस्तादजी दलाल अकेला ही मंडली का मालिक बन गया। अन्य भागीदार उसके कटु और तीव्र स्वभाव के कारण मंडली को छोड़कर पृथक् हो गए। ऐसी परिस्थिति में फरामजी दलाल ने कैखसरु काबराजी को छोड़कर एक हिन्दू लेखक शंकर बापाजी त्रीलोकेकर का सहारा पकड़ा। यह एक अच्छे गुजराती लेखक थे। बम्बई के हाईकोर्ट में 'अनुवादक' थे। इनके लिखे हुए कुछ नाटकों का अभिनय नाटक उत्तेजक मंडली में हुआ यथा दमयंती स्वयंवर, विक्रमचरित्र याने शनीग्रहनो कोप, सुभद्राहरण और चित्रसेन गांधर्व। कवि होने के कारण नाटकों के गायन भी लेखक स्वयं ही लिखता था।

इन दिनों दादी ठूठी विक्टोरिया मंडली से पृथक् हो गए थे। अतएव फरामजी ने किसी न किसी तरह उन्हें नाटक उत्तेजक मंडली में भागीदार बना लिया। अतएव मंडली में रिहर्सल रात्रि-कल्ब के तरीके से चलता था। धीरे-धीरे दादी ठूठी ने उसे दिवस-कल्ब में परिवर्तित कर लिया। गुजराती की अपेक्षा हिन्दुस्तानी के नाटक लिखवाने आरम्भ किए। उनके रिहर्सल भी शुरू हो गये। यह देखकर फ़रामजी बड़ा नाराज़ हुए, परन्तु दादी ठूठी ने

उसे अपने काबू में कर लिया और एक छोटी-सी भूमिका भी दे दी। इस नाटक का नाम था 'परिस्तान की परियाँ'। परन्तु यह नाटक निष्फल रहा। इस ओपेरा की असफलता से फरामजी बड़ा असंतुष्ट हो गया। परिणाम यह हुआ कि दोनों भागीदार पृथक् हो गए। नाटक मंडली बिखर गई। मंडली का सारा सामान नानाभाई राणीना ने अपनी आलफ्रेड मंडली के लिए ख़रीद लिया।

जिस नाटक उत्तेजक मंडली के नाटक देखने के लिए गवर्नर आते, जिस मंडली के सहायक नगर के प्रख्यात गृहस्थ थे और जिसने अपूर्व ख्याति प्राप्त कर बम्बई में अपना डंका बजाया, अन्त में उसका यह परिणाम हुआ और फ़रामजी गुस्तादजी दलाल अपने जीवन के नाटक अनुभव को लेकर शेयर-बाज़ार में चला गया। उसने अपनी १६ बरस की मंडली को बेच दिया।

एल्फिंस्टन ड्रामेटिक क्लब

इस क्लब की स्थापना एल्फ़िस्टन कालेज में उसी के विद्यार्थियों द्वारा हुई थी। सन् १८६३ में जब कुंवरजी सोराबजी नाज़र ने मेट्रिक्यूलेशन परीक्षा पास करके कालेज में प्रवेश किया तो उनके प्रयत्न से इस क्लब की नींव पड़ी। इस कार्य में उन्हें अपने कुछ सहपाठियों से भी सहायता मिली। इन सहयोगियों में दो का प्रमुख हाथ था—रंगून वाले डा० नसरवानजी नवरोजजी पारख और पूना में निवास करने वाले लेफ़्टिनेंट कर्नल डा० धनजीशाह नवरोज-जी पारख। दोनों भाई भाई थे।

डा० धनजी भाई पटेल का कथन है—"कालेज जीवन में नाज़र को जो नाटक का चस्का लगा था वही धीमे-धीमे बढ़ता गया।" यह क्लब एक अमेच्योर्स कलाकारों का क्लब था जिसके प्रधान सदस्य थे—

१. लेफ़्टिनेंट कर्नल धनजीशाह नवरोजजी पारख
२. कुंवरजी सोराबजी नाज़र
३. धनजी सी० मास्टर (पालखीवाला)
४. माणेकजी सुरती
५. पेस्तनजी नसरवानजी वाडिया
६. मेरवानजी नसरवानजी वाडिया
७. डी० एन० वाडिया
८. नसरवानजी नवरोजजी पारख
९. के० एन० कांगा

उपरोक्त सभी पारसी युवक अव्यवसायी कलाकार, उच्च और कुलीन कुटुम्बों के दीपक थे तथा अपने-अपने व्यवसाय में व्यस्त थे। उन्हें रुपये-पैसे की चिंता न थी। नाटक के लिए जिस पोशाक की आवश्यकता होती वह भी अपने व्यय से तैयार कराते थे। परन्तु इनका मुख्य उद्देश्य अँगरेजी नाटकों का अभिनय करना था। शेक्सपियर के नाटकों की ओर विशेष रुचि रहती थी। जहांगीर खबाता ने इनके द्वारा अभिनीत नाटकों की सूची इस प्रकार दी है—

1. Bengal Tiger. 2. Love's Quarrels
3. Living too fast. 4. Village Lawyer.
5. Mock Doctor. 6. Bombastes Furioso.
7. Taming of the Shrew. 8. Thumping Legacy
9. Othello. 10. Lying Vallet.
11. Illustrious Stranger. 12. Our Wife
13. Two Gentlemen of Verona. 14. Sham Doctor.

अंगरेजी नाटकों के प्रस्तुतीकरण मे उन दिनों Prologue (पूर्व कथन) अथवा Epilogue (पश्चात् कथन) का व्यवहार हुआ करता था। इन कथनों के लेखक और पाठक प्रायः नाजरजी या वाडिया-बंधु ही हुआ करते थे। सन् १८६९ मे एक समाचारपत्र मे प्रकाशित विज्ञापन मे लिखा था "An original Prologue composed by Mr. C. S. Nazir" दूसरी बार समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ "An original Prologue by Mr. P. N. Wadia"

२४ मई सोमवार सन् १८६९ को महारानी विक्टोरिया के जन्मदिवस पर इस क्लब ने तीन घंटे की एक ट्रेजिडी का अभिनय किया था। उसके बाद Taming of the Shrew अभिनीत हुआ। सन् १८८९ मे पेस्तनजी वाडिया ने, इसी क्लब की सरक्षता मे, एक कामिडी का अभिनय नावेल्टी थियेटर में किया था। इस अभिनय के दर्शनार्थ तत्कालीन राज्यपाल की पत्नी भी थियेटर मे आई थी। उसकी समस्त आय काउन्टेस आफ डफ़रिन फंड मे दे दी गई। अभिनेताओं मे लेफ्टिनेंट कर्नल पारख को नही भुलाया जा सकता। Merchant of Venice में पोर्शिया, और Honey Moon में ज़मोरा

---

९५. पा० ना० त०, पृ० ४.

का अभिनय पारख ने इस कुशलता से किया था कि वरसों तक दर्शक उन्हें स्मरण करते रहे ।

क्लब उत्तरोत्तर बढता जा रहा था। उसमें नये सदस्यो का भी प्रवेश रहता था । अतएव धीरे-धीरे यह क्लब अव्यवसायी न रहकर व्यवसायी बन गया और कुंवरजी नाजर इसके मालिक बन गए। नया क्लब 'एलफिन्स्टन नाटक मडली' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और मूल क्लब का नाम 'जूना एलफिन्स्टन क्लब' पड़ गया। 'जूना एलफिंस्टन क्लब' के गति-संचालक वाडिया-बंधु बने।

एलफिंस्टन नाटक मंडली ने व्यावसायिक नाटक मडली का रूप धारण कर लिया। पहले इसमें गुजराती के नाटकों का अभिनय हुआ और बाद में यह उर्दू नाटक भी खेलने लगी । जैसा पहले कहा जा चुका है, इसके मालिक कुंवरजी नाजर बने।

गुजराती नाटकों में उल्लेखनीय एक नाटक 'अलाउद्दीन अने जादुई फ़ानस' था, जो फ़रामजी सोरावजी मरूचा का लिखा हुआ था। इस नाटक में अनेकों यान्त्रिक दृश्य दिखाये गये थे । स्वयं कथानक ही चमत्कारपूर्ण था। दर्शक ऐसे अद्भुत दृश्यों पर बड़े प्रसन्न होते थे। इसमें अभिनय-कला कुशल कलाकार धनजी भाई सी. मास्टर थे ।

एक अन्य नाटक, जिसे कुंवरजी नाजर ने मंडली में अभिनीत कराया, इन्दर-सभा' था । इन्दर-सभा, जैसा विदित है, पद्यबद्ध नाटक (ओपेरा) है । सवादो के बीच में कथानक को जोडने के लिए जो वाक्य आवश्यक हुए है उन्हें भी पद्य में ही लिखा गया है। मूल प्रति का तो पता नही चलता परन्तु विक्टोरिया नाटक मंडली में जो इंदर-सभा खेली गई थी उसे एक उर्दू कवि ने तैयार किया था । परन्तु एलफिंस्टन की इंदर-सभा तक, संभवतः, उर्दू मुंशियों का प्रवेश पारसी नाटक मडलियों में नही हुआ था । अस्तु! इस अभिनय की विशेषता यह थी कि गानेवाली परी जैसे रंग की पोशाक पहन कर रंगमंच पर प्रवेश करती थी, इंदर की सारी सभा में वही रंग दिखाई देता था। इस नाटक में नायक गुलफाम का पार्ट नसरवानजी नवरोजजी पारख ने और नायिका सब्जपरी का पार्ट श्यावक्ष रुस्तम जी मास्तर ने किया था। 'खुसरो-सीरीन' नाटक में 'शीरी' का पार्ट करने वाले खुरशेदजी बेहरामजी हाथीराम राजा इदर बने थे । यह मालूम नही पड़ता कि नाटक उर्दू में खेला गया या गुजराती में ।

तीसरा अभिनीत नाटक 'सुलेमानी शमशीर उर्फ निर्दोष नूरानो' था जिसके लेखक नसरवानजी नवरोजजी पारख थे। यह पाँच अंकों का नाटक

था और नूरानी का पार्ट पेस्तनजी नामक अभिनेता ने किया था, जिसको लोगो ने इतना पसद किया कि अभिनेता का नाम ही 'पेस्तन नूरानी' रख दिया। नाटक में एक प्रहसन भी खेला जाता था जिसका शीर्षक था 'आस्मान चल्ली' (गौरेया पक्षी) । यह पार्ट नसरवानजी एदलजी वाछा करते थे। नायिका का पार्ट जमशेदजी फरामजी मादन किया करते थे ।

सन् १८७४ में नसरवानजी पारख के दूसरे नाटक 'फल्कसूर-सलीम' का अभिनय किया गया। यह अभिनय शकरसेठ की नाट्यशाला में हुआ। यह गुजराती नाटक था ।

पाँचवाँ नाटक खुरशेदजी बमनजी फरामरोज प्रणीत 'पाकदामन गुलनार' था। अब की बार नसरवानजी पारख ने गुलनार का पार्ट किया था और श्यावक्ष मास्तर एक नन्ही परी के रूप में रंगमच पर आये थे। नाटक गुजराती मे था और बड़ा सफल रहा था। श्यावक्ष मास्तर ने इसमे एक गाना गाया था जो उन दिनो घर-घर में गाया जाने लगा था। उसकी पक्ति इस प्रकार थी—

सबर रे सबूरी, तुं पकड़ गुलनार,
खांच मनने, ख्याल करो, खूनी कटार ॥

जिस समय एलफिंस्टन ड्रामेटिक क्लब यह धूम मचा रहा था, उस समय नाजर जो विक्टोरिया नाटक मंडली और एलफिंस्टन क्लब दोनो के मालिक थे। परन्तु एक दिन उनके मन में आया कि विक्टोरिया मडली से वह पृथक् हो जाये तो अच्छा है। अतएव उन्होंने अभिनेताओ की एक सभा आमत्रित की और जैसे-तैसे विक्टोरिया मडली खुरशेदजी बालीवाला, फरामजी अपु, डोसाभाई मंगोल और धनजी भाई घडियाली को सुपुर्द कर दी। स्वय केवल एलफिंस्टन नाटक मंडली, जिसमें एलफिंस्टन ड्रामेटिक क्लब पहले से ही विलीन हो चुका था, के मालिक बने।

इस पृथक्करण के पश्चात् एलफिंस्टन मंडली में उनके साथ नसरवानजी नवरोजजी पारख (बाद मे डाक्टर), जमशेदजी मादन, फरामजी सकलात तथा नसरवानजी वाछा आदि थे। इनमें भी नसरवानजी पारख प्रायः सभी नाटको मे प्रमुख अभिनेता रहते थे। डा० पारख का कण्ठ बडा मधुर था। वह इतन सफल और आकर्षक अभिनेता थे कि अन्य मडलियों वाले भी उनकी नकल करते थे। यहाँ तक कहा जाता है कि कावसजी खटाऊ एव [illegible] खवाता भी उनको अभिनय कला के अनुगामी थे। परन्तु दादाभाई [illegible] रवानजी के अभिनय मे सहमत न थे। [illegible] ने अभिनेता [illegible] की

अनुकृति से रोका करते थे। सन् १८७४ में जब नाजर जी विक्टोरिया मंडली को लेकर उत्तर भारत की प्रधान यात्रा पर निकले तो एलफिंस्टन मंडली का डिरेक्टर दादाभाई ठूठी को ही बनाकर गये, परन्तु इस समय तक डा० नसरवानजी पारख मंडली से पृथक् होकर अपने धंधे में लग चुके थे।

दादाभाई ठूंठी ने निर्देशक बनने पर एदलजी खोरी का पल्ला पकड़ लिया। उनसे एक नया नाटक लिखवाया जिसका नाम था 'सितमगर'। सितमगर का पार्ट स्वयं दादाभाई ठूंठी ने किया था। यह भी गुजराती नाटक था। इसकी वेशभूषा और वातावरण सभी ईरानी था। नाटक के अभिनेताओं में मास्टर रतनजी नवरोजजी मीनबाग्रा, मेरवानजी मुंशी और रतनजी ठूठी तीनों ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की थी। लुटेरों के सरदार का पार्ट करते हुए दादी ठूठी ने एक गीत गाया था—

दर चाले हाले दीलमां नोंधो लो,
मंजल दीठ हरगम जो जो—
जीव लई नवकीज नाठो छे,
चीन पर कूदी गयो छे,
होयां कोई नवको आयो छे,
बतावो हमने छोकरो ॥ वगैरह

अन्त में अनेकों उतार-चढ़ाव के पश्चात् एलफिंस्टन मंडली कलकत्ते के जमशेदजी फरामजी मादन के हाथ में चली गई। मादन ने मंडली को यथा संभव चलाऊ रखा; नये अभिनेताओं को दाखिल किया।

इस मंडली द्वारा अभिनीत किसी उर्दू अथवा हिन्दी नाटक का पता नहीं चलता।

पारसी नाटक मंडली (प्रथम)

सन् १८५४ में निकली विज्ञप्ति के अनुसार 'हिन्दू-ड्रामेटिक कोर' पहली नाटक मंडली थी जिसने नाटक अभिनय आरम्भ किया और जिसकी स्थापना सन् १८५३ में हुई थी। उसी वर्ष एक 'पारसी ड्रामेटिक कोर' की स्थापना भी हुई। धनजी पटेल का कहना है—

"....मुम्बईमां पारसीओओ ई० स० १८५३ ना अक्तूबर महीना मां नाटक करवानु काम पहले वहेलुं शरु कीधु हतुं, अने ते शरु करनार पण पारसी-ओज हता। ओ मंडले पोतानी पोतानी कलवनु नाम 'पारसी नाटक मंडली' आप्यु हतुं

अने ए मंडलीनो ते वखतनो मालिक अेक चटपट्या स्वभावनो पारसी हतो।"[९६]

पारसी नाटक मंडली की स्थापना पेस्तनजी धनजीभाई मास्तर के घर में हुई थी और पेस्तनजी स्वयं एक अभिनेता होने के नाते उसमें सम्मिलित हुए थे। स्थापना के समय जिन अभिनेताओं ने इसमें भाग लिया और भागीदारी भी रखी, वे थे पेस्तनजी मास्तर, नानाभाई रुस्तमजी राणीना, दादाभाई अेलिअट, मनचेरशाह बे० मेहरहोमजी, भीखाजी ख० मुस, कावसजी हो० बिलिमोरिया (डाक्टर), रुस्तमजी हो० हाथीराम (डाक्टर), तथा कावसजी नसरवानजी कोहोदारू जो पीछे से कावसजी गुरगीन के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह विक्टोरिया नाटक मंडली की भागीदारी में भी सम्मिलित थे।

स्थापना के साथ ही साथ मंडली को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक प्रबंधक समिति भी बनाई गई। इस समिति में बड़े-बड़े गण्यमान्य पारसी गृहस्थों को सम्मिलित किया गया। इसके सदस्य थे—प्रोफ़ेसर दादाभाई नवरोजी, खरशेदजी न० कामा, अरदेशर फ़० मुस, जहाँगीर बरजोरजी वाछा तथा डा० भाऊदाजी। डा० भाऊदाजी महाराष्ट्री होते हुए भी नाटक-कला के शौकीन और बड़े मददगार व्यक्ति थे।

डा० डी० जी० व्यास के मतानुसार इस मंडली का सबसे पहला नाटक एदलजी खोरी कृत 'रुस्तम अने सोराब' (१८७०) था[९७] श्यावक्ष दाराशाह शरोफ ने भी इसी नाटक को सर्वप्रथम नाटक बताया है।[९८]

सन् १८५५ के रास्तगोफ्तार पत्र से पता चलता है कि उक्त सन में इस मंडली द्वारा 'फरेदून' नामक नाटक का अभिनय किया गया था और साथ में 'उठाऊगीर मुरली' नाम का प्रहसन भी खेला गया था। विज्ञापन इस प्रकार था—

पारसी नाटक
पेटरीआटिक फंडना फ़ायेदा सारु
पारसी नाटक मंडली सरवे खासो आमनी सेवा मे अरज करे छे,
के तेओ पोतानो १२मो वारनो नाटक, तारीख २७मी

---

९६. पा० त० त०, पृ० २।
९७. गुजराती नाट्य पत्रिका, अक्तूबर सन् १९५६, पृ० ५।
९८. पुराणी पारसी नाटक तख्ती, पृ० १६।

फ़ेवरवारी अने वार भोम दीसे, गरांट रोड ऊपरना
तमाशाना घरमां नीचे जणावेला खेल करी बतावशे।
पादशाह फ़रेदूननु दास्तान

अने साथे

ऊठाऊगीर मुरती नामनो रमुजी फारस।"

इस मंडली के विषय में जो विचारणीय बात है वह यह कि इसका कोई सम्बन्ध 'पारसी ड्रामेटिक कोर' से था या नही? इसका उत्तर कही भी स्पष्ट रूप से नहीं मिलता। एक अन्य बात यह भी स्मरणीय है कि विक्टोरिया नाटक मडली में अभिनीत 'फ़रेदून' नाटक जिसे कैखसरु कावराजी ने लिखा था पारसी नाटक मंडली के 'फ़रेदून' से भिन्न था।

'सोराव-रुस्तम' के अतिरिक्त इसमे 'रुस्तम जावुली' और 'रुस्तम एकदस्त' नामक नाटकों का अभिनय भी हुआ था।

अन्य सूत्रों से पता चलता है कि सन् १८५६ मे यह मंडली बंद पडी थी।

पारसी नाटक मंडली (द्वितीय)

विक्टोरिया नाटक मंडली जब नये पाँच भागीदारो के हिस्से मे आई तो उन्होंने मंडली को बाहर यात्रा पर ले जाने का विचार किया। विक्टोरिया मडली के बाहर जाने पर विक्टोरिया थियेटर खाली हो गया। इस स्थिति को देखकर घनजीभाई पटेल के शब्दों में—

"नाटकनी सामे संबंध राखता खेलाड़ीओ, अने साहसीक जवानोमाथी थोडाक आगेवानोओ गोठवणकरी के शनीवारनी रलीयामरणी रातो, जे नाटक करी कमावनी मौसम हती, ते जती मुकवी नही जोइओ। तेओओ साथे बेसी लाबी टुंकी दलीलो कीधी, अने थोडाक चटपटीया जरथोस्ती भाई ओ ओ, अेक नवुं नाटक मंडल ऊभुं कीधुं, अने ते ने 'धी पारसी नाटक मडली' अेवु नाम आप्यु हतुं।"

अतएव इस द्वितीय पारसी नाटक मंडली का कोई भी सम्बन्ध, एक ही नाम होने के अतिरिक्त, प्रथम पारसी नाटक मडली से नही था। इस द्वितीय पारसी नाटक मडली ने विक्टोरिया थियेटर में अपना काम आरम्भ किया। कहा जाता है कि यह मडली आरम्भ मे वेतनभोगी अभिनेताओं की मडली नहीं थी। कुछ तीन-चार महानुभावो ने मिलकर इसकी स्थापना कर ली थी। इनमें फरामजी दादाभाई अप्पु का छोटा भाई दीनशाह दादाभाई अप्पु प्रमुख था। उसने अपनी मृदुवाणी और चातुर्य से कुछ लोगो को एकत्रित कर लिया। इन लोगो मे कुछ

तीसरे दर्जे के अभिनेता और कुछ रंगमंच पर आने के इच्छुक पारसी लोग सम्मिलित थे।

विक्टोरिया मंडली बम्बई से बाहर चली ही गई थी, अतएव इस मंडली के सदस्यों ने परस्पर निर्णय किया कि स्त्री अभिनेत्रियों को रंगमंच पर लाना चाहिए। निर्णय के अनुसार पहली अभिनेत्री "लतीफा बेगम" थी। उसे इन्द्रसभा नाटक में रंगमंच पर उतारा गया। अभिनय-कला की दृष्टि से लतीफा में कुछ ज्ञान न था परन्तु नाचने-गाने में कुशल थी। प्रकृति ने उसके स्वर में मिठास और पग-चालन में अद्‌भुत शक्ति प्रदान की थी। हाव-भाव में निपुण थी ही अतएव दर्शकों पर प्रभाव डालनेवाली स्त्री थी। आश्चर्य की बात यह हुई कि इन्दर-सभा में अभिनय करने के पश्चात् जिस रूप में वह नेपथ्य में गई उसी रूप में एक पारसी अपना ओवर-कोट उस पर डालकर और विक्टोरिया गाड़ी में बिठाकर, पीछे के दरवाजे से अपने घर ले गया। कम्पनी मालिकों का साहस नहीं हुआ कि इस झगड़े में पड़ते। लतीफ़ा के इस प्रकार चले जाने पर, स्त्रियों का रंगमंच पर प्रवेश रुका नहीं। वैसे अखबारों में इस सम्बन्ध की बड़ी चर्चा चली और अधिकांश जनता ने अभिनेत्रियों के आगमन को पसन्द नहीं किया। स्वयं कैखसरू काबराजी भी इस नीति के विरोधी थे।

लतीफा बेगम के जाने के थोड़े से महीनों के बाद अमीरजान और मोती-जान नाम की दो पंजाबी बहनें पुनः नाटक मंडली में प्रवेश पा गईं। अमीरजान सूफ़ी रंगत की गज़लों के गाने में बड़ी सिद्धहस्त थी। अनेकों मुसलमान उसके गुण पर मोहित हो उससे मिलने के इच्छुक रहते थे। जिस दिन से ये दोनों बहनें मंडली में आईं मंडली के धन का बृहस्पति बैठ गया परन्तु एक बात ऐसी बनी कि उसके कारण पारसी नाटक मंडली की आधी छुट्टी हो गई और दोनों बहनों में से अमीरजान के साथ एक मुसलमान ने विवाह कर अपने घर में बैठा लिया और मोतीजान को लेकर अमीरजान मंडली छोड़कर चली गई। बस पारसी नाटक मंडली की पतवार भग हो गई।

उस समय इस पारसी नाटक मंडली में निम्न अभिनेता कार्य करते थे—

१. नवरोजी दो० मजगाववाला उर्फ़ दीतीआ.

२. कावसजी मिस्तरी उर्फ़ काउ हाडो

३. धनजीभाई फ़ोटोग्राफ़र उर्फ़ धनजी लाबो

४. माणेकजी मिस्त्री उर्फ़ माकु धानसाख

५. पेसु पोचराज

६. खशरु जेक

७. दादाभाई मेहता उर्फ दादीवा

८. दीनशा दादाभाई अप्पु

९. बापु ढगढरी

१०. मोबेद मेहरीयारजी

११. कुवरजी बुचीआ (मालिक तत्काल लदन होटल)

इनके अतिरिक्त एक पारसी मिकेनिक मिस्तरी और एक पेंटर भी सम्मिलित थे।

इस नाटक मंडली ने बाहरी सफर भी किया था । भरोच जाने का पता कुछ स्थानो से मिलता है। पारसी नाटक मडली के प्रसिद्ध नाटक थे—'इदर-सभा', 'लैला-मजनूं', 'बेनजीर-बदरेमुनीर', 'पद्मावत', 'शकुन्तला', 'जहाँगीर-शाह-गौहर', 'छैलबटाऊ-मोहनारानी'। ये सभी नाटक 'आराम' कवि के बनाये हैं, पद्यबद्ध है और उस समय के प्रसिद्ध नाटक हैं जिन्हें अनेकों मडलियाँ खेला करती थीं, क्योंकि छापे के सर्वाधिकार सुरक्षित होते हुए भी कोई उसकी परवाह नहीं करता था।

यह दूसरी पारसी मडली कब भग हुई, विशेष पता नहीं चलता।

दी पारसी नाटक मंडली (तृतीय)

दादी ठूठी की 'मुबई नाटक मडली' के भंग होने पर नवरोजु मजगांवबाला, दोराब बंजा तथा दीनशा अप्पु एव फरामजी अप्पु ने इसकी स्थापना की। नाम पुराना था परन्तु इसके मालिक नये थे। बड़े उत्साह के साथ पुरातन मडली का उद्धार हुआ और इसमें संदेह नहीं कि अपने समय मे यह पर्याप्त प्रसिद्धि पाने मे फलीभूत भी हुई। इसे भागीदारो की मडली भी कहा जाता है ।

यह दुर्भाग्य की बात है कि पारसी नाटक मडली (तृतीय) का विशद विवेचन और उसके द्वारा अभिनीत नाटको का वर्णन प्राप्त नहीं होता। धनजी भाई पटेल भी इस मंडली के कृत्यों से अधिक परिचित नहीं प्रतीत होते । उन्होंने इस मंडली के प्रसग में दादाभाई मिस्तरी की अभिनयकला का बड़ी रुचि से वर्णन किया है और बताया है कि दादी मिस्तरी ने कितनी कुशलता से पेस्तनजी कावसजी मंजाणा लिखित 'शाहजादा एरिच' मे शाहजादा तुर्यो का पार्ट किया था। दादी मिस्तरी को गाने का भी शौक था और उन्होंने बाकायदा किसी उस्ताद से संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। 'जहाबख्श अने गुलरुख़सार' में उन्होंने औरत का पार्ट किया। यह एक देवरणी स्त्री की भूमिका थी।

नसरवानजी बीरजी भी पारसी नाटक मंडली के एक महान् कलाकार थे।

तीसरे दर्जे के अभिनेता और कुछ रंगमंच पर आने के इच्छुक पारसी लोग सम्मिलित थे।

विक्टोरिया मंडली बम्बई से बाहर चली ही गई थी, अतएव इस मंडली के सदस्यों ने परस्पर निर्णय किया कि स्त्री अभिनेत्रियों को रंगमंच पर लाना चाहिए। निर्णय के अनुसार पहली अभिनेत्री "लतीफ़ा बेगम" थी। उसे इन्द्रसभा नाटक में रंगमंच पर उतारा गया। अभिनय-कला की दृष्टि से लतीफ़ा में कुछ ज्ञान न था परन्तु नाचने-गाने में कुशल थी। प्रकृति ने उसके स्वर में मिठास और पग-चालन में अद्भुत शक्ति प्रदान की थी। हाव-भाव में निपुण थी ही अतएव दर्शकों पर प्रभाव डालनेवाली स्त्री थी। आश्चर्य की बात यह हुई कि इन्दर-सभा में अभिनय करने के पश्चात् जिस रूप में वह नेपथ्य में गई उसी रूप में एक पारसी अपना ओवर-कोट उस पर डालकर और विक्टोरिया गाड़ी में बिठाकर, पीछे के दरवाज़े से अपने घर ले गया। कम्पनी मालिकों का साहस नहीं हुआ कि इस झगड़े में पड़ते। लतीफ़ा के इस प्रकार चले जाने पर, स्त्रियों का रंगमंच पर प्रवेश रुका नहीं। वैसे अख़बारों में इस सम्बन्ध की बड़ी चर्चा चली और अधिकांश जनता ने अभिनेत्रियों के आगमन को पसन्द नहीं किया। स्वयं कैखसरू कावराजी भी इस नीति के विरोधी थे।

लतीफ़ा बेगम के जाने के थोड़े से महीनों के बाद अमीरजान और मोती-जान नाम की दो पंजाबी बहनें पुनः नाटक मंडली में प्रवेश पा गईं। अमीरजान सूफ़ी रंगत की ग़ज़लों के गाने में बड़ी सिद्धहस्त थी। अनेकों मुसलमान उसके गुण पर मोहित हो उससे मिलने के इच्छुक रहते थे। जिस दिन से ये दोनों बहनें मंडली में आईं मंडली के धन का बृहस्पति बैठ गया परन्तु एक बात ऐसी बनी कि उसके कारण पारसी नाटक मंडली की आधी छुट्टी हो गई और दोनों बहनों में से अमीरजान के साथ एक मुसलमान ने विवाह कर अपने घर में बैठा लिया और मोतीजान को लेकर अमीरजान मंडली छोड़कर चली गई। बस पारसी नाटक मंडली की पतवार भंग हो गई।

उस समय इस पारसी नाटक मंडली में निम्न अभिनेता कार्य करते थे—

१. नसरोजी दो० भजगाववाला उर्फ़ दीतोआ.

२. कावसजी मिस्त्री उर्फ़ काउ डांडो

३. धनजीभाई फ़ोटोग्राफ़र उर्फ़ धनजी लांबो

४. माणेकजी मिस्त्री उर्फ़ माकु धामसाल

५. पेमु पोलराज

६. सगर मेक

७. दादाभाई मेहता उर्फ दादीबा
८. दीनशा दादाभाई अपु
९. बापु ढग्ढरी
१०. मोबेद मेहरीयारजी
११. बुवरजी बुचीआ (मालिक तत्काल लंदन होटल)

इनके अतिरिक्त एक पारसी मिकेनिक मिस्तरी और एक पेंटर भी सम्मिलित थे।

इस नाटक मंडली ने बाहरी सफ़र भी किया था। भरोच जाने का पता कुछ स्थानों से मिलता है। पारसी नाटक मडली के प्रसिद्ध नाटक थे—'इंदर-सभा', 'लैला-मजनू', 'बेनजीर-बदरेमुनीर', 'पद्मावत', 'शकुन्तला', 'जहांगीर-शाह-गौहर', 'छैलबटाऊ-मोहनारानी'। ये सभी नाटक 'आराम' कवि के बनाये हैं, पद्यबद्ध है और उस समय के प्रसिद्ध नाटक है जिन्हें अनेकों मडलियाँ खेला करती थी, क्योंकि छापे के सर्वाधिकार सुरक्षित होते हुए भी कोई उसकी परवाह नही करता था।

यह दूसरी पारसी मंडली कब भग हुई, विशेष पता नही चलता।

दी पारसी नाटक मंडली (तृतीय)

दादी ठूठी की 'मुंबई नाटक मडली' के भग होने पर नवल्लु मजगांववाला, दोराब वजा तथा दीनशा अप्पु एव फरानजी अप्पु ने इसकी स्थापना की। नाम पुराना था परन्तु इसके मालिक नये थे। बड़े उत्साह के साथ पुरातन मंडली का उद्धार हुआ और इसमे संदेह नही कि अपने समय में यह पर्याप्त प्रसिद्धि पाने में फलीभूत भी हुई। इसे भागीदारो की मडली भी कहा जाता है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि पारसी नाटक मडली (तृतीय) का विशद विवेचन और उसके द्वारा अभिनीत नाटको का वर्णन प्राप्त नही होता। धनजी भाई पटेल भी इस मडली के कृत्यों से अधिक परिचित नही प्रतीत होते। उन्होंने इस मंडली के प्रसंग मे दादाभाई मिस्तरी की अभिनयकला का बडी रुचि से वर्णन किया है और बताया है कि दादी मिस्तरी ने कितनी कुशलता से पेस्तनजी कावसजी मजाणा लिखित 'शाहजादा एरिच' मे शाहजादा तुरो का पार्ट किया था। दादी मिस्तरी को गाने का भी शौक था और उन्होंने बाकायदा किसी उस्ताद से संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। 'जहांबक्श अने गुलरुखसार' मे उन्होंने औरत का पार्ट किया। यह एक देवणी स्त्री की भूमिका थी।

नसरवानजी बीरजी भी पारसी नाटक मंडली के एक महान् कलाकार थे।

इस मंडली के दो नाटककार भी बड़े प्रसिद्ध हुए हैं—वमनजी न० कावराजी और जेहांगीर नशरवानजी पटेल। पटेल का लिखा 'फांकडो फ़ीतुरो' खूब प्रसिद्ध हुआ।

पारसी नाटक मंडली (१) ने सन् १८९८ में श्रीलंका की यात्रा भी की थी और वहां निम्नलिखित नाटकों का अभिनय किया था—

(१) अलादीन	(२) इन्दरसभा
(३) खुशरुहसीना	(४) खुदादाद
(५) क़मरुज्जमा और नादीरा	(६) गुलसनोबर
(७) गुलरुख़सार	(८) गुलबकावली
(९) गुलिस्ताने खानदाने हामान	(१०) गोपीचंद
(११) चन्द्रावकावली	(१२) जेहांगीरशाह
(१३) तवदीले क़िस्मत	(१४) दाउचाउ
(१५) बहारे परिस्तान इश्क़	(१६) लैलामजनू
(१७) जुल्मेवहशी	

मंडली के भागीदार फरामजी दादाभाई अप्पु बम्बई में परलोक सिधार गये और उनके भाई दीनशाह अप्पु मद्रास की यात्रा में स्वर्गवासी हुए। परिणाम यह हुआ कि मंडली की समस्त सामग्री, नाटकों सहित, कलकत्ते के जे० एफ० मादन को कंपनी ने खरीद ली और पारसी नाटक मंडली समाप्त हो गई।

'कसौटी', 'हुस्नआरा', 'अमृत' (बेताब लिखित) तथा 'आज़मशाह' नाटकों का अभिनय भी इसी मंडली में हुआ था।

शेक्सपियर थियेट्रिकल कम्पनी

थोड़े से नौजवानों ने अपनी भागीदारी में यह कम्पनी सन् १८७६ में स्थापित की। इन्होंने निश्चय किया कि गुजराती भाषा में शेक्सपियर के नाटकों को लिखाकर उनका अभिनय शेक्सपियर कालीन वेशभूषा में ही किया जाय। इन अभिनेताओं में कुछ मेट्रिकुलेट थे और कुछ एफ० ए० के विद्यार्थी थे। उन्होंने कुछ अन्य नौकरी-चाकरी तथा वाणिज्य-व्यवसाय में लगे हुए लोगों को भी एकत्रित कर लिया। इस कम्पनी के मालिक मनचेरशा नवरोजी मेहता था। अब इन्हें एक नाटक लेखक की आवश्यकता पड़ी। प्रसिद्ध लेखक एदलजी खोरी और कैखसरू कावराजी पहिले से ही विक्टोरिया एवं जोरास्ट्रियन नाटक मंडलियों से सम्बद्ध थे अतएव उनके पास जाकर प्रार्थना करने का साहस न पड़ा। अतः एक नये नाटक लेखक की खोज का आरम्भ हुआ और डोसाभाई फरामजी रांडेलिया

के रूप में वह उन्हें प्राप्त हो गया। डोसाभाई ने शेक्सपियर का एक नाटक लिखने का वायदा कर लिया।

आखिर बड़ी कठिनता से डोसाभाई ने रोमियो जूलियट लिखकर दिया। परन्तु बाद मे पता चला कि वही नाटक सन् १८५८ में 'स्टूडेंट्स अमेच्योर क्लब' में खेला जा चुका था। परन्तु लेखक का नाम पता नही चला था। नाटक के अच्छा होने की प्रशंसा "पारसी मित्र" ने [स्थान-स्थान पर की थी । डोसाभाई ने एक बुद्धिमानी यह की कि नाटक मे अपना पूरा नाम नही ज्ञापित होने दिया। उसके स्थान पर 'डेल्टा' (Delta) उपनाम प्रकाशित किया।

रोमियो जूलियट का अभिनय डिरेक्टर हीरजी खंबाता के निर्देशन में किया गया। इसमें रोमियो की भूमिका होरमसजी जमशेदजी आटिया ने की थी। उनके हाव-भाव और अभिनय की ढव-छब देखकर दर्शक बड़े चकित हो जाते थे। दो-तीन बार इस नाटक को खेलने के उपरात शेक्सपियर कम्पनी शाति की गोद मे जा पड़ी। मंडली का साज-सामान लेकर मालिक अपने घर चला गया और अभिनेता किसी नई कम्पनी में जाने अथवा कोई अन्य कम्पनी खोलने के विचार मे लग गये।

एक महान विचार मन मे उठा, कुछ कार्यान्वित हुआ और अन्त मे समाप्त हो गया।

दी शाहे आलम नाटक मंडली

इसके स्थापक दोराबजी रुस्तमजी घामर थे । इनके मन मे आया कि ऐसी नाटक मंडली हो जो अपने नाम मे कोई दूसरी के समान न हो। दादी पटेल ने अपनी नाटक मडली का नाम रानी विक्टोरिया के नाम पर रखा था । इन्होंने हिंदुस्तान के शहनशाह के नाम पर अपनी मंडली का नाम रखा। एलफिंस्टन थियेटर को अपने नाटकों को खेलने के लिए चुना। दादी पटेल डोलु घामर को एक 'इलाही बागी' कहा करते थे। डोलु घामर के भाई सोहराब घामर ने अपने भाई की बडी सहायता की।

पहला खेल 'जाने आलम और अंजुमन आरा' नाम से उर्दू में लिखा गया और अभिनीत हुआ। जाने आलम का पार्ट स्वयं डोलु घामर ने किया। अपना साज-सिंगार डोलु घामर ने स्वयं किया था और इतना अच्छा था कि लोगों को भ्रम हो गया कि जाने आलम का पार्ट दादी पटेल स्वयं करने आए हों। परन्तु बोलने और चलने पर सारा भेद खुल गया। दूसरे खेल का नाम बड़ा विचित्र रखा गया। उसका नाम था—

इस मंडली के दो नाटककार भी बड़े प्रसिद्ध हुए हैं—बमनजी न० कावराजी और जेहांगीर नसरवानजी पटेल। पटेल का लिखा 'फाकडो फ़ीतुरो' खूब प्रसिद्ध हुआ।

पारसी नाटक मंडली (१) ने सन् १८९८ में श्रीलंका की यात्रा भी की थी और वहां निम्नलिखित नाटकों का अभिनय किया था—

(१) अलादीन	(२) इन्दरसभा
(३) गुलरूहसीना	(४) खुदादाद
(५) कमरूज़्ज़मा और नादीरा	(६) गुलसनोवर
(७) गुलरुख़सार	(८) गुलबकावली
(९) गुलिस्ताने खानदाने हामान	(१०) गोपीचंद
(११) चन्द्रावरावली	(१२) जेहांगीरशाह
(१३) तबदीले किस्मत	(१४) दाउचाउ
(१५) बहारे गुलिस्तान इश्क	(१६) लैलामजनूं
(१७) जुल्मेबहुसी	

मंडली के भागीदार फरामजी दादाभाई अप्पु बम्बई में परलोक सिधार गये और उनके भाई दीनशाह अप्पु मद्रास की यात्रा में स्वर्गवासी हुए। परिणाम यह हुआ कि मंडली की समस्त सामग्री, नाटकों सहित, कलकत्ते के जे० एफ० मादन की कम्पनी ने खरीद ली और पारसी नाटक मंडली समाप्त हो गई।

'कसौटी', 'हुस्नआरा', 'अमृत' (बेताब लिखित) तथा 'आदमशाह' नाटकों का अभिनय भी इसी मंडली में हुआ था।

शेक्सपियर थियेट्रिकल कम्पनी

थोड़े से नौजवानों ने अपनी भागीदारी में यह कम्पनी सन् १८७६ में स्थापित की। इन्होंने निश्चय किया कि गुजराती भाषा में शेक्सपियर के नाटकों को लिखकर उनका अभिनय शेक्सपियर कालीन वेशभूषा में ही किया जाय। इन अभिनेताओं में कुछ मैट्रिकुलेट थे और कुछ एम० ए० के विद्यार्थी थे। इन्होंने कुछ अन्य नौकरी-चाकरी तथा वाणिज्य-व्यवसाय में लगे हुए लोगों को भी एकत्रित कर लिया। इस कम्पनी के मालिक मनचेरशा नवरोजी मेहता था। अब इन्हें एक नाटक लेखक की आवश्यकता पड़ी। प्रसिद्ध लेखक एदलजी खोरी और केखुसरू काबराजी पहिले से ही विक्टोरिया एवं ओरिजिनल नाटक मंडलियों में थे अतएव उनके पास जाकर प्रार्थना करने का साहस न पड़ा। अतः एक नये नाटक लेखक की खोज का आरम्भ हुआ और [illegible]

के रूप में वह उन्हें प्राप्त हो गया। डोसाभाई ने शेक्सपियर का एक नाटक लिखने का वायदा कर लिया।

आख़िर बड़ी कठिनता से डोसाभाई ने रोमियो जूलियट लिखकर दिया। परन्तु बाद मे पता चला कि वही नाटक सन् १८५८ में 'स्टूडेंट्स अमेच्योर क्लब' में खेला जा चुका था। परन्तु लेखक का नाम पता नही चला था। नाटक के अच्छा होने की प्रशंसा "पारसी मित्र" ने स्थान-स्थान पर की थी। डोसाभाई ने एक बुद्धिमानी यह की कि नाटक मे अपना पूरा नाम नही ज्ञापित होने दिया। उसके स्थान पर 'डेल्टा' (Delta) उपनाम प्रकाशित किया।

रोमियो जूलियट का अभिनय डिरेक्टर हीरजी खंवाता के निर्देशन मे किया गया। इसमे रोमियो की भूमिका होरमसजी जमशेदजी आटिया ने की थी। उनके हाव-भाव और अभिनय की ढब-छब देखकर दर्शक बड़े चकित हो जाते थे। दो-तीन बार इस नाटक को खेलने के उपरात शेक्सपियर कम्पनी शाति की गोद में जा पड़ी। मडली का साज-सामान लेकर मालिक अपने घर चला गया और अभिनेता किसी नई कम्पनी में जाने अथवा कोई अन्य कम्पनी खोलने के विचार में लग गये।

एक महान विचार मन मे उठा, कुछ कार्यान्वित हुआ और अन्त मे समाप्त हो गया।

दी शाहे आलम नाटक मंडली

इसके स्थापक दोराबजी रुस्तमजी घामर थे। इनके मन मे आया कि ऐसी नाटक मंडली हो जो अपने नाम मे कोई दूसरी के समान न हो। दादी पटेल ने अपनी नाटक मंडली का नाम रानी विक्टोरिया के नाम पर रखा था। इन्होने हिंदुस्तान के शहनशाह के नाम पर अपनी मडली का नाम रखा। एलफिस्टन थियेटर को अपने नाटको को खेलने के लिए चुना। दादी पटेल डोलु घामर को एक 'इलाही बागी' कहा करते थे। डोलु घामर के भाई सोहराब घामर ने अपने भाई की बड़ी सहायता की।

पहला खेल 'जाने आलम और अंजुमन आरा' नाम से उर्दू में लिखा गया और अभिनीत हुआ। जाने आलम का पार्ट स्वयं डोलु घामर ने किया। अपना साज-सिंगार डोलु घामर ने स्वयं किया था और इतना अच्छा था कि लोगो को भ्रम हो गया कि जाने आलम का पार्ट दादी पटेल स्वयं करने आए हों। परन्तु बोलने और चलने पर सारा भेद खुल गया। दूसरे खेल का नाम बड़ा विचित्र रखा गया। उसका नाम था—

जाबुली सेलम, अने अफ़लातुन जौन ।
गुललाला परी, ने पाक दामन शीरीन ॥

डोलु धामर एक 'आलराउण्ड एक्टर' थे और प्रत्येक पार्ट करने पर तैयार रहते थे। एक उर्दू नाटक में उन्होंने 'हीजड़े' का बड़ा अच्छा पार्ट किया था। वह अच्छे गायक भी थे। उन्होंने लगभग आधे दर्जन नाटक लिखे थे। इन नाटकों को विक्टोरिया मंडली ने अपने मुंशी से ठीक कराकर खेला था।

शाहे आलम मंडली की स्थापना दादी पटेल के एक चैलेन्ज पर डोलु धामर ने की थी। उसके अभिनेता सब नये थे। परन्तु कालान्तर में इसके कुछ एक्टर पारसी रंगमंच के बड़े नामी एक्टर हुए। इनमें सर्वप्रथम नाम कावसजी पालनजी खटाऊ का आता है। दूसरा अभिनेता जमसू गुललाला था जो स्त्री-पार्ट करने में बड़ा सुघर था और पर्याप्त समय तक बालीवाला की विक्टोरिया मंडली में रहा। शाहे आलम मंडली में इसने उपरोक्त लम्बे नाटक में प्रधान भाग लिया था। तीसरा एक्टर पेस्तनजी जीजी भाई थाटलीवाला था जो पेमु पोखराज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी स्त्री-भूमिका भी देखने लायक थी। गले की आवाज़, गरदन का मोड़ और आँखों के हाव-भाव उसके अभिनय के प्रधान अंग थे। इंदर-सभा में पुखराज परी का उत्तम अभिनय करने से ही इसका नाम पड़ा था। नाच से मालूम होता था मानो रबड़ का बना हुआ है। बालीवाला के कहने से जयपुर में यही पेमु पुखराज रामभट्‌जी की नाटकशाला में रह गया था। बाद में इसने स्त्री-पार्ट करना छोड़ दिया था। 'महमूद गजनवी' नाटक में .. पालवान का पार्ट किया। पेमु बालीवाला के साथ बर्मा के पहले सफ़र में गया था परन्तु १८८५ में इंग्लैण्ड नहीं जा सका।

जहाँगीर खंबाता ने भी इस कम्पनी की ओर इशारा किया।[१९]

ईरानी नाटक मंडलियाँ

पारसी और ईरानी दो पृथक्-पृथक् जातियाँ हैं। बम्बई के ईरानी १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब विक्टोरियन नाटकों का चलन था, एक अपेक्षाकृत गरीब जाति थी। उनका व्यवसाय स्थान-स्थान पर सोडावाटर, लेमनेड, आइस-क्रीम आदि बेचना था। अतएव पारसी नाटक मंडलियों से उनका सुदूर स्थापित था। पारसियों की देखा-देखी उनके मन में भी एक उभार आया। वे भी अपनी नाटक मंडली बनाकर, अपनी ही ईरानी भाषा में, नाटक अभिनीत करने

---

१९. मारी नाटकी अनुभव, पृ० १०२।

के लिए ललकने लगे । पारसियों द्वारा शाहनामा से ली गई कथावाले नाटक देखकर इन ईरानियों के मन में भी एक उत्साह पैदा हुआ। अपनी मातृभूमि के वीरों की याद ने उन्हें भी आन्दोलित कर दिया। परिणाम यह हुआ कि सन् १८७० में एक ईरानी नाटक मंडली की स्थापना इन ईरानियों ने कर डाली। इसका नाम रखा गया 'ईरानी नाटक मंडली' अथवा "पर्शियन जोरास्ट्रियन क्लब"।

सब से पहला नाटक जो इस मंडली में खेला गया वह 'रुस्तम-बरजोर' था। इसकी भाषा फ़ारसी थी। इसका प्रत्येक अभिनेता ईरानी था। इसके गीत भी ईरानी भाषा में थे यद्यपि उनकी तर्जें हिन्दुस्तानी ही थी। इनकी पोशाकें और दृश्य सभी ईरानी थे। वास्तव मे यह मडली और उसका कार्य सन् १८७० की एक आश्चर्यमयी और अद्‌भुत उपलब्धि थी। 'रुस्तम-बरजोर' नाटक में गुरगीन का पार्ट पेस्तनजी बैलाती ने किया था। इस उपलब्धि मे दादी पटेल का विशेष हाथ था। ईरानी चाहते थे कि अपने नाटक द्वारा वह प्राचीन युग का जीता-जागता चित्र रंगमंच पर उपस्थित करें। अतएव अपने अभिनय और रंग-व्यवस्था में वे उन सभी वस्तुओ को यथार्थ रूप में दिखाने के लिए उत्सुक थे। 'रुस्तम-बरजोर' नाटक में दोनो पहलवान जीवित घोड़ो पर चढकर रंगमच पर प्रवेश करते और एक दूसरे को युद्ध के लिए ललकारते। एक बार तो एक दूसरे पर गदा प्रहार करते समय बरजोर का घोड़ा रगमच के तख्ते को तोडकर जमीन में धँस गया। बड़ी कठिनता से उसे ऊपर निकाला गया। घोड़े को काफी चोट लगी थी। परन्तु बरजोर का अभिनय करने वाला घोड़े से कूद कर पैदल ही गदा घुमाता रुस्तम से लडने के लिए उसकी ओर दौड़ा। ड्राप सीन डाल दिया गया और घोड़े को बड़ी कठिनाई से ऊपर निकाला गया।

इस मंडली का दूसरा नाटक 'फ़रीदून-जोहाद' था। इसकी कथावस्तु का मूलस्रोत भी शाहनामा था।

इस मडली के अद्‌भुत दृश्यों मे एक दृश्य ऐसा था जिसमे बरजोर को खेत मे काम करते दिखाया गया था। दृश्य की विशेपता यह थी कि समस्त रंगमच को हरी घास के खेत में परिवर्तित कर दिया गया था। इसी खेत मे एक बार उगता हुआ सूर्य भी दिखाया गया था। यह दृश्य दिखाने के लिए प्रथम बार 'मैग्नेशियम वायर' का प्रयोग किया गया था। बाद मे यह प्रयोग अन्य कम्पनियो मे भी यथास्थान होने लग गया।

उपरोक्त ईरानी नाटक मंडली में कुछ पारसी अभिनेता भी सम्मिलित थे।

सफलता के पीछे दादी पटेल का पूरा हाथ था। वही गुप्त रूप में इसके डिरेक्टर थे।

पारसी रिपन थियेट्रिकल कम्पनी

इस कम्पनी के स्थापक मेहरजी एन० मर्बेयर थे। यह पहले जहांगीर खंबाता की कम्पनी में एक्टर थे। 'जुल्मे नाग्वा' में एक कामिक पार्ट किया करते थे। अपनी कम्पनी लेकर लगभग ५० नगरों में खेल दिखाते फिरे। बर्मा एवं स्ट्रेट सेटलमेंट की भी यात्रा की थी। खंबाता के साथ रहकर 'मेक-अप' की कला में अच्छी दक्षता प्राप्त की थी। लगभग ५०-६० नाटकों के अभिनय करने का श्रेय मेहरजी को प्राप्त था। नाटकी जीवन में कई बार उतार-चढ़ाव भी देखे।

उपरोक्त जानकारी के अतिरिक्त इस मंडली के विषय में कुछ अधिक पता नहीं चलता।

जेंटिलमैन अमेच्योर्स

इस क्लब की स्थापना फरामजी गुस्तादजी दलाल ने की थी।[१००] स्यावक्ष का कहना है कि स्थापना कावसजी कोहियादारु उर्फ कावसजी गुरगीन की भागीदारी में हुई।[१०१]

इस मंडली का एक खेल 'लेडी आव लीआन्स' गुजराती में खेला गया था। इस खेल में फरामजी जोशी ने स्त्री की मुख्य भूमिका ली थी। फरामरोज ने अपना लम्बा जीवन सरकारी नौकरी में व्यतीत किया। १८६८ में मेट्रीक्युलेशन पास करके नौकरी में सम्मिलित हुए और धीरे-धीरे सेंट्रल प्रेस के सुपरिन्टेण्डेन्ट पद पर पहुँच गये। फ़रामरोज़ जोशी जे० पी० तथा 'फ्रीमेसन' भी थे।

फ़रामरोज़ जोशी ने स्त्री-भूमिका में जो काम किया वह अन्य कम्पनियों को भी पसन्द आया। इन्हें गाने का भी शौक था। फलूघुस फ़रामरोज से सदैव सशंकित रहते क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं कोई अन्य छोटी-मोटी मंडली उन्हें अपनी मंडली में उड़ा कर ले न जाय। एक दिन फलूघुस के कान में यह आवाज़ पड़ी कि फरामरोज जोशी अपनी पृथक् मंडली बनाना चाहता है। स्वभाव तो गरम था ही। रिहर्सल रूप में ही फ़रामजी उबल पड़े—"शेटियाओ हम तो यह नाटक केवल शौख के कारण करते हैं और तुम सब भी केवल कम्पलीमेंट्री

१००. पा० त० त०, पृ० ३६।
१०१. पा० ना० त०, पृ० १७।

टिकिट के खातर ही करते हो। इस क्लब के चलाने में मेरे कंधे पर बड़ी जोखम है। इसलिए यदि कोई दूसरा क्लब वाला तुम्हें उल्टा-सीधा बहकाकर अपनी मंडली में ले जाने को कहे तो मेरी जोखम का ध्यान करके जाना। मेरे विरोधी यह नहीं जानते कि जो मैं अपनी असलियत पर आ जाऊँगा तो उन्हें पत्तल पर पानी पिला दूंगा।" थोड़ी देर बाद कुछ गरमागरम बात फ़रामजी और फ़रामरोज जोशी में हो गई और दोनों एक दूसरे से पृथक् हो गये। यह घटना लगभग सन् १८६८ की है। तभी संभवतः संस्था भंग हो गई। परिणामस्वरूप फरामजी ने कैखुसरु कावराजी की स्थापित विक्टोरिया मंडली में शामिलदारी कर ली और फरामरोज़ कम्पनी से बाहर हो गए। धनजी भाई का कहना है कि सन् १८७१ में उन्होंने फरामरोज जोशी को आलफ्रेड नाटक मंडली में 'शहज़ादा स्यावक्ष' नाटक में फिरंगीस का पार्ट करते देखा था।

स्वभावतः दोनों के पृथक् होने पर जैंटिलमेन्स अमेच्योर्स मंडली भंग हो गई। इसके खेल ग्रांट रोड की विक्टोरिया नाटकशाला में हुआ करते थे। इस मंडली में 'कामेडी आव एरर्स' का भी अभिनय हुआ जिसमें धनजी भाई केरोवाला तथा फरामरोज जोशी दोनों ने नारी भूमिका निभाई थी।

दी खोजा ड्रामेटिक क्लब

दाराशाह सोराबजी तारापुरवाला एक इटैलियन मेल स्टीमर कम्पनी, जिसका नाम था "रुबेटीनो स्टीम नेवीगेशन कम्पनी" में नौकर थे। दाराशा इसमें कार्य करता मैनेजर थे। धीरे-धीरे ही वह इस पद पर पहुँचे थे। परन्तु नाटक करने का शौक था। कुछ नाटक लिखने का भी अभ्यास किया और शाहनामे के आधार पर 'रुस्तम अने सुफेद देव' नाटक की रचना की। इस नाटक को अभिनीत करने का काम दादी पटेल ने अपनी हैदराबाद की यात्रा के बाद एक अच्छे स्टाफ को सौंपा परन्तु बम्बई में यह नाटक चला नहीं। उसे लोकप्रिय बनाने के लिए दाराशा ने स्वयं सफेद देव का पार्ट किया। नाटक करने में उस समय के कई प्रख्यात अभिनेता भी थे यथा कावसजी गुरगीन, होरमसजी, काकावाल फरामजी, गुस्तादजी खुरशेदजी मीनोचेहरजी जोशी, डोसाभाई गोदरेज आदि परन्तु फिर भी आशानुसार सफलता प्राप्त नहीं हुई। अधिक लोकप्रियता इस नाटक को नहीं मिली। अन्त में दाराशा के लिए एक बेनीफिट नाइट में यह नाटक सफल हुआ।

दाराशा बेजन-मनीजेह नाटक में अफ़रासियाब का सफल अभिनय कर चुके थे। अब इस बेनीफिट नाइट के बाद दाराशा को पैसा कमाने का रोग

लगा। कम्पनी की नौकरी छोड़ी और एक नई मडली खडी की। नाम रखा—"दी खोजा ड्रामेटिक क्लब"। परन्तु क्लब की धन विषयक जोखमदारी अन्य खोजों पर थी। इस क्लब के लिए दाराशा ने एक अन्य नाटक लिखा जिसका नाम था "कैकाऊस अने सऊदाबा"। इसकी मूल कथा शाहनामा से ली गई थी। दाराशा ने सतत प्रयत्न किया कि सोदाबा का पार्ट किसी खोजा छोकरे को ही दिया जाय, परन्तु आशा फलवती नही हुई। एकदिन अकस्मात् ग्राट रोड ऊपर के काउसजी खटाऊ से दाराशा की भेट हो गई। अपनी कठिनाई उन्होने खटाऊ के सामने रखी। काउसजी खटाऊ सऊदाबा का पार्ट करने के लिए खोजा क्लब के रगमच पर उतर गये। कई बार उन्होने इस मडली मे अभिनय किया परन्तु बाद मे इसे छोड दिया। दाराशा फिर निराश हो गये।

दाराशा अभी तक रूबेतीनो स्टीम नेवीगेशन कंपनी मे नौकर थे। अब उन्हे एक लाटरी निकालने की सूझी। लाटरी 'तूरीन' मे होने वाली प्रदर्शनी की सहायता निमित्त थी। जीतने वालों के लिए अच्छे-अच्छे पुरस्कारों की घोषणा की गई। पीआनो, ओरगन, घोड़ा, गाड़ी, सोफ़ा आदि पुरस्कारों का विज्ञापन दिया गया। काफ़ी पैसा जमा हो गया पर इनाम किसी को नही दिया गया। टिकट खरीदने वाले धोखे मे ही रहे। दाराशा के सम्मान को धक्का पहुँचा।

काउसजी खटाऊ ने पुराने अभिनेताओं को एकत्र कर एक खेल जो काबराजी का लिखा था 'गेयटी थियेटर' में खेला। उसमें भी दाराशा का पार्ट सफल नही रहा। परिणाम यह हुआ कि अपने समस्त सम्मान को खोकर दाराशा रंगून अथवा सिंगापुर चले गये और बेकरी का धधा करने लगे। अंत में पारसी जनरल हास्पिटल, बम्बई मे इनकी मृत्यु हुई।

पारसी स्टेज प्लेयर्स

श्यावक्ष के लेखानुसार इसकी स्थापना एक स्कूल मास्टर ने की थी, जिनका नाम फरदूनजी कावसजी मजाणा था।[१०२] इसमें सबसे पहले 'सरवर्द् रान' नाटक खेला गया, गुजराती मे। डा० धनजी पटेल ने इसे चलाने वाले का नाम नसरवानजी दोराबजी आपख्त्यार बताया है।[१०३] नसरवानजी लेखक, जर्नलिस्ट और गायक थे। यह महाशय अपने गाने स्वयं बनाते और

---

१०२. पा० ना० त०, पृ० १७२।
१०३. पा० त० त०, पृ० ४८।

गाते थ। धीरे-धीरे इनके गानों का नाटक रूप बन गया और अन्य मंडलियों ने भी उसे अपनाना आरम्भ कर दिया। आपल्त्यार का मंडल 'स्केचेज़' करने लगा। उदाहरण रूप 'कजोडा नो स्केच' में एक बूढ़ा वर दस-बारह बरस की कन्या से विवाह करते हुए बताया गया है। इस स्केच में आपल्त्यार का एक गाना भी है। दर्शकों को यह स्केच बहुत पसंद आया। इस प्रकार के अनेक सुधार-परक स्केच दिखाये गये थे। इन्हें दिखाने के लिए अनेक गाने वाले छोकरों की आवश्यकता होती थी। आपल्त्यार को जब माणेकजी बार-भाया के गायन-कौशल का पता चला तो उन्होंने उनसे मिलकर उन्हें अपनी मंडली में ले लिया। अब नशरवानजी के मस्तिष्क में एक नई बात आई। स्वयं कवि थे, गायक थे और गाने के शिक्षक भी थे। उन दिनों दलपतराम और वंदेखुदा दोनों नाटककारों के पास दूसरे क्लब वाले गाने बनवाने के लिए आया-जाया करते थे परन्तु आपल्त्यार मनपसंद राग-रागिनी की चाल पर अपने खेल मे स्वयं गायन जोड़ लेते थे।

आपल्त्यार अपने समय के बड़े सम्माननीय पारसी व्यक्ति थे। अतएव उनके खेलों में, जो शंकरशेठ की नाटकशाला में होते थे, सभी पारसी प्रायः जाते थे। एक दिन उन्होंने सोचा कि सोहराब रुस्तम का कथानक लेकर उसे संगीतबद्ध करके खेला जाय। इस 'ओपेरा' की खबर अखबारो मे आते ही काफ़ी चर्चा होने लगी। कावराजी को भी इसका पता चला। उन्हे सुनते ही बड़ी हँसी आई और कागज कलम लेकर बैठ गये। अस्तु।

रुस्तम-सोराब नामक ओपेरा मे माणेकजी बारभाया सोराब बनकर, जिरह्-बख्तर पहनकर और तलवार लेकर लड़ाई के मैदान में अपनी तूरानी फ़ौज के साथ रंगमंच पर प्रविष्ट हुआ और बड़ी आतुरता के साथ गाने लगा—

(हिम्मत) "शूं मकदूर सोहराबनी सामे कोई आवे,
आ गुरज, आ समशेर, आ कमंद कोई उठावे।"

दर्शक इस आवाज को सुनते ही स्तब्ध हो गये। सारा हाउस मौन हो गया और सभी गृहस्थी ध्यान से देखने लगे कि क्या होने वाला है। इसी बीच सोहराब के सामने वाले पक्ष से एक गठीले शरीर वाला, ऊँचे कद का जवान नशरवानजी आपल्त्यार, ऊँचे स्वर मे, अपने हाथ में गदा पकड़कर कहने लगा—

"मगरुर ना था नादान, जवान, बेभयान
एक पलमां थशे खाक परेशान।"

इस दृश्य को देखते ही सब पारसी अपने वतन के पुराने पहलवानों के इतिहास से उठ उठे। कुछ दिनों तक माणेकजी सोहराब का पार्ट करते रहे, फिर पता

नहीं क्या हुआ कि एक दिन देखा गया माणेकजी के स्थान पर पेशोतन दादा भाई पावरी सोहराव की भूमिका में स्टेज पर आये। यह पहले जोरास्ट्रियन क्लब के मुख्य अभिनेताओं में से थे, उसके भागीदार भी थे और 'खुसरो-शीरी' नाटक में खुसरो का पार्ट कर चुके थे।

सोहराव-रुस्तम का यह ओपेरा वास्तव में विक्टोरिया मंडली में होने वाले बेजन-मनीजेह तथा सोहराव-रुस्तम नाटक की प्रतिस्पर्धा के रूप में लिखा और खेला गया था। एदलजी खोरी लिखित सोहराव-रुस्तम में गायन तो थे परन्तु वे केवल इतने ही थे जितने उस समय प्रायः नाटकों में हुआ करते थे। नसरवानजी आपख्यार के ओपेरा की लोकप्रियता का कारण उनका स्वयं संगीत एवं अन्य पात्रों की संगीतकला मात्र थी जिसका समस्त श्रेय निस्संदेह आपख्यार को दिया जा सकता है।

पारसी स्टेज प्लेअर्स मंडली केवल अपने स्केचेज् के लिए ही प्रसिद्ध रही। संगीतबद्ध ये रेखाचित्र आगे आने वाले नाटकों के अग्रज थे।

पारसी बारोनेट नाटक मंडली

इस कंपनी की स्थापना सन् १८७५ में हुई।[१०४] इसके संस्थापक नसरवानजी फारवसजी थे। अपने भाई एदलजी फ़ारवस से उन्हें इसमें बड़ी सहायता मिली थी। नसरवानजी पहिले ज़ोरास्ट्रियन क्लब में काम करते थे। ज़ोरास्ट्रियन क्लब में 'सलाम' गाने का एक रिवाज प्रचलित किया गया था। इसे नसरवानजी ही गाते थे। उस समय सम्पूर्ण बैंड बजाया जाता था। जोरास्ट्रियन क्लब छोड़कर ही पारसी बारोनेट क्लब की स्थापना नसरवानजी ने की थी। मंडली का समस्त कार्य-प्रबंध उन्होंने अपने हाथ में रखा था। डिरेक्टर का कार्य एलफ़िन्स्टन स्कूल के अध्यापक पेस्तनजी कावसजी संजाना के सुपुर्द कर दिया। अन्य मान्य पारसी खिलाड़ी भी इस मंडली में सम्मिलित थे।

मंडली ने 'मेहरसीमनोज़ार' नाम के नाटक का अभिनय किया। मंडली के वास्ते नसरवानजी ने एक विशेष ड्राप सीन बनवाया था जिसमें सर जीजीभाई का चित्र था और नीचे अस्पताल भेंट किया गया था। वास्तव में यह अस्पताल जीजीभाई की उदारता और दान का यशस्वी स्मारक आज तक बम्बई में जे. जे. हास्पिटल के नाम से प्रसिद्ध है। प्रत्येक नाटक के आरम्भ

---

१०४. पा० त० सं०, पृ० १०३.

होने से पहले नसरवानजी इस परदे के बाहर आकर जीजीभाई की स्तुति में एक गीत गाते थे जिसकी दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'आ परदो रंगीन नसीहत करे, कीरति कांई करो
अगर जो कीरती करो तो हरगज नहीं मरो ।'

इस गीत के लेखक बदे खुदा थे। यद्यपि इस मंडली ने कई नाटक खेले परन्तु दुःख की बात है कि धनजी भाई तक को उनका कोई स्मरण नहीं रहा।

जेन्टेलमैन एम्योच्यर्स एवं जोरास्ट्रियन क्लब से नसरवानजी का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा । उनका व्यक्तित्व बड़े ऊँचे दरजे का था। बहुत दिनों तक वह सर दीनशा पेटिट के सेक्रेटरी रहे । उन्हें अंगरेजी भाषा पर बड़ा अधिकार था और सफल एक्टर तो थे ही ।

अलबर्ट नाटक मण्डली

माणेक जी मास्तर इसके स्थापक थे । इनका प्रसिद्ध नाम "माकु जेरीआ" था । यह जोरास्ट्रियन क्लब को भंग करने के स्वप्न देखते थे । क्यों ? इसका उत्तर तो वही जानें। परन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि सरकार ने शेठ बहराम जी जीजीभाई को लेजिस्लेटिव काउन्सलर बनाकर सम्मानित किया है तो तत्काल उन्होंने शंकर शेठ की नाटकशाला अपनी मंडली के नाटक के लिए किराये पर ले ली और तत्काल ही शेठ बहरामजी के बंगले जाकर उनकी संरक्षता प्राप्त करने के लिए, उन्हें मान-पान अर्पित करने की दौड़-धूप आरम्भ कर दी। जोरास्ट्रियन रंगमंच पीछे रह गया । इस आवभगत में बदेखुदा की निम्नलिखित गजल भी गाई—

कुदरथी वरसी छे रेहम, खुशी बेशुमार रे,
शेठ बहरामजी काऊन्सोलर, थया बीजी वार रे॥१॥
सरकार अने रईयत खुशी, खुशी छे मुम्बई तमाम
आशीरवाद आलबर्टना छे, जीवो ए ! सरदार रे॥२॥
केलवणी ने उत्तेजन, बीधा ने ऊलट बहु
प्रजान हीतकारी भारी, सर्वमा आशकार रे॥३॥

मंडली द्वारा नाटकीय जीवन के विस्तृत इतिहास का पता नहीं चलता ।

नवी पारसी विक्टोरिया नाटक मंडली

इस कम्पनी के मालिक कावसा दीनशा अन्जीनियर थे। 'हार-जीत' नाटक के 'ओपेरा' में जो प्रस्तावना दी गई है उससे पता चलता है कि "हारजीत"

नामक रूपान्तर, उर्दू भाषा में, मुंशी मुराद अली ने 'किंग लीयर' से किया था। उस समय उक्त कम्पनी के निर्देशक ख़ु० मा० विलिमोरिया थे।

कम्पनी मालिक कावसा दीनशा अन्जीनियर 'हार-जीत' की प्रस्तावना में लिखता है—"कुदरत ना खावीन्दगी करम बक्षीस थी टुंक मुद्दत दरमियान वे नवानाटको मुबईना नाटक तख्ता पर रजु करवा शक्तीवान थया पछी,.... मशहूर कवी अने उस्ताद नाटककार शेक्सपियरना नामांकीत नाटक 'किंग लियर' ने आधारे उरदू माँ रचायलो पोतानो त्रीजो नवो नाटक' 'हार-जीत' आज रोजे (२८ दिसम्बर सन् १९०४) शोकीन आलम सन्मुख रजु करवाने आ कंपनी नसीबवान नीवडी छे।"

इस भूमिका से यह भी पता चलता है कि उक्त कम्पनी का सर्वप्रथम नाटक "धूप-छाव" था जो लगभग एक सौ बार अभिनीत हुआ था। इस नाटक की कथावस्तु अंगरेजी लेखक लिटन के उपन्यास 'लेडी आफ लिआन्स' से ली गई थी। लेखक मुंशी मुराद अली 'मुराद' ही थे। वास्तव में सन् १८६८ में एदलजी खोरी ने 'लेडी आफ लिआन' नाम से ही एक नाटक लिखा था। मुराद अली ने सन् १८९२ ई० में इसे "धूप-छाव" के नाम से लिखा।[१०५]

"धूप-छाव" नाटक पर "हार-जीत" की तरह जोसफ़ डेविड का नाम भी लिखा है जिससे कल्पना की जा सकती है कि अंगरेजी की कथा सुनाकर डेविड ने 'मुराद' को सहायता प्रदान की।

"धूप-छांव" नाटक में एक जमीदार की लड़की माहरू को अपने उद्यान में सैर करते दिखाया गया है। उसी समय एक युवक जिसका नाम मुहब्बत खां है उसके पास जाकर विवाह का प्रस्ताव करता है परन्तु माहरू उसे वहाँ से निकलवा देती है। मुहब्बत खां के प्रस्थान के बाद बाके खां नाम का बागबान आता है और उसे फूल भेंट करता है। माहरु उसे स्वीकार कर लेती है। जब मुहब्बत खां को यह समाचार मिलता है तो उसे बड़ा क्रोध आता है और वह अपने मित्र दिलावर खां की सहायता से माहरु के प्रेमी को अनेकों प्रकार से कष्ट पहुँचवाता है।"[१०६]

डा० नामी ने न्यू पारसी विक्टोरिया नाटक मंडली का मालिक नौरोजजी रुस्तमजी मजाना को बताया है।[१०७] परन्तु जैसा ऊपर लिखा जा चुका है

---

१०५. उ० थि० २, पृ० ३१८।
१०६. धूप-छांव नाटक।
१०७. वही, पृ० ३१४।

"हार-जीत" के ओपेरा की भूमिका में कावशा दीनशा इंजीनियर का नाम कंपनी मालिक के रूप में लिखा हुआ है।[१०८] डा० नामी ने अपने कथन का कोई प्रमाण नहीं दिया।

यह कम्पनी अपने नाटक बम्बई रायल थियेटर मे खेला करती थी। भूमिका मे 'हार-जीत' से पहले दो नाटकों का उल्लेख हुआ है। उनमे से एक "धूप-छांव" है दूसरा कौन सा है पता नहीं चलता। रमणिक भाई ने अपनी सूची मे नवो पारसी विक्टोरिया नाटक मंडली का नाम नही दिया।

मंडली के निर्देशक खु० मा० बिलिमोरिया थे जैसा गायन की पुस्तक के मुखपृष्ठ से पता चलता है।

हिन्दी नाटक मण्डली

एक समय था जब दादी पटेल तथा दादी भाई ठूठी दोनों विक्टोरिया नाटक मंडली मे भागीदार थे। परन्तु दादी पटेल सदा से ही अपना हाथ ऊपर रखना चाहते थे। अतएव दोनों दादियों में परस्पर तेल-पानी जैसा सम्बन्ध हो गया। दादी पटेल चाहते थे कि दादी भाई ठूंठी को यह परिस्थिति पसन्द न आए। अन्त में दोनों एक दूसरे से पृथक हो गए।

परस्पर का मनोमालिन्य इतना बढ गया था कि एक दिन "बदरेमुनीर" के ओपेरा के संबंध मे दोनो मे कुछ गरमागरम बात हो गई। इस नाटक में माहरुख परी को बेनजीर के ऊपर मोहित दिखाया गया है। परिणामस्वरूप सोते हुए बेनज़ीर को पलंग सहित माहरुख हवा में उड़ा कर अपने परिस्तान में ले जाती है। दादी पटेल ने यह यांत्रिक दृश्य आल्फ्रेड नाटक मंडली के दादी रतनजी दलाल की सहायता से तैयार किया था। इसे देखकर दादी ठूठी ने दादी पटेल से कहा—"ईश्वर के लिए यह रीत परिवर्तन कर दो। यह तो बच्चों के खेल जैसी लगती है।" दादी पटेल को यह टीका अच्छी नहीं लगी। उन्होने उसी वक्त कहा—"मैं तो बेनज़ीर का पलंग ऐसी ही अच्छी रीति से उड़वाता हूँ। तुम अपनी नाटक मडली में उड़ा कर दिखाना।"

दादी ठूठी को भी यह बात लग गई और वह अपनी बात पूरी करने का अवसर सोचने लगी। वहां से उठकर अपने रिहर्सल रूम मे आये। उस समय तो बात ठंडी पड़ गई। दादी पृथक् होने पर नई विचारधारा में बहने लगे। अन्त मे उन्होंने ग्रांट रोड पर "कारोनेशन थियेटर" के बराबर

१०८. प्रस्तावना, हार-जीत खेलमां गवातों गायनों।

उसके सामने एक खुली जगह पसंद की और वहां पर अमरीकन ढब का एक थियेटर बनवाया जिसका नाम रखा 'हिन्दी थियेटर'। सम्भवत 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग दादी पटेल के 'उर्दू प्रेम' के विरोध मे ही दादी ठूठी ने किया था।

यह थियेटर बन रहा था कि इसी बीच मे दादी ठूठी ने एक क्लब का भी निर्माण कर लिया। इस नये क्लब का नाम रखा 'हिन्दी नाटक मंडली'। इधर थियेटर बन रहा था और उधर नाटक का रिहर्सल हो रहा था। नाटक था 'बेनजीर बदरे मुनीर'। यह नाटक अपने अग्रज इसी नाम के नाटक से भिन्न था। इसे किसी मुशी ने लिखा था जो दादी ठूठी के पास नौकर था। भाषा उर्दू थी परन्तु सरल नही थी। प्रातः आकर दादी ठूठी रात के दस साढे दस तक स्वयं सब कामों पर अपनी दृष्टि रखते थे। उस समय उनके पास निम्न-लिखित अभिनेता थे—

(१) दादी रतनजी ठूठी—मालिक मडली, अभिनेता और निदेशक
(२) दादी अस्पंदियारजी मिस्त्री—(दादी जादूबाज़)
(३) अरदेशर शराफ—(व्यापारी परन्तु खेल के शौक़ीन)
(४) जहांगीर पेस्तनजी खंबाता—(लबा जहांगीर)
(५) कावसजी कलीगर—(काऊ कलीगर)
(६) नवरोजी वाटला
(७) नवरोजी एदलजी तबोली
(८) कावसजी पालनजी खटाऊ
(९) कावसजी मिस्त्री—(काऊ हुंडो)
(१०) फरामजी गुस्तादजी दलाल—(विक्टोरिया के एक भागीदार)
(११) जमशेदजी का० दाजी—(जमसु मनीजेह)
(१२) जेहांगीर नवरोजी मीनवाला—(छोटा जहांगीर)
(१३) डोसाभाई फरामजी कांगा—(व्यापारी)
(१४) माणकजी अ० मिस्त्री (माकु घानसाव)
(१५) बरजोरजी कुटार इत्यादि इत्यादि।

दादी ठूठी को 'बेनज़ीर' ओपेरा वाली बात का ध्यान था अतएव वह ऐसे व्यक्ति की खोज में थे जो उनकी इच्छानुसार यांत्रिक दृश्य बना सके। ढूंढने पर उन्हे वह व्यक्ति भी मिल गया। वह एक मराठी था और उसका नाम था 'भाऊजी'। भाऊजी ने जो यांत्रिक दृश्य बनाया उसमे कालादेव (काऊ कलीगर) पलग पर सोते हुए बेनजीर (अरदेशर शराफ़) को अपने दोनों हाथो मे पलंग से उठाकर हवा मे उड़ता है और उसे माहरुख़ परी के

महल मे ले जाकर सुला देता है। बेनजीर के उड़ते ही उसका दीवानखाना आँख से ओझल हो जाता है और पचास फुट की ऊँचाई पर उड़ता हुआ कालादेव, एक बियाबान जगल मे से जाते हुए दिखाई देता है। दृश्य की तैयारी बड़ी कठिनता से की गई थी। उसमे काम करने वाले दोनो अभिनेताओ की जान जोखम मे थी परन्तु काऊ कलीगर एक बडा बलवान और साहसी युवक था। अरदेशर बडा डर रहा था परन्तु काऊ ने कहा—"अरे पण मारा बाप, मारा हाथमा तु बिल्कुल सलामत छे।" फिर भी दादी ठूठी ने यह प्रबध कर लिया था कि रंगमच पर रुई के गद्दे बिछवा दिए थे। यदि अकस्मात् कोई सकट आ जाये तो गिरने वाले के कम से कम चोट लगे। इस दृश्य को देखते ही लोगों की तालियो से सारा थियेटर गूँज उठा। दादी ठूठी ने दादी पटेल से जो बात कही थी वह करके दिखा दी। बाद को एक दिन दादी रतनजी दलाल को बुलाया और ताना मारते हुए कहा "तुमने भी बेनजीर का पलग उड़ते हुए दिखाया है, और अब आकर देख जाओ कि मैं बेनज़ीर को किस प्रकार उडाता हूँ।" दादी रतन दलाल ने कहा—"अच्छा है, देखूंगा-देखूँगा। परन्तु यह दृश्य किसने बनाया है? भाऊजी ने बनाया होगा।"

दादी ठूठी ने नये खेल के साथ नये परदे, नई पोशाके बनवाई थी परन्तु उसमे गीत नही थे। यह बड़ी कमी थी। समवत: इसी कारण नाटक अधिक सफल नही रहा। अपनी असफलता पर दादी ठूठी ने हिम्मत नही हारी। वह सहायता के लिए कैखसरू कावरा जी के पास गये। कावरा जी ने 'फ़रीदून' नाटक ठूठी को दिया। कावरा जी ने दादी से नाटक की कोई कीमत नही माँगी। शर्त यह रही कि जब दादी १०० रुपये कावराजी को दे देंगे तो नाटक पर उनका अधिकार हो जायगा।

यह फरीदून नाटक हिन्दी नाटकशाला मे खेला भी नही गया कि दादी ठूठी को भावनगर के ठाकुर साहब ने भावनगर आने का आमंत्रण भेज दिया। कोई तैयारी न होने पर दादी ठूठी भावनगर पहुँचे। वहाँ 'बेजन मनीजेह' तथा उसके साथ 'ज़फ़र और केसर' नाम की नकल तथा बेनज़ीर नाटक और 'ले पड़ूँ गले पड़ूँ' शीर्षक नकल का अभिनय किया। इस प्रकार हिन्दी नाटक मंडली, भावनगर का सीज़न समाप्त कर बम्बई वापिस आ गई। यहाँ आने पर 'फ़रीदून' नाटक खेला। परन्तु यह भी सफल न रहा।

अंत में एक साहूकार ने अपने ऋण की एवज में नाटक मंडली के समस्त सामान पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार दादी ठूठी आगे किसी अन्य नाटक

के करने से वंचित हो गए और मडली बद हो गई। ठूंठी ने कावरा जी को रुपये नहीं दिए परन्तु फिर भी उन्होंने 'फरीदून' का अधिकार उन्हें दे दिया।

इंडियन थियेट्रिकल नाटक मण्डली

इसने सन् १८६८ में 'नाना साहब' नाम का नाटक अभिनीत किया। इसके लेखक फरामजी कोनट्राड थे। नाटक मे सन् १८५७ के प्रसिद्ध नेता नाना साहब का चरित्र बताया गया है। उन्हे देशप्रेमी न बताकर देशद्रोही चित्रित किया गया है। इससे पारसियों की अगरेज-परस्ती प्रगट होती है। नाटक हिन्दुस्तानी मे था। अतएव सुगमता से उसे हिन्दी रगमंचीय नाटकों की परपरा में गिना जा सकता है।

दी पारसी इम्पीरियल नाटक मंडली

इस मंडली को आरम करने वाला कौन था और उस समय इसके मालिक कौन थे, इसका पता नही चलता। परन्तु सन् १९१३ मे इसका अस्तित्व था क्योंकि यह सूचना मिलती है कि गुलाम मुहीउद्दीन 'नाज़ा' का ड्रामा 'हूरे-अरब' उसी वर्ष जोजेफ डेविड के निर्देशन में इस मडली ने अभिनीत किया था। फिर सन् १९१४ में नाज़ा का दूसरा नाटक 'खाकी पुतला' भी डेविड के निर्देशन में मडली द्वारा खेला गया। 'नाज़ा' के नाटक 'मतलबी दुनिया' का अभिनय भी इसी कम्पनी मे हुआ। यद्यपि यह नाटक सन् १९१६ में मौजूद था परन्तु इसके गायन-सग्रह की तीसरी आवृत्ति सन् १९१७ की छपी है। इसका निर्देशन भी जोजेफ़ डेविड ने किया था। इसके पश्चात् 'नूरे-वतन' और 'बागे-ईरान' क्रमश: १९१९ तथा १९२० में अभिनीत हुए।

श्री रमणीक देसाई ने सन् १९१५-२० तक उक्त मंडली का प्रथम सोपान माना है।[१०९] "उपरोक्त नाटकों के अतिरिक्त उन्होंने 'एशियाई सितारा", "गाफिल मुसाफिर", "कौमी दिलेर" और "विराटपर्व" नामक नाटकों को भी इसी काल मे मडली द्वारा अभिनीत बताया है। उर्दू के अतिरिक्त गुजराती के "जौहरगढ" तथा "ससार-नौका" का भी उल्लेख किया है।

डा० नामी ने "क़ौमी दिलेर" का रचनाकाल सन् १९२३ बताया है।[११०] यदि यह नाटक १९२३ मे लिखा गया तो १९२० तक के काल में कैसे अभिनीत हो सकता था। अतएव दोनो मे से एक कथन सत्य नहीं है। मेरे

---

१०९. गुजराती नाट्य शताब्दी महोत्सव संग्रह, पृ० १२०

११०. उर्दू थियेटर, भाग २, पृ० ३३०

विचार में रचना काल सन् १९१३ होगा और डा० नामी के हाथ जो संस्करण आया उस पर १९२० छपा होगा जिसके कारण उन्होंने उसके रचनाकाल की यह धारणा बनाई।

पारसी इम्पीरियल नाटक मंडली का दूसरा सोपान, रमणीक भाई के अनुसार, सन् १९२० से १९२४ तक है। इस काल में मंडली के मालिक शेठ रामदास कल्याणदास थे।[111] इन चार वर्षों में खेले जाने वाले नाटकों में उन्होंने केवल 'संसार-नौका' (गुजराती में) और 'नूरे-वतन' का नाम दिया है। डा० नामी के अनुसार 'नूरे-वतन' सन् १९१९ में लिखा गया था और वह भी इसी कम्पनी के लिए। मैंने भी 'नूरे-वतन' के गायन-संग्रह में सन् १९१९ ही देखा है। अतएव 'नूरे-वतन' निश्चय ही पहले सोपान में खेला गया था। दूसरे सोपान में उसकी पुनरावृत्ति रही होगी जिसके कारण रमणीक भाई ने उसे दूसरे सोपान में स्थान दिया है। इसके अतिरिक्त 'नाज़ा' ने, डा० नामी के अनुसार, 'शेरे-क़ाबुल', 'रूखी लुटेरा', 'गाजी सलाहउद्दीन फातह', 'खूनी-शराब' तथा 'नूर में नार' और 'कृष्ण कुमारी' शीर्षक नाटक क्रमशः १९२१, १९२२, १९२३ और १९२४ में लिखे। इनमें से अन्तिम तीन के विषय में डा० नामी ने यह नहीं लिखा कि वे किस नाटक मंडली के लिए लिखे गये। शेष निस्सन्देह उक्त मंडली के लिए लिखे गए और उसमें अभिनीत हुए होंगे। इनके अभिनय के विषय में रमणीक भाई भी मौन हैं।

रमणीक भाई ने तीसरा सोपान सन् १९२६ में माना है। इस वर्ष के मालिक का नाम नहीं दिया परन्तु 'शरीफ़-खून' के अभिनय की सूचना दी है। सन् १९२७ में डेनियल डेविड मंडली के मालिक बने और इस वर्ष में 'अनमन का डाकू', 'वीर गर्जना', 'वीर अमरसिंह', 'पयामे हक़' के खेले जाने का उल्लेख किया गया है। 'नाज़ा' ने इस बीच में 'बोलता हंस' (१९२७) लिखा था परन्तु उसके अभिनय की कोई सूचना नहीं है। सन् १९२८ में 'नाज़ा' के 'सुलताना चाँद बीबी' नाटक का अभिनय किया गया। रमणीक भाई के वर्णन से प्रतीत होता है कि या तो मंडली की मिलकियत बदल गई अथवा उनके पास के गायन-संग्रह पर मालिक का नाम नहीं छपा है। क्योंकि उन्होंने १९२८ में 'साचो सेवक' का उल्लेख किया है। संभवतः जैसा नाम से पता चलता है, यह नाटक गुजराती का था।

---

१११. वही।

अन्त में यह कम्पनी मादन थियेटर्स के हाथ मे चली गई। उस समय केवल 'तलवार का धनी' नाटक के अभिनय की सूचना रमणीक भाई ने दी है। परन्तु सन् १९२९ तक 'नाज़ा' इस कम्पनी के लिए नाटक लिखते रहे। १९२८ में उन्होंने 'फूलों का हार' और १९२९ मे 'लाले-चमन' लिखा।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इम्पीरियल नाटक मडली ने पर्याप्त काल तक नाटक अभिनय में अपना योगदान दिया।

मोहीउद्दीन 'नाज़ा' का योगदान

यद्यपि अन्य मुंशियों की तरह 'नाज़ा' ने भी अपने अधिकांश नाटकों का घटनास्थल भारत के बाहर के देशों में ही रखा है परन्तु उनकी कथावस्तु के कथ्यों में विभिन्नता है और वे सामान्य मुसलमानी कथानकों के समान नही हैं। उदाहरण के लिए 'शेरे-दिल' नाटक को ही ले लीजिए। इसका कथानक कुछ ऐतिहासिक आधार रखता है जिसका सबध नादिरशाह के भारत आक्रमण के पश्चात् भारत की राजनीतिक दशा के एक पक्ष से है। नादिरशाह के प्रयाण के बाद बगाल मे मुरशिद कुली खां हाकिम बन बैठा। उसका कोई पुत्र नही था अतएव उसका उत्तराधिकारी उसका दामाद शुजा खाँ (१७२५-३९) बना, फिर उसी का पुत्र सरफ़राज खा (१७३९-४०) और उसके बाद उसका काका अलीवर्दी खाँ (१७४०-५६), बना अलीवर्दी खाँ के कोई पुत्र न था, केवल तीन लडकियाँ थीं जो उसके भतीजे हाजी मोहम्मद के तीनो लड़को से ब्याही थीं। इनमें से सबसे बड़ा फलकजाह उर्फ़ शहामतजग इस नाटक का हीरो है। बिचला भाई सिराजुद्दौला ढाका और छोटा भाई जईनुद्दीन अहमद कटक के हाकिम थे। फ़लकजाह पटना का राज सँभालता था। उन्ही के समकालीन राजा सुरेन्द्र सिंह मुंगेर के राजा थे। फलकजाह ने सुरेन्द्र सिंह पर चढाई कर दी। सुरेन्द्र सिंह ने अपने सिपहसालार सफ़शिकन खाँ को, जिसे उसके पिता ने 'शेरे-काबुल' की उपाधि दी थी, सहायता के लिए बुलाया। सफ़शिकन खाँ ने फलकशाह को परास्त कर निम्न बातो पर सन्धि कर उसे छोड दिया—

१. युद्ध व्यय के चार लाख रुपये दडस्वरूप दिए जाएँ।
२. कोहेनूर हीरा जो उसकी बीबी के पास था राजा को दिया जाए।
३. फलकजाह कोई आक्रमण बाद मे न करे।

शर्तों की मजूरी पर शेरे-काबुल ने अपने सिपहसालार कादिरबेग के नवाब को इज्जत सहित सरहद पर छोडने के लिए और उससे चार लाख रुपया तथा कोहेनूर खजानची असदयार खाँ को सौंपने के लिए कहा।

सफ़शिकन के बाद फ़लकजाह् ने कादिरबेग को बहकाया कि अगर वह सफ़शिकन को समाप्त कर दे और कोहेनूर उसे वापिस लाकर दे दे तो मैं तुझे अपना वजीर बना लूंगा। नमकहराम कादिरबेग ने 'हाँ' भर ली।

लड़ाई से वापिसी पर सफ़शिकन का लड़का शहज़ोर अपनी भावी पत्नी असदयार खाँ की लड़की मुनीरुन्निसा से मिलने आया। वहीं मुनीर की माँ चाँदनी बेगम भी आई और उसने यह हठ पकड़ ली कि अगर शहज़ोर अपने बाप के पास गया उसके खान्दान का कोहेनूर उसे वापिस करे तो मुनीर की शादी शहज़ोर के साथ की जावे। परन्तु सफ़शिकन ने उसे राजा की सम्पत्ति कह कर देने से इकार कर दिया। शादी की बात अधूरी रह गई।

राजा सुरेन्द्र अपनी रानी राधारानी से बात कर रहे थे कि कादिरबेग ने आकर विजय का समाचार सुनाया और कहा कि सफ़शिकन ने कोहेनूर रिश्वत में ले कर फ़लकजाह् को रिहा कर दिया। राजा को वहम पड़ा पर रानी ने उसे अनहोनी बताया। काहिरबेग ने कोहेनूर को खज़ाने में जमा न कर उसे सफ़शिकन के पास रख दिया। यह उसकी चालाकी थी। चाँदनी बेगम की हठ भी राजा से काहिरबेग ने बतायी। इस पर राजा बड़ा क्रुद्ध हुआ और सफ़शिकन को गिरफ्तार करने की आज्ञा काहिरबेग को दे दी।

असदयार खाँ ने मालूम कर लिया कि कोहेनूर खज़ाने में जमा नहीं किया गया। इसी बीच काहिरबेग ने सफ़शिकन को गिरफ़्तार कर लिया। राजा ने सफ़शिकन को गुनहगार समझ कर कत्ल का हुक्म दे दिया।

काहिरबेग की तरफ से सफ़शिकन के कत्ल का हुक्म लेकर बेदाद खाँ फ़लकजाह् के पास पहुँचा। आधा काम होते देखकर उसे खुशी हुई।

जंजीरबद्ध सफ़शिकन अपने गुरु खाकीशाह से मिलने गया। गुरु ने राजा के विरुद्ध कुछ न करने की सलाह दी और सफ़शिकन वहाँ से वापिस आ गया। पिता के वध की आज्ञा सुनकर शहज़ोर विद्रोह पर उतारू हो गया परन्तु बाप ने बेटे को किसी से बैर न लेने की बात बताई। पुत्र ने पिता की आज्ञापालन का वचन दिया।

कोहेनूर का लालच दे कर काहिरबेग ने चाँदनी बेगम को अपने साथ मुनीर की शादी का वचन ले लिया।

शहज़ोर और मुनीर की छिपे-छिपे मुलाकात हुई। उसी समय चाँदनी बेगम काहिरबेग को लेकर वहाँ आई और शादी की बातचीत करने लगी। मुनीर ने मना कर दिया। काहिरबेग ने प्रतिज्ञा की कि वह शहज़ोर का विनाश कर देगा।

शहज़ोर दरवान की नौकरी के लिए घर से निकल पड़ा और जंगल में काहिरबेग से उसकी भेंट हुई। काहिरबेग ने शहज़ोर को राजसी लिबास पहनकर ख़तम करने से उकसाया। शहज़ोर ने इंकार किया। काहिरबेग इस पर शहज़ोर को मार डालने की धमकी देने लगा। इसी बीच शहज़ोर की मां वहां आ पहुंची। दोनोंकी आपसी तकरार में काहिरबेग निकल भागा।

मुनीर अपने बाप से मां की बात कहती है और असदयार खां नसीबन नाम की दासी को पालकी में बिठा कर निकाह पढ़े जाने की जगह मुनीर के स्थान पर भेजता है ।

इधर राजा सुरेन्द्रसिंह से निहार सिंह काहिरबेग की बदमाशी का समाचार दे कर सफ़शिकन को निर्दोष बताता है और चांदनी बेगम के कोहेनूर के लालच का रहस्य खोलता है । दोनो सच्ची बात जानने के लिए निकल पड़ते हैं ।

काहिरबेग और मुनीर भी गुप्त शादी के समय पालकी मे से नसीबन को निकलते देख कर कोहेनूर लेकर फ़लकजाह के पास जाने की फिकर करता है। यह ख़बर शहज़ोर और निहार सिंह को मिलती है, शहज़ोर काहिरबेग को पकड़ने निकल पड़ता है ।

जिस समय निहार सिंह सफ़शिकन को वध के लिए वध-स्थल मे ले जाता है उस समय एक गैबी आवाज सुनाई देती है और निहार सिंह सफ़शिकन को छिपा कर उसे एक अरब के लिबास मे रखता है। राजा सुरेन्द्र पर सकट आता है । जंगल में रहते हुए सफ़शिकन को पता चलता है कि काहिरबेग फ़लकजाह से सरहद पर मिलकर, चढ़ाई करवाना चाहता है। सफ़शिकन फ़लकजाह की तलाश मे जाता है । दोनों की अकस्मात् भेंट होती है और सफ़शिकन उसे कैद कर लेता है। उसी जगल मे राजा सुरेंद्र अपने साथियों से अलग हो कर अकेला आ निकलता है । काहिरबेग उसे घेर कर कैद कर लेता है । इतने मे शहज़ोर भी वहां पहुंच जाता है। निहार सिंह और अरब के भेस मे सफ़शिकन वहां आते है । राजा मुक्त होता है और काहिरबेग शहज़ोर के हाथो मारा जाता है ।

राजा उन्हे दरबार मे बुला कर अपना उपकार प्रकट करता है । सफ़शिकन का इंसाफ़ होता है । फ़लकजाह भी उसे निर्दोष बताता है । राजा पश्चात्ताप करता है । नाटक सुख मे समाप्त होता है ।

इस नाटक में एक फ़ार्स भी है जिसमे त्रियाचरित्र प्रकट किया गया है ।
नाटक में सब मिलाकर केवल १९ गाने हैं।

इसी प्रकार नाजा के अन्य नाटक भी अपना पृथक् स्थान रखते हैं। इनके नाटकों के निर्देशक जोजेफ डेविड थे जो पारसी थियेटर के प्रसिद्ध और सफल निर्देशक माने जाते हैं।

'नूरे-वतन' में मूरों और इज्रायलियों की लड़ाई के परिवेश में पिता की प्रतिज्ञा का बड़ा भावावेशपूर्ण वर्णन है। अपने समय का यह बड़ा लोकप्रिय नाटक था।

पारसी अभिनेता ६

अंजूरवाग, धनजी भाई बरजोरजी : अपने अभिनय का श्रीगणेश एलफिस्टन नाटक मंडली से किया। बाद मे विक्टोरिया नाटक मंडली में प्रविष्ट हुए। वालीवाला के साथ इनका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनकी विक्टोरिया मडली के लिए धनजी भाई अंजूरवाग बड़े उपयोगी सिद्ध हुए ।

विदेश-यात्रा मे बैंकाक नगर मे अजूरवाग हैजे की बीमारी के कारण परलोक सिधारे।

धनजी भाई अजूरवाग वड़े आकर्षक अभिनेता और दृश्यपरक कलाकार थे। रंगमंच की साजसज्जा मे उनकी बड़ी रुचि थी।

इनका एक नाटक प्रसिद्ध है जिसका नाम था 'चाल मारा बाप'।

अपु, फ़रामजी दादाभाई : कुंवरजी नाज़िर ने मन में विचार किया कि एक ऐसा नाटक खेला जाय जिसका सम्बन्ध गुजरात के इतिहास से हो और जिसमें हिन्दू रीति-रिवाजो का भी प्रदर्शन हो । परिणामस्वरूप उन्होने 'राज करण घेला' नामक नाटक तैयार कराया। पारसियों द्वारा अभिनीत होने वाला यह प्रथम गुजराती नाटक था । इसके अभिनीत होने के समय तक न तो नाटक उत्तेजक मंडली बनी थी और न विक्टोरिया नाटक मंडली का ही जन्म हुआ था ।

'करण घेला' में फरामजी अपु ने राजा करण का अभिनय किया था । संभवतः यही उनके अभिनय का श्रीगणेश था। बाद में फ़रामजी अपु विक्टोरिया नाटक मंडली मे प्रविष्ट हुए। विक्टोरिया मडली मे इन्हें ऊँचे दर्जे का अभिनेता माना जाता था और उसी के अनुकूल इन्हे मासिक वेतन भी मिलता था । मंडली-के साथ-साथ इन्होंने कलकत्ता, दिल्ली, लाहौर और जयपुर आदि की भी यात्रा की थी। इन स्थानों से लौटने पर विक्टोरिया मंडली के मालिक कुंवरजी नाजर ने एक खानगी सभा बुलाई और सब बड़े-बड़े अभिनेताओं से मंडली को स्वयं आगे चलाने में असमर्थता प्रकट की। संक्षेप में विक्टोरिया नाटक मंडली भागीदारो की नाटक मंडली बन गई। इन भागीदारो में एक भागीदार फ़रामजी अपु भी थे । अतएव फ़रामजी अपु अभिनेता भी रहे और मडली के मालिक भी ।

विक्टोरिया नाटक मंडली में कई बार उलट-फेर हुए। एक परिवर्तन में फरामजी अपु और दादी ठूठी विक्टोरिया मडली से पृथक् हो गए।

अन्य भागीदारों के साथ फरामजी अपु 'दी पारसी नाटक मंडली' के भी भागीदार थे। इसी मडली में लतीफा बेगम ने अपने नाच के कारण ग्रांट रोड पर धूम मचा दी थी।

फरामजी अपु के एक भाई दीनशा दादाभाई अपु भी थे जो पहले 'बम्बई नाटक मडली' मे भागीदार रहे।

दीनशा अपु बड़े ठडे स्वभाव के व्यक्ति थे। सभी अभिनेता इन्हें पसन्द करते थे। इनकी मृत्यु मद्रास में हुई।

आंटिया, होरमसजी जमशेदजी : खान बहादुर होरमसजी आंटिया एक अवैतनिक और अव्यवसायी अभिनेता थे। इन्हें अंगरेजी के नाटकों में भाग लेने की विशेष रुचि थी। यह 'शेक्सपियर नाटक मडली' के, जिसकी स्थापना सन् १८७६ ई० मे हुई थी, एक सदस्य थे।

यह मंडली शेक्सपियर के नाटकों को गुजराती भाषा के अनुवादों द्वारा अभिनीत किया करती थी। होरमसजी ने इसके 'रोमियो जूलियेट' मे भाग लिया था।

होरमसजी अभिनेता थे, राजकर्मचारी थे और राजनीतिक सेवाओं से प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले व्यक्ति थे।

आपख्यार, नसरवानजी दोराबजी : इनका जन्म सन् १८३५ में हुआ था। असली अटक 'कीका दावर' थी परन्तु सन् १८५४ में नसरवानजी ने एक समाचारपत्र निकाला जिसका नाम 'आपख्यार' (स्वतंत्र) था और जो सन् १८६६ तक चलता रहा। इस समाचारपत्र के आधार पर इनकी अटक 'आपख्यार' पड़ गई। नसरवानजी ने सन् १८७८ मे 'पारसी पंच' नाम का समाचारपत्र भी प्रकाशित किया था। उसे ये मरण पर्यन्त चलाते रहे। इनके पश्चात् इनके भतीजे बरजोरजी नवरोजी आपख्यार ने इस पत्र को जारी रखा। परन्तु नाम 'पारसी पंच' से 'हिन्दू पंच' हो गया था।

नसरवानजी एक लेखक, कवि, गायक और अभिनेता थे। कैखसरु काबराजी से बहुत दिनों तक इनका विरोध चलता रहा। नौबत यहाँ तक पहुँची कि मुकदमा सेशन्स तक चला गया, परन्तु डोसाभाई फ़रामजी कामा के कहने से मुकदमा वापिस ले लिया गया और दोनों में मेल हो गया। घटना सन् १८७४-७५ की है।

नसरवानजी आपख्यार कोई बड़े नाटक करने के शौकीन नहीं थे। उनकी रुचि संगीत में बहुत अधिक थी। आरम्भ मे संगीतबद्ध Sketches

किया और करवाया करते थे । उस समय यह "Parsi Stage Players नाटक मडली के मालिक थे।[११२]

जब माणकजी बारभाया का साथ हो गया तो उन्होंने 'सोहराब रुस्तम' की कथा लेकर एक 'ओपेरा' बनाया । इन दिनों विक्टोरिया नाटक मडली मे कावराजी का 'बेजन-मनीजेह' और एदलजी खोरी का 'रुस्तम-सोहराव' खेला जाता था । 'बेजन-मनीजेह के गाने उस्ताद इमदाद खाँ की सहायता से रखे गये थे । एदलजी के नाटक के गाने दलपतराम ने बनाये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों से बाजी लेने के लिए ही आपख्यार ने 'सोहराव-रुस्तम' की रचना की थी। 'रुस्तम-सोहराव' मे रुस्तम के चरित्र को प्रधानता दी गई है परन्तु आपख्यार ने सोहराब को प्रमुख माना है । एदलजी के नाटक में शाहनामा को आधार मानकर पूरी कथा का समावेश नाटक मे किया गया है इसी कारण उसमें अनेक पात्र है। परन्तु "सोहराव-रुस्तम" मे सोहराव और रुस्तम तथा तहमीना तीन ही प्रधान पात्र हैं। रुस्तम का अभिनय नशरवानजी स्वयं और सोहराव का पार्ट माणकजी बारभाया किया करते थे। तीसरा पात्र स्त्री पात्र था—सोहराब की माँ तहमीना। यह स्त्री पात्र अलवट क्लब के एक गायक दीनोयारजी करते थे । दीनीयार एक अच्छा गायक छोकरा था । एक दिन अकस्मात रिहर्सल से गायब हो गया । जब तीन-चार दिन तक पता न चला तो जमसु कांदावाला को उसके स्थान पर रखा गया ।

आपख्यार इतने सफल अभिनेता थे कि सोहराब की मृत्यु पर पश्चात्ताप रूप में उन्होंने जो गाना गाया था उसके कारण दर्शक आठ-आठ आँसू रोने लगे थे।

आपख्यार की यह भी एक खूबी थी कि गाते-गाते वह रंगमच पर ही निर्देशन दे देते थे—व्यवस्थापक से कहते—'लाइट धीमी कर, लाइट धीमी कर।" दर्शकों को रुलाने वाली पक्तियाँ थीं—

> संदेसो तहमीना ने, जइ कोई कहेजो रे ।
> बापने हाथे बेटो मुवे छे खुन थयु अंजाणा बिगेर।

सक्षेप में नशरवानजी आपख्यार एक कवि, गायक और सफल अभिनेता थे। उनका स्वभाव सरल था । मई सन् १८७८ मे झांसी नगर में नशरवानजी दोराबजी आपख्यार का मरण हुआ । वहीं उन्हें दफ़नाया गया ।

---

११२. पा० त० त०, पृ० ४८

ओगरा, सोराबजी फरामजी : सोराबजी ओगरा ने दादी पटेल के निर्देशन में अपनी अभिनय-कला का श्रीगणेश किया था । वह बड़े ऊँचे दर्जे के कामिडियन थे । उनका अधिकांश जीवन न्यू आल्फ्रेड नाटक कम्पनी में व्यतीत हुआ था ।

ओगरा बड़े हँसमुख, मौजीले स्वभाव वाले और मिलनसार व्यक्ति थे । स्वस्थ शरीर और सुरीली आवाज दोनों गुणों ने उनके व्यक्तित्व को बड़ा आकर्षक बना दिया था । परन्तु निर्देशक के रूप में वह अनुशासन के बड़े पक्के थे । किसी अभिनेता का यह साहस नहीं था कि रिहर्सल घर में निश्चित समय से एक मिनट भी देर में पहुँच जाय । इस सम्बन्ध में उनके मालिक तक किसी अभिनेता द्वारा उनकी शिकायत सुनते नहीं थे । पं० राधेश्याम पर इस विषय में उनका बड़ा भरोसा था । सोराबजी की अनुपस्थिति में उक्त पंडितजी ही रिहर्सल का काम सँभालते थे ।

ओगरा का अभिनय मैंने स्वयं अभिमन्यु नाटक के अन्तर्गत 'राजा बहादुर' नामक प्रहसन में देखा था । इस प्रहसन में खुशामदपसंद व्यक्ति का मजाक उड़ाया गया है । ऐसे ही व्यक्तियों को उन दिनों अंगरेजों द्वारा 'राजा बहादुर' और 'राय बहादुर' आदि पदवियाँ दी जाया करती थीं । सोराबजी की चाल-ढाल, स्वर का उतार-चढ़ाव, उच्चारण की शुद्धता और अंग-भंगिमा सभी बड़े प्राकृतिक और मनमोहक थे । इस प्रहसन में उनका तकिया-कलाम था—"तारीफ तो यही है ।" ये वाक्य उनकी मूर्ति के मानो पर्याय हो गये थे । उन्हें देखते ही दर्शकगण चिल्ला उठते थे "तारीफ तो यही है ।" यही स्थिति अभिनेता और दर्शक के सामंजस्य की हुआ करती थी । सोराबजी इस दृष्टि से बड़े भाग्यशाली थे ।

सोराबजी को रंगमंच पर स्त्री अभिनेत्रियों की उपस्थिति से चिढ़ थी । उनके रहते हुए कोई स्त्री अभिनेत्री न्यू आल्फ्रेड में प्रविष्ट नहीं हो सकी ।

लकवे की बीमारी से सोराबजी का अन्त हुआ ।

कंत्रावटर, कावसजी माणकजी : कावसजी माणकजी पारसी स्टेज के प्रसिद्ध कंवरजी नाजरजी के बड़े कृपापात्र अभिनेता थे । यह सदा स्त्री पार्ट किया करते थे और नाजरजी इन्हें 'बहुजी' के लाड़ वाले नाम से पुकारा करते थे । "करण-घेला" नामक गुजराती नाटक में इन्होंने रूपसुन्दरी का अभिनय किया था । 'हरिश्चन्द्र नाटक' में जोगिन का पार्ट बड़ी सफलता से पूर्ण किया था । लोदन का पार्ट करने वाले खुरशेदजी बालीवाला के जोगिन ने जो असंख्य

कोडे लगाये थे और उस पर लोटन ने जो नाच नाचा था उसकी कल्पना आज भी सुख-दुःख मिश्रित शब्दों में व्यक्त की जा सकती है ।

कावसजी बड़े पतले-दुबले शरीर वाले व्यक्ति थे । काला चोगा पहिने हुए उनकी एक तस्वीर क़ैसरे-हिन्द मे (१९३१) प्रकाशित हुई थी।

काँगा, डोसाभाई फरामजी : यद्यपि व्यवसाय के आदमी न होकर वेतन-भोगी थे परन्तु नाटक का शौक़ था । अबीसीनिया की लड़ाई मे अफ्रीका से वापिस आने पर बम्बई में बूट, शूज और घोड़ों की ज़ीन आदि का व्यवसाय ग्रहण किया ।

"जोरास्ट्रियन नाटक मंडली" में 'जालम जोर' नाटक मे 'जालम जोर' का अभिनय बड़ी सफलता से किया । बाद मे दादा भाई ठूंठी की स्थापित "हिन्दी नाटक मंडली" में चले गये। 'हिन्दी नाटक मंडली' ने जब कावराजी का लिखा 'फरेदून' नाटक खेला तो उसमे 'जोहाक' के सिपहसालार 'जरसाह' का अभिनय बड़ी संतोषप्रद रीति से किया ।

तत्पश्चात् डोसाभाई काँगा अपने जन्मस्थान नवसारी मे चले गये और वहीं उनका शरीरान्त हुआ ।

काँगा, पेस्तनजी दीनशाह : "शेक्सपियर नाटक मंडली" के भंग होने पर एक नई नाटक मंडली की स्थापना सन् १८७९–८० में हुई। इसका नाम था The Zorastrian Dramatic Society । इसके स्थापकों मे डा० धनजी-भाई पटेल एवं पेस्तनजी दीनशाह काँगा प्रमुख थे। पेस्तनजी काँगा क्रिकेट के प्रसिद्ध खिलाड़ी थे।

डा० धनजी भाई ने एदलजी खोरी के नाटक 'रुस्तम-सोहराब' को परिष्कृत कर उसे गीतबद्ध Opera बनाया था । इस नाटक में पेस्तनजी काँगा ने बादशाह 'कैकाऊस' का अभिनय किया था ।

कावराजी, कैंखुशरु नवरोजी : कैखुशरु कावराजी का जन्म २१ अगस्त सन् १८४२ में हुआ था और शरीरान्त २५ अप्रैल सन् १९०४ में। इनका बासठ वर्ष का दीर्घ जीवन पारसी समाज के लिए बड़ा उपयोगी और शिक्षाप्रद रहा । कैंखुशरु जीवन भर अपनी जाति के उद्धार और विकास योजनाओं में व्यस्त रहे । बहुत ही छोटी अवस्था में वह 'रास्त गोफ़्तार' नामक पत्र के अधिपति और सम्पादक बन गये थे। जब तक उन्होने उसका सम्पादन किया तब तक महान् उत्तरदायित्व, सत्यवादिता, निर्लिप्तता और निर्भयता का निर्वाह किया।

सन् १८६७ में उन्होंने पारसी कसरतशाला को एक दृढ़ भित्ति पर स्थापित किया। ऐसा करने के लिए उन्होंने तत्कालीन सभी पारसी चालू नाटक मंडलियों को एकत्रित कर सहायतार्थ एक नाटक का प्रदर्शन किया। इस नाटक का नाम "कॉमेडी आफ एरर्स" था। दो रात के अभिनय से जो धनराशि एकत्रित हुई उसे कसरतशाला के स्थायी कोष में जमा कराकर क्षतिपूर्ति कर दी।

अब कावराजी के सामने प्रश्न यह था कि एकत्रित अभिनेताओं का क्या किया जाय? उन्हें बिखेर दिया जाय या संगठित कर कोई बड़ी भारी मरखम मडली स्थापित की जाय। निश्चय यही हुआ कि नई नाटक मंडली बनाई जाय। बस कावराजी की मंत्रणा से "विक्टोरिया नाटक मंडली" की स्थापना हो गई। कावराजी ने आरम्भ में ही तीन नाटक लिखकर मंडली को दिए और उनका निर्देशन स्वयं किया।

एक नाटक 'बेजन मनीजेह' में जमसेदजी दाजी ने इतना सुन्दर पार्ट किया कि कावराजी ने 'जमसु मनीजेह' के लिए एक 'बेनिफिट नाइट' निश्चित की। परन्तु कुछ लोगों के कहने से जमसु मनीजेह को उसमें भाग लेने से मना कर दिया। परिणाम यह हुआ कि स्वयं कैखुशरु जी कावराजी ने मनीजेह की भूमिका सँभाली। उनके अभिनय को देखकर सभी स्तंभित हो गये। यही उनका प्रथम एवं अंतिम अभिनय था।

कैखशरु बड़े साहसी, विद्वान्, आलोचक और सुधारवादी व्यक्ति थे। पारसी उन्हें सत्य ही 'पारसी नाटक तख्तानो बाप' मानते हैं।

कल्याणीवाला, भीखाजी न० : हीरजी खमाता के शिष्य थे। अपनी अभिनय-कला का आरम्भ (पुरानी) "आलफ्रेड नाटक मडली" से किया था। "शहजादा स्यावक्ष' नाटक में स्यावक्ष की भूमिका बड़ी सफलता और उत्कृष्टता से सम्पन्न की थी। इसी से दर्शकगण उन्हें 'भीखु स्यावक्ष' के नाम से पुकारा करते थे।

केरांवाला, धनजी भाई रुस्तमजी : आरम्भ में 'फलबुस' के Gentlemen's Amatours मडली में सम्मिलित हुए। उसमें स्त्री-भूमिका किया करते थे। 'फलबुस' की मंडली प्रायः Comedy of Errors गुजराती भाषा में खेला करती थी। केरांवाला उसमें स्त्री-पार्ट ही करते थे।

महिला-पार्ट करते-करते धनजीभाई को पुरुष भूमिका मिलने लगी। विक्टोरिया नाटक मंडली में सम्मिलित होकर धनजी भाई ने 'बेजन' का पार्ट किया था। अपनी अद्‌भुत सफलता के कारण धनजी भाई भी 'धनजी बजन' ही कहलाने लगे थे।

वेजन के पश्चात् इन्होने 'जमशेद' नाटक मे 'कारम' पहलवान का पार्ट बडी सुन्दरता से किया। जब विक्टोरिया मडली गुजराती के अतिरिक्त उर्दू-हिन्दी के नाटक खेलने लगी तो धनजीभाई भी उस रंग मे शामिल हो गये। 'सोने के मूल की खुरशेद' में धनजी भाई ने कोतवाल का पार्ट किया। इस भूमिका की उत्कृष्टता के कारण उन्हें बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

कालेजर, एदलजी दादाभाई उर्फ ऐदू : पायध्वनि का रहने वाला एक छोकरा था। जब विक्टोरिया मंडली नाज़रजी की मिलकियत मे देहली जा रही थी तो उन्हें स्त्री-भूमिका के लिए एक-दो छोकरों की आवश्यकता थी क्योंकि कंत्राक्टर को छोडकर पेसु आवान तो दादी पटेल की नई मडली मे सम्मिलित हो गया था। नाज़रजी के दूतो ने जैसे-तैसे 'कोलेजर' को ढूंढ निकाला और उसे देहली ले गये।

ऐदू का गला वड़ा मधुर था और आवाज़ बड़ी सुरीली थी। अपने गाने के कारण वह बड़ा लोकप्रिय था। 'अलादीन' नाटक मे उसने चीन की शहज़ादी की भूमिका से दर्शकों का मन इतना मोह लिया था कि टिकट खरीदते समय लोग यह पूछा करते थे कि 'एदू पार्ट करेगा क्या ?'

खंवाता, जेहांगीर : चुलबुले मिज़ाज और शरारती स्वभाव का छोकरा था। स्कूल में जाता परन्तु पढने में मन नही लगता था। रुचि नाटक की ओर थी। परिणामस्वरूप स्कूल जाना ही छोड़ दिया। अब निठल्ला बैठे तो कैसे। आखिर जहाँ कही रिहर्सल मे जाना आरम्भ किया। एक बार एक अभिनेता को स्वयं उसका पार्ट करके बताया। यह देखकर दूसरे अभिनेता उसकी अभिनय-कला से बड़े प्रसन्न हुए। उनकी सिफ़ारिश से जेहांगीर विक्टोरिया नाटक मडली मे ले लिये गये। जेहाँगीर ने स्त्री-भूमिका सँभाली परन्तु उसमे तो बडे अवगुण थे। लम्बा होने के कारण उसकी चाल-ढाल मे नारीगत शोभा न थी। दूसरे उसकी वाणी मे बड़ी शीघ्रता थी। दादाभाई ठूठी उसे अनेकों वार जल्दी जल्दी बोलने पर फटकारते रहते थे। कभी-कभी मार भी देते थे।

जेहाँगीर ने विक्टोरिया नाटक मंडली मे जमशेद नाटक की 'अहनवाज' की स्त्री भूमिका निभाई थी। जेहाँगीर में एक कमी थी। वह जमकर एक स्थान पर काम नही कर सकता था। विक्टोरिया मंडली से वह आलफ्रेड मंडली मे चला गया। उसमें भी अधिक नहीं टिका। देहली मे जाकर उसने अपनी ही एक नई कम्पनी स्थापित कर ली। धनजी भाई पटेल उसे 'ममता भूत' कहते थे।

जेहाँगीर कुछ दिन दादा भाई ठूठी के हिन्दी नाटक मंडली में भी रहा। इस मडली मे उसने 'बेनजीर-बदरे मुनीर' में माहरुख परी का पार्ट किया। जेहाँगीर इस समय अपनी अभिनय कला की उच्च चोटी पर था। एक बार उसने विलायत जाकर अभिनय-कला सीखने की प्रबल इच्छा की थी और जैसे-तैसे वहाँ पहुँच भी गया था। परन्तु वहाँ से कुछ हासिल करके नहीं लौटा। यूँ परोक्ष रूप से उस पर जो कुछ भी प्रभाव पड़ा हो।

जेहाँगीर प्राय. टिवोली थियेटर में अभिनय करता था। उसने उर्दू नाटक 'जुल्मे नारवा' मे भी पार्ट किया था। यह नाटक शेक्सपियर के नाटक Cymbeline अथवा Othello का रूपान्तर था। उसे Pantomime का भी बड़ा शौक था और नशरवानजी सरकारी के साथ वह उसमें भाग लेता था। जेहाँगीर स्वयं एक डाक्टर बनता था और नशरवानजी उसका कम्पाउन्डर।

जेहाँगीर अभिनय-कला और 'मेक-अप' मे अपने मामा हीरजी खंबाता का योग्य और कुशल शिष्य था। कावसजी खटाऊ ने उसी की नाटक मंडली मे अभिनय-कला सीखी और फिर अपनी आलफ्रेड मंडली चलाई।

जेहाँगीर खंबाता ने कुछ नाटक भी लिखे हैं। उसका "जुद्दीन झगड़ो" बड़ा लोकप्रिय गुजराती नाटक था। दूसरे दो नाटकों के नाम थे 'धरती कंप' और 'कोहीयार कनफ्यूजन'।

जेहाँगीर की एक अन्य पुस्तक भी बड़ी रोचक और उपयोगी है। नाम है "मारो नाटकी अनुभव"।

खंबाता नवशेरजी सं० : आरम्भ में छोटी-मोटी नाटक मडलियों में स्त्री-पार्ट किया करते थे। बाद को बालीवाला की विक्टोरिया मडली में आ गये। आँखें चली जाने पर भी इन्होंने अभिनय-कला का अच्छा प्रदर्शन किया। बाद में स्वतंत्र मंडली स्थापित कर ली। मच पर एक पारसी स्त्री से पार्ट कराया जिसके कारण पारसी जाति में पर्याप्त चर्चा चली। अन्त में वह स्त्री स्वेच्छा से मंडली छोड़कर अन्यत्र चली गई।

इन्होंने बहुत दिनों तक मंच पर काम किया। बालीवाला के स्वामिभक्तों में इनकी भी गणना होती है।

खंभाता, हीरजी : *एक अव्यवसायी अभिनेता के रूप में अपना नाटकीय जीवन आरम्भ किया। अंगरेजी का विशेष शौक था, अतएव आरम्भ में अभिनय भी अंगरेजी नाटकों मे ही करते थे। बाद में अपना सम्बन्ध आल्फेड नाटक मंडली से कर लिया। वहाँ इनकी प्रतिष्ठा ऐसी ही थी जैसी विक्टोरिया नाटक*

मंडली में कावराजी की अथवा जोरास्ट्रियन नाटक मडली में एदलजी खोरी की ।

आलफ्रेड मंडली के लिए हीरजी ने "शहजादा स्यावक्ष" और "जहाँबख्श गुल रुखसार" नाम के दो नाटक तैयार किए। इन दोनों के लेखक खुर्शेदजी बमनजी फरामरोज थे । दोनों गुजराती के नाटक थे । हीरजी की यह विशेषता थी कि निर्देशक के रूप में वह पत्थर जैसे मामूली अभिनेता को भी रगड़-रगड़ कर हीरा बना देते थे ।

'मेक-अप' की कला में तो हीरजी खंवाता बहुत ही दक्ष थे। उन जैसा कुशल शृंगारकर्ता पारसी जाति में दूसरा न था । उन्होंने अंतिम अभिनय "आवे-इबलीस" नाटक मे किया था । यह उर्दू का नाटक था और आलफ्रेड मडली के प्रसिद्ध नाटककार मुंशी मुराद अली 'मुराद' का लिखा हुआ था । हीरजी का उर्दू उच्चारण प्रशंसनीय था ।

"आबे-इबलीस" नाटक में भाग लेने के उपरान्त वह रंगमंच से पृथक् हो गये । हीरजी भाई अभिनेता थे, डिरेक्टर थे और लेखक भी थे । आवे-इबलीस इन्हीं का लिखा हुआ गुजराती नाटक था। [११३] मालूम होता है 'मुराद' ने अपना उर्दू नाटक उसी के आधार पर लिखा था ।

खटाऊ, कावसजी पालनजी : कावसजी पालनजी खटाऊ एक गरीब परिवार के व्यक्ति थे। धोबी तालाब के ऊपर एक छोटे से मकान में अपने भाइयों के साथ रहते थे । यह मकान एक छोटी सी गली में था जिसका निकास ठुक्कर बाजार के सामने वाली संकरी गली में था ।

कावसजी का अभिनय-जीवन सन् १८७५-७६ से आरम्भ हुआ। शुरू-शुरू मे डोलु धामर की कम्पनी The Shahe Alam Natak Mandli में अभिनय करते थे । बाद में जेहाँगीर खंवाता की "एमप्रेस विक्टोरिया नाटक मडली" में आ गये । इनकी अभिनय-कला के वास्तविक गुरु जेहाँगीर खंवाता ही थे । जेहाँगीर खंवाता जैसा शिक्षक मिलना भी एक बड़े सौभाग्य की बात थी । जेहाँगीर भी, कावसजी जैसा कुशल और दक्ष शिष्य प्राप्त करने में कम भाग्यशाली नहीं थे । अपनी कला-कुशलता के कारण खटाऊ जेहाँगीर के दाहिने हाथ बन गये थे ।

कावसजी ने 'गोरखधंधा', 'महाभारत' और 'सूने नाहक' तथा 'असीरेहिर्स' में अपने अभिनय के कारण धूम मचा दी थी। गाने में कुशल होने के कारण

११३—पारसी तरतानी तवारीख, पृ० ३७१

उनकी कला में चार चाँद लग गये थे। कावसजी को नाटक लिखने में भी रुचि थी। खबाता के साथ मिलकर उन्होंने विक्टोरिया नाटक मंडली में खेली जाने वाली प्रथम 'इन्द्रसभा' तैयार की थी। "अलीबाबा और चालीस चोर' को ओपेरा में परिवर्तित करने का श्रेय उन्हें ही दिया गया है।

कावसजी को ट्रेजिक भूमिका अति प्रिय थी। हेमलेट का पार्ट उन्होंने इतनी अच्छी तरह किया था कि लोग उन्हें Henry Irving के नाम से पुकारा करते थे। कावसजी की अभिनय-कला पर मोहित होकर ही मिस मैरी फेंटन अपने पिता को छोड़कर उसके साथ चली आई थी और बहुत दिनों तक उनके साथ रहकर रंगमंच की रानी रही थी। कहा जाता है जहाँगीर खटाऊ उसी का पुत्र था।

सन् १९१६ में जब कावसजी की आलफ्रेड नाटक मंडली लाहौर में थी, वह वहीं बीमार पड़े और डाइबेटीज की बीमारी से ११वीं अगस्त को परलोक सिधारे।

कावसजी की लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि लोगों ने उनके शव को गाड़ी में रखकर आरामगाह तक नहीं ले जाने दिया। अभिनेता अपने कंधों पर रखकर उन्हें श्मशान ले गये। शव-यात्रा में हजारों दर्शक थे।

कावसजी उन भाग्यशालियों में से थे जो अपनी कला व सञ्चित अच्छी सम्पत्ति अपने पीछे छोड़ गये।

चीनाई, अरदेशर : अरदेशर ने जोरास्ट्रियन मंडली में होने वाले 'हनीमून' में स्त्री पार्ट किया था। वहाँ से वह विक्टोरिया नाटक मंडली में आये और नाजर जी की मिलकियत के समय काफी दिन उसमें रहे। यहाँ लोग उसे 'अरदेशर मामी' कहकर पुकारा करते थे।

विक्टोरिया मंडली के बाद वह कई अन्य मंडलियों में चले गये। खंबाता की मंडली में 'जुल्मे-नारवाँ' में भाग लिया।

अभिनय-कला में वह डा० नशरवानजी पारख को अपना प्रतिमान (Model) मानते थे।

चीनाई, खरशेद जी अरफंदियार जी : एक बड़ा सुंदर जवान पारसी छोकरा था जो स्कूल पढ़ने जाया करता था। उन दिनों नाटक मंडली वाले अपने यहाँ स्त्री पार्ट कराने के लिए ऐसे लड़कों की ताक-झाँक में रहा करते थे। एक दिन खरशेद जी जैसी मछली भी उनके जाल में फँस गई।

आलफ्रेड मंडली में नानाभाई राणीना का लिखा हुआ 'होमला हाउ' नाटक खेला गया। कावसजी गुरशीन ने उसमें एक महत्त्वा पारसी एदलहरीम

का पार्ट किया और खरशेदजी ने हीरा मरूची का। खरशेद जी के पार्ट की कुशलता और उसके हाव-भाव के कारण दर्शक उस पर मोहित हो गये। अलीबाबा और चालीस चोर में उसने चोरों के सरदार का पुरुष-पार्ट किया।

दादी पटेल की Original Victoria Mandli मे भी खरशेद जी चीनाई, अपनी मंडली छोड़कर, आ गये थे । बाद मे पुन: आलफ्रेड मे सम्मिलित हो गये ।

यह दुर्भाग्य की बात थी कि आल्फ्रेड की नाट्यशाला जलकर राख हो गई और खरशेदजी चीनाई जैसा अभिनेता भी एकान्तवासी हो गया।

चीचगर, एदलजी बेरामजी(सेलानो) : विट्ठलदास नामक एक नाटक के शौकीन ने २५००० रु० लगाकर एक नाटक मंडली खोली । नाम रखा The Bombay Volunteer Theatrical Co. Ltd.। इसमे नशरवानजी मेरवानजी ख़ाँ साहब का लिखा एक उर्दू नाटक खेला गया जिसका नाम 'हीरा' था। इस नाटक मे मुख्य भाग एदलजी का ही था। नाटक की समाप्ति पर एक प्रहसन भी खेला जाता था जिसका नाम था 'भगलो हजाम'। भगलो हजाम का पार्ट भी एदलजी चीचगर ही करते थे।

इस प्रहसन के गाने बड़े ही लोकप्रिय थे और सत्य बात यह थी कि वे अधिकतर एदलजी के ही बनाये हुए थे । उनमे से एक अतिप्रिय गीत की पंक्ति यह थी—

> "मारु नाम भगलो हजाम, हजाम रे हूं अमदावाद नो,
> लाल महाराज नो—भजलो हजाम ।"

विट्ठलदास की मंडली छोडकर एदलजी चीचगर आलफ्रेड मंडली मे चले आये। उस समय आलफ्रेड के मालिक माणक जी मास्टर थे, नानाभाई राणीना डिरेक्टर थे और कावसजी पालनजी खटाऊ तथा मेरी फैन्टन उसके प्रसिद्ध अभिनेताओं मे थे। जब मडली रावलपिंडी गई तो एदलजी भी उसके साथ थे।

एदलजी को अभिनय के अतिरिक्त गाने और नाचने का भी अच्छा अभ्यास था। रावलपिंडी से लौटने पर आलफ्रेड मंडली भंग हो गई और उसका स्थान नई आलफ्रेड ने ले लिया। उस समय एदलजी को उसमें नृत्य की शिक्षा देने के लिए नियुक्त कर लिया गया ।

जांबुली, रुस्तमजी कावसजी : सन् १८६० के प्रसिद्ध लेखकों मे से थे। इनकी रचनाओं के दो संग्रह इनके मित्र ने प्रकाशित किये थे। यह ज़ोराष्ट्रियन क्लब के स्तम्भ थे। इनकी वास्तविक अटक 'सुरती' थी, परन्तु जादूली कैसे हुई पता नहीं चलता ।

जोशी, फरामरोज रुस्तमजी . सन् १८६८ में मैट्रिक पास किया । इनके साथियों में धनजी शाह नवरोज पारख (Lt. Col.) तथा जहाँगीरजी बेहरामजी मर्जबान (लेखक और जाम-जमशेद का मालिक) थे । फ़रामरोज ने सरकारी नौकरी मे अपना जीवन व्यतीत किया। वह सरकारी सेन्ट्रल प्रेस के सुपरिन्टेंडेंट थे । फ्रीमेसन भी थे ।

फरामजी गुस्तादजी के Gentlemen Amateurs की ओर से Grant Theatre मे एक नाटक Lady of Lyon गुजराती भाषा में अभिनीत हुआ था । इस नाटक मे फ़रामरोज जोशी ने प्रमुख नारी-पार्ट किया था। एलफिन्स्टन से सम्बन्धित न होने के कारण फरामरोज उस मंडली के नारी पात्र का अभिनय करने वाले नशरवानजी पारख और डी० एन० वाडिया के सम्पर्क मे नहीं आये थे । सम्भवतया अपनी कलाकुशलता से फ़रामरोज को कोई न कोई मंडली उड़ा लेती परन्तु फलूघुस के तीव्र स्वभाव से सब कोई डरता था अतएव उनकी मंडली के किसी अभिनेता को उड़ा लेना सुगम कार्य नही था।

फरामरोज को गाने का भी बड़ा शौक था। यद्यपि वह कोई तानसेन नही थे परन्तु अपने पार्ट में आने वाले सगीत को बड़ी मधुरता और कुशलता से अभिव्यक्त कर दर्शकों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे।

Lady of Lyon के बाद अन्य कोई नाटक करने के विचार में फलूघुस मग्न थे कि उनके कान में यह बात पहुँची कि फ़रामरोज कोई नई मंडली की स्थापना करना चाहते है। यह सुनते ही फलूघुस का पारा ऊँचा चढ़ गया । सीधे रिहर्सल रूम में जाकर कहने लगा---

"शेठीयाओ ! आपणे तो आ नाटक फकत शोखताने खातर करयेछ, अने तमे साहेबोबो फकत 'कामप्लीमेंटरी' टिकटो लई नाटक करोछ । मारे माथे आ कलब चलावामां मोटो जोखम छे । वास्ते तयुंने कोई बीजी कलब वाला ओ ऊंधु चतु (उल्टी राय देकर) समजावी पोतानें त्यां लई जवा कहे, तो मारी जोखम दारी नो बीचार करीने जाजो । मारा विरोधीओ जाणता न थी, के हुं जो छेल्ले पाटले बेसश, (जो अपनी असलियत पर आ जाऊँगा) तो ते लोकने 'पातरे पाणी पावश' । मारा कोई बी एक्टरनी अडासे ते लोके जवु नहीं ।" इस पर किसी अभिनेता ने कहा---"साहेब ! पहले नई कलबवाला फरामरोज जोशी को क्या समझाते थे ?" यह सुनते ही फलुघुस के मानो आग लग गई और वह फरामरोज पर बुरी तरह बिगड़ने लगा। दोनों में खूब गर्मागर्मी रही । परिणाम यह हुआ कि फराजमरोज जोशी वहाँ से बाहर निकल आये और आगे का कार्यक्रम सोचने लगे।

फरामरोज़ जोशी द्वारा Gentlemen Amateurs त्यागने का फलुघुस को बड़ा दुख हुआ परन्तु चिड़िया हाथ मे मे उड़ चुकी थी। अब Gentlemen Amateurs भंग हो गया। यह घटना लगभग १८६८ की है। फलुघुस ने किसी अच्छी नाटक मंडली मे घुसने का विचार किया। उनकी मुराद पूरी हो गई। सन् १८६७ मे कँवरदार कावराजी ने विक्टोरिया नाटक मंडली स्थापित की थी। सन् १८६८ मे फ़रामजी गुस्ताद उस मे सम्मिलित हो गये।

इधर फरामरोज़ जोशी भी अपने लिए चिंता में थे ही क्योंकि नाटक करने का उन्हें अद्‌भुत व्यसन था। अतएव उस समय चलती हुई आलफ्रेड नाटक मंडली में सम्मिलित हो गये। सन् १८७१ मे उन्होंने आलफ्रेड में शाह-जादा श्शवक्ष नाटक में फिरगीस का पार्ट किया था। दूसरा नाटक था जेहांबक्ष। इसमें फ़रामरोज़ जोशी ने गुलरुखसार का पार्ट किया था।

फ़रामरोज जोशी अप्रैल सन् १८७१ में नाट्य-रगमंच से पृथक् हो गये।

ठूठी दादाभाई रतनजी : दादाभाई ठूठी पारसी रगमंच के बडे प्रसिद्ध अभिनेता, डिरेक्टर और भागीदार व्यक्तियों मे से थे। उन्होंने नाटक मंडली मे आकर कब से काम करना आरम्भ किया, इसका पता नही चलता। परन्तु सन् १८७४ में जब कंवर जी नाज़र अपनी विक्टोरिया नाटक मडली को लेकर प्रवास यात्रा पर गये तो एर्लफिस्टन नाटक मडली की बागडोर दादा भाई ठूठी को ही सौप कर गये थे। उस समय दादी ठूठी ने एदलजी खोरी से गुजराती भाषा मे 'सितमगर' नामक नाटक लिखा कर अभिनीत किया था। सितमगर की भूमिका मे स्वय दादा भाई अवतीर्ण हुए थे। कहने की आव-श्यकता नही कि दादा भाई की अभिनय कला ने दर्शकों के मन को मोह लिया था। यह नाटक ईरानी वेशभूषा में खेला गया था। इसी नाटक में एक लुटेरों की टोली किसी छोकरे के पीछे उसकी खोज करते हुए जंगल में जाती है। उस अवसर पर एक 'कोरस' के गाने की व्यवस्था नाटक मे है। उन दिनों नाटको में गाने की रीति प्रचलित नहीं हुई थी। पारसी छोकरे और छोकरियां सभी के लिए संगीत की शिक्षा बुरी दृष्टि से देखी जाती थी। परन्तु मंडली मे गाने वाले के अभाव मे स्वयं दादा भाई ठूंठी वेश बदलकर लुटेरो की टोली में सम्मिलित हो जाते हैं और उस कोरस मे अग्र भाग लेते हैं। कोरस की कुछ पंक्तियां ये है :—

> "दर चाले हाले दीलमां नोंधी लो,
> मंजल दोठ हरगम जो जो—
> जीव लई नवकीज नाठो छे,

सीन पर कूदी गयो छे,
होयाँ कोई नवषी आयो छे
बतावो हमनो छोकरो—" आदि ।

जब विक्टोरिया नाटक मंडली कलकत्ते गई हुई थी तो वहाँ पर इन्द्र-सभा में पार्ट करने के लिए नाजरजी ने बम्बई से दादाभाई ठूठी को बुलाया था। दादाभाई ठूठी वहाँ का काम समाप्त करके (इंदरसभा में इन्दर का अभिनय कर) बम्बई चले आये और अपने निर्देशन में एलफ़िस्टन नाटक मंडली को चलाने लगे। एलफिन्स्टन में उन्हें एक सौ रुपया मासिक वेतन निर्देशक के रूप में मिलता था।

नाटक आरम्भ करने से पहले 'जलसा' के आविष्कारक दादाभाई ठूठी ही थे। इस जलसे में मंडली के सभी गाने वाले नाटक आरम्भ करने से पहिले रंगमंच पर आकर बैठते और गाते थे। इस प्रयोग से दादी ठूठी ने जनता को पहिले से ही अपनी ओर आकर्षित करने की बात पूरी की थी। संगीत का आनन्द भी दर्शकों को नाटक के अतिरिक्त प्राप्त हो जाया करता था। बाद में अन्य मंडलियों ने भी इस प्रयोग की नकल आरंभ कर दी थी।

जब दादी ठूठी एलफिस्टन में डिरेक्टर थे तो उन्होंने एक नाटक 'नेकी बख्ते बगाडेला यार' अभिनीत कराया था। इस नाटक के लेखक एदलजी खोरी थे। दर्शकों ने इसे बड़ा पसन्द किया था। बाद में विक्टोरिया मंडली ने इसे मुंशी रौनक़ से ओपेरा में परिवर्तित कराकर अभिनीत किया था। धनजी भाई का कथन है कि "एज खेलने विक्टोरिया क्लब ना मुंशी रोनके, पाछल थी काव्यबंधीयाँ रची, विक्टोरियाना खेलाडिओ ए ते स्टेज करी, असल खेलनूं खून कीं थू हतुं। ....असल लखेलो खोरीनो खेल कोण पासे रह्यो गयो ?"[११४]

पूना के सीज़न को समाप्त करके जब विक्टोरिया मंडली बम्बई वापिस आई तो नाजरजी ने उसकी बागडोर सँभालने के लिए मंडली के अभिनेताओं को उत्तेजित किया। परिणामस्वरूप खुरशेद जी बालीवाला, डोसाभाई दंगोल, धनजीभाई घडयाळी और फ़रामजी अपु उसके सम्मिलित भागीदार बने। यह घटना जनवरी सन् १८७६ की है। परन्तु बिना दादाभाई ठूठी की सहायता के उन्हें सफलता की कोई आशा नहीं थी। अतएव उन्होंने दादी ठूठी को, जो अब भी एलफ़िस्टन के वेतनभोगी डिरेक्टर थे, मना लिया। दादी ठूठी नई बनी इस विक्टोरिया मंडली के भागीदार और डिरेक्टर दोनों हो गये।

११४ पा० ना० त०, पृ० १४५

मंडली के भी चार के स्थान में पांच मालिक बन गये। विक्टोरिया मडली की मालिकी और डायरेक्टरी हाथ मे आते ही दादी ठूंठी ने उसकी सारी नई ड्रेसें और पर्दे आदि बनवा डाले। एक नया समाँ बँधा।

सन् १८७७ में ठूंठी ने विक्टोरिया की भागीदारी छोड दी। संभवत: इनका कारण यह था कि अन्य मालिकों ने मडली को समुद्र पार बर्मा, रगून, सिंगापुर आदि ले जाने का इरादा कर लिया था और ठूंठी को यह समुद्र यात्रा जँचती नही थी।

दादी ठूंठी ने विक्टोरिया मंडली के 'अलादीन याने अजीबो गरीब चिराग' में भी बड़ा सफल अभिनय किया। यह नाटक एक ओपेरा था और दादी ठूंठी अपने गायन से दर्शकों को उसी तरह मुग्ध करते थे जिस प्रकार वह सोहराब रुस्तम ओपेरा में करते थे।

यह तथ्य तो सभी को मालूम है कि दादी पटल और दादी ठूंठी की परस्पर बनती नही थी। अतएव एक दिन दादी ठूंठी विक्टोरिया मंडली की भागीदारी से मुक्त हो गये। परन्तु नाटक का धंधा उनकी नस-नस में पैठ चुका था अतएव उसे छोड़ना उनके लिए असंभव था। तुरन्त दादी ठूंठी के मस्तिष्क में एक नई कम्पनी खोलने की बात उठी और उन्होंनें 'हिंदी थियेटर' की नीव रखी। एक ओर यह नई नाटकशाला निर्मित होनी आरम्भ हुई, दूसरी ओर उन्होंने बेनज़ीर बदरे मुनीर की रिहर्सल भी आरम्भ कर दी। नये क्लब का नाम रखा 'हिन्दी क्लब'। इस हिन्दी क्लब के कुछ एक्टर थे—

१. दादी रतनजी ठूंठी—मालिक, एक्टर तथा डिरेक्टर
२. दादी अस्पंदियार जी मिस्त्री—दादी जादूबाज
३. अरदेशर शराफ़—एक व्यापारी
४. जेहांगीर पेस्तनजी खंबाता
५. कावसजी कलीगर (काऊ कलीगर)
६. नवरोजी वाटला
७. नवरोजी एदलजी तंबोली
८. कावसजी पालनजी खटाउ
९. कावसजी मिस्त्री (काऊ हांडो)
१०. फरामजी गुस्तादजी दलाल (विक्टोरिया के एक भागीदार)
११. जमशेदजी का० दाजी (जमसू मनीजेह)
१२. जेहांगीर नवरोजी मीनवाला।

१३. डोसाभाई फरामजी कांगा

१४. माणकजी थ० मिस्त्री

१५. बरजोरजी कुटार आदि आदि।

बेनज़ीर-बदरे मुनीर में दादी ठूंठी ने बेनज़ीर के उड़ाने का जो दृश्य उपस्थित किया था वह बड़ा विचित्र था। दादी पटेल ने माहरुख परी को स्वयं बेनज़ीर का पलंग उड़ाते दिखाया था परन्तु दादी ठूंठी ने माहरुख की आज्ञा से कालादेव को बेनज़ीर को अपनी बगल में दबाकर उड़ाते दिखाया था। कालादेव का पार्ट काऊ कलीगर ने किया था। इस यांत्रिक दृश्य के कर्ता एक मराठी सज्जन थे जिनका नाम 'मावे' था।

दादी ठूंठी ने हिन्दी नाटक मंडली में दूसरा नाटक 'फ़रेदून' करने का विचार किया परन्तु भावनगर से निमंत्रण मिलने पर वह अपनी मंडली लेकर वहाँ चले गये। बम्बई लौटने पर फ़रेदून नाटक का अभिनय किया। परन्तु ऋण का बोझ इतना अधिक हो गया था कि दादी ठूंठी उसे सँभाल नहीं पाये। मंडली भंग हुई और उसकी समस्त सामग्री ऋणदाता के हाथ में पड़ गई। दादी ठूंठी का सारा खेल बिखर गया।

तबेलेवाला, अरदेशर धीरोशाह : एक अविख्यात छोकरा बम्बई के पायेधोनी भाग में रहता था। गाने की ओर रुचि थी। प्रकृति ने गले में मिठास और वाणी में लोच दे कर उसे अलंकृत किया था। जब नाजरजी विक्टोरिया नाटक मंडली को लेकर प्रवास पर जाने लगे तो पता चला कि उनकी मंडली का प्रमुख स्त्री पार्ट करने वाला अभिनेता दादी पटेल की मंडली में चला गया है। बड़ी बाधा खड़ी हो गई। ऐसे छोकरे की खोज होने लगी जो सिखा-पढ़ाकर अभाव की पूर्ति में काम आ सके। जासूस छोड़े गये और अरदेशर अकस्मात् उनके हाथ लग गया। दिल्ली आदि स्थानों में इसने अच्छी ख्याति प्राप्त की।

दादी ठूंठी का इस पर विशेष स्नेह था। जब महाराज रामसिंहजी के कहने से दादी ठूंठी जयपुर में रुक गये तो 'अदो' को भी उन्होंने अपने पास रख लिया। 'अदो' का नाचना और चाल-ढाल बड़ी मोहक थी। दुर्भाग्य से अपनी जवानी में ही वह रक्त-पित्त रोग में पीड़ित हो गया। नाचना-गाना बंद करना पड़ा। तभी से रंगमंच से उसका सम्बन्ध टूट गया।

तांतरा, बेहरामजी बरजोरजी : आरम्भ में अव्यवसायी रूप से अभिनय किया। पीछे से विक्टोरिया नाटक मंडली में सम्मिलित हो गये।

ये 'देसु पुनराज' के नाम से पुकारे जाते थे।

'लयला-मजनूं' नाटक मे लयला का पार्ट करके प्रसिद्धि प्राप्त की। बाद में विक्टोरिया नाटक मडली मे चले गये और तरक्की करते-करते उसमे डिरेक्टर पद तक पहुँच गये।

विक्टोरिया नाटक मडली जब श्री लका गई थी तो उसके डिरेक्टर होरमुसजी तातरा ही थे। श्री लका मे मडली ने अनेको खेल खेले और पर्याप्त ख्याति अर्जित की। मडली के मालिक खुरशेदजी बालीवाला थे।

तारापोरवाला, दाराशा सोराबजी . वैसे व्यवसाय मे लगे हुए थे। परन्तु नाटक की ओर रुचि थी। स्वयं भी एक नाटक लिखा था जिसका नाम था 'रुस्तम अने सफेद देव'। इस नाटक का आधार फिरदौसी का शाहनामा था। दादी पटेल इसे अपनी हैदराबाद यात्रा में साथ ले गये परन्तु वहाँ उनका सपुट नहीं बैठा। बम्बई लौटने पर उन्होने एक छोटे परन्तु मजबूत स्टाफ़ के सपुर्द उसे कर दिया। परन्तु नाटक चला नहीं।

दाराशा ने बेजन-मनीजेह में अफरासियाब का पार्ट सफलता से किया था। बाद में स्वयं के नाटक को अभिनीत किया। दाराशा स्वयं सफेद देव बने। कावसजी गुरगीन, होरमुसजी काकावाल, फरामजी गुस्तादजी दलाल; खुरशेदजी मीनो चहरजी जोशी, डोसाभाई गोदरेज आदि खिलाडी भी विभिन्न भूमिकाओं मे रगमच पर आये। परन्तु नाटक निष्फल रहा। दादी रतनजी दलाल ने इस खेल मे एक यांत्रिक मायाजाल (Illusion) पैदा किया परन्तु इस पर भी सफलता नही मिली।

दादी पटेल का दाराशा पर बड़ा अनुग्रह था। उन्होने दाराशा के लिए एक बेनिफ़िट नाइट का प्रबध किया। उस रात दाराशा ने अफरासियाब की भूमिका की। यह भूमिका एक स्मरणीय घटना थी। सारी आमदनी दाराशा को मिली।

पैसे के लोभ में पड़कर दाराशा ने एक नई नाटक मंडली खोली। नाम रखा The Khoja Dramatic Club। इसमें एक ईरानी नाटक खेला गया जिसका शीर्षक था 'कैकाऊस अने सऊदाबा'। यह भी दाराशा की रचना थी। दुर्भाग्य यह था कि इस नाटक में सौदाबे का पार्ट करने वाला अलभ्य था। अकस्मात् इस समय काऊ खटाऊ दाराशा को मिल गया। वह पार्ट करने के लिए राजी हो गया। परन्तु इस पर भी नाटक सफल नही हुआ।

रंगमंच पर असफल होता देखकर दाराशा ने एक लाटरी का ढोंग रचा। उसमें भी बहुतों का रुपया खा डाला। एक बार पुनः कावसजी खटाऊ द्वारा

व्यवस्थित और बमनजी कावराजी द्वारा लिखित एक नाटक में दाराशा ने प्रधान भूमिका ली परन्तु अब की बार अपनी अर्जित ख्याति भी गँवा दी।

कहा जाता है कि बाद को दाराशा भारत छोड़कर रंगून चला गया; वहाँ एक बेकरी (Bakery) खोल ली। अंत मे मरणासन्न अवस्था मे बम्बई आकर पारसी जनरल हास्पिटल मे शरीर त्याग किया।

दलाल, दादाभाई रतनजी दादाभाई रतनजी प्रधानतया मिकेनिक थे। उन्होंने आल्फ्रेड और विक्टोरिया नाटक मंडलियों के कई नाटकों के लिए यान्त्रिक दृश्यों का बड़ी सफलता से निर्माण किया था। बेनज़ीर-बदरे मुनीर मे बेनज़ीर को सोते हुए उठा ले जाने वाला दृश्य दादाभाई रतनजी दलाल के ही मस्तिष्क की उपज थी।

बाद में दादाभाई अभिनय मे भी भाग लेने लगे थे।

दलाल फ़रामजी गुस्तादजी (फलूघुस) : पारसी रंगमच से सम्बन्धित पारसियों में सर्वप्रथम व्यक्तियों मे से थे। Gentlemen' sAmateures इन्ही की मंडली थी। बाद मे विक्टोरिया नाटक मडली के सस्थापक भागीदारो मे से थे। इन्होंने Lady of Lyons को गुजराती भाषा मे अभिनीत किया था। सन् १८५३ मे स्थापित होने वाली 'पारसी नाटक मडली' के भी यह अधिपति थे। नाटक मडलियो मे 'पारसी नाटक मडली' सर्वप्रथम पारसी नाटक मंडली थी। इस प्रकार सन् १८५३ ई० से ही फलुघुस ने अपना नाट्यकला-जीवन आरम्भ किया।

जब कैखुसरु कावराजी ने नाटक उत्तेजक मडली की स्थापना की तो फ़रामजी दलाल उसके भी एक भागीदार थे। यह बात सन् १८७४-७५ की है। हरिश्चन्द्र नाटक इसी मडली मे खेला गया था। नाटक की अभूतपूर्व सफलता देखकर विक्टोरिया नाटक मंडली बम्बई छोड़कर भारतयात्रा पर निकल गई थी। इस नाटक मे विश्वामित्र का पार्ट करने वाले यही दलाल महाशय थे। उनके अन्य साथियों मे से हरिश्चन्द्र का पार्ट काकावाला (होरमसजी धनजी भाई मोदी) और नक्षत्र का पार्ट कावसजी गुरगीन करते थे। तारामती का पार्ट अरदेशर हीरामाणिक करते थे।

गुस्तादजी दलाल बड़े उग्र स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होंने नाटक व्यवसाय के अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे।

जीवन पर्यन्त फलुघुस नाटक के धंधे मे लगे रहे।

दारुवाला, कावराजी मशरवानजी : बदन का छरेरा, आकर्षक पारसी जवान

स्त्री पार्ट करने में कुशल था । आरम्भ मे ईरानी नाटक मडली में प्रवेश किया और 'काऊ रोदाबे' के नाम से प्रसिद्धि पाई ।

कावराजी दारूवाला घर से सम्पन्न था परन्तु नाटक का चस्का बचपन से ही लग गया था । अपने मित्र 'नसलु तहमीना' के साथ ईरानी मंडली से निकल कर विक्टोरिया नाटक मंडली मे चला गया । वहाँ से दादी पटेल के साथ The Original Victoria Club मे प्रविष्ट हो गया।

प्रथम श्रेणी का नहीं, द्वितीय श्रेणी का अभिनेता था ।

दावर, रतनशाह् जीवाजी : आरम्भ पारसी नाटक मंडली से किया। बाद में पीछे के मार्ग से जोरास्ट्रियन नाटक मंडली में प्रविष्ट हुए। बात यह थी कि जोरास्ट्रियन नाटक मंडली को अपने नाटक में खोजा का पार्ट करनेवाले एक व्यक्ति की आवश्यकता थी । एक दिन रतनशाह् दावर रिहर्सल में पहुँचे और उक्त पार्ट करके दिखाया। पार्ट डिरेक्टर को पसन्द आया और तत्काल मडली मे ले लिये गये ।

कुछ दिनो बाद उनकी बारी दादी पटेल की The Original Victoria Theatrical Company में आ गई। यहाँ उन्हे प्रमुख भूमिकाएँ मिलने लगी। परन्तु दादी पटेल की मडली का जीवन बहुत थोड़ा रहा, अतएव यह नानाभाई राणीना की आलफ्रेड नाटक मडली मे चले गये। परन्तु इस मंडली में मेरी फ़ैन्टन के कारण दावर और कावसजी खटाऊ में कुछ कचोट होने लगी । कावसजी फ़ैन्टन पर जरा कडी निगाह रखने लगे। परिणाम यह हुआ कि फ़ैन्टन मंडली छोड़कर अन्यत्र चली गई । परन्तु रतनशाह् दावर वही बने रहे और गद्य-पद्य-परक प्रत्येक नाटक मे भाग लेते रहे ।

रतनशाह् अपने काम मे चुस्त और अनुशासन के बड़े पक्के थे। प्रसिद्ध है कि एक शनिवार को रात्रि मे होने वाले खेल में उनका प्रमुख पार्ट था। वह नाटकशाला मे आकर अपना पार्ट कर रहे थे और घर पर उनके पिता कॉलिक (Colic) के दर्द से अपना शरीर त्याग चुके थे । पिता पत्थरों पर पडा था और बेटा रंगमच पर बोल रहा था। जब नाटक समाप्त हो गया तो रतनशाह् ने घर जाकर पिता का क्रिया-कर्म पूरा किया।

दितीया, नवरोजी दोराबजी : नाटक उत्तेजक मंडली में एक सामान्य अभिनेता के रूप मे जीवन आरम्भ किया। 'सीताहरण' नाटक में इन्द्रजीत की छोटी-सी भूमिका निभाई ।

अभिनय का जिगरी शौक था ।

बर्जा, दोराबजी काबमजी : आरम्भ नाटक उत्तेजक मडली मे किया। बाद में विक्टोरिया नाटक मडली मे आ गये। बालीवाला अब अपनी मडली को माडले ले गए तो दोराबजी बर्जा उनके साथ थे।

नाटक उत्तेजक मडली में जब दोराबजी ने 'राम-लीला' नाटक मे राम का पार्ट किया तो उसे देख कर कैखसरु काबराजी बड़े प्रसन्न हुए। इनका मासिक वेतन सात रुपये से एकदम अठारह रुपये कर दिया गया। परन्तु कुछ दिनो बाद दोराबजी नाटक उत्तेजक मंडली को छोडकर 'बम्बई नाटक मडली' मे चले गये। इसमे दादी ठूठी ने इन्हें नायक का पार्ट देना आरम्भ कर दिया। 'बकावली' नाटक मे बर्जा ने अपग बादशाह का पार्ट बडी कुशलता से किया और गाने का अभ्यास न होने पर भी एक गाना गाया जिसकी पक्ति थी—

''अफसोस आँखो मे दिखाई नही देता।''

इस गाने पर दर्शक मडली न्योछावर हो गई और बर्जा को अब गाने का पार्ट मिलने लगा। सुन्दर शरीर और हाव-भाव पर दर्शक मुग्ध रहने लगे। बम्बई नाटक मंडली मे आकर बर्जा की मित्रता नवल् मजगाँववाला से हो गई। दोनों ने बरसों तक दादी ठूठी के निर्देशन में काम किया। साथ ही दोनो दादी ठूठी के साथ मडली के भागीदार भी बन गये। 'हामान' और 'चतरा बकावली' नाटक मे ये दोनो महान् ख्यातिवान हो गये। परन्तु किसी के उसकाने से दोनों मित्रो ने बम्बई नाटक मंडली का परित्याग कर दिया और परिणामस्वरूप मडली भग हो गई।

अब एक नई नाटक मंडली खुली। नाम रखा गया 'दी पारसी नाटक मडली' इसमे इन दोनो के अतिरिक्त दीनशा अप्पु और फरामजी अप्पु भी सम्मिलित थे। इस नई मडली में ही लतीफा बेगम ने अपने नाच से ग्रांट रोड पर धूम मचा दी थी।

धामर दोराबजी रुस्तम जी : डोसु धामर के नाम से पुकारे जाते थे। मस्तिष्क में एक विचार उठा ''यदि दादी पटेल उर्दू नाटक चला सकते हैं, यदि पेसु बेलाती क्लब स्थापना कर ईरानी नाटक खेल सकते हैं तो मैं नाटक क्यों नहीं चला सकता।'' स्वयं ठुमरी-ख्याल के गायक, कुशल अभिनेता, कवि और नाटक लेखक थे। बडी-बडी गलमूँछें रखते थे। बस, एक नाटक मडली स्थापित कर डाली और नाम रखा ''शाहे आलम नाटक मंडली''। दादी पटेल से बाजी लेने की धुन में नाटकशाला भी, उनके विक्टोरिया थियेटर के पास ही, एलफिस्टन थियेटर वाली पसन्द की। उनके भाई सोहराब धामर ने कुछ पारसी छोकरों को एकत्रित कर लिया।

डोसु धामर ने पहला नाटक अभिनीत किया "जान आलम और अंजुमन आरा"। नाटक का कथानक 'फसाने अजायब' से लिया गया था। इसमें डोसु ने जान आलम का पार्ट किया। मेक-अप इतना अच्छा था कि लोगों ने समझा दादी पटेल रंगमंच पर आये है, परन्तु भेद तब खुला जब डोसु ने बोलना आरम्भ किया।

एक अन्य नाटक डोसु ने किया, जिसका नाम था—

"जाबुली सेलम अने अफ़लातुन जीन,
गुलबाला परी ने पाक दामन शीरीन।"

इस नाम में 'जाबुली सेलम', 'अफ़लातून' और 'पाक दामन शीरीन' नाटकों के नाम है तथा गुलबाला एक पात्र का नाम है जिसे जमसु ने किया था और 'जमसु गुलबाला' नाम पाया था।

डोसु धामर के निर्देशन मे नाटक बड़ा सफल रहा। डोसु स्वय एक सफल अभिनेता थे। हिजडे से लेकर बादशाह तक की भूमिका बड़ी सफलता से निभाते थे। एक नाटक मे उन्होंने अफीमची का पार्ट भी बड़ी खूबी के साथ किया था।

डोसु नाचना भी जानते थे। उर्दू भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। इनके कई उर्दू नाटकों को विक्टोरिया मडली ने अपने नाटककार से सुधरवाकर लिखवाया था।

घोंडी, सोराबजी खरशेदजी : बालीवाला के अति प्रशसक और शुभचिंतक उत्साही कार्यकर्ता थे।

नाजरजी, कुंवरजी सोराबजी : कुंवरजी सोराबजी ने सन् १८६३ में मैट्रीक्यूलेशन परीक्षा पास की और उसी वर्ष एलफिंस्टन कालेज मे प्रवेश किया।[११५] दादाभाई सोराबजी पटेल रुस्तमजी मेरवानजी पटेल और होरमसजी अरदेशर वाडिया इनके सहपाठी थे। इस कालेज में श्री नाज़रजी के उद्योग से एलफिंस्टन ड्रामेटिक क्लब की स्थापना हुई। परन्तु इस क्लब के सम्बन्ध मे एक बात विचारणीय है। धनजी भाई ने इस क्लब की स्थापना सन् १८६१-६२ मे मानी है।[११६] यदि क्लब की स्थापना का श्रेय नाजरजी को ही देना है तो दोनों में से एक तिथि गलत है। जब तक नाज़रजी कालेज में नहीं गये तब तक अर्थात् १८६१-६२ मे क्लब की स्थापना असंभव है।

---

११५. पा० त० नी० त०, पृ० ८
११६. पा० त० नी० त०, पृ० ३

हाँ, यदि उनके प्रवेश से एक वर्ष पहले क्लब स्थापित हो चुका हो तो बात दूसरी है। दूसरे इतिहास लेखक क्लब की स्थापना की तिथि पर मौन है।

यह क्लब अंगरेज़ी नाटक अगरेज़ी पोशाक में खेला करता था। नाज़रजी सदैव इसमें अग्रणी रहते थे।

नाटक करने का जो शौक कालेज काल में लग गया था वह अन्त तक बना रहा। एलफ़िस्टन ड्रामेटिक क्लब एक अव्यवसायी क्लब था और इसके नाटक शंकर शेठ की पुरानी नाट्यशाला मे हुआ करते थे। सन् १८६३ तक अनेक नाटक मडलियों की स्थापना बम्बई मे हो चुकी थी।

एलफिस्टन ड्रामेटिक क्लब भी धीरे-धीरे विकसित होता गया। अंगरेज़ी नाटकों के बाद उसमें गुजराती नाटक खेले जाने लगे और पीछे से उर्दू-हिन्दी नाटको के अभिनय की भी बारी आई। गुजराती नाटकों के अभिनय के साथ उसका सगठन और रूप भी बदला। क्लब अव्यावसायिक से व्यावसायिक बना। इस विकास में नाज़रजी का बड़ा हाथ था। एक समय ऐसा भी आया जब एलफिस्टन नाटक मंडली (अब एलफिस्टन ड्रामेटिक क्लब का) का एकमात्र मालिक कुवरजी सोराबजी नाज़र था।

गुजराती नाटको मे सर्वप्रथम अभिनीत नाटक 'राजा करण घेला' था। उसके बाद 'इन्दरसभा' का अभिनय हुआ। इन्दरसभा में नाज़रजी ने 'लाइम लाइट' का बड़ा लाभ उठाया। राजा इन्दर का दरबार प्रत्येक परी की वेशभूषा के रग के समान, उसके प्रवेश पर उसी रंग का, दिखाया जाता था। दर्शकों को यह बात बहुत पसंद आई। 'अलाउद्दीन अने जादुई फ़ानस' नामक नाटक भी बड़ा लोकप्रिय रहा। नाज़रजी को ही इस सफलता का अधिकाश श्रेय दिया जाता है।

सन् १८८५ में नाज़रजी बालीवाला की विक्टोरिया नाटक मंडली के साथ उनके एजेंट एवं 'दुभाषिये' के रूप में लंदन भी गये थे। अंगरेज़ी भाषा पर उनका बड़ा अधिकार था। The First Parsi Baronet शीर्षक उन्होंने एक काव्य-पुस्तक अंगरेज़ी में लिखी थी। कुछ अगरेज़ी नाटकों के Prologue 'प्रवेश कथन' भी उनकी लेखनी से निकले थे।

नाज़रजी विक्टोरिया नाटक मंडली के भी भागीदार थे। परन्तु घाटा देखने पर और दादाभाई पटेल से मेल न होने के कारण उससे पृथक् हो गए। बाद में पुनः सम्मिलित हो गये और पीछे फिर अलग हो गए। यह लुका-छिपी का खेल काफ़ी दिनों चला।

उन दिनों कोर्ट के क्षेत्र मे जो आजकल चर्चगेट के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, कोई नाट्यशाला ऐसी नहीं थी जहाँ अगरेजी अथवा गुजराती में नाटकों के अभिनय हो सकते थे । अतएव नाज़रजी के मन में आया कि ग्रांट रोड की नाट्यशाला के समकक्ष एक नाट्यशाला बम्बई कोर्ट के क्षेत्र मे भी होनी चाहिए । आखिर इस विचार को काम मे लाने के लिए बोरीबंदर (विक्टोरिया टर्मिनस) के सामने एक स्थान पर ऐसी नाट्यशाला का निर्माण करने का निश्चय नाज़रजी ने किया जिसमे बाहर की अगरेज़ी कम्पनियाँ बम्बई में आकर अपने नाटक खेल सकें । इस नाटकशाला का नाम 'गेईटी थियेटर' (Gaiety Theatre) रखा गया । अंगरेजी कम्पनियाँ इस गेईटी थियेटर मे आकर नाटक करती थी । कभी-कभी नाजरजी भी उनके रिहर्सल मे सम्मिलित होकर अपना निर्देशन देते थे । यह बात अगरेजों और विशेष रूप से गोरी स्त्रियों के गले नही उतरती थी । फिर भी एक बार मिस बरचनफ़ के साथ नाज़रजी रंगमच पर उतरे । नाटक का नाम 'हनीमून' था । नायिका मिस बरचनफ थी और नायक कुंवरजी नाजर । कुंवरजी नाजर की लिखी एक अगरेज़ी कविता मिस डारलिंग ने शकरशेठ की नाटकशाला मे भी गाई थी ।

सन् १८८५ में नाज़रजी ने The Jubilee Theatrical Club की स्थापना की । इस क्लब मे उर्दू के नाटकों मे नाज़रजी ने अभिनय करने का काम आरम्भ किया । यह मंडली प्रायः बम्बई से बाहर रहती थी । कुछ नहीं कहा जा सकता कि नाज़रजी का अभिनय कैसा होता था । केवल कल्पना की जा सकती है कि अगरेजी नाटकों की तरह उर्दू खेलों में भी उनका प्रवेश और प्रस्थान बड़ा शोभनीय रहता होगा ।

नाज़रजी अपनी इसी नई मंडली को लेकर रजवाड़ों में यात्रा करते थे । उसी यात्रा मे गर्मी के दिनों मे ताप की अधिकता से टोंक में उन्हें ज्वर हुआ और वही उनका देहावसान हुआ । वहाँ से नाजरजी का शव जयपुर लाया गया और जयपुर में पारसी 'आरामगाह' मे उनके पुत्र रुस्तमजी कुंवरजी नाजर बी० ए०, एल-एल० बी० की उपस्थिति मे उन्हें दफना दिया गया ।

पटेल, अमर्शेदजी धनजी भाई फ़रामजी : दादी पटेल के काका थे । स्वयं अभिनय करते थे अथवा नही, पता नहीं चलता । परन्तु ईरानी नाटक मंडलियों को अवश्य प्रोत्साहन दिया था ।

पटेल, बारामा नवरोज जी (नाजांमाय नसकोरु) : नाटक उत्तेजक मंडली के अभिनेता थे । स्त्री-पार्ट में कुशल थे । उसी में प्रसिद्धि भी प्राप्त की

उन दिनों कोर्ट के क्षेत्र में जो आजकल चर्चगेट के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, कोई नाट्यशाला ऐसी नही थी जहाँ अगरेज़ी अथवा गुजराती मे नाटको के अभिनय हो सकते थे । अतएव नाज़रजी के मन मे आया कि ग्रांट रोड की नाट्यशाला के समकक्ष एक नाट्यशाला बम्बई कोर्ट के क्षेत्र मे भी होनी चाहिए । आखिर इस विचार को काम में लाने के लिए बोरीबंदर (विक्टोरिया टर्मिनस) के सामने एक स्थान पर ऐसी नाट्यशाला का निर्माण करने का निश्चय नाज़रजी ने किया जिसमे बाहर की अंगरेज़ी कम्पनियाँ बम्बई में आकर अपने नाटक खेल सकें । इस नाटकशाला का नाम 'गेईटी थियेटर' (Gaiety Theatre) रखा गया । अंगरेज़ी कम्पनियाँ इस गेईटी थियेटर में आकर नाटक करती थी । कभी-कभी नाजरजी भी उनके रिहर्सल मे सम्मिलित होकर अपना निर्देशन देते थे । यह बात अगरेजो और विशेष रूप से गोरी स्त्रियों के गले नहीं उतरती थी। फिर भी एक बार मिस बरचनफ के साथ नाजरजी रगमंच पर उतरे। नाटक का नाम 'हनीमून' था । नायिका मिस बरचनफ थी और नायक कुंवरजी नाजर । कुंवरजी नाजर की लिखी एक अंगरेज़ी कविता मिस डारलिंग ने शकरशेठ की नाटकशाला मे भी गाई थी।

सन् १८८५ में नाज़रजी ने The Jubilee Theatrical Club की स्थापना की । इस क्लब में उर्दू के नाटको मे नाज़रजी ने अभिनय करने का काम आरम्भ किया। यह मडली प्रायः बम्बई से बाहर रहती थी। कुछ नहीं कहा जा सकता कि नाजरजी का अभिनय कैसा होता था । केवल कल्पना की जा सकती है कि अंगरेज़ी नाटकों की तरह उर्दू खेलों में भी उनका प्रवेश और प्रस्थान बड़ा शोभनीय रहता होगा।

नाजरजी अपनी इसी नई मंडली को लेकर रजवाड़ों में यात्रा करते थे। उसी यात्रा मे गर्मी के दिनो में ताप की अधिकता से टोंक में उन्हे ज्वर हुआ और वहीं उनका देहावसान हुआ । वहाँ से नाज़रजी का शव जयपुर लाया गया और जयपुर मे पारसी 'आरामगाह' मे उनके पुत्र रुस्तमजी कुंवरजी नाज़र बी० ए०, एल-एल० बी० की उपस्थिति में उन्हें दफना दिया गया ।

पटेल, जमशेदजी धनजी भाई फ़रामजी : दादी पटेल के काका थे । स्वयं अभिनय करते थे अथवा नही, पता नही चलता । परन्तु ईरानी नाटक मंडलियों को अवश्य प्रोत्साहन दिया था ।

पटेल, दाराशा नवरोज जी (नाजांमाय मसकोफ़) : नाटक उत्तेजक मडली के अभिनेता थे । स्त्री-पार्ट में कुशल थे । उसी मे प्रसिद्धि भी प्राप्त की

थी। सदैव स्त्री की भूमिका में ही जीवन बिताया। विशेषता यही थी कि जिस स्त्री का पार्ट करते उसी में अद्भुत कौशल प्रदर्शित करते। मानो उसकी आत्मा में उतर गये हों। 'निंदाखानूं' में नाजामाय का पार्ट बड़ी खूबी से निभाया। मूल पात्र में एक गुण यह था कि वह नाक में बोलती थी। उसकी वास्तविक प्रतिमूर्ति के अभिनय के कारण ही लोगों ने इन्हें 'नाजामाय नसकोरु' की उपाधि दी थी। एक अन्य ससारी प्रहसन 'काला मेंढावाला' (नानाभाई रुस्तम प्रणीत) में इन्होंने शीरीन की भूमिका में उपस्थित होकर समस्त नाटक को देदीप्यमान कर दिया था। नलदमयन्ती में दमयन्ती, सुभद्रा-हरण में सुभद्रा, आबे-इबलीस में 'उरीका' और रुस्तम-सोहराब में तहमीना का पार्ट अति सुन्दर रूप से किया था। "परशियन नाटक मंडली" के नाटक 'फरेदून अने जोहाद' नामक फारसी नाटक में 'बाल-फ़रेदून' का पार्ट अत्यन्त कुशलता से किया था।

पटेल, दादाभाई सोराबजी फ़रामजी : कैखशरु काबराजी ने विक्टोरिया नाटक मंडली के सचिव पद से त्यागपत्र दे दिया। यह घटना अगस्त सन् १८६९ की है। पहले ही कहा जा चुका है कि मंडली की स्थापना मई सन् १८६८ में हुई थी। मालिक मंडली को इसकी चिंता हुई कि नया सचिव किसे बनाया जाय। छानबीन के बाद दादाभाई सोराबजी पटेल एम० ए० को नया सचिव बनाया गया।

दादी पटेल एलफ़िन्स्टन नाटक मंडली के एक अव्यवसायी अभिनेता थे और कई बरस से अव्यवसायी अभिनेता के तरीके से नाटकों में भाग लेते थे। वैसे दादी पटेल एक सम्पन्न परिवार के पुत्र थे और दो हजार मासिक वेतन पाते थे परन्तु नाटक में रुचि होने के कारण उनका अपने पिता से मनमुटाव तक हो गया था।

विक्टोरिया नाटक मंडली के सचिव होने पर दादी पटेल ने अपना ऐसा सिक्का जमाया कि कमेटी एक प्रकार से भंग हो गई और दादी पटेल ही व्यवहारतः उसके सर्वेसर्वा बन गए। दादी पटेल ने अपनी नाटक-परक आकांक्षाओं की पूर्ति में एक काम यह भी किया कि वह गुप्त रूप से ईरानी नाटक मंडली के डिरेक्टर बन गये।

दादी पटेल सन् १८७२ में विक्टोरिया नाटक मंडली के मालिक थे और इन्हीं दिनों वह कुँवरजी नाजर के साथ एलफिस्टन क्लब में भागीदार भी थे। एलफिस्टन में रहते हुए ही सन् १८७२ में उन्होंने 'नूरजहाँ' नाम के उर्दू नाटक का अभिनय गेकरशेठ की नाट्यशाला में कराया था। वास्तव

में उर्दू नाटक का श्रीगणेश दादी पटेल के मस्तिष्क की ही उपज थी जो सन् १८७१ में चालू हुई और जिसके अनुसार एदलजी खोरी के गुजराती नाटक 'सुनांनां मुलनी खुरशेद' को उर्दू में अनुवाद कराकर सर्वप्रथम अभिनीत कराया गया था। यही "सोने के मूल की खुरशेद" उर्दू का सर्वप्रथम रंगमंचीय पारसी नाटक था। यह अभिनय विक्टोरिया नाटक मडली द्वारा 'विक्टोरिया थियेटर' में ही अभिनीत हुआ था। सन् १८७४ मे वि. ना. म. नाजरजी को देकर वह उसमे पृथक् हो गए। एक ओर दादी पटेल ने उर्दू नाटक का आरम्भ किया दूसरी ओर उन्होंने गद्य को छोड़कर संगीतवद्ध पद्य-नाटक ओपेरा (Opera) का भी श्रीगणेश किया। उन्होंने नसरवानजी खाँ साहब से "बेनजीर वदरे मुनीर" नाम का ओपेरा लिखवाया। दादी पटेल को इस नाटक में पर्याप्त सफलता मिली।

दादी पटेल ने एक अन्य कार्य यह किया कि अभिनेताओं को समझा-बुझा कर इस बात पर राजी कर लिया कि वे रात मे रिहर्सल करने की बजाय दिन मे ही रिहर्सल करने आ जायेंगे और इसलिए उनका मासिक वेतन भी बढा दिया। इस चाल का अभिप्राय यह था कि खिलाडी एक प्रकार से चौबीसों घंटे के वेतनभोगी कार्यकर्ता बन गये। निश्चय ही कुछ अभिनेताओं ने जो दिन मे अन्य स्थान पर काम कर रात मे रंगमंच पर आते, इस विचार का विरोध किया परन्तु दादी पटेल को इसकी विशेष चिन्ता नहीं हुई। उनका विशेष ध्यान तो 'खशरु कोबाद' (खरशेदजी बालीवाला) तथा 'पेमु आवान' (पेस्तनजी मदान) की ओर था। इन दो अभिनेताओ के ऊपर उनकी ख्याति स्थित थी। ये दोनो Day Club मे आने को तैयार थे। बात पक्की हो गई। आगे बढने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

दादी पटेल सर सालारजंग (हैदराबाद के प्रधानमंत्री) के आमंत्रण को स्वीकार कर, अनेकों कष्ट और जोखमें उठाकर हैदराबाद पहुँचे। हैदराबाद की यात्रा बड़ी सफल रही।

दादी पटेल ने ईरानी नाटक मंडली के निर्देशन में अनेकों यांत्रिक दृश्यो का समावेश कराकर एक अद्भुत जादुई परिवेश को जन्म दिया। समस्त रंगमंच पर खेतो की हरियाली और उसमें उदय होता हुआ सूर्य उस काल के विज्ञानपरक मस्तिष्क की अद्भुत उपज थी। सजीव घोड़ों पर चढ़कर रुस्तम और बरजोर का मंच पर आकर एक दूसरे को युद्ध के लिए ललकारना एक कल्पनातीत दृश्य था। दादी पटेल अभिनेताओं का निर्देशन करने में ही सिद्धहस्त न थे बल्कि 'हातिम बिन ताई' नाटक मे हातिम की भूमिका जिस कला-

कुशलतापूर्वक दादी पटेल ने पूरी की थी, वह दृश्य बरसों तक दर्शकों को याद रहा। विक्टोरिया नाटक मंडली का यह खेल उसके सर्वोत्कृष्ट और पूर्ण सफल नाटकों में से था।

दादी पटेल का अभिनय बड़ा सजीव, बड़ा आकर्षक और बड़ा स्वाभाविक हुआ करता था। हातिम का पार्ट करने के लिए दादी पटेल ने जो विशेष पोशाक बनवाई थी उसकी नकल पीछे से कई अभिनेताओं ने की थी। 'हातिम बिन ताई' में दादी पटेल के दो दृश्य बड़े प्रभावशाली थे। हातिम का पत्थर में परिवर्तित होना और बाद में पानी में बदलना। इसी प्रकार आलमगीर नाटक में भी बड़ा सफल अभिनय था। एक व्यक्ति चेतन और अचेतन अवस्था में किस प्रकार पृथ्वी पर खड़ा रहता है, किस प्रकार गिर पड़ता है, उसके तन-मन की अवस्था कैसी होती है—आदि मानसिक एवं शारीरिक अवस्थाओं का बड़ा आकर्षक प्रदर्शन था।

पारसी रंगमंच और थिएटर के दुर्भाग्य से ३२ वर्ष की आयु में यह नौजवान पारसी युवक बंगलौर में बीमार पड़ा और अंत में १७वीं मार्च सन् १८७६ में अपने स्नेहियों की गोद में प्राण त्याग, अपनी कार्य-कुशलता की अमर कीर्ति छोड़ गया।

पस्ताकिया, दादाभाई मंचेरजी : जोरास्ट्रियन क्लब के एक भागीदार तथा आल-राउंड अभिनेता थे। हास्यरस में तो उन्हें जैसे कोई सिद्धि ही प्राप्त थी।

आरामख्यार के मित्र होने के नाते प्रायः उनके रिहर्सल में जाते थे। उनके स्केचों में भी भाग लेते थे। इनके साथी इन्हें 'दादी चौकोन' के नाम से पुकारा करते थे।

पारख, नशरवानजी नवरोजजी : सन् १८७३ में मैट्रिक पास किया। इनके साथी थे—दोराबजी दस्तूर पेशोतन जी संजाणा (बाद में दस्तूर दाराब दस्तुर पेशोतन संजाणा), बालनजी बरजोरजी देसाई, जेहांगीर डोसाभाई कराका, बेहरामजी मेरवानजी मलबारी। यह कुंवरजी सोराबजी नाजर से दस बरस बाद मैट्रिक पास हुए। पास होते ही ग्रांट मेडिकल कालेज में प्रवेश किया।

इन्हें डाक्टरी के अभ्यास के साथ-साथ नाटक का भी बड़ा शौक था। नाटक लिखने की भी रुचि थी। इस प्रकार नशरवानजी की त्रिमुखी प्रतिभा व्यक्त होने लगी। सन् १८७३ में मैट्रिक पास किया, उसी वर्ष 'सुलेमानी शमशीर' नाटक लिखा और उसी वर्ष एल्फिन्स्टन नाटक मंडली की ओर से

ग्रांट रोड थियेटर में अभिनीत किया। इस नाटक का दूसरा नाम 'निर्दोष नुरानी' भी था। पाँच अंक में विभाजित था। इसकी कथावस्तु का सम्बन्ध था किसी रहस्यमयी विपदा में घिर जाना। नुरानी का पार्ट एक पारसी छोकरे का था जिसे लोग 'पेसु नुरानी' कहकर पुकारने लगे। नशरवानजी पारख ने इसमें एक प्रहसन भी जोड दिया था जिसका शीर्षक था 'आसमान चलली'। 'चलली' गुजराती भाषा में गोरैया पक्षी को कहते है। यह आसमान चलली का पार्ट नशरवानजी एदलजी वाच्छा करता था। नाटक का मुख्य पार्ट स्वय लेखक का रहता था। नायिका का पार्ट जमशेदजी फरामजी मादन करता था।

नशरवानजी का शरीर बडा सुंदर और सुडौल था। उनका स्वास्थ्य सदैव ठीक रहता था।

सन् १८७४ में एक पत्र में निकला कि एल्फिस्टन नाटक मंडली नशरवानजी पारख का एक नया नाटक "फलकसूर सलीम" का अभिनय करने जा रही है जो तीन अंक का है। यह अभिनय Grand Theatre में हुआ था। फिर तो नशरवानजी ने कई नाटक लिखे। वे सब एल्फिस्टन मंडली मे खेले गये।

पाकदामन गुलनार में गुलनार का पार्ट पारख ने किया। बाल गधर्व श्यावक्ष मास्तर का पार्ट भी देखने योग्य था। एक परी के रूप में वह एक गाना गाते—

"सब्र रे सबुरी तूं पकड़ गुलनार
सांच मन न ख्याल करी, खुनती तलवार।"

यान्त्रिक दिखावों में भी नशरवानजी पारख काफी भाग लेते थे। फरामजी मरचा का लिखा अलादीन अने जादूई फ़ानुस (ओपेरा) नाटक में पारख के जो चोट लगी थी उसका वर्णन अन्य स्थान पर आ गया है। नशरवानजी अब्नेज़ार का पार्ट कर रहे थे। अब्नेज़ार अपने जादू के चिराग से अलादीन की अनुपस्थिति में उसका सारा महल उडाकर अफ्रीका मे ले जा रहा था। इस उड़ते महल में लगभग छ:-सात अभिनेता बैठे थे—बदरुल बदर, तीन-चार बदरुल बदर की सखियाँ, दो जिन और नशरवान अब्नेज़ार।

एक दिन नशरवानजी के अभिनय जीवन का अंत आया। सारा खेल छोड़कर वह विलायत चले गये और वहाँ से डाक्टरी की सनद लेकर लौटे।

आख़िर में नाटक उत्तेजक मंडली के एस्प्लेनेड थियेटर में उन्हे एक बेनीफिट नाईट दी गई। इसमें अन्य नाटक मडली वाले सम्मिलित थे। नशरवानजी एल्फिस्टन के एक साझीदार थे।

उन्होंने रगून जाकर अपनी प्रेक्टिस शुरू की और वही बस गये।

पारख, नशरवानजी नवरोज जी (डाक्टर) . इन्होंने एलफिस्टन नाटक मडली में रहकर 'इन्दर-सभा' नाटक में गुलफाम का पार्ट किया और प्रसिद्धि प्राप्त की । यह समस्त नाटक गायनयुक्त था । सारे गायन एक ही तर्ज पर बनाये गये थे । बड़ी भारी जोखम उठाकर नाजरजी ने इस नाटक का अभिनय कराया था क्योंकि उन दिनो गायनपरक नाटक बिल्कुल नई चीज थी ।

नशरवानजी पारख नाजरजी के बडे मददगार थे । एलफिन्स्टन का रूप परिवर्तन हो जाने पर भी नशरवानजी पारख नाजरजी के साथ ही लगे रहे यद्यपि उनके अन्य साथी मडली छोडकर अन्यत्र चले गये थे ।

यह बनजी शाह नवरोज जी पारख के भाई थे । इनके पिता का नाम नवरोजजी बेहरामजी पारख था । ४५ वर्ष की आयु मे १२ सितम्बर सन् १८७२ में मृत्यु को प्राप्त हुए ।

पावरी, पेस्तनजी दादाभाई : यह जोरास्ट्रियन क्लब के प्रमुख खिलाड़ी थे । ऊँचे दर्जे के अभिनेता थे । हास्यरस विशेष रूप से प्रिय था । परन्तु सस्ते हाव-भाव दिखाकर दर्शकों को हँसाने की अपेक्षा गम्भीर हास्य द्वारा दर्शकों का मनोरजन करने के इच्छुक रहते थे । उनका हास्य निर्दोष और निष्कलक रहता था । खुसरो-शीरीन नाटक में खुसरो परवेज का पार्ट करके जो कीर्ति पेस्तनजी पावरी अपने पीछे छोड़ गये वह किसी अन्य अभिनेता को प्राप्त नहीं हो सकी ।

पेस्तन पावरी एक मौजीले और मिलनसार अभिनेता थे । एदलजी खोरी के एक अन्य नाटक मे खुदावक्स का पार्ट लेकर पेस्तन पावरी ने बड़ी अभिनय कुशलता का परिचय दिया था ।

प्राम्पटर, नशरवानजी : नशरवानजी प्रधानतया प्राम्पटर ही थे और इसी नाम से प्रसिद्ध थे । कभी-कभी स्त्री पार्ट कर लिया करते थे । 'गुल सनोवर' मे उसने एक दहकानी स्त्री का पार्ट किया था और बड़ी सफलता प्राप्त की थी ।

परन्तु मडली मालिक उसे अभिनय करने नही देना चाहते थे क्योंकि उसके प्राम्प्टिंग के बिना नाटक चलना कठिन हो जाता था ।

नशरवानजी ने विक्टोरिया नाटक मडली और ओरिजनल विक्टोरिया नाटक मडली दोनों मे काम किया ।

फारबस, नशरवानजी बहरामजी : जोरास्ट्रियन क्लब के एक प्रधान अंग थे । एदलजी खोरी पर उनका बडा प्रभाव था । जोरास्ट्रियन के एक नामी-

दार मालिक होने के नाते उन्होंने एदलजी खोरी को केवल अपने क्लब के लिए ही नाटक लिखने को मजबूर किया परन्तु खोरी ने यह बात नही मानी । केवल इतना विश्वास दिलाया कि अपना प्रत्येक नाटक वह पहले जोरास्ट्रियन क्लब को देंगे और उसके 'ना' करने पर दूसरी नाटक मडली को दे देंगे। फलस्वरूप "खुदावक्श" नाटक उन्होंने ज़ोरास्ट्रियन को दिया । यद्यपि यह नाटक विक्टोरिया मडली के लिए लिखा गया था, परन्तु उनके आनाकानी करने पर वह जोरास्ट्रियन क्लब को दिया गया । सन् १८७१ मे शकर सेठ की नाटकशाला में ज़ोरास्ट्रियन ने यह नाटक खेला और वड़ी कीर्ति प्राप्त की ।

नशरवानजी फ़ारवस बड़े सजीदा विचारो के गभीर स्वभाव वाले आदमी थे। उनका अंगरेज़ी भाषा का ज्ञान एव शिक्षा उच्चकोटि की थी । यह पहले Sir Dinshaw Petit के सेक्रेटरी रहे। नाटक विषयक उनका प्रथम सम्वन्ध Gentlemen Amateures से था । वाद मे जोरास्ट्रियन से हुआ । खुदावख्श नाटक से पहिले "खुशरु अने शीरीन" नाटक मे, जो वदेखुदा का लिखा था और ज़ोरास्ट्रियन ही में खेला गया था, नशरवानजी ने परवेज़ के रफीक़ शाहपुर का पार्ट इतनी अच्छी तरह से किया था कि वह दर्शकवृन्द पर छा गये थे । ऐसा लगता है कि किसी कारणवश नशरवानजी ज़ोरास्ट्रियन क्लव को छोड़ गए ।

ज़ोरास्ट्रियन क्लव छोड़कर उन्होंने अपने भाई एदलजी फ़ारवस के साथ Baronet नाटक मडली की स्थापना कर ली । उसके लिए उन्होंने एक नया ड्राप सीन वनवाया जिस पर सर जमशेदजी जीजीभाई का रंगीन चित्र था और साथ में उनके द्वारा निर्मित अस्पताल का भवन । उन्होंने सर जमशेद की प्रशसा मे एक गीत भी वंदेखुदा से लिखाया था । खेल शुरू होने से पहले नशरवानजी स्वयं ड्राप सीन से वाहर आकर यह गाते थे—

> "आ परदो रंगीन नसीहत करे, कीरती कांई करो
> अगर जो कीरती करो तो हरगेज नहीं मरो ।"

वारोनेट मंडली के बंद हो जाने पर नशरवानजी फारवस भी नाटक ससार से पृथक् हो गये ।

बरजोरजी बा उर्फ़ बदलू फोतुरी : वालीवाला की विक्टोरिया मंडली के एक पुराने अभिनेता थे। 'सैफ़ुस्सुलेमान' में शैतान का अभिनय कर प्रसिद्धि प्राप्त की थी । वड़े हँसमुख तथा मीठे स्वभाव के व्यक्ति थे।

नाटक का धंधा छोड़कर बाद में 'फरेदून बरजोर मुझदवाला' कम्पनी में भागीदार हो गये थे ।

बाटलीवाला, पेस्तनजी उर्फ पेसु पुखराज : पेसु ने अपने अभिनय जीवन का आरम्भ धामर की नाटक मंडली शाहे आलम से किया। स्त्री पार्ट करने में पेसु को गर्दन के मोड़, उसके हाव-भाव और सुरीली मीठी आवाज़ उसकी कला में चार चाँद लगा देने वाले उपकरण थे । ये उपकरण उसमे इतने स्वाभाविक थे कि दर्शक हठात् ही उसकी ओर खिंच जाते थे । वैसे भी पेसु बड़ा हँसमुख स्वभाव और निरभिमान व्यक्ति था ।

एक दिन विक्टोरिया नाटक मंडली मे पेसु ने इन्दर-सभा नाटक में पुखराज परी का अभिनय किया। उसके हाव-भाव, नाच-गान और अभिनय-छटा पर दर्शक इतने मोहित हो गये कि उसका नाम ही पेसु पुखराज रख डाला । अब मंडली के अन्दर और बाहर वह इसी नाम से पुकारा जाने लगा ।

अपनी प्रवास यात्रा मे जब विक्टोरिया नाटक मंडली जयपुर आई तो महाराज रामसिंहजी पेसु पुखराज के अभिनय से इतने प्रसन्न हुए कि उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया । आयु की वृद्धि के साथ-साथ पेसु स्त्री-भूमिका से पुरुष-भूमिका की ओर आ गया । महमूदशाह गजनवी नाटक में पेसु ने वजूलकमर को पासबान 'यकीन' का पार्ट बड़े कौशल से किया ।

बाटलीवाला की लंदन यात्रा मे पेसु उनके साथ गया था परन्तु लंदन-यात्रा में उसके भाग्य ने साथ नहीं दिया । इंग्लैंड न जाने का एक लाभ पेसु को यह हुआ कि जयपुर के अन्तर्गत खेतरी नामक ठिकाने मे वह नौकर हो गया और वहाँ के ठाकुर साहब के निजी सचिव के रूप में कई बार उनके साथ उसने विलायत की यात्रा की ।

पेसु का रोब-दाब अच्छा था और सभी उसका आदर करते थे । पेसु ने बहुत दिनों तक स्त्री-पार्ट किया। एक दिन बाटलीवाला ने दाढ़ी ठुड्डी का ध्यान उसके कद पर आकर्षित किया । तब से दाढ़ी ठुड्डी पेसु को कामिक पार्ट देने लगे । परन्तु पेसु उसमें भी किसी से कम नहीं उतरा । उसके दोस्त उसका बहुत मज़ाक उड़ाते थे । यही कारण था कि कुछ दिनों बाद उसने जयपुर में एक 'गेस्ट हाउस' खोल लिया और धंधे में पड़ गया । बाद में आगरे जाकर 'सेवाय' होटल भी उसी ने चलाया । मरते समय पेसु ने पारसी जाति को एक लाख रुपया दान किया । दादर मे पारसियों की जो अगियारी बनी

है वह उसी की देन है। उसके अतिरिक्त एक धर्मशाला भी पेसु ने आगरे में बनवाई। ये दोनों काम उसके नाम को अमर रखने के लिए पर्याप्त है।

एक अभिनेता अपने जीवन में सादे रहकर इससे ज्यादा और क्या कमा सकता है तथा नाम पैदा कर सकता है।

बामजी, रुस्तमजी होरमसजी : जोरास्ट्रियन ड्रामेटिक सोसाइटी के पाँचवें मालिक थे। 'रुस्तम-सोहराब' नाटक (ओपेरा) में इन्होंने अफरासियाब वजीर के पहलवान 'होमान' का पार्ट लिया था। होमान ने सोहराब को धोखे मे रखकर उसे अपने पिता रुस्तम से नही मिलने दिया। उसकी धूर्तता पर लोग उसे देखते ही धिक्कार देने लगते थे। रुस्तमजी बामजी अपनी धूर्तता मे इतने सफल अभिनेता प्रमाणित हुए कि उन्हें रंगमंच पर देखते ही दर्शक मडली 'शेम, शेम' पुकारने लगती थी।

बामजी को जितनी सफलता गम्भीर पात्र का अभिनय करने में मिलती थी उतनी ही हास्य का अभिनय करते में भी मिलती थी। 'रताई मेदम' नामक प्रहसन में इन्होंने 'मोबेद' (पारसी धर्मोपदेशक) का इतनी सफलता से अभिनय किया कि कुछ दादा लोग इनसे बिगड़ गये।

बारभाया, माणकजी होरमसजी : बम्बई में एक पेढ़ी थी जो बारभाया के नाम से प्रसिद्ध थी। इसमें प्रेमजी मवानीदास आदि बारह भाई और सम्बन्धी सम्मिलित थे। अतएव 'बारभाया' इसका नाम पड़ा। माणकजी होरमसजी बारभाया आदि में बारभाया न होकर 'पटेल' थे। परन्तु फ़र्म से सम्बन्धित होने से बारभाया के नाम से ही प्रसिद्ध हो गये।

माणकजी बारभाया को गाने मे बड़ी रुचि थी। प्रकृति ने उपहारस्वरूप उन्हे बड़ा मीठा गला प्रदान किया था। उन दिनों स्थान स्थान पर संगीत सीखने की सुविधा नही थी, अतएव उन्होंने जो सीखा वह अधिकाश स्वयं ही। वैसे भी पारसियो मे उन दिनों सगीत बुरा समझा जाता था और लड़कियों तक के लिए स्कूलों मे संगीत सीखने की आज्ञा नही थी।

फिरदौसी के शाहनामे के आधार पर 'रुस्तम अने सोहराब' नामक एक संगीतपरक तथा काव्यबद्ध नाटक नशरवानजी होरमस जी आपअखत्यार ने बनवाया। इस नाटक को 'ओपेरा' कहा गया। इस नाटक में माणकजी बारभाया ने सोहराब का पार्ट किया। तूरानी लश्कर के अगवा बनकर सोहराब ने लड़ाई के मैदान मे रुस्तम को पुकारते हुए कहा—

"शूंमकदूर सोहराबनी सामे कोई आवे;
आ गुरज, आ समशीर, आ कमंद कोई उठावे।"

इस गजल से सारे पंडाल में सन्नाटा छा गया। उसी समय सामने की ओर से एक क़दावर जवान ने ऊँचे स्वर से गरजकर कहा—

"मगरूर ना था नादान जवान, बेध्यान,
एक पलमां थशे खाक परेशान।"

दर्शक मंडली इन शब्दों को सुनकर अवाक रह गई। उनके मन में जन्मभूमि के प्रति प्रेम का स्रोत फूट निकला।

माणकजी बारमाया बहुत दिनों तक सोहराब का पार्ट करने में समर्थ नहीं रहे। उनका स्थान पेशोतन दादाभाई पावरी ने ले लिया। पेशोतन पावरी का सम्बन्ध उन दिनों ज़ोरास्ट्रियन क्लब से था। वह उसमें अभिनेता भी थे और भागीदार भी। परन्तु माणकजी बारमाया ने रंगमंच क्यों छोड़ दिया इसके कारण का पता न चला।

इनकी एक किताब 'रागे दिलचमन' १८५८ में निकली जिसमें ३१२ ग़ज़लें थीं।

वालीवाला, खरशेदजी मेरवानजी मनचोरजी : वालीवाला के पिता मेरवानजी वालीवाला बहुत अच्छी आर्थिक स्थिति के आदमी नहीं थे। अतएव पुत्र को थोड़ा-सा व्यावहारिक ज्ञान दिलाकर उन्होंने खरशेदजी को एक छापाखाना में कम्पोज़ीटरी का काम सीखने के लिए भेज दिया। खरशेद का पर्याप्त समय इसी लाइन में व्यतीत हुआ। उन दिनों ग्रांट रोड पर रायल थियेटर में "राबिन्सन क्रूसो" का नाटक विक्टोरिया नाटक मंडली किया करती थी। राबिन्सन क्रूसो का विकट अभिनय धनजी सोला करते थे। एक दिन खरशेदजी को यह नाटक देखने का अवसर मिला। कुछ अच्छे अच्छे वाक्य उन्होंने इस नाटक के याद कर लिये। समय मिलने पर किसी दिन इन वाक्यों का अभिनय उन्होंने कुछ अभिनेताओं को दिखाया तो वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने विचारा कि खरशेद को विक्टोरिया नाटक मंडली में खींचना चाहिए। खरशेद के पिता से जाकर प्रार्थना की और खरशेदजी वालीवाला थियेटर की दुनिया में शामिल हो गये।

विक्टोरिया थियेट्रिकल मंडली अपना नया नाटक 'बेजन-मनीजेह' खेलने का प्रबन्ध कर रही थी। खरशेदजी को 'कोबाद' की भूमिका मिली। यह भूमिका उन्होंने इतनी सफलता और सुन्दरता से निभाई कि दर्शक मंडली उन्हें 'बहादुर कोबाद' के नाम से पुकारने लगी। उसके पश्चात् 'रुस्तम सोहराब' में उन्होंने 'गोर्द आफ़रीद' का पार्ट बड़े मोहक रूप से सम्पन्न किया। साथी

अभिनेता ईर्ष्या छोड़कर स्थान-स्थान पर खरशेद बालीवाला की प्रशंसा करने लगे।

जहाँगीर खंवाता खशरु कोबाद को 'खशरु रैंविट' के नाम से पुकारा करते थे। अपने साथ उन्होंने खशरु रैंविट को अभिनय-कला मे वड़ी सहायता दी थी। एक वार इन दोनो ने मिलकर कुछ छोकरो को एकत्रित किया और एक ड्रामेटिक कान्फ्रेंस कर तय किया कि कोई नाटक अभिनीत किया जाय। इधर-उधर से इकट्ठा करके खिचड़ी-पुलाव की तरह नाटक वनाया गया। उसके सव गाने बालीवाला ने बनाये। नाटक व्यवस्था देखकर जहाँगीर ने भविष्यवाणी की—"...भविष्यमा खरशेदजी वालीवाला नाटकनी लाइनमा मोटुं नाम काढशे।" और वास्तव मे जहाँगीर की यह बात सोलह आने सच्ची निकली। जहाँगीर और वालीवाला का जोड़ा काफ़ी दिन तक खूब धूम मचाता रहा।

विक्टोरिया नाटक मंडली ने सब से पहला उर्दू खेल 'सोने के मोल की खुरशेद' प्रस्तुत किया। यह नाटक गुजराती नाटक का अनुवाद था। अनुवाद फरदून जी मर्जवान ने किया था। वालीवाला ने इसमे 'फ़ीरोज़' का अभिनय किया था। कहा जाता है कि वाज़ार मे खुरशीद को खरीदने के लिए जिस समय फ़ीरोज सौदागर बन कर वालीवाला रंगमच पर प्रवेश करते उस समय उनकी भाव-भंगिमा और अभिनय-कला दर्शकों को अनायास आकर्षित करती थी। उनके मीठे स्वर से निकला संगीत लोगों को उन्मत्त बना देता था। सन् १८७१ में इसी नाटक के गुजराती सस्करण मे उन्होंने खशरु कोबाद की ख्याति प्राप्त की थी। इसी प्रकार 'बेनज़ीर बदरे मुनीर' नाटक में 'वेनज़ीर' की भूमिका में भी वालीवाला ने वड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। 'मोलीजान' नाटक में 'होजो ताड़ीवाला' बन कर वालीवाला एक गीत गाते थे—

"तरसां छीये ताडीकण रे, टट लाट असह्य केम सहीयें।"
ताडी ते माडी नूं दूध भरदानी महीयारी वाघण रे। तरसां
ताडी ते नाडीनी तनदरोस्ती शांत करे तन मन रे। तरसां
सुख कादक अे सुकाल वही गायो, आज बे रुपीये मण रे।
गाम गमेरना रडे गरीबो, टालो अे काल म्हाजन रे।"

(अंक १, प्रवेश २)

इस गीत को सुनने के लिए लोगों की टोलियाँ नावेल्टी थियटर में जमा हो जाती थीं। इसी प्रकार "तकदीरनी तासीर" नाटक में 'नसवानजी अेराकी' की भूमिका दर्शकों को भारी संख्या में स्वयं ही खीच लेती थी।

अब तो अपनी कम्पोजीटर की नौकरी छोड़कर वालीवाला पन्द्रह रुपये मासिक पर विक्टोरिया नाटक मडली मे नौकर हो गये। जिस समय विक्टोरिया नाटक मडली दादी पटेल के हाथ मे आई उस समय वालीवाला को चालीस रुपया वेतन मिलता था जो प्रायः सभी बड़े एक्टरों को दिया जाया करता था। परन्तु गरीबी की दशा यह थी कि उन दिनों भी केवल एक चादर और एक दरी लेकर कड़कती ठंड में हैदराबाद की यात्रा के लिए मडली के साथ निकल खड़े हुए।

हैदराबाद से आकर मंडली की मालिकी मे पुनः परिवर्तन हुआ। मंडली के मालिक बने दादाभाई ठूंठी, फरामजी अपु, डोसू मगोल और धनजी घडियाली, परन्तु कम्पनी चलाने की जिम्मेदारी कुँवरजी ने वालीवाला को ही सौंपी। मंडली नये मालिकों के समय मे पहिले कलकत्ते गई और वहाँ से समस्त भारत की यात्रा पर निकली । इसी यात्रा में दादाभाई ठूंठी जयपुर महाराजा की नौकरी में रह गये । कुछ अन्य अभिनेताओं ने भी ऐसा ही किया। परिणामस्वरूप मडली में फिर घाटा हुआ । परन्तु वालीवाला ने कुछ नये नाटक तैयार कराये—अलाउद्दीन, हुमायू नासीर, पूरन भगत, हीर राँझा और सितम हामान । इससे वह एक उपयुक्त डिरेक्टर भी समझे जाने लगे। अब विक्टोरिया नाटक मंडली के मालिक वालीवाला ही थे।

सन् १८७८ में विक्टोरिया नाटक मंडली ने रंगून और सिगापुर जैसे नगरो की यात्रा की और वहाँ नाटक दिखाये । वालीवाला उसके साथ थे। सन् १८८१ में वालीवाला स्वयं विक्टोरिया मंडली के स्वामी बने और मॉडले के राजा थीबू के निमंत्रण पर अपनी मडली मॉडले ले गये। वहाँ उनकी मडली का बडा स्वागत हुआ । ३५ नाटक उन्होने मॉडले में अभिनीत किए जिसके लिए राजा थीबू ने उन्हें ४३००० रुपये नकद दिए। वालीवाला के लिए यह बड़े साहस का कार्य था क्योकि मॉडले उन दिनों अगरेजी राज्य की संरक्षा में नहीं था ।

सन् १८८५ मे वालीवाला अपनी मडली को लंदन ले गए जहाँ उपनिवेशीय प्रदर्शनी लगी हुई थी। यहाँ उन्होंने 'सयरुल मुलेमान' नाटक खेला। इसमें 'पागलखां' का पार्ट स्वयं वालीवाला ने किया। उनके अभिनय से प्रसन्न होकर गेयटी और ट्यूरीलेन थियेटर के मालिक ने उन्हें चालीस पौंड मासिक वेतन पर अपने यहाँ अभिनय करने का आफ़र दिया। लदन में वालीवाला ने 'हरिश्चन्द्र', 'महमूदशाह', 'हुमायू नासिर' और 'आशिक का खून' आदि

नाटक खेले। परन्तु सफलता अधिक न मिली। बर्मा की कमाई इंग्लैण्ड में गँवाई। इसका सबसे बडा कारण नाटको की भाषा न थी क्योंकि दर्शको को समझाने के लिए बालीवाला ने एक दुभाषिये की नियुक्ति कर ली थी जो प्रत्येक दृश्य का सार देखने वालो को समझा देता था। वरन् इसका कारण जुर्माने की वह भारी रकम थी जो मडली को इसलिए देनी पड़ी कि देश के कानून के अनुसार, अपनी अज्ञानता के कारण, उसने नाटक खेलने का सरकारी आज्ञापत्र प्राप्त नहीं किया था। अपनी लदन-यात्रा मे बालीवाला की सबसे बड़ी सफलता वह बधाई थी जो उन्हें महारानी विक्टोरिया और सप्तम एडवर्ड के सामने अपने 'हरिश्चन्द्र' और 'अलादीन' नाटको का अभिनय दिखाने के लिए प्राप्त हुई थी।

बालीवाला के जीवन की सफलता का एक रहस्य उनका भानजा दारावशा भी था। वह मडली का प्रबधक और आवक-जावक का स्वामी था। एक बार रंगून में कुछ लोगों की इच्छा थी कि गुजराती नाटक खेला जाय। वे दारावशा के पास गये और अपनी इच्छा प्रकट की। दारावशा इस शर्त पर राजी हो गये कि यदि आरकेस्ट्रा क्लास के सब टिकट वे खरीद लें तो गुजराती नाटक खेला जा सकता है। बात पक्की हो गई। दारावशा ने 'चन्द्रकला' नाटक पसन्द किया। परन्तु मंडली के डिरेक्टर होरमसजी तांतरा को जब यह मालूम हुआ तो वह अभिनेताओं को ले कर बालीवाला के पास पहुँचे और खेल रोकने की मनाही करने को कहा। परन्तु उनकी एक न चली। दारावशा ने कहा कि वह ५०० रुपये में कन्ट्राक्ट कर चुके है और वचन वापिस नही लिया जा सकता। आखिर 'चन्द्रकला' खेलने का निश्चय रहा। रात्रि को खेल में बालीवाला ने देखा कि दर्शको की धूम मची है। हजारों की सख्या में लोग नाटक देखने आए हैं तो उन्हे बड़ा दुःख हुआ कि केवल पाँच सौ रुपये में ही यह कन्ट्राक्ट क्यों दे दिया गया। परन्तु खेल के बाद जब पता चला कि दारावशा ने कोई कन्ट्राक्ट नहीं किया था और उस खेल से उन्हें दो हजार की आय हुई है तो बालीवाला बड़े खुश हुए और अपने प्रबन्धक की बड़ी प्रशंसा की।

बालीवाला केवल नाटक अभिनय का काम ही नही करते थे, उनका एक व्यवसाय फोटो बनाना भी था। स्वयं इस कला में बड़े कुशल थे और उन दिनों एक-एक फोटो सात रुपये में मिलता था। अतएव इस व्यवसाय से भी उन्हें पर्याप्त आय थी।

बालीवालाजी के जीवन में चार बड़े-बड़े झटके आये। पहली घटना हैदराबाद

की है। दादी पटेल विक्टोरिया नाटक मंडली को लेकर हैदराबाद पहुँचे। उन दिनों वह रोज शूटिंग के लिए नदी किनारे जाया करते थे और एक बोतल रख कर उस पर संधान प्रयोग किया करते थे। एक दिन वह शूटिंग के लिए बाहर निकले। उनके पीछे-पीछे पेस्तनजी मादन (पेसू आवान) अपने कंधे पर बंदूक लिये हुए चले। उनके पीछे बालीवाला आ रहे थे। पेस्तनजी को मालूम न था कि बन्दूक में गोली भरी है। किसी वजह से गोली छूटी और बालीवाला के कान के पास से निकल गई। परमात्मा ने बचा लिया। दूसरी घटना रायबरेली की है। नाटक मंडली खेल कर रही थी। उन्हीं दिनों बालीवाला निमोनिया में ग्रस्त हो गये। डाक्टरों ने जीवन की आशा छोड दी, परन्तु ईश्वर की ऐसी कृपा हुई कि वह सही सलामत पलंग से उठ खड़े हुए। तीसरी घटना सिंगापुर में घटी। वहाँ पहली बार 'फ़साने अजायब' नाटक का अभिनय हो रहा था। उसमें नायक जाने आलम अपना प्राण छोड़कर एक बंदर के शरीर में प्रवेश करता है और मूच्छित हो कर रंगमंच पर गिर पड़ता है। यह अभिनय करते-करते बालीवाला पृथ्वी पर तो पड़ गये परन्तु उठ नहीं पाये। पर्दा डालकर उन्हें बड़ी कठिनता से उठाया गया। पता नहीं क्यों बेसुध हो गये। चौथी घटना उस समय हुई जब सिंगापुर से पेनाग जहाज पर आ रहे थे। एकदम तूफान आया। बालीवाला राकिंग चेयर पर अखबार पढ़ रहे थे। एकदम कुर्सी टेढ़ी हो गई, परन्तु बालीवाला समुद्र में गिरते-गिरते बचे। पाँचवी घटना यह थी कि ज्वर से पीड़ित हुए। आशा नहीं थी परन्तु बच गये।

उनके कुछ शत्रु भी ऐसे थे जिन्होंने बरमा और कराची में उनकी मृत्यु तक के झूठे समाचार उनके सम्बन्धियों के पास भेज दिए।

सितम्बर सन् १९१३ में बालीवाला को पक्षाघात का रोग लगा और उसी में उनका स्वर्गवास हो गया।

'सोने के मोल की खुरशेद' में एक हास्यजनक बनाव ऐसा था कि खुरशेदजी और उनके पिता दोनों अभिनय कर रहे थे। खुरशेद को बेचने वाला बाप और खरीदने वाला बेटा। लोग अनायास कह उठे देखो "बाप एक दूसरी बीवी बेटे के गले मांड रहा है।"

बालीवाला को सफल अभिनेता होने के नाते निम्नलिखित उपहार भेंट में मिले—

१८८१-८२ बर्मा के राजा द्वारा दो स्वर्णपदक

१८८९ लाहौर के नागरिकों की ओर से दो स्वर्णपदक

पारसियों की ओर से एक स्वर्ण घड़ी
मेनानिफ लाज की ओर से एक रजत पदक
१८९० कोलम्बो के पारसियों की ओर से एक रजत घड़ी।[११९]

बालीवाला, मेरवानजी मनचोरजी : प्रसिद्ध अभिनेता मेरवानजी बालीवाला के पिता थे। विक्टोरिया मंडली मे अभिनेता का काम करते थे। एक बार दादी पटेल ने इन्हें ऐसा पार्ट दिया जिसमे कुछ गाना भी पड़ता था। मेरवानजी यह जानकर बड़े असमंजस मे पड़ गये और दादी पटेल को अपनी असमर्थता बताने लगे, परन्तु दादी पटेल कब मानने वाले थे। पिता और पुत्र दोनों रंगमंच पर आये और यथास्थान गाने लगे।

मेरवानजी बहुत ऊँचे दर्जे के अभिनेता तो नही थे परन्तु अभिनय-जगत में उनका बड़ा मान था। 'बेजन मनीजेह' नाटक में उन्होंने रुस्तम का पार्ट किया था। गायक के रूप में उन्होंने जो गीत गाया था उसकी पंक्ति थी—

"सुन महाराजा खुश हो मन में, खुशखबरी मैं लाया रे।"

वेलाती, पेस्तनजी, फ़रामजी : ईरानी नाटक मंडली में "बरजोर अने रुस्तम" नामक नाटक मे गुरगीन पहलवान का पार्ट किया। फिर अपनी नाटक मंडली बनाई जिसका नाम 'परशियन जोरास्ट्रियन क्लब' रखा। इस मंडली के नाटक-लेखक दादा भाई एदलजी पोहंचवाला थे, जिनका उपनाम 'बदेखुदा' था। इन्होंने 'बरजोर अने मेहरसमीन औजार' नामक नाटक लिखा। इस नाटक में कई यांत्रिक दृश्य थे जिन्हें पेस्तनजी वेलाती बड़ी अच्छी रीति से दिखाया करते थे। फ़ौलादी देव और मोरजान जादुगरनी विशेष ध्यान आकर्षित करते थे। वैसे तो पेस्तनजी वैलाती इस नाटक में कई पार्ट किया करते थे परन्तु वह अपने अभिनय से अधिक लोकप्रिय नही बन सके। उनके एक पार्ट में कुछ शब्द इस प्रकार थे—"गई ! गेऐई ! गेई-गेई"। एक बार गैलरी के लोग उनके अभिनय पर यही चिल्ला उठे 'गेई, गेई'। जब मोरजान जादूगरनी अपने तख्त पर बैठ कर ऊपर उड़ती तो पेस्तनजी ये बोल बोलते थे।

इस नाटक में पेस्तनजी को नुकसान हुआ। इसलिए उन्होंने एक उर्दू नाटक खेलने का विचार किया। यह बात सन् १८७१ की थी। यद्यपि उर्दू खेल विशेष चालू नही हो पाये थे परन्तु पेस्तनजी ने यह प्रयोग करने की मन में ठान ही ली। स्त्री का पार्ट करने के लिए जब उपयुक्त छोकरा नही

११९. प्रा० प्र० खं० २, पृ० २५३

मिला तो अपने सगे भाई कावसजी फ़रामजी वेलाती को स्त्री-पार्ट दिया।
नाटक का नाम धनजीभाई ने नहीं दिया ।

परन्तु पेस्तनजी को इस उर्दू नाटक मे भी सफलता नहीं मिली। नाटक
करने का धधा छोड़कर पेस्तनजी पारसी ईरानी और पीछे से उर्दू नाटकों
का अभिनय कर एकाएक रंगमंच से लोप हो गये ।

उनका भाई कावराजी फरामजी वेलाती भी कई नाटक मंडलियों में
काम करने के बाद नाटक उत्तेजक मडली मे हिन्दू-गुजराती नाटकों में सेवा
करता रहा और अन्त मे अस्वस्थ होने के कारण रगमच से विदा हो गया ।

मंगोल, डोसा भाई फ़रदूनजी : डोसाभाई ने विक्टोरिया नाटक मडली
मे अभिनय कर बड़ी ख्याति प्राप्त की। जब जनवरी सन् १८७६ मे कवरजी
नाजर विक्टोरिया नाटक मडली से पृथक हुए और मंडली पांच मालिको की
सम्पत्ति मे चली गई तो डोसाभाई मगोल भी उसके एक मालिक थे। स्टेज,
परदों और दृश्य आदि की व्यवस्था का भार डोसाभाई के हिस्से मे आया था।

डोसाभाई स्वभाव के बडे उग्र थे । वाणी पर उनका अधिशासन नही
रहता था । एक दिन रात के समय दिल्ली मे "सोने के मोल की खुरशेद"
का खेल रंगमच पर हो रहा था । उसके एक दृश्य मे शहर कोतवाल ज़फ़र
खा और एक राजवंशीय अधिकारी के बीच द्वन्द्व होता है जिसमे तलवार
तक चल जाती है। द्वन्द्व में मगोल (जेहावक्ष) ने इतने जोर से तलवार अपने
विरोधी की तलवार पर मारी कि उससे कोतवाल की तलवार बीच मे
से टूट गई और उसका टुकडा उस स्थान पर जाकर गिरा जहाँ मडली मालिक
नाजरजी अपने दो-चार योरोपीय मित्रो के साथ प्रथम पंक्ति मे बैठे थे। नाजर-
जी वहीं से चिल्ला उठे। डोसाभाई उस समय तो शात हो गए, परन्तु नाटक
के अंत में वह भी जो मुँह में आया वही• बकने लगे और बम्बई वापिस जाने
को तैयार हो गए । परन्तु धनजी भाई घड़ियाली तथा पेसु लाली के बीच
मे पड़ने पर बात ठडी हो गई ।

डोसाभाई ने परशियन जोरास्ट्रियन मंडली मे होने वाले, वंदे खुदा द्वारा
लिखित 'वरजोर अने मीमीन ओजार' मे 'एकदस्त' का पार्ट वड़े प्रशंसा भरे
ढंग से किया था । यह एक हवशी का पार्ट था और हवशी के चरित्र का
अभिनय सुगम नहीं था । उस पार्ट की वजह से लोग डोसाभाई को 'डोसु
एकदस्त' कहकर पुकारने लगे थे । वैसे डोसाभाई का निजी धधा पारसी
मिठाई बनाना था परन्तु बाद में उसे छोड़कर वह नाटक के धंधे मे पड गए।

डोसाभाई मंगोल वाणी के उग्र होते हुए भी स्वभाव के मिलनसार और मौजी जीव थे। उनकी मृत्यु मार्च सन् १८८९ में दिल्ली में हुई। इनके बाद मेरवानजी वालीवाला अकेले विक्टोरिया नाटक मडली के मालिक बने।

मादन, पेस्तनजी, फ़रामजी : पेस्तनजी फरामजी मादन उन अभिनेताओं में से थे जिन पर दादी पटेल का बड़ा स्नेह और विश्वास था। गुजराती नाटकों में अभिनय करने के अतिरिक्त उर्दू के प्रायः प्रत्येक नाटक में, जो दादी पटेल के जीवन-काल में अभिनीत हुए, पेस्तनजी मादन का बड़ा महत्व-पूर्ण योगदान था।

पेस्तनजी मादन की आकृति बड़ी सुन्दर और उनकी बोली बड़ी मधुर थी। उनके रूप और स्वर दोनों पर दर्शक लट्टू हो जाते थे। शेक्सपियर के Pericles का रूपान्तर गुजराती में 'दादे दरियाव याने खुशरूनो खाविंद खुदा' के नाम से किया गया था। विक्टोरिया नाटक मडली ने इस नाटक को ईरानी वेश-भूषा में ही अभिनीत किया था। पेस्तनजी मादन ने उसमें आवान नामक एक नवयुवती का पार्ट इतनी कुशलता से किया कि लोग उन्हें 'पेसु आवान' के लाडले नाम से पुकारने लगे। 'सूनानी मूलनी खुरशेद' में भी भाग लिया था। इन दोनो नाटकों के बाद दादी पटेल ने पेसु आवान को 'बेनजीर बदरे मुनीर' नाटक मे, जो एक गीतपरक ओपेरा था, पार्ट दिया। गद्य को छोड़कर पद्यबद्ध नाटक का अभिनय कराना दादी पटेल के ही मस्तिष्क की उपज थी। इस नाटक में पेस्तनजी मादन के बड़े भाई नशरवानजी फ़रामजी मादन ने जो 'नसलु तहमीना के नाम से प्रसिद्ध थे, माहरू परी का अभिनय किया था। नसलु तहमीना के लिए गायक रूप में रंगमंच पर आने का यह प्रथम अवसर था।

दादी पटेल ने जिस समय अपनी नई नाटक मंडली The Original Victoria Theatrical Co. के नाम से बनाई तो दोनों भाई उसी में अभिनय किया करते थे। साथ ही मंडली के भागीदार मालिक भी थे। दादी पटेल की मृत्यु के पश्चात् दोनो भाई बम्बई छोड़कर कलकत्ते चले गये और वही बस गये।

इनके एक भाई का नाम जमशेदजी फराम जी मादन था। डा० नशरवान-जी पारख द्वारा लिखित 'सुलेमानी शमशीर' मे जमशेदजी मादन ने लेखक के साथ-साथ अभिनय किया था।

'मादन थियेटर्स' इन्ही भाइयों की सम्पत्ति थी।

मास्तर, धनजी भाई पेस्तनजी : एलफिन्स्टन के अभिनेता थे। गुजराती के 'अलाउद्दीन अने जादुई फ़ानस' में बड़ा सुन्दर अभिनय किया करते थे। इनका उपनाम 'पालखीवाला' था। प्रवेश, प्रस्थान बड़े शानदार होते थे।

दर्शकों में इनका बड़ा आदर और सम्मान था।

१८५३ मे पारसियों की प्रथम नाटक कम्पनी "पारसी नाटक मंडली" के नाम से स्थापित की। यह गुजराती में नाटक खेलती थी। सन् १८६८ में विक्टोरिया मे डिरेक्टर हो गए। इन्होंने ४३ वर्ष की आयु पाई।[१२०]

मास्तर, धनजी भाई नशरवानजी : नाटक उत्तेजक मंडली के अभिनेता थे। 'निदावानु' मे वेहुला भगत और 'सीताहरण' मे रावण का पार्ट बड़ी कुशलता से करते थे।

आरम्भ अल्फ्रेड नाटक मंडली से किया था। 'जहाँबख्श' नाटक में 'बेहरा-जीत' का पार्ट कर ख्याति प्राप्त की। बाद मे नाटक उत्तेजक मंडली में प्रवेश किया।

इनकी एक विशेषता यह भी थी कि गुजराती और उर्दू दोनों भाषा के नाटकों मे अभिनय करते थे।

मास्तर, माणेकजी जीवनजी : माणेकजी का संबंध आल्फ्रेड नाटक मण्डली से था। इसी मण्डली मे उन्होने 'शाहज़ादा स्यावक्ष' नाटक में अफ़रा-सियाब के मंत्री 'पीरान' का पार्ट किया था। इसी कारण से यह 'माणेकजी पीरान' के नाम से ही नाटक-जगत् में प्रसिद्ध हुए थे।

माणेकजी अभिनेता से आगे बढ़कर आल्फ्रेड मंडली के एक मालिक भी हो गये। परन्तु कुछ दिनों बाद आल्फ्रेड मडली बन्द हो गई।

जब नानाभाई रुस्तमजी राणीना ने इस मंडली का उद्धार किया तब माणेकजी मास्तर उसके मैनेजिंग प्रोप्राइटर बने। दुर्भाग्यवश कुछ दिनों बाद यह मंडली पुनः भंग हो गई। तीसरी बार इसका उद्धार सोराबजी फ़रामजी ओगरा ने किया। तब इसका नाम न्यू आल्फ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी रखा गया।

मास्तर, स्यावक्ष रुस्तमजी : स्यावक्ष मास्तर ने बंबरजी नाज़र की एल-फ़िन्स्टन नाटक मंडली में अभिनय आरम्भ किया। इन्दर-सभा नाटक में जब नशरवानजी पारख 'गुलफ़ाम' का पार्ट करते थे तो स्यावक्ष मास्तर 'सब्ज़परी' का अभिनय करते थे। बाद में यह बैरिस्टर बन गये।

---

१२०. पा० प्र० पं० २, पृ० ५३४

'पाक दामन गुलनार' मे इन्होने एक छोटी परी का अभिनय किया। इनका गला बड़ा मधुर था। अपने गानो के कारण भी इन्हे बड़ी प्रसिद्धि मिली। इनके एक गाने की पंक्तियाँ थी—

"सबर रे सबुरी तूं पकड़ गुलनार।
खांच मनने ख्याल करी, खुननी तलवार ॥"

मुंशी, मेरवानजी : जब कुंवरजी नाजर विक्टोरिया नाटक मंडली के साथ यात्रा को चले गये और एलफ़िन्स्टन मंडली का निर्देशन दादी ठूंठी के हाथ में बम्बई में छोड़ गये तो दादी ठूठी ने कुछ नये जवानो को मंडली मे भरती किया। इनमे तीन विशेष रूप से उल्लेखनीय थे—मास्टर रतन नवरोजी मीनवाला, मेरवानजी मुशी और स्वय दादी ठूंठी। दादी ठूठी ने एदलजी खोरी से गुजराती भाषा मे एक नाटक लिखाया जिसका शीर्षक था 'सितमगर।

'सितमगर' मे मेरवानजी मुशी पहली ही बार रंगमंच पर आए। बड़े रंगीले और हास्यप्रधान रूप से उन्होने दर्शक मंडली पर अपना सम्मोहन अस्त्र फेंका।

बाद मे मेरवानजी विक्टोरिया कम्पनी में आ गये और जीवन पर्यन्त हास्य-प्रधान चरित्र का पार्ट करते रहे। सन् १८७२ मे उन्होंने अभिनेता का कार्य आरम्भ किया था। सन् १८८४ मे एलफिस्टन छोड़कर विक्टोरिया मडली मे प्रवेश किया। सन् १८८५ में मंडली के साथ लदन की सैर की। अंत में पक्षाघात की बीमारी से प्राण छोड़े।

मिस्त्री, धनजी शाह र० : सन् १८९० में विक्टोरिया नाटक मंडली में सम्मिलित हुए। इनकी मुख्य भूमिका स्त्रीपात्र की थी। हाव-भाव पर दर्शक बड़े मुग्ध थे।

धनजीशाह ने देश-विदेश की अनेक यात्राएँ की थी। अपनी कार्य-कुशलता के कारण एक 'बेनिफ़िट नाइट' के मिलने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। स्वभाव के सरल और मधुर कंठ वाले व्यक्ति थे। प्रायः अधिकांश मनुष्य इन्हें 'धनजी' के नाम से पुकारा करते थे।

बमनजी कावराजी की 'गामडेनी गोरी' और 'मासीनो माको' नाटकों मे अभिनय द्वारा बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। अन्तिम दिनों में आंखो की बीमारी से लाचार थे।

मेहता, फ़रामजी कावसजी : फ़रामजी कावसजी मेहता जोरास्ट्रियन क्लब के एक स्तम्भ थे। इन्होने ही सर्वप्रथम "क़ैसरेहिन्द" समाचारपत्र का प्रकाशन

आरम्भ किया था । नशरवानजी आपरत्यार के जोरास्ट्रियन क्लब में नाटक की समाप्ति पर फरामजी मेहता अंगरेजी डान्स किया करते थे । यह नृत्य अगरेजी बैंड तथा मरोद की चाल पर होता था । पोशाक अंगरेजी रहती थी और कभी-कभी हाथ मे 'टिम्बोलीन' लेकर उसे बजाते हुए नृत्य किया करते थे ।

फरामजी मेहता को सगीत के साथ-साथ फ़ोटोग्राफ़ी का भी बड़ा शौक था । इस रुचि के कारण उनके मित्र उन्हे 'फलु फोटोग्राफ़र' के नाम से पुकारा करते थे ।

मेहता, मेहरवान पेस्तनजी (मेहल्लु महेतो) : सन् १८७५ मे पहले पहल नाटक उत्तेजक मंडली मे सम्मिलित हुए और 'सुडी वच्चे सोपारी' नाटक मे काम किया । उसके बाद ज़ोरास्ट्रियन क्लब मे 'जालमजोर' नाटक मे स्त्री की भूमिका अति प्रशसनीय रूप से निभाई । तत्पश्चात् विक्टोरिया नाटक मडली में चले गये ।

मेहरवानजी मेहतावालीवाला के बडे स्वामिभक्त अभिनेताओं में से थे । स्त्री और पुरुष दोनो प्रकार के अभिनय मे दक्ष थे। जिन्होंने 'पाकजाद परीन, नाटक देखा था वे कभी भी सुरीले और मीठे कठ वाले मेहल्लु महेतो को'' भूल नही सकते । आरम्भ मे मेहरवानजी पेस्तनजी मेहता सर दीनशा पेटिट की एक कपडा बुनने की मिल मे नौकर थे और अच्छा वेतन पाते थे। परन्तु नाटक का चस्का लगने से सब कुछ छोडकर नाटक के ही धंधे में आ गये।

मेहता उन अभागे पुरुषो मे से थे जिन्होने काफ़ी ख्यातिप्राप्त की और जो अपने साथियों मे काफी लोकप्रिय रहे परन्तु अन्त में किसी ने भी उनकी सहायता न की । अपनी पुत्री के घर इन्दौर में उनका शरीरान्त हुआ ।

राणीना, नानाभाई रुस्तमजी : सन् १८८१ की बात है। अल्फ्रेड कम्पनी ने 'आबे इबलीस' नाटक का अभिनय दिखाया । हीरजी खंबाता का उसमें प्रमुख पार्ट था । हीरजी अपना पार्ट करने के बाद पृथक् हो गये और कम्पनी बंद हो गई । तब एक पारसी गृहस्थ, जो पत्रकारिता मे भी दक्ष था और नाटक-लेखक भी था, इस बंद कम्पनी को पुनर्जन्म देने के लिए आगे आया । यह व्यक्ति नानाभाई रुस्तमजी राणीना ही थे । अल्फ्रेड को कुम्भ-करणी निद्रा मे जगाकर सचेत किया और पृथक् पृथक् नाटक मंडलियों में से अभिनेताओं को एकत्रित कर अल्फ्रेड को जीवन दान दिया ।

(पाठक इस परिस्थिति पर पहुँच कर पुरानी अल्फ्रेड को भूल जावें । बंद पडने पर वह एक तरह से समाप्त हो गई ।) इस समय कावसजी खटाऊ

एवं जहाँगीर खंभाता की मंडली से पृथक् होकर मेरीफ़ैण्टन के साथ बम्बई में रहते थे। उन्होंने प्रयत्न किया कि मैरी के साथ नाटक में सफलता मिले परन्तु निष्फल रहे। पहला कारण यह था कि मेरी फैण्टन की अभिनय शिक्षा इतनी पूरी नहीं थी जिससे दर्शक उसके अभिनय की ओर आकर्षित होते, दूसरा कारण यह था कि कावसजी खटाऊ एक Operatic Actor तो थे परन्तु सिखाने की कला उन्हें नहीं आती थी और तीसरा कारण धन का अभाव था जिससे आवश्यक सामग्री जुट नहीं पाती थी। इन्हीं परिस्थितियों में उनकी भेंट नानाभाई राणीना से हुई और दोनो ने अल्फ्रेड नाटक मंडली की स्थापना की। इनके सौभाग्य से धन एकत्रित करने वाली प्रसिद्ध और प्रभावशाली नाटक-उत्तेजक मंडली समाप्त हो गई और उसका सारा सामान नानाभाई राणीना ने खरीद लिया। अब कम्पनी के भागीदार तीन थे—माणकजी जीवनजी मास्तर, कावसजी पालनजी खटाऊ, और बोरा महम्मदअली। माणकजी क्लब के 'मैनेजिंग प्रोप्राइटर' बने। नानाभाई ने रुपया-पैसा सब काम माणकजी मास्तर के भरोसे पर उन्हें सौंप दिया। कुछ दिनों बाद यह मंडली बंद हो गई और नानाभाई राणीना का नाम केवल नाटक लेखकों में रह गया।

लाली, पेसू उर्फ़ दाल्हडियो पेंसी : पूरा नाम पेस्तनजी रुस्तमजी लाली था। अल्बर्ट नाटक क्लब में सजाना लिखित 'आइजाबेला' में पार्ट करते थे। 'मानुजेरी' में भी अभिनय किया था। इण्डियन क्लब के अंतर्गत होने वाले 'नानासाहब' नाटक में भी लाली ने भाग लिया था। इण्डियन क्लब से निकलकर लाली विक्टोरिया क्लब में पहुँचे। वहाँ अनेकों farces में अभिनय किया। अभिनेताओं में इनके जोड़ीदार काऊ रोदावे के साथ ही इनकी बनती थी। विक्टोरिया में काकावाला के चले जाने पर तो मानो उनकी बपौती लाली को ही प्राप्त हो गई थी।

दुख की बात यह थी कि जैसे जैसे विक्टोरिया मंडली में अनुशासन की कमी होती गई अभिनेताओं के चरित्र में भी उसका प्रभाव लक्षित होने लगा। चाहे जिस कारण से भी हो पेसु लाली को शराब की लत लग गई और वह चौबीसों घंटे उसमें तल्लीन रहने लगे।

पेसु लाली एक मजबूत जवान था। लाठी चलाने का शौक था। एक बार 'गुल्बा सनोवर' नाटक में शहजादी के बाग में चौकीदार की भूमिका कर रहे थे। बालीवाला स्वयं बहादुर नामक नौकर का पार्ट कर रहे थे। दोनों की परस्पर बाग में तकरार हो गई। पेसु ने ऐसी लाठी चलाई कि बाली-

वाला की खोपड़ी फूटने फूटने बच गई । वालीवाला उसे इस प्रकार लाठी चलाने को कई बार मना कर चुके थे ।

पेसु की दारू पीने की आदत बढ़ती ही गई । वह उसके पीछे दीवाने हो गए । अभिनय से छुट्टी लेनी पडी । होश हवास जाते रहे । अस्पताल मे भरती होना पड़ा और उसी मे उनकी मृत्यु हो गई ।

वाडिया, पेस्तनजी नशरवानजी : जब नाजरजी ने गुजराती और उर्दू खेलों की शुरुआत कर दी तो पुरातन एलफ़िस्टन ड्रामेटिक क्लब समाप्त हो गया । तत्पश्चात पेस्तनजी वाडिया ने भी अपना सम्बन्ध नाज़र से भग कर लिया । परन्तु यह देखकर कि कहीं पारसी जवानों की नाटक विषयक रुचि मद न पड़ जाय, उन्होंने स्वयं अमेच्युर रूप से उस परम्परा को जारी रखा। शेक्सपियर के नाटक करवाने और स्वयं उसमे भाग लेने का उनका बड़ा शौक था। परन्तु जब स्थानीय अभिनय बंद हो गया, तो बाहर मे Gaeity Theatre मे जो अगरजी नाटक मडलियाँ आती उनके खेल देखने वे अवश्य जाते ।

इन्होंने १४ नवम्बर, १८६८ को G. Theatre में एक अंग्रेजी खेल किया । इसके साथ The Seven clerks नामक एक प्रहसन भी खेला गया । इसकी प्रशंसा Times of India, Bombay Gazette और Hindu Reformer में निकली थी। उसी से पता चलता है कि यह नाटक मंडल पारसियो का था और उसका नाम 'पारसी एल्फिस्टन ड्रामेटिक क्लब था इसके बाद २४ मई, १८६९ को महारानी विक्टोरिया के जन्म-दिन पर उसी नाटकशाला मे एक तीन अंकी ट्रेजिडी इन जवानों ने अभिनीत की थी । तत्पश्चात् Taming of the Shrew का अभिनय किया गया। इन सब में पेस्तनजी वाडिया का प्रमुख भाग था। सन् १८८९ के दिसम्बर में पेस्तनजी ने एक अंगरेजी कामेडी नावेल्टी थियेटर मे अभिनीत की थी । उसमें गवर्नर की पत्नी श्रीमती रेनी भी आई थीं । इसकी सारी आय Countess of Dufferin Fund में दे दी गई थी। पेस्तनजी वाडिया के अतिरिक्त जिन अन्य अभिनेताओं ने इन नाटकों में भाग लिया था वे थे—जहांगीर ई. दावर, वी. आर. बमनजी, डी. ई. पटेल, एस. पी. वाडिया आदि। स्त्री पार्ट करने वालों में एन. एस. सुज, रुस्तम के. आर. कामा तथा जे. एम. खरशेद थे।

पेस्तनजी वाडिया इस प्रकार सभी को प्रोत्साहित करते रहते थे। परिणाम स्वरूप एक बार गेइटी थियेटर में Othello नाटक खेला गया। इसमे अरदेशर ऊनवाला (सोलीसिटर), अरदेशर जमशेदजी बिलिमोरिया (ताता कम्पनी का भागीदार) डेस्डीमोना की भूमिका में तथा जेहांगीर नीनचवाला (सोली-

सीटर)ने भाग लिया था। जेहाँगीर नीमचवाला ने 'इयागो' का अभिनय किया।

उस समय एक Prologue बोलने का भी रिवाज था जो अगरेजी थियेटर से लिया गया था। नवम्बर, १८६८ के एक खेल के प्रोग्राम में छपा था—"An Original Prologue, Composed by Mr. C. S. Nazar" इसी प्रकार एक दूसरे कार्यक्रम में छपा था—"An Original Prologue by Mr. P. N. Wadia"

ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि वाडिया बंधुओं और नाजरजी में १८६८-६९ तक परस्पर बड़ा मेल रहा। सब मिलकर अभिनय करते और धन-सम्पत्ति पैदा करने का लक्ष्य न रखते थे। सब कुछ प्रस्तुतीकरण नाट्यकला के लिए और सुरुचिपूर्ण मनोरंजन के लिए होता था। परन्तु धंधाधारी मंडली स्थापित करने पर नाजरजी अपना सम्बन्ध छोड़ने गए। पेस्तनजी वाडिया का सम्बन्ध तो तभी छूटा जब वह ट्रस्ट के सेक्रेटरी हो गये।

सरवेयर, मेहरजी एन० : यह जहाँगीर खंबाता की टोली के अभिनेता थे। हास्यपूरक भूमिका मे इनकी विशेष रुचि थी। नाटक के धंधे में पडने से पहले बेकार थे। 'जुल्मे नारवा' मे इन्होंने कामिक पार्ट किया था। बाद में खंबाता का साथ छोड़ दिया और अपनी निजी नाटक मंडली स्थापित कर ली नाम था The Parsi Ripon Theatrical Company। यह मंडली देश के कम से कम ५०–५२ नगरों में अपने अभिनय दिखाती फिरी। विदेश में भी गई—बर्मा और स्ट्रेट सेटिलमेंट में।

खंबाता से मेहरजी सरवेअर ने मेकअप की कला सीखी थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि धनजी भाई ने गल्ती से इन्हें Ripon Theatrical Company का स्थापित करने वाला माना है। 'कोरदिल' नामक नाटक के गायनों की पुस्तक पर इन्हें Parsi Curzon नाटक मंडली का मालिक और डिरेक्टर बताया गया है।

सचीन, रुस्तम : वालीवाला विक्टोरिया मंडली के एक शोभावान तथा माने हुए लोकप्रिय अभिनेता थे। 'हरिश्चन्द्र' नाटक में तारामती की भूमिका में विशेष रूप से लोक-प्रशंसा प्राप्त की थी। 'पाकजाद परीन' में परीन का अभिनय करते थे।

स्वामिभक्त इतने थे कि वालीवाला की मृत्यु के पश्चात् भी यथाशक्ति नाटक मंडली चलाने का यत्न किया। स्वयं उसमें भागीदारी कर ली। परन्तु सफलता नही मिली। मंडली के साथ रुस्तम सचीन ने अनेक यात्राएँ की थीं। हृदय रोग की पीड़ा से शरीरान्त हुआ।

सचीनवाला दोराबजी : विक्टोरिया नाटक मंडली के एक माने हुए स्त्री-अभिनेता थे। अपनी मंडली के साथ इन्होंने लंदन की भी यात्रा की थी। बालीवाला के मनपसंद थे।

बाद में थियासोफ़ी का चस्का लग गया। नाटक मंडली छोड़ दी और थियोसोफ़िस्ट बन गये।

सिपई, कुंवरजी : काबराजी लिखित 'भोलीजान' में घन नामक स्त्री-पात्र का अभिनय बड़ी कुशलता और सिद्धहस्तता से किया। सफलता की मात्रा यह थी कि दर्शक मंडली यह न समझ पाई कि अभिनेता स्त्री है या पुरुष।

सीनोर, रतनशाह : सोहराब मोदी के कथनानुसार बहुत अच्छे अभिनेता थे। 'नूरेवतन' नामक नाटक में इन्होंने हबशी का प्रशंसाप्रद अभिनय किया। पारसी इम्पीरियल नाटक कम्पनी में काम करते थे। 'खाकी पुतले' में भी काम किया है।

हाथीराम, खुरशदजी बेहरामजी : मैट्रीक्यूलेशन पास करके चिकित्सा महाविद्यालय में प्रवेश लिया। बाघजी भाई के साथ मिलकर एक केमिस्ट की दूकान खोली, परन्तु सफलता तो नाटक के धंधे में ही मिलनी थी।

इनकी सर्वाधिक प्रसिद्धि 'खुशरो-शीरीन' नाटक में हुई। यह नाटक ज़ोरास्ट्रियन मंडली की ओर से शंकरशेठ की नाट्यशाला में खेला गया था। खुरशेदजी हाथीराम ने उसमें शीरीन का पार्ट किया था। शीरीन का पार्ट करते समय इनके हाव-भाव, सुरीली आवाज़ और शालीन चाल-ढाल देखने वालों को मनोमुग्ध कर लेते थे।

स्वर इतना मधुर था कि सुनने के लिए दर्शक बार-बार नाटक देखने आते। यद्यपि ज़ोरास्ट्रियन मंडली ने कई ईरानी नाटकों का अभिनय किया परन्तु 'खुशरो-शीरीन' की बात बिल्कुल ही निराली थी। एक दृश्य में शीरीन जंगल में जाते समय एक चश्में में अपने धूल-धूसरित बालों को धोने के लिए घुसती है। यह दृश्य लोगों को बड़ा ही प्रिय लगता था।

खुरशेदजी ने इन्दर-सभा में (एलफ़िंस्टन नाटक मंडली) राजा इन्दर का पार्ट किया था। इससे निष्कर्ष निकलता है कि स्त्री और पुरुष दोनों की भूमिकाओं में वह समान रूप से कुशल थे।

मिस्तरी, दादाभाई अस्फन्दियारजी : दादाभाई मिस्तरी का निजी धंधा सुथार (माली या बढ़ई) का था। परन्तु बढ़ते बढ़ते नाटक के दृश्य आदि तैयार करने का काम हाथ में ले लिया। नाटक का कार्य सर्वप्रथम अल्फ्रेड नाटक मंडली में आरम्भ किया। आरम्भ में 'जहाँबख्श' नाटक में छोटा-सा

पारसी रंगमंच की कुछ आरम्भिक अभिनेत्रियाँ

आरम्भ में पारसी जनता रंगमंच पर स्त्रियों के अभिनय की घोर विरोधी थी। कैखुसरू काबराजी ने भी स्त्री-जाति की स्वतन्त्रता का स्वर ऊँचा करने पर भी, अभिनेत्रियों को रंगमंच पर लाने का विरोध किया था और इस सम्बन्ध में उन दिनों 'रास्त-गोफ्तार' आदि पत्रों में इस विषय पर पर्याप्त विवाद चला था। परन्तु समय की गति को कोई नहीं रोक सकता।

कहा जाता है कि दादाभाई पटेल ने सर्वप्रथम यह साहस किया था और वे दो मुसलमान महिलाओं को हैदराबाद से लाये थे, उनमें से लतीफा बेगम नाच में बड़ी सिद्धहस्त थी। ग्रांट रोड की नाट्यशालाओं को उसने अपनी नृत्य-कला से गुंज, डाला था और दर्शक उसके नृत्य पर मन्त्र-मुग्ध होकर नाट्यशाला में नृत्य देखने आया करते थे। यह नृत्य इन्दर-सभा में हुआ करता था। प्रसिद्ध है कि नाचते-नाचते उसके पैर के मोजे तक फट जाया करते थे। एक दिन ऐसी घटना घटी कि लतीफा बेगम इंदर सभा में नाच कर वापिस आई कि एक सज्जन चुपचाप रंगमंच की विंग से उसे अपने ओवरकोट में छिपा कर पिछले द्वार से एक फ़िटन में बैठा कर ले गये और उसे अपने घर में डाल लिया। कम्पनी मालिकों की हिम्मत न पड़ी कि इस घटना में विघ्न डालते।

अमीरजान और मोतीजान दो पंजाबी महिलाएँ थी जो नाचने में इतनी कुशल नहीं थी जितनी गाने में। अमीरजान विशेष रूप से सूफ़ी गजलों के गाने में बड़ी सिद्धहस्ता थी। मुसलमान जनता उसके गाने पर फ़िदा हो जाती थी। अनेकों अमीर व्यापारी मुसलमान उससे भेंट करने को लालायित रहते थे। अमीरजान के रंगमंचीय केरियर का भी वही अन्त हुआ जो लतीफा बेगम का हुआ था। किसी मुसल्मान मालदार व्यापारी ने उसके साथ निकाह करके अपने घर में बिठा लिया। उसकी बहिन मोतीजान भी नाटक मंडली को छोड़ गई। इस प्रकार बड़ी विवादास्पद अवस्था में पारसी नाटक मंडली भंग हो गई।

उपरोक्त अभिनेत्रियों के अतिरिक्त जिन महिलाओं ने रंगमंच पर पदार्पण किया उनमें प्रसिद्धि प्राप्त करने वाली थी—

मिस गोहर—यह सर्वप्रथम बालीवाला की विक्टोरिया नाटक मंडली में आई थी परन्तु बाद में कई मंडलियों में इन्होंने काम किया।

मिस फातमा—यह भी बालीवाला की मंडली में काम करती थी। कहा जाता है कि एक दिन यह बालीवाला के कमरे में पहुंची। वह सो रहे थे। इनके कारण एकदम जाग कर उठे और उसी समय उन्हे पक्षाघात हो गया जिससे बालीवाला फिर उठ न सके।

मिस मलका—यह पहले विक्टोरिया मंडली मे रही, पीछे अन्य मंडलियों मे चली गई।

मिस खातून—कहा जाता है कि यह मिस गौहर की बहिन थी। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि इनके किसी प्रेमी ने इनकी नाक काट ली जिसके कारण इन्हें बहुत दिनों तक अस्पताल मे रहना पड़ा।

मिस गुलनार—यह रंगून मे पान की दूकान करती थी। बाद में नाटक मंडली में सम्मिलित हो गई।

मिस बिजली, मिस कमली, मिस गुलाब, मिस गंगा, मिस उमदाजान और मिस हीरा आदि अन्य महिलाएँ भी अभिनेत्रियाँ बनी परन्तु उनके विषय में कोई विशेष विवरण नही मिलता।

मिस जमीला—यह एक यहूदी लड़की थी।

परन्तु इन सब मे सब से अधिक नाम मिस मैरी फ़ैन्टेन का था। मैरी फ़ैन्टेन का पिता आयरलैंड का निवासी था, फौज से कार्यविरत होकर कुछ जादू के खेल दिखाकर देहली में अपनी आजीविका चलाता था। जिन दिनों जहाँगीर खंबाता अपनी मंडली में देहली में नाटक दिखा रहे थे उन्ही दिनो एक दिन दोपहर के समय मैरी मंडली मालिक के पास आई और नाटक की छुट्टी के दिन उसके हाल में अपने पिता को जादू के खेल दिखाने की इजाजत माँगी। इजाजत मिल गई। उसी समय कावसजी खटाऊ जो खंबाता की मंडली में अभिनेता थे, मैरी से मिले। दोनो का परिचय गाढा होता गया। रोज रात को नाटक देखने का एक पास भी मैरी को मिल गया। मैरी और कावसजी खटाऊ के परस्पर रोमांस का श्रीगणेश इसी प्रकार हुआ। बाद मे मैरी कावसजी के साथ बम्बई गई और उन्ही के घर मे रहने लगी। कावसजी ने बड़ी मेहनत से मैरी को अभिनय की शिक्षा दी। आरम्भ में मैरी को अधिक सफलता नही मिली। परन्तु बाद में तो गुजराती और उर्दू-हिन्दी पर उसका पूरा अधिकार हो गया। वह पारसी वेश मे रहने लगी। नाम भी मेहरबाई रख दिया गया।

मैरी ने अनेकों नाटको में काम किया। 'तालिब' के हरिश्चन्द्र में उसने जोगिन का पार्ट किया था। जिस प्रकार गुजराती में भोलीगुल की भूमिका

में उसे सफलता प्राप्त हुई थी, उसी प्रकार जोगिन की भूमिका में भी वह खूब चमकी। कावसजी और मैरी का विवाह हो गया परन्तु अन्त में दोनों की निभी नहीं। मैरी ने अनेकों मंडलियों में जाकर काम किया और अन्त में अस्पताल में उसकी मृत्यु हुई।

अपने समय की वह निस्सदेह एक सफल, आकर्षक और लोकप्रिय अभिनेत्री थी।

अब मार्ग साफ़ हो गया था। प्रत्येक नाटक मंडली अभिनेत्रियाँ रखती थी। केवल न्यू आलफ्रेड ही एकमात्र ऐसी मंडली थी जिसमें महिलाओं का प्रवेश नहीं हुआ था और वह भी तब तक ही जब तक सोराबजी ओग्रा उसके निर्देशक थे।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अनेकों महिलाएँ रंगमंच पर काम करती थी। मिस कज्जन, मिस गौहर, मुन्नीबाई आदि।

पारसी थियेटर के अन्य उपकरण

(१) दर्शक-मंडली

दर्शक-मण्डली के अभाव में थियेटर की कल्पना एक निराधार वस्तु है। अतएव यह भी जान लेना अति आवश्यक है कि पारसी थियेटर ने किन लोगों को ध्यान में रखते हुए नाट्य-कला पर इतना परिश्रम किया।

पारसी नाटक मंडलियों के आरम्भ में लगभग सन् १८७० तक थियेटर की दर्शक-मंडली विशेष रूप से पारसी और ईरानी थी। उन दिनों पारसी अधिकतर दो स्थानों में निवास करते थे—धोबी तालाब, कोर्ट क्षेत्र और बोरी बंदर क्षेत्र, जो आजकल चर्चगेट के नाम से प्रसिद्ध है। इसी क्षेत्र में पारसियों का कोट-बाजार, पारसी बाज़ार और पारसी घर-गृहस्थी का बाहुल्य था। दूसरा क्षेत्र ग्रांट रोड के आसपास वर्तमान चरनीक्रास रोड आदि का क्षेत्र था। यही कारण है कि आरम्भ की पारसी नाट्यशालाएँ इन्हीं दो स्थानों पर बनीं। पारसियों की देखा-देखी ईरानियों ने भी, जो अधिकतर सोडा-लेमनेड या आइसक्रीम आदि बेचा करते थे, अपनी नाट्य मंडली बनाई और अपनी ईरानी भाषा में नाटक खेले परन्तु दर्शकों की अपर्याप्त संख्या एवं धनाभाव के कारण उन्हें अधिक सफलता न मिली।

सन् १८७० में जब दादी पटेल के मस्तिष्क में उर्दू नाटक खेलने का विचार उत्पन्न हुआ तब अवश्य गुजराती भाषा के नाटकों की अपेक्षा उन्होंने उर्दू नाटक लिखवाये और उनका अभिनय किया जिसके कारण हिन्दू मुसलमान

दर्शक भी नाट्यशाला मे आने लगे । अंगरेज भी ग्रांट रोड थियेटर में 'हिन्दू ड्रामा' देखने आते थे परन्तु उनकी रुचि इतनी नहीं रह गई थी जितनी अंगरेजी के नाटक देखने में थी ।

अतएव यह मानना ही पड़ेगा कि पारसी नाटक मंडलियों के अभिनय में आने वालों में आरम्भ में पारसियों की बहुलता थी। फिर धीरे-धीरे ईरानी, मुसलमान और हिन्दू भी सम्मिलित होने लगे। कभी-कभी बड़े बड़े अफ़सर और उनका परिवार भी नाट्यशाला में आ जाया करता था।

प्रारम्भ में पारसी स्त्रियों का नाट्यशाला मे जाना बुरा समझा जाता था, परन्तु कैखसरु कावराजी ने स्त्रियो की स्वतंत्रता के लिए बड़ा आन्दोलन चलाया। अन्त मे पारसी स्त्रियाँ अपने पति या भाई आदि सम्बन्धी के साथ खेल देखने जाने लगी । कभी-कभी ये नाटक मंडलियाँ केवल स्त्रियो के लिए ही खेल दिखाया करती थी । उन खेलों में स्त्रियों का जाना बुरा नहीं समझा जाता था। धीरे-धीरे आजादी मिलती गई और स्त्री-पुरुष दोनों ही नाट्यशाला मे जाकर अभिनय का आनंद उठाने लगे । प्रसिद्ध है कि नाटक-उत्तेजक-मंडली में 'हरिश्चन्द्र' नाटक देखने के लिए स्त्रियाँ इतनी संख्या मे जाती थी कि मंडली वालों ने उनके बच्चों के खेलने और मुलाने के लिए नाट्यशाला के वाहर ऐसा प्रवध कर दिया था कि माँएँ निस्सकोच अपने शिशुओं को वहाँ छोड़ जातीं और निश्चितता से नाटक देखती । यदि बीच में कोई वालक रोता तो प्रबंधकर्ता तत्काल प्रेक्षण-स्थल (मडोवा) मे जाकर उसकी माँ को सूचना देता और माँ थोड़ी-सी देर के लिए उठकर वाहर चली आती तथा अपने वालक को शान्त कर पुनः अभिनय देखने अंदर चली जाती ।

इन दर्शकों के कई वर्ग थे । अंगरेजी ड्रामों में प्रवेश फीस इस प्रकार थी—

स्टाल्स या वाक्स	६ रुपये
अपर वाक्स	४ "
पिट	३ "

परन्तु कभी-कभी इन दरों को घटाकर क्रमशः ५, ३ और २ रुपया कर दिया जाता था । सन् १८५३ में जव विष्णुदास भावे ने अपने नाटक 'राजा गोपीचद और जलंधर' का अभिनय ग्रांट रोड थियेटर में किया था तो उस समय प्रवेश फीस इस प्रकार थी—

ड्रेस सर्किल	३ रुपये
स्टाल	२ ,,
गैलेरी	१.५० ,,
पिट	१ ,,

परन्तु जब पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों ने बम्बई और बम्बई से बाहर जाकर अपने नाटक खेलने आरम्भ किए तो उनके टिकटों की दरें इस प्रकार थीं–

१. दर्जा खासुलखास — यह फ्री-पास और निमन्त्रण का दर्जा था जिसमें नगर के उच्च अधिकारी बुलाये जाते थे।

२. दर्जा ख़ास — ५ रुपया

३. दर्जा अव्वल — ३ ,,

४ दर्जा दोयम — २ ,,

५. दर्जा सोयम — १ ,,

६. प्लेटफार्म (सबसे पीछे उठा हुआ)–आठ आने

उपरोक्त प्रवेश दरों से सुगमता से कल्पना की जाती है कि दर्शक मंडली कैसी होती थी। पर्दानशीन स्त्रियों के लिए पृथक् एक ओर स्थान बनाया जाता था जिसकी प्रवेश फीस निश्चित रूप से एक ही होती थी। नगर की वेश्याएँ भी उसी में बैठती थीं।

दर्शकों को आकर्षित करने का एक सुगम उपाय नगर में मुनादी करना था। ताँगों में बैठकर कुछ लोक नाटक के विज्ञापन बाँटा करते थे। इन विज्ञापनों में रात्रि विशेष में अभिनीत होने वाले नाटकों के विषय, चमत्कारी दृश्य, साज-सज्जा और अभिनेताओं के नाम हुआ करते थे। जब रंगमंच पर महिला अभिनेत्रियाँ भी आने लगीं तो उनके नाम और कभी-कभी फोटो भी विज्ञापन में दिये जाते थे। रात्रि के समय नाटक विशेष के समाप्त होने से पहिले एक व्यक्ति ड्रापसीन से बाहर आकर अगले दिन होने वाले नाटक की सूचना देता था। न्यू आलफ्रेड मंडली में वह कहा करता था––

"कम्पनी तहे-दिल से आपकी तशरीफ़ आवरी का शुक्रिया अदा करती है और उम्मीद करती है कि फिर तशरीफ़ लाकर कम्पनी को मशकूर व ममनून कीजियेगा।"

दर्शकगण जहाँ अभिनेताओं के गानों पर 'वन्स मोर' करते वहाँ कभी-कभी ड्राप-सीन पर भी 'वन्स मोर' कर दिया करते थे और गाने तथा दृश्य दिखाने का काम पुनः जारी हो जाता था। दो-दो तीन-तीन बार 'वन्स मोर' की आवाज पर मंडली व्यवस्थापक अपने दर्शकों की इच्छा की पूर्ति करता

था । कभी-कभी वह दृश्य बड़ा हास्यप्रद लगता था जिसमें संघर्ष करते-करते प्रायः सभी अभिनेता धराशायी हो जाते, पर्दा गिर जाता और 'वन्स मोर' की आवाज पर वे सभी मरे हुए फिर से उठकर लड़ने लगते ।

चमत्कारी यांत्रिक दृश्यों को दर्शक-मंडली विशेष रूप से पसन्द करती थी। आकाश से देवताओं का उतरना, पृथ्वी के फटने पर देवों और राक्षसों का प्रकट होना, देवों द्वारा किसी सोते हुए राजकुमार को हाथों पर उठाकर आकाश में उड़ा कर किसी परी के पास ले जाना, रेलगाड़ी का पुल टूट जाने पर नदी में गिरना आदि अनेक ऐसे यांत्रिक दृश्य थे जो नाटक मंडलियाँ रंगमंच पर दिखाती थी और जिनके कारण उत्सुक जनता उमड़ पड़ती थी ।

यद्यपि प्रत्येक नाटक मंडली यह सूचना दे देती थी कि टिकट प्राप्त व्यक्ति को प्रवेश देने या न देने का अधिकार व्यवस्थापक को है, परन्तु कभी-कभी लफंगे और शराबी मंडवे मे आ ही जाते और शोर-शराबा करते । खेल रुक जाता और जब तक शान्ति न हो जाती भले आदमी परेशान ही रहते । ऐसी अवांछित घटनायें अंगरेजी नाटकों मे भी हो जाया करती थीं जिनमें फ़ौज और नौ-सेना के जवान मनोरंजन के लिए खेल देखने जाते थे।

प्रत्येक नाटक में कम से कम एक और अधिक से अधिक दो विश्राम अवश्य हो जाते थे। इन विश्रामों के क्षणों में मूंगफली और चना जोर गरम वाले एक स्वर से फेरी लगाते और सोडा-लेमनेड बेचने वाले दूसरी ओर से पुकारते। उस समय दर्शक विशेषकर गैलरी मे बैठने वाले जो विभिन्न स्वरों से अद्भुत आवाजें लगाते और कभी-कभी अश्लील बातें कहते, उस समय सम्भ्रान्त परिवार के लोग लज्जा से मुँह नीचा कर लेते । मारते का हाथ एक बार पकड़ा जा सकता था परन्तु कहते की जीभ कैसे बंद की जाती ?

यहाँ यह प्रश्न भी इस प्रसंग में पैदा होता है कि नाटककार और दर्शक-मंडली का परस्पर क्या सम्बन्ध है ? हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रत्येक नाटक देखने वाले दर्शक दूसरे नाटक देखने वालों से भिन्न मस्तिष्क रखते हैं। उनकी मनोभावना प्रत्येक नाटक के साथ परिवर्तित होती है। इसका कारण नाटककार का कथ्य और अभिनेताओं की अभिनय-कला ही है । प्रत्येक कथ्य प्रत्येक दर्शक को स्पन्दित नहीं करता और न प्रत्येक अभिनेता प्रत्येक देखने वाले को सवेदनशील बनाने में समर्थ होता है। इन प्रक्रियाओं का कारण व्यक्ति के अपने संस्कार होते हैं। जहाँगीर खंबाता, दादाभाई पटेल, दादी ठाट्टस्ट, कावसजी पालनजी खटाऊ और मोरावजी ओगरा अपने समय

के प्रख्यात अभिनेता थे। परन्तु आने वाले व्यक्तियों में से सभी ने उन्हें सभी दिन और समान रूप मे पसन्द किया हो, ऐसी बात सभव नही है। मैंने अनेकों बार देखा है कि कुछ दर्शक ऐसे होते हैं जो परस्पर नाटक की आलोचना करते हैं अन्यथा थियेटर हाल से निकलते ही उन पर नाटक की जो प्रति-क्रिया होती है यह अधिक से अधिक यही होती है कि नाटक 'अच्छा' लगा या 'बुरा'। नाटक की सूक्ष्मता मे वे नहीं जाते। और बहुत बड़ी संख्या तो ऐसी होती है मानों थोड़ी सी देर के लिए निश्चय ही केवल मन-बहलाव के लिए आई थी और नाटक की समाप्ति पर वापिस घर जा रही है मानो कुछ हुआ ही नही। उनके लिए न नाटक के व्यक्तिगत मनोविज्ञान के प्रभाव का प्रश्न है और न सामूहिक मनोविज्ञान का। उनका नाट्यशास्त्र विषयक ज्ञान न तो प्रचुर ही होता है और न सुसंस्कृत ही। उनका सौन्दर्य बोध बड़ा छिछला और अस्थायी होता है। वे कठिनता से नाटक के तथ्यो और विचारों को समझ पाते है। अतएव नाटक को जनतन्त्रवादी कहना, मेरे विचार में, उचित नहीं है। इसे जनतन्त्रवादी कला मानने वालो का सबसे बडा तर्क यही है कि नाटक अधिक संख्या के मनोरंजन की सामग्री है, परन्तु यह तभी सिद्ध हो सकता है जब वह अधिक संख्या नाटक की परख करना जानती हो। आज भी जितने सांस्कृतिक कार्यक्रम होते है उनमें जाने वाले दर्शक कथाकली या भारतनाट्यम की सूक्ष्मताओं से अधिकांश मे अपरिचित होते है, संगीत का उन्हे लेशमात्र भी ज्ञान नही होता और रसास्वादन से तो जैसे उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं। परन्तु फिर भी वे जाते हैं इसलिए कि ऐसे कार्यक्रमों में जाने से अपने समान वर्ग के मित्रो से जानकारी बढ़ती है, नया परिचय होता है और सभी को यह मिथ्या धारणा रहती है कि हम सभ्य हैं, समाज-प्रिय हैं, कलाप्रिय हैं तथा प्रदर्शित वस्तुओं में रुचि लेने वाले सुसंस्कृत प्राणी हैं। परस्पर संवाद में यदि कहीं किसी मुद्दे के ऊपर गाम्भीर्य चर्चा चलने लगे तो इधर-उधर की बात कह कर वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो जाते है। अपना खोखलापन कौन प्रदर्शित करना चाहता है?

पारसी थियेटर की दर्शकमंडली सदैव मध्यम एवं निम्न परिश्रमी वर्ग की प्रतिनिधि थी। उनमें से अधिकांश ऐसे थे जिनके सामने कुछ भी नया और अद्भुत रस देने मे वाह-वाह मिल सकती थी। यही कारण था कि पारसी नाटक मंडलियों ने उन्हें कभी गद्य-नाटक दिखाये, कभी गद्य-पद्यमय और कभी पद्यमय। इन नाटकों के संगीत शब्दों को देखिये; उनमें कोई कविता नहीं, हाँ वे स्वरबद्ध हैं, लय संपूर्ण हैं। फिर भी दर्शक उन्हें पसन्द करते थे। तालियाँ

पीटते थे और जब लाहौरी लड़का 'वासी' अपना पार्ट 'चन्द्रावली' नाटक में करता हुआ गाता—

"दो फूल जानो ले लो ।"

तो दर्शक चिल्ला उठते 'वासी तू ज़िंदावासी।'

(२) नाटककार और दर्शक

नाटक के अन्य तत्वों की तरह 'दर्शक मंडली' भी उसका एक प्रमुख तत्व है। दर्शक के अभाव में नाटक की सृष्टि एक असंभावित कल्पना है । नाटककार अपनी रचना में केवल अपने को ही अभिव्यक्त नही करता वरन् वह उस समाज की अभिरुचि को भी व्यजित करता है जिसका वह स्वयं वैसा ही भागीदार है जैसे उसके नाटक के दर्शक । अतएव यदि वह अपनी कृति की सफलता चाहता है तो सफल करने वाले पाठकों और दर्शकों के मनोभावों का ध्यान उसे रखना ही पडेगा। यदि आदि-यूनानी नाटक आज के परिवेश में लिखे और खेले गये होते और उनका रूप आकार पुराना ही रहता तो वे कभी भी सफल नहीं हो सकते थे। अब भी कलात्मक प्रदर्शन के लिए यदि कोई नाटक टोली 'एडीपस' या 'एण्टीगोना' का अभिनय करती है तो उसका कथ्य दर्शकों को ग्राह्य नही होता । उसका मूल्य केवल अतीत की एक झाँकी मात्र रहता है । शेक्सपियर के नाटक अपने काल की समाज-व्यवस्था और रुचि के अनुकूल थे। स्वयं शेक्सपियर का विश्वास भूत-प्रेत, पिशाचिनियों एवं अतिमानवीय पात्रों में रहा हो या न रहा हो, परन्तु उनका समाज उनके चित्रण मे आनंद लेता था। इसी कारण शेक्सपियर के नाटक नागरिकों मे अति आनंदप्रद होते थे । मोलियर की सफलता का भी यही रहस्य था। उन दिनों पिता-पुत्र एक ही स्त्री के समान प्रेमी होने के कारण परस्पर वैमनस्य और कलह के भागी हो सकते थे। आज फ्रांस में यह चीज देखने को नही मिलेगी। कालिदास ने गांधर्व विवाह की रक्षा के लिए जो कथा-वस्तु निर्मित की थी वह उनके आश्रम-युग के अनुकूल थी, आज के लिए उपयुक्त नही । आज का नवयुवक और नवयुवती, निस्संकोच, अपने प्रेम का ढिंढोरा पीटते चलते हैं ।

इसी प्रकार पारसी थियेटर के उद्भव के समय पारसियों में अपने देश के इतिहास के प्रति एक मोह था और अपने धर्म के प्रति एक भावभरी श्रद्धा थी । कैखसरू कावराजी ने इस भूख को पहचाना था और इसी लिए 'बेजन-मनीजेह', 'जमशेद' और 'फ़रेदून' नाटकों की रचना की थी। पारसी

जनता ने इस साहस का स्वागत किया था। अपनी तात्कालिक समाज-व्यवस्था का व्यंग तो उन प्रहसनों में मिलता था जो नाटक समाप्त होने के पश्चात् उसी रंगमंच पर खेले जाते थे।

जातीय प्रेम की प्रतिष्ठा के साथ साथ अंगरेजों का सम्पर्क और उनकी संस्कृति का प्रभाव भी संभ्रान्त परिवारों पर पड़ रहा था। पारसी बाहर से आकर भारत में बसे थे। उन्हें भारतवासियों के रहन-सहन की अपेक्षा अंगरेजों का रहन-सहन अधिक उत्कृष्ट जँचता था अतएव वे यथासभव उनकी नकल करते थे। नाटकों में भी अधिकांश अंगरेजी नाटकों के रूपान्तर पारसी रंगमंच पर खेले गये। कुछ नाटकों की कथा-वस्तु अंगरेजी उपन्यासों से भी ली गई। परिणामस्वरूप दर्शकों को सुखी करने के लिए हेमलेट के कई रूपान्तर अभिनीत हुए। अन्य नाटकों का अभिनय भी किया गया और जब उनमें अंगरेजी मृत-प्रेतों की अपेक्षा मुसलमानी प्रभाव वाली परियों, शहज़ादों, देवों और जादूगरों की ओर आकर्षण हुआ तो पारसी रंगमच वैसे ही नाटक लेकर अपने संरक्षकों के सामने उपस्थित हुआ। 'इंदरसभा', 'खुरशेद सभा',, 'फ़र्रुख़ सभा', 'हवाई मजलिस', 'बेनज़ीर बदरे मुनीर' पारसी रंगमंच के बड़े सफल नाटकों में से थे।

जब पारसी मंडलियों ने हिन्दू दर्शकों की रुचि की ओर ध्यान दिया तो 'हरिश्चन्द्र', 'गोपीचन्द', 'महाभारत', 'रामलीला', 'भक्त प्रह्लाद' आदि नाटक लिखवाये गये और अभिनीत किये गये। राष्ट्र-प्रेम और धर्म-प्रेमपरक कथ्यों पर भी अच्छे अच्छे नाटक अभिनीत हुए। आलेक्जेंड्रा नाटक कम्पनी का नाटक 'वतन' इस धारा का बड़ा प्रभावशाली नाटक था। 'ज़ख्मे पंजाब' को तो सरकार ने कई बरस तक बंद रखा। थियेटर का यह लोकतन्त्रात्मक रूप दर्शकों की विभिन्नता से ही प्रमाणित होता है। यदि नाटक केवल एक अभिजात्य वर्ग को आधार मान कर लिखा जाता है तो उसकी असफलता निश्चित ही है। नाटककार तो अपने क्षेत्र द्वारा सामान्य जन से साक्षात्कार करता है फिर वह अपने को एक ही वर्ग से कैसे सम्बद्ध कर सकता है।

पारसी दर्शक मंडली में यदि अधिकांश पारसी थे तो थोड़े से मुसलमान, मरहठे और हिन्दू भी थे। अतएव व्यवसाय की दृष्टि से भी उन्हें अपनी दर्शक मंडली को प्रसन्न रखना था और कलात्मक दृष्टि को भी आँखों से ओझल नहीं करना था। वास्तव में यह ठीक कहा गया है कि—

"नाटक के नियमों की रचना करने वाले उसके संरक्षक (दर्शक) ही

होते हैं; और हम को जिन्हें जीवन मनोरंजन प्रस्तुत करने के लिए जीना है, जीवित रहने के लिए मनोरंजन प्रस्तुत करना ही होगा।"[१२१]

(३) रंगस्थली या रंगमंच

[पारसी नाट्यशालाओं की सूची तथा उनका उपलब्ध इतिहास दिया जा चुका है। यह दुःख की बात है कि इन नाट्यशालाओं के कोई चित्र अथवा रेखा-चित्र अभी तक कहीं नहीं मिले। डा० नामी ने कुछ चित्रों का उल्लेख एक दिन निजी वार्तालाप में किया था परन्तु उससे अधिक उन्होंने भी नहीं बताया। यदि प्रामाणिक विवरण सहित वह उन्हें प्रकाशित कर देते तो इस पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश पड़ जाता। परन्तु अभी तो केवल सतोष और अज्ञान का ही सहारा है। अस्तु।]

यह निर्विवाद है कि नाटक के लिए जितना महत्व पाठ्य पुस्तक का है उतना ही महत्व रंगमंच का है क्योंकि रंगमंच पर ही नाटक का प्रस्तुतीकरण होता है। आरम्भ में पारसी थियेटरों के रंगमच के आकार का कोई विवरण उपलब्ध न होने से, उसका निर्णय करना असंभव है। परन्तु धनजी भाई ने ग्रांट रोड थियेटर के सम्बन्ध में लिखा है कि ईरानी नाटक मंडली के खेल 'रुस्तम अने बरजो' मे दोनो पहलवान वास्तविक घोडों पर सवार होकर रंगमंच पर आये थे और एक ने दूसरे को द्वन्द्व में ललकारा था।[१२२] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रंगमंच लम्बाई और चौडाई या गहराई में काफी बड़ा होना चाहिए अन्यथा जीवित घोडों पर सवार होकर लड़ाई करना, चाहे वह गदा से हो या तलवार से, सुगम नही है।

पारसी कम्पनियाँ, जो बाहर आती जाती थीं और जिनके रंगमच अस्थायी रहते थे, उनमें से 'नई आलफ्रेड-मंडली' के रगमंच को देखने का अवसर मुझे अपने बाल्यकाल में मिला था। बाद में पता चला कि उसकी चौड़ाई (विंग समेत) ७० फुट, लम्बाई (ड्रेस रूम को छोड़कर) ६० फुट थी। दर्शकों के बैठने के स्थान का क्षेत्रफल ११५×६०=६९०० वर्ग फुट था। इस रंगमंच के तीन भाग होते थे। प्रथम भाग 'रंगमंच' ही कहलाता था। अंगरेजी शब्द (स्टेज) भी इसके लिए प्रचलित था। स्टेज पर ही सारे पर्दे विंग समेत लगाये जाते थे। दूसरा भाग 'गर्की' कहलाता था। यह स्टेज के बीच में लोहे

[१२१]. The drama's laws, the drama's patrons give. For we that live to please must please to live.—Samuel Johnson.

[१२२]. पा० स० त०, पृ० ११७–११६

पन्द्रहवाँ ड्रापसीन था । उनके शिष्य नजीर बेग न भी यही पद्धति स्वीकार की है । उनके प्रसिद्ध नाटक 'सत हरिश्चन्दर' मे पहला दृश्य 'नदी किनारा' है जो पर्दा संख्या ९ पर दिखाया गया है। कुल मिलाकर इसमे भी १४ पर्दे है। यह सन् १८८८ ई० की रचना है ।

दृश्यपटों के सम्बन्ध में एक जानकारी और उपलब्ध होती है और वह यह है कि प्रसिद्ध पारसी नाटक मंडलियों ने अपने अपने ड्रापसीन अपनी रुचि के अनुसार बनवा रखे थे ।

जोरास्ट्रियन नाटक मंडली का ड्रापसीन धार्मिक आधार पर बना था। उसमे बादशाह गुस्तास्प का दरबार दिखाया गया है । दरबार में ईश्वर-दूत जरथोस्त अपने हाथ में आग का गोला लिये खड़े हैं। उनके पड़ोस में हकीम जामास्प, शहजादा असपदियार, पीशोतन तथा पहलवान जरीर वगैरह अदब के साथ खड़े हुए है ।

विक्टोरिया नाटक मंडली के ड्रापसीन में सोराबजी शापुरजी बंगाली के निर्देशन से जमशेद बादशाह का तख्त चित्रित किया गया था। जब कैखसरु काबराजी का नाटक 'जमशेद' अभिनीत हुआ तो इस ड्रापसीन की ओर विशेष ध्यान पारसी लोगों का आकर्षित हुआ ।

एल्फिस्टन नाटक मडली के ड्रापसीन मे पेरिस नगर की प्रदर्शनी का चित्र अंकित था । यह नाटक प्राय: अंगरेजी नाटक ही खेला करती थी। अतएव यह विचार बुरा नही था ।

ओरिजनल विक्टोरिया मंडली के मालिक दादी पटेल थे । कुंवरजी नाजर मे, जो एक समय विक्टोरिया मडली मे दादी पटेल के साथ भागीदार थे, दादी पटेल की नहीं बनी और दोनों पृथक् हो गये। इस पर दादी पटेल ने अपनी मंडली के लिए जो ड्रापसीन बनवाया उसमे दिखाया पर्दे पर एक शक्तिशाली नाग चित्रित किया गया है । यह नाग और कोई नही 'कुवर-जी नाजर' है । और एक खूबसूरत शाहजादा (दादी पटेल स्वयं) ऊपर छज्जे पर बैठा हुआ उस फुकारते नाग को देख रहा है। नाग शाहजादा को काटना चाहता है पर वह सुरक्षित है और उसका कुछ बिगाड़ नही सक रहा है ।

बेरोनेट नाटक मंडली के ड्रापसीन के एक अश पर सर जे० जे० हास्पि-टल का चित्र अकित था और उस पर सर जमशेदजी जीजीभाई का चित्र चित्रित किया गया था। हास्पिटल उनकी दानवीरता एवं समाजसेवा का प्रतीक था। प्रत्येक रात्रि को नाटक आरम्भ करने से पहिले मंडली मालिक

के मजबूत स्प्रिंगो पर काम करती थी। यह एक तरह का कुआँ सा था स्टेज के नीचे खोखली जमीन मे लगी रहती थी। तीसरे हिस्से को 'वाक्स सीन' कहते थे। यह घूमता स्टेज था जो फिराने से इधर उधर के दृश्य सामने आ जाते थे।

(४) रंगमंच की साज-सज्जा

रंगमच पर प्रत्येक नाटक के कार्य-व्यापार के अनुसार चित्रित पर्दे लगे रहते थे जो गडारियो पर गिरते पड़ते थे। इनमे सवमे आगे 'ड्रापसीन' का पर्दा रहता था और उसके पीछे पर्दो का क्रम नाटक के अनुकूल परिवर्तित होता रहता था। परन्तु ड्रापसीन के पश्चात् 'स्ट्रीट सीन' प्रायः सभी नाटकों मे रहता था क्योकि इस पर्दे पर ही प्रार्थना करने के लिए अभिनेता खड़े रहते थे और ड्रापसीन के उठते ही वाजे के साथ स्तुति आरम्भ कर देते थे। यह पर्दा प्रहसन के काम में भी बहुत आता था। प्रायः संवादपरक प्रहसन के दृश्य, जब तक किसी स्थान विशेष का दिखाना अनिवार्य न हो, इसी पर्दे पर होते थे। अन्य पर्दों में 'जंगल-दृश्य', 'कट पर्दा', 'महल', 'उद्यान' और 'कैम्प' के दृश्य प्रायः समान रूप से पाये जाते थे।

इन पर्दों को चित्रित करने वाले आरम्भ मे विलायती चित्रकार थे जिनमें जर्मन चित्रकार 'क्राउस' (Kraus), इतालवी चित्रकार 'सीरोनी' (Sironi) और रुआ (Rua) प्रसिद्ध थे। वाद में पारसी चित्रकार पेस्तनजी मादन ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। आनंदराव नामक मराठी चित्रकार तो अपने चित्र-पटों के कारण ज़ोरास्ट्रियन नाटक मंडली का भागीदार तक बन गया था। दूसरे मराठी चित्रकार दिवेकर ने इस दिशा में बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। आल्फ्रेड के चित्रकार हुसैन खाँ का बड़ा नाम था। पढ़ने-लिखने के नाम तो वह अँगूठा-छाप थे परन्तु उन दिनों उनका मासिक वेतन, मानकशाह बलसेरा के कथनानुसार, १५०० रुपया था। उसी का साथी दीनशा ईरानी था, परन्तु दीनशा इतना कुशल नहीं माना जाता था।

किसी किसी नाटककार ने अपने नाटक में दृश्य के साथ पर्दे के क्रम की संख्या भी दे दी है जैसे हाजी अब्दुल्ला का नाटक 'सखावत खुदादोस्त बादशाह'। हाजी साहब इंडियन इम्पीरियल थियेट्रिकल कम्पनी के मालिक थे और उनका उक्त नाटक अप्रैल १८९० में लिखा और खेला गया था। नाटक का पहला दृश्य 'दरबार शाह यमन' का है और पर्दा नम्बर १३ पर उसे खेलने का सकेत नाटक मे है। कुल मिलाकर इसमे १४ पर्दे हैं।

पन्द्रहवाँ ड्रापसीन था । उनके शिष्य नजीर बेग ने भी यही पद्धति स्वीकार की है । उनके प्रसिद्ध नाटक 'सत हरिश्चन्दर' मे पहला दृश्य 'नदी किनारा' है जो पर्दा संख्या ९ पर दिखाया गया है। कुल मिलाकर इसमें भी १४ पर्दे है। यह सन् १८८८ ई० की रचना है ।

दृश्यपटों के सम्बन्ध में एक जानकारी और उपलब्ध होती है और वह यह है कि प्रसिद्ध पारसी नाटक मंडलियों ने अपने अपने ड्रापसीन अपनी रुचि के अनुसार बनवा रखे थे ।

जोरास्ट्रियन नाटक मंडली का ड्रापसीन धार्मिक आधार पर बना था। उसमें बादशाह गुस्तास्प का दरबार दिखाया गया है । दरबार में ईश्वर-दूत जरथोस्त अपने हाथ में आग का गोला लिये खड़े है। उनके पड़ोस मे हकीम जामास्प, शहजादा असपंदियार, पीशोतंन तथा पहलवान जरीर वगैरह अदब के साथ खड़े हुए है ।

विक्टोरिया नाटक मंडली के ड्रापसीन में सोराबजी शापुरजी बंगाली के निर्देशन से जमशेद बादशाह का तख्त चित्रित किया गया था । जब कैखसरु काबराजी का नाटक 'जमशेद' अभिनीत हुआ तो इस ड्रापसीन की ओर विशेष ध्यान पारसी लोगों का आकर्षित हुआ ।

एलफिस्टन नाटक मंडली के ड्रापसीन मे पेरिस नगर की प्रदर्शनी का चित्र अंकित था । यह नाटक प्रायः अंगरेजी नाटक ही खेला करती थी। अतएव यह विचार बुरा नही था ।

ओरिजनल विक्टोरिया मंडली के मालिक दादी पटेल थे । कुवरजी नाजर से, जो एक समय विक्टोरिया मंडली में दादी पटेल के साथ भागीदार थे, दादी पटेल की नही बनी और दोनों पृथक् हो गये। इस पर दादी पटेल ने अपनी मंडली के लिए जो ड्रापसीन बनवाया उसमे दिखाया पर्दे पर एक शक्तिशाली नाग चित्रित किया गया है । यह नाग और कोई नही 'कुंवर-जी नाजर' है । और एक खूबसूरत शाहजादा (दादी पटेल स्वय) ऊपर छज्जे पर बैठा हुआ उस फुंकारते नाग को देख रहा है। नाग शाहजादा को काटना चाहता है पर वह सुरक्षित है और उसका कुछ बिगाड़ नही सक रहा है ।

बेरोनेट नाटक मडली के ड्रापसीन के एक अंश पर सर जे० जे० हास्पिटल का चित्र अकित था और उस पर सर जमशेदजी जीजीभाई का चित्र चित्रित किया गया था। हास्पिटल उनकी दानवीरता एवं समाजसेवा का प्रतीक था । प्रत्येक रात्रि को नाटक आरम्भ करने मे पहिले मंडली मालिक

नसरवानजी फ़ाखरु जीजीभाई की प्रशंसा में एक गजल उस ड्रापसीन के आगे आकर गाया करते थे।

दादी ठूठी ने जो हिन्दी नाटक मंडली स्थापित की थी उसके ड्रापसीन में उन्होंने हिन्दू महिला को मंदिर में पूजा करने जाते हुए चित्रित कराया था। एक चित्र जो कुछ इसी विवरण के अनुकूल था मैंने 'दिवाकर' चित्रकार द्वारा चित्रित शाहजहाँ नाटक मंडली के मालिक श्री माणिकलाल के पास देखा था। पता नहीं, क्या यही चित्र हिंदी नाटक मंडली का ड्रापसीन था ?

(५) प्रकाश व्यवस्था

नाटक की प्रेषणीयता पर प्रकाश व्यवस्था का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। आरम्भिक काल में प्रकाश करने के लिए बिजली नहीं थी। आरम्भ में मोमबत्तियों से या कपास भरे दिओं में तेल डालकर अथवा मशालें जलाकर प्रकाश का काम लिया जाता था। उन दिनों तल-बत्तियाँ (Foot-lights) नहीं होती थीं। धीरे धीरे घासलेट की लालटेनें काम में आने लगी। गैस (कारबाइड) का सर्वप्रथम प्रयोग कुंवरजी नाजर ने अपनी 'इन्दर-सभा' के अभिनय में किया था जबकि विभिन्न काँचों द्वारा उन्होंने राजा इन्दर की सभा को उसी रंग में परिवर्तित कर दिया था जिस रंग की वेशभूषा पहिन कर परियाँ दरबार में प्रवेश करती थी। बाद में बिजली के आविष्कार ने प्रकाश की व्यवस्था में चार चाँद लगा दिये। दृश्यों की मनोहरता में वृद्धि हो गई और अनेक कल्पनातीत दृश्य रंगमंच पर दिखाये जाने लगे।

प्रकाश सम्बन्धी निर्देशन की एक विचित्र घटना का सम्बन्ध एक पारसी नाटक मंडली से प्रसिद्ध है। नसरवानजी आपख्यार अपने 'रुस्तम-सोहराब' में रुस्तम का पार्ट करते थे। द्वन्द्व में सोहराब की मृत्यु पर दुःख प्रकट करते हुए वह गाते हैं—

संदेसो तेहमीनाने, जई कोई कहेजोरे।

बाप ने हाथे बेटो मुवो छे, खून थयो अंजाण...

इस गाने को गाते गाते आपख्यार यह भूल गये कि वह रुस्तम हैं और यह समझ कर कि स्टेज-मैनेजर हैं नारायण (रोशनी का मैनेजर) से कहने लगे—"नारायण, लाइट धीमी कर—लाइट-लाइट"। और नारायण ने लाइट धीमी कर दी। लाइट धीमी होने पर आपख्यार ने आगे की पंक्तियाँ गानी शुरू कीं। उन दिनों लाइट गैस-लाइट हो गई थी।

पात्रों के विशिष्ट प्रवेश और प्रस्थान के लिए भी प्रकाश को बुझाने और जलाने का प्रयोग किया जाता था। आकाश से उतरना और पृथ्वी में धँसना क्षण भर के लिए प्रकाश बंद करने पर ही पूर्ण होता था। कभी कभी किसी दरबार में सामने खड़े खंभों के पीछे खड़ी होने वाली नर्तकियों को एकदम दिखाने के लिए क्षण भर प्रकाश मंद रहता, खंभा टूटता और नर्तकियाँ प्रकट हो जाती। परन्तु ये सब प्रयोग इतनी शीघ्रता से एक साथ होते कि दर्शकों को आश्चर्य के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं देता था। उन दिनों 'मैजिक लैंटर्न' तो नहीं थी पर अन्य रूप से प्रकाश प्रेक्षण द्वारा किसी स्थान विशेष अथवा पात्र विशेष की भाव-मुद्रा को प्रकट किया जाता था।

जैसे जैसे युग बीतता गया नई नई वस्तुओं का प्रयोग होता गया। सूर्योदय दिखाने के लिए सर्वप्रथम 'मेगनेशियम' का प्रयोग दादी पटेल के निर्देशन में एक ईरानी नाटक के अभिनय के समय किया गया था। अतएव प्रकाश आदि की व्यवस्था का ध्यान पारसी नाटक मंडलियों में पूरा पूरा रखा जाता था। इनसे प्रभावित होने वाली अ-पारसी नाटक मंडलियों ने इनसे इस विषय में बहुत कुछ सीखा था।

(६) वेशभूषा

ऐतिहासिक नाटक खेलते समय तो मंडलियाँ वेश-भूषा का ध्यान रखती थी, परन्तु सामान्यतया पोशाकें चमक-दमक और चटकीली हुआ करती थी। बादशाहों और रानियों के ताज खूब चमकते हुए काँच के टुकड़े लगाकर बनाये जाते थे। महिलाओं के पहनने के सभी आभूषण झूट्टे होते थे परन्तु होते थे भिन्न-भिन्न प्रकार के। उनके गले में पहनने के हार, हाथों में बाँधने के आभूषण, पाँवों में पहनने के जेवर सभी कृत्रिम वस्तुओं के बने होते थे। नर्तकियों की वेशभूषा में इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाता कि एक दृश्य के नृत्य में वे जो पोशाक पहन कर रंगमंच पर आवें, यथासंभव वही पोशाक अन्य दृश्य के नृत्य में नहीं होनी चाहिए। इसका परिणाम यह होता कि कभी वे अंगरेजी फ्राक पहन कर निकलतीं तो कभी पंजाबी सलवार-कुर्ता तो कभी साड़ी-पोलका (ब्लाउज)। परन्तु सब कुछ होता था तड़क-भड़क वाला चमाचम। हिन्दू पात्रों की वेशभूषा में धोती और खड़ाऊँ का भी प्रयोग होता था। ऋषि प्रायः श्वेत दाढ़ी और जटा लगाते। मृत्यगण चमकन पहनते और मुसलमान पात्रों के अधिकांश की दाढ़ी अवश्य होती। दाढ़ी का रूप और आकार एवं रंग पात्र की अवस्था एवं भूमिका के अनुकूल रहता।

नशरवानजी फाखरु जीजीभाई की प्रशंसा में एक गजल उस ड्रापसीन के आगे आकर गाया करते थे।

दादी ठूठी ने जो हिन्दी नाटक मंडली स्थापित की थी उसके ड्रापसीन मे उन्होंने हिन्दू महिला को मदिर में पूजा करते जाते हुए चित्रित कराया था। एक चित्र जो कुछ इसी विवरण के अनुकूल था मैंने 'दिवाकर' चित्रकार द्वारा चित्रित शाहजहाँ नाटक मंडली के मालिक श्री माणिकलाल के पास देखा था। पता नहीं, क्या यही चित्र हिंदी नाटक मंडली का ड्रापसीन था ?

(५) प्रकाश व्यवस्था

नाटक की प्रेषणीयता पर प्रकाश व्यवस्था का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। आरम्भिक काल में प्रकाश करने के लिए बिजली नही थी। आरम्भ में मोमबत्तियों से या कपास भरे दिओ मे तेल डालकर अथवा मशालें जलाकर प्रकाश का काम लिया जाता था। उन दिनों तल-बत्तियाँ (Foot-lights) नही होती थी। धीरे धीरे घासलेट की लालटेनें काम में आने लगी। गेस (कारबाइड) का सर्वप्रथम प्रयोग कुंवरजी नाजर ने अपनी 'इन्दर-सभा' के अभिनय में किया था जबकि विभिन्न कांचों द्वारा उन्होंने राजा इन्दर की सभा को उसी रंग में परिवर्तित कर दिया था जिस रंग की वेशभूषा पहिन कर परियाँ दरबार में प्रवेश करती थी। बाद में बिजली के आविष्कार ने प्रकाश की व्यवस्था में चार चाँद लगा दिये। दृश्यों की मनोहरता मे वृद्धि हो गई और अनेक कल्पनातीत दृश्य रंगमंच पर दिखाये जाने लगे।

प्रकाश सम्बन्धी निर्देशन की एक विचित्र घटना का सम्बन्ध एक पारसी नाटक मंडली से प्रसिद्ध है। नशरवानजी आपख्त्यार अपने 'रुस्तम-सोहराब' में रुस्तम का पार्ट करते थे। द्वन्द्व में सोहराब की मृत्यु पर दुख प्रकट करते हुए वह गाते हैं—

संदेसो तेहमीनाने, जई कोई कहेजोरे।
बाप ने हाथे बेटो मुवो छे, खून थयो अंजाण...

इस गाने को गाते गाते आपख्त्यार यह भूल गये कि वह रुस्तम है, समझ कर कि स्टेज-मैनेजर हैं नारायण (रोशनी का मैनेजर) मे क "नारायण, लाइट धीमी कर—लाइट-लाइट"। और नारायण ने ह कर दी। लाइट धीमी होने पर आपख्त्यार ने आगे की पं शुरू कीं। उन दिनों लाइट गैस-लाइट हो गई थी।

पात्रों के विशिष्ट प्रवेश और प्रस्थान के लिए भी प्रकाश को बुझाने और जलाने का प्रयोग किया जाता था। आकाश से उतरना और पृथ्वी में घँसना क्षण भर के लिए प्रकाश बंद करने पर ही पूर्ण होता था। कभी कभी किसी दरबार में सामने खड़े खंभों के पीछे खड़ी होने वाली नर्तकियों को एकदम दिखाने के लिए क्षण भर प्रकाश मंद रहता, खंभा टूटता और नर्तकियाँ प्रकट हो जाती। परन्तु ये सब प्रयोग इतनी शीघ्रता से एक साथ होते कि दर्शकों को आश्चर्य के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नही देता था। उन दिनो 'मैजिक लैंटर्न' तो नही थी पर अन्य रूप से प्रकाश प्रेक्षण द्वारा किसी स्थान विशेष अथवा पात्र विशेष की भाव-मुद्रा को प्रकट किया जाता था।

जैसे जैसे युग बीतता गया नई नई वस्तुओं का प्रयोग होता गया। सूर्योदय दिखाने के लिए सर्वप्रथम 'मेगनेशियम' का प्रयोग दादी पटेल के निर्देशन में एक ईरानी नाटक के अभिनय के समय किया गया था। अतएव प्रकाश आदि की व्यवस्था का ध्यान पारसी नाटक मंडलियों में पूरा पूरा रखा जाता था। इनसे प्रभावित होने वाली अ-पारसी नाटक मंडलियों ने इनसे इस विषय में बहुत कुछ सीखा था।

(६) वेशभूषा

ऐतिहासिक नाटक खेलते समय तो मंडलियाँ वेश-भूषा का ध्यान रखती थी, परन्तु सामान्यतया पोशाकें चमक-दमक और चटकीली हुआ करती थी। बादशाहों और रानियों के ताज खूब चमकने हुए काँच के टुकड़े लगाकर बनाये जाते थे। महिलाओं के पहनने के सभी आभूषण झूट्टे होते थे परन्तु होते थे भिन्न-भिन्न प्रकार के। उनके गले मे पहनने के हार, हाथों में बाँधने के आभूषण, पाँवों मे पहनने के जेवर सभी कृत्रिम वस्तुओं के बने होते थे। नर्तकियों की वेशभूषा में इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाता कि एक दृश्य के नृत्य मे वे जो पोशाक पहन कर रंगमंच पर आवें, यथासंभव वही पोशाक अन्य दृश्य के नृत्य में नही होनी चाहिए। इसका परिणाम यह होता कि कभी वे अंगरेज़ी फ्राक पहन कर निकलतीं तो कभी पंजाबी सलवार-कुर्ता तो कभी साड़ी-पोल्का (ब्लाउज)। परन्तु सब कुछ होता था तड़क-भड़क वाला चमाचम। हिन्दू पात्रों की वेशभूषा में धोती और खड़ाऊँ का भी प्रयोग होता था। ऋषि प्रायः श्वेत दाढी और जटा लगाते। मृत्यगण चमकन पहनते और मुसलमान पात्रों के अधिकांश की दाढी अवश्य होती। दाढ़ी का रूप और आकार एवं रंग पात्र की अवस्था एव भूमिका के अनुकूल रहता।

प्रायः तीन रंग काम में आते थे—सफेद, काला और भूरा या मेंहदी वाला रंग।

चेहरे-मोहरे के लिए आजकल के 'मेक्सफेक्टर' का सामान उन दिनों नहीं मिलता था। प्रायः पारसी गोरे रंग के होते ही थे परन्तु फिर भी यदि उन्हें सफेद करने की आवश्यकता होती तो हलका 'ज़िंक-आक्साइड' (Zinc oxide) काम में लिया जाता था। गालों पर सुर्खी लाने के लिए हल्का सिंदूर काम में आता और आँखों को बड़ा करने के लिए काजल का प्रयोग किया जाता था। प्रायः अभिनेता अपना अपना शृंगार स्वयं करते थे फिर भी देखभाल करने वाला एक कलाकार अवश्य रहता था। हीरजी खंबाता 'मेक-अप' की कला में विशेष दक्ष थे। उनके भानजे जहांगीर खंबाता ने भी यह शिक्षा उनसे ली थी।

बालों की विग्ज (*Wigs*) बनी हुई आती थी। स्त्रियों के लिए, गंजों के लिए, बूढ़ों के लिए और जवानों के लहरदार घुंघराले बाल सब बने हुए मिलते थे। आरम्भ में ये बाल सन या बारीक जूट में बनाये जाते थे परन्तु बाद में धीरे-धीरे इनके सौन्दर्य में भी बड़ा अन्तर आ गया। आज तो जैसे चाहिए वैसे बालों की विग मोल ली जा सकती है। फ़ैशन परस्त लड़कियाँ तरह-तरह की विग्ज रखती है और समाज में विभिन्न पार्टियों में विभिन्न प्रकार के बाल बनाकर तथा लगाकर आती हैं। परियों के जामे कलाबत्तू से कढ़ी हुई मखमल के बने होते और उनके डैने (पर) गोटे और कलाबत्तू के जर्क-बर्क काम से बनाये जाते थे।

सामाजिक नाटकों में वेशभूषा पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। गल-मुच्छें रखने का उन दिनों बड़ा रिवाज था। पात्रों का मेक-अप भी प्रायः वैसा ही होता था।

देवों का रंग काला, उनके मुँह काले और सिर पर उगे हुए दो सींग दिखाये जाते थे। बीसवीं शताब्दी में आकर जब परियों और शहज़ादों के कथानक नाटक के विषय नहीं रहे और पारसी मंडलियाँ भारत से बाहर जाकर लौटी तो इन बातों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। जहाँगीर खंबाता तो विशेष रूप से इंग्लैंड इसी लिए गये कि अभिनय कला सीख कर आयें। सन् १८८५ में बालीवाला भी अपनी विक्टोरिया मंडली को लेकर औपनिवेशिक प्रदर्शनी में इंग्लैंड गये परन्तु वहाँ से लौटने पर कुछ विशेष पल्ले नहीं पड़ा। जो चल रहा था उसी में थोड़ी उन्नति अवश्य हुई।

(७) अभिनय

नाटक का प्राण अभिनय है। परिस्थिति के अनुकूल अनुकृति अथवा भावानुकूल अनुकृति ही अभिनय की सफलता का मूल मंत्र है। पारसी अभिनेताओं विशेषकर चोटी के अभिनेताओं ने इस बात पर बड़ा ध्यान दिया था। उनके स्वर के उतार-चढ़ाव, उनके प्रवेश-प्रस्थान, रंगमंच पर उनकी चाल-ढाल आदि सभी चीजों पर निर्देशक की विशेष दृष्टि रहती थी। निश्चय ही भाव-भंगिमा के कुशल अभिनेता अधिक न थे परन्तु ट्रेजिडी में कावसजी पालनजी खटाऊ, और कामेडी में सोराबजी ओगरा अद्वितीय थे। बालीवाला, जहाँगीर खंबाता, दादी ठूंठी, दादी पटेल, पेस्तनजी मदान, डा० धनजी पारख, कैखसरु काबरा आदि सर्वकला सम्पन्न अभिनेता थे। महिला पात्र के अभिनय में डा० धनजी पारख, हाथीराम पेसु आवान आदि अपना उदाहरण नहीं रखते थे। और तो और तीन फुट ऊँचे जयसु कांदेवाला ने तहमीना की भूमिका में बड़ी कला-कुशलता का परिचय दिया था।

प्रसिद्ध है कि दादी पटेल ने एक मूच्छित व्यक्ति की भूमिका में अपने शारीरिक अवयवों का दिग्दर्शन दर्शकों को करा कर यह बताया था कि किस अवस्था में कौन-सा अवयव कैसा फड़कता है और फिर कैसे अपनी मूल अवस्था में आ जाता है। यह प्रदर्शन वही कर सकते है जिन्हें भरतनाट्यम की तरह अपने प्रत्येक अंग पर पूरा नियंत्रण हो। परन्तु यह निश्चय है कि चाहे दादी ठूठी हों, चाहे दादी पटेल, चाहे बालीवाला हो, चाहे सोराबजी ओगरा और चाहे होरमसजी ताँतरा हों चाहे जहाँगीर खंबाता, प्रत्येक की इच्छा अभिनय को उच्चतम कला की ओर ले जाना था।

जब अच्छे निर्देशकों का ह्रास हो गया और दर्शकों के स्तर में भी अन्तर आ गया तो स्वाभाविक था कि अभिनय कला ह्रास की ओर अग्रसर हो और होते होते वह समाप्त ही हो गई। अपने अन्तिम दिनों में भी जिस किसी ने सोराबजी ओगरा, धनजी मास्टर, केशवलाल, मोगीलाल, नसीर और मोडक आदि का अभिनय देखा था, वे कह सकते हैं कि उन दिनों अभिनयकला केवल खेमटे वालों की तरह मटकन नहीं था। उसमें और भी पोषक तत्व थे। मिस गौहर, मिस कज्जन, मुन्नीबाई आदि अभिनेत्रियाँ तो अपनी अपनी कला में दक्ष थी ही परन्तु नरमदाशंकर, मोगीलाल, अम्बालाल आदि पुरुष भी महिला भूमिका में किसी से कम नहीं उतरते थे।

भारतेन्दु ने शकुन्तला नाटक का अभिनय देखकर उसकी निंदा की

थी। परन्तु उनकी आलोचना शकुन्तला उपाख्यान को जिस साँचे में ढाल कर भारतीय संस्कृति की अवहेलना हो रही थी, उस दृष्टि से थी। वह यह सहन नहीं कर सके कि दुष्यन्त जैसा नायक छिछली शब्दावली में दर्शकों के सामने नृत्य करे। यह चरित्र-चित्रण का दोष था अभिनय कला का नहीं। इस प्रकार के चरित्र-चित्रण की भूलें अनेक पारसी नाटकों में, विशेषकर जो हिन्दुओं के देवी-देवताओं और महान् पुरुषों के कथ्य को लेकर लिखे गये, मिलेंगी और वे भी हिन्दू लेखकों की रचनाओं में परन्तु इस दोष के कारण अभिनय-कुशलता पर आक्षेप नहीं किया जा सकता ।

(८) संगीत

पारसी नाटकों का संगीत थोड़ी सी ग़ज़लों को छोड़कर शेष शास्त्रीय संगीत ही था—ठुमरी, दादरा, झिंझोटी, कालिंगड़ा आदि। कहीं कहीं उनमें अंगरेज़ी का प्रभाव भी दिखाई देता है। केवल कमी इस बात की है कि गानों के शब्दों में कोई भावमयी कविता नहीं। वे भर्ती के शब्द मात्र लगते हैं जो अनुप्रास की दृष्टि से उपयुक्त हैं परन्तु हृदय पर प्रभाव डालने वाले नहीं हैं। यही कारण है कि पारसी संगीत दर्शकों को स्पंदित नहीं करता था, वह क्षणिक विश्राम के निमित्त एक परिवर्तन मात्र था।

आरम्भ के दिनों में पारसी नाटकों में संगीत रहता ही नहीं था। वे केवल गद्य में लिखे जाते थे। दादी पटेल के मस्तिष्क में सर्वप्रथम 'बेनज़ीर बदरे मुनीर' ओपेरा की बात आई और फिर तो ओपेरा की धूम मच गई। बरसाती मेंढक की तरह जहाँ देखो ओपेरा। गाने का व्यसन इतना बढ़ा कि सुख के अवसर पर गाना, मृत्यु के समय गाना, युद्ध के समय गाना और बातें करते करते गाना। इन गानों से नाटक की कथा-वस्तु के विकास में अथवा पात्रों के चरित्र-चित्रण में कोई सहायता नहीं मिलती। बस गाना होना चाहिए और गाना रख दिया गया। परिणाम यह हुआ कि गाने वालों की माँग बढ़ गई और उनका व्यावसायिक मूल्य भी बढ़ गया। नसरवानजी आपख्यार, अल्लादिया मेहरबान, मास्टर झडे खाँ और मास्टर लाल अपने युग के प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे।

कम से कम गानों के शब्दों से कविता की बड़ी छीछालेदर हुई।

इन्द्र-सभा : उसका प्रभाव

मूल इन्दर-सभा के लेखक सैयद आगाहसन थे जिनका उपनाम 'अमानत' था। यह रचना 'अमानत की इन्दर-सभा' के नाम से ही प्रसिद्ध है। अमानत के पुत्र सैय्यद हसन 'लताफ़त' के कथनानुसार 'मित्रों ने फ़र्मायश की कि क़िस्सा राजा इन्दर इस तरह नज़्म कीजिए (कविता में लिखिये) कि जिसमें ग़ज़लें और मसनवी (एक प्रकार का प्रबंध काव्य) और नस्र (गद्य) और ठुमरी और होलियाँ और बसन्त और सावन और दादरे और छन्द हों ताके इस ज़बान मे भी तबियत की जूदत (दानशीलता) और ज़हन (मस्तिष्क) की रसाई (पहुँच) देखें। बे-सबब (कारण से) इसरार (ज़िद) हर दोस्त व यार चार ना चार. . यह क़िस्सा तसनीफ़ (रचना) किया और 'इन्दर-सभा' इसका नाम रखा।'[123] इस कथन से यह स्पष्ट है कि इन्दर-सभा का कोई सम्बन्ध वाजिद अली शाह से नहीं था, यद्यपि सामान्य धारणा यही है कि इन्दर-सभा की रचना वाजिद अली शाह के कहने से हुई थी और वह स्वयं इन्दर का पार्ट किया करते थे।

स्वयं अमानत ने कहा है—'वजा के ख़याल से कहीं आता था न जाता था। ज़बान की वाबस्तगी (बंधन) से घर में बैठे-बैठे जी घबराता था। एक रोज़ का ज़िक्र है कि हाजी मिरज़ा आबिद अली 'यगाना-ए-अज़ली', 'रफ़ीके-शफ़ीक', 'मूनिसो ग़मगुसार', 'क़दीमी जाँ निसार' शागिर्द अव्वल, मौज़ु तबियत, तख़ल्लुस 'इबादत', आशिक कलाम-ए-अमानत, उन्होंने अज राह मोहब्बत कहा कि बेकार बैठे बैठे घबराना अबस है। ऐसा कोई जलसा रहस के तौर पर तबअज़ाद नज़्म किया चाहिए कि दो चार घड़ी दिल लगी कि सूरत होवे ख़ल्क़ में शोहरत होवे। आख़िर-ल अमर माफ़िक उनकी फ़रमायश के बन्दा उसके कहने पर आमादा हुआ।"[124]

इससे स्पष्ट है कि इन्दर-सभा की रचना 'रहस' के तौर पर की गई। अब प्रश्न यह है कि 'रहस' का अर्थ क्या है? 'रहस' शब्द उर्दू में हिन्दी के

१२३. लखनऊ का अवामी स्टेज : लेखक सैय्यद मसूद हसन रिज़वी, पृ० ४४।
१२४. वही, पृ० ४४।

'रास' का रूपान्तर है और अर्थ 'हल्के का नाचना' (गोल मंडल मे नृत्य करना) है। बाद में 'रहस' उस 'नाटक' को कहने लगे जिसमें कन्हैया और गोपियों के प्रेम की कहानी कही जाती थी। जब रासधारी मंडलियाँ—रास खेलने वाली व्यवसायी मंडलियाँ—अन्य नाटक भी खेलने लगी तो 'रहस' शब्द का प्रयोग उन नाटकों के लिए भी होने लगा। इन नाटकों का कथ्य धार्मिक हुआ करता था। डा० रिज़वी का कहना है कि जब 'वाजिद अली शाह ने राधा-कन्हैया का रहस तैयार करने के बाद दूसरे किस्सों के खेल तैयार किए और वह सब भी 'रहस' कहलाये तो लफ़्ज़ (शब्द) रहस के मफ़हूम (मानें) में बहुत वसअत (विशालता) आ गई। अब हर खेल ख्वाह उसका मौजूअ (कथ्य) कुछ भी हो 'रहस' कहा जाने लगा। उसी बिना पर इन्दर-सभा भी इब्तदा में (आदि मे) रहस ही समझी गई। इन्दर-सभा की तीसरी तरतीब (संस्करण) में सरे-वर्क (प्रथम पृष्ठ) पर यह अलफ़ाज़ (शब्द) लिखे गये—"जलसा रहस परीलका मारूफबे (नामधारी) इन्दर-सभा।" और मतबा अलताफी (छापाखाना अलताफी) कानपुर (सन् १२७६ हिजरी) के छपे हुए नुसखे (प्रति) के सरे-वर्क पर ये अल्फाज़ दर्ज हैं—"जलसा रहस मादन हुसन व सफा मुसम्मी बे इन्दरसभा।" . . . खुद अमानत ने कहा है—

"छपी किताब रहस की जो दूसरी बारी।"[१२५]
"सेबारा (तीसरी बार) छपी जो रहस की किताब।[१२६]

डा० रिज़वी ने यह भी कहा है कि "अमानत के जमाने मे 'रहस' का लफ़्ज़ नाटक के मानो में बोला जाता था।[१२७]

इन्दर-सभा इतनी लोकप्रिय हुई कि घर-घर उसकी चर्चा होने लगी। स्वयं अमानत का कहना है—

"हुई इन्दर-सभा जिस दम मुरत्तब, जहाँ ने सुन के तौसीफ़ोसना की।
बुतों ने दी सदा अल्लाह अल्लाह, हरएक मिसरा है या कुदरत खुदा की॥
हुआ जो याद जिसको ले उड़ा वह, ज़बान किस किस ने गमेपर न बाकी॥
किसी ने याद की लिक्खी किसी ने, किसी ने जुस्तजू लाइन्तहा की॥
उड़ी शोहरत जब उसकी लखनऊ में, 'अमानत' सब ने ख्वाहिश जावजाकी॥[१२८]

१२५. लखनऊ का अवामी स्टेज, पृ० ४५-४६।
१२६. वही, ४५-४६ पृ०।
१२७. वही, पृ० ४७।
१२८. वही।

इन्दर सभा अपने समय में ही इतनी ख्याति प्राप्त कर चुकी थी कि उसकी कल्पना करना भी सुगम नही है। उसका अनुवाद देश-विदेश की भाषाओ मे हुआ। उसके गाने और उनकी तर्जे गाने वालों की जिह्वा पर रहने लगीं। विस्मृत शास्त्रीय संगीत को उसके द्वारा संजीवनी मिल गई। मराठी में उसका अनुवाद हुआ, जर्मन मे उसका अनुवाद हुआ। श्री लंका में उसका प्रभाव सिंहली भाषा के नाटकों मे पाया जाता है। यहाँ तक उसका प्रभाव पड़ा कि कुछ नाटक कम्पनियो के नाटकों में मूल नाटक के पहिले इन्दर-सभा का कुछ न कुछ अंश दिखाया जाता था जिससे दर्शक आकृष्ट हो सकें। अपने विस्तृत प्रभाव में देव, परी, इन्दर और शाहजादों के रूमानी किस्से और उनका नाटकीय प्रदर्शन ही इन्दर-सभा के नाम से मशहूर हो गया। मुसलमानी लेखक नजीर बेग ने अपने नाटक 'हरिश्चन्दर' में विश्वामित्र जी को कोह्-काफ (काकेशस पहाड) पर, जो परियों के रहने का स्थान माना जाता था, इसलिए भेज दिया कि, उनसे हरिश्चन्द्र को सत्य से डिगाने मे सहायता लें। यह प्रसंग एक ओर तो कथा-वस्तु की दृष्टि से असंगत और अनर्गल है परन्तु दूसरी ओर उसके प्रभाव का द्योतक है।

इन्दर-सभा के प्रभाव के कारण ही कई 'सभायें' और 'जलसे' लिखे गये। कुछ प्रसिद्ध रचनायें इस प्रकार हैं––

१. **परियों की हवाई मजलिस** : 'मजलिस' और 'सभा' दोनो पर्यायवाची शब्द हैं। यह नाटक खा साहब नसरवान जी मेहरवानजी 'आराम' ने लिखा था। इसका दूसरा नाम 'कमरुलजमाँ-मैलका' भी था।

कमरुलजमाँ सोते हुए स्वप्न में महलका को देखता है और उस पर आसक्त हो जाता है। जागने पर अपनी प्रेमिका की खोज में निकल पड़ता है और अत मे उसे पा भी लेता है।

२. इसी कथानक को लेकर और यही नाम देकर मुंशी मोहम्मद मियाँ 'मंजूर' ने अपने नाटक की रचना की थी जो बम्बई की विक्टोरिया थियेट्रिकल कम्पनी में खेला जाता था। यह तीन अंक का नाटक है और कवितावद्ध है।

हलब नामक नगर के राजा जहाँदारशाह का बेटा कमरुलजमाँ एक रात को सोते समय स्वप्न मे, कोह-काफ अर्थात् काकेशस पहाड़ के बादशाह शाहेजीन की पुत्री महलका का दर्शन करता है और उस पर आसक्त हो जाता है। वह स्वप्न देख ही रहा था कि प्रातःकाल हो गया और उनके नौकर ने आकर उसे जगा दिया। अपने स्वप्न के आनंद मे बाधा देखकर उसे बड़ा क्रोध आया

और वह तलवार उठाकर नौकर को मारना ही चाहता था कि वजीर ने प्रवेश किया। कमरुलजमा वजीर पर ही हाथ साफ करने दौड़ा परन्तु उसके समझाने बुझाने और वायदा करने पर कि वह शहजादी महलका को ढूंढ लायगा कमरुलजमाँ का गुस्सा ठंडा हो गया। अब वजीर और शहजादा दोनों महलका की खोज मे निकले।

परिस्तान के बादशाह की लड़की होने से महलका एक ऐसे महल मे रहती थी जो देवो से सुरक्षित था और जिस तक पहुँचने के लिए तिलस्म और जादू के जानकारी की आवश्यकता थी। जब क़मरुलजमा अपनी साहस-पूर्ण प्रेम-यात्रा पर जा रहा था तो मार्ग मे उसे एक सिद्ध-पुरुष के दर्शन हुए। उन्होंने अपनी अन्तरात्मा द्वारा उसकी जिज्ञासा को जानकर उसे एक 'असा' (गदा) दी और कहा कि उसकी सहायता से कमरुलजमाँ की सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाएँगी और वह अपने लक्ष्य तक पहुँचने मे सफल होगा। और ऐसा हुआ भी। तिलस्म और जादू तथा महलका के महल की रक्षा करने वाले देवों को मार कर कमरुलजमाँ कोह-काफ तक पहुँच गया।

परिस्तान में परियो की हवाई मजलिस होती है। परियाँ शहजादी महलका के लिए गजल गाती है और शहजादी हवा मे से प्रगट होती है। वह भी उनसे अपना दुख इस प्रकार प्रगट करती है—

> क्यों बुलाती हो जिगर है मेरा पारा पारा॥
> ख्वाब में देखा है एक माहरु प्यारा प्यारा॥
> शाहजादा था वह गुलफ़ाम गुलदाम हसीन।
> जिसकी जुल्फ़ों का फंसा (दिल) फिरता है मारा मारा॥
> आदमीज़ाद मेरा लूट गया सब्रोक़रार।
> जिंदगी कटने का अब क्या है सहारा यारा॥

इस पर उसकी दाया क़मरुलजमाँ के वहाँ पहुँच जाने की सूचना देती है परन्तु शहजादी फिर भी वियोग में व्यस्त कहती है—

> अब उसके सिवा जीना भी मंजूर नहीं है
> वह दूर हैं तो मौत यहाँ दूर नहीं है॥
> हम तड़पें तेरी चाह में आराम तुझे हो
> उल्फ़त का सितमगर यह तो दस्तूर नहीं है।

दाया फिर भी उसे सान्त्वना देती है और कहती है कि समझ ले तेरा ब्याह उससे हो गया।

और वह तलवार उठाकर नौकर को मारना ही चाहता था कि वज़ीर ने प्रवेश किया। कमरुलजमा वज़ीर पर ही हाथ साफ़ करने दौड़ा परन्तु उसके समझाने बुझाने और वायदा करने पर कि वह शहजादी महलक़ा को ढूँढ लायगा कमरुलज़माँ का गुस्सा ठंडा हो गया। अब वज़ीर और शहज़ादा दोनों महलका की खोज में निकले।

परिस्तान के बादशाह की लड़की होने से महलका एक ऐसे महल में रहती थी जो देवो से सुरक्षित था और जिस तक पहुँचने के लिए तिलस्म और जादू के जानकारी की आवश्यकता थी। जब क़मरुलजमा अपनी साहस-पूर्ण प्रेम-यात्रा पर जा रहा था तो मार्ग में उसे एक सिद्ध-पुरुष के दर्शन हुए। उन्होंने अपनी अन्तरात्मा द्वारा उसकी जिज्ञासा को जानकर उसे एक 'असा' (गदा) दी और कहा कि उसकी सहायता से कमरुलज़माँ की सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाएँगी और वह अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल होगा। और ऐसा हुआ भी। तिलस्म और जादू तथा महलका के महल की रक्षा करने वाले देवों को मार कर कमरुलजमाँ कोह-काफ़ तक पहुँच गया।

परिस्तान में परियो की हवाई मजलिस होती है। परियाँ शहज़ादी महलका के लिए गजल गाती है और शहज़ादी हवा में से प्रगट होती है। वह भी उनसे अपना दुख इस प्रकार प्रगट करती है—

क्यों बुलाती हो जिगर है मेरा पारा पारा॥
ख्वाब में देखा है एक माहरु प्यारा प्यारा॥
शाहज़ादा था वह गुलफ़ाम गुलदाम हसीन।
जिसकी जुल्फ़ों का फंसा (दिल) फिरता है मारा मारा॥
आदमीज़ाद मेरा लूट गया सब्रोक़रार।
ज़िंदगी कटने का अब क्या है सहारा यारा॥

इस पर उसकी दाया क़मरुलज़माँ के वहाँ पहुँच जाने की सूचना देती है परन्तु शहज़ादी फिर भी वियोग में व्यस्त कहती है—

अब उसके सिवा जीना भी मंजूर नहीं है
वह दूर है तो मौत यहाँ दूर नहीं है॥
हम तड़पें तेरी चाह में आराम तुझे हो
उल्फ़त का सितमगार यह तो दस्तूर नहीं है।

दाया फिर भी उसे सान्त्वना देती है और कहती है कि समझ ले तेरा ब्याह उससे हो गया।

उधर क़मरुज्जमाँ के पहुंचने पर देव बड़ा आश्चर्य प्रकट करता है परन्तु जादुई असा देखकर विनम्र हो जाता है। शहज़ादा उससे कहता है—

> आशक़े महलक़ा हूँ मैं रानी पै मुबतिला हूँ मैं
> जामे मोहब्बत उसका अब मैंने पिया, जो हो सो हो,
> देवोपरी ने मिला, मौला तेरा करे भला
> हाले गमों आलमबयाँ मैंने किया, जो हो सो हो॥

इस पर देव ताली बजाता है और महलका एकदम प्रकट होती है। कमरुज्जमा और महलका आमने-सामने एक दूसरे को देखकर अपना प्रेम प्रगट करते हैं। इसी बीच शाहे जीन वहाँ पहुँच जाता है और सारा दृश्य देख कर आश्चर्यान्वित होकर शहज़ादे से हाल पूछता है। शहज़ादा कहता है—

> जो शहज़ादी है आपकी माहे पैकर
> सदा जिसको हशमत से तेरी रहेगी,
> हुआ मैं उसे ख्वाब में देख आशिक़
> सदा दिल पै उस गम की ढेरी रहेगी॥
> मैं इसके लिए आया मेहनत उठाकर
> हरएक हूर बन इसकी चेरी रहेगी
> न उनसे अगर बियाह कर दोगे मेरा
> तो हरगिज़ न फिर जान मेरी रहेगी॥

इसी सुर में सुर मिलाकर शहजादी भी कहती है—

> जो शादी की बात इससे मेरी रहेगी
> तो फिर क़ौल की बात तेरी रहेगी॥
> जो शाहज़ादा सपने में देखा था मैने
> वही है ये यहाँ इसकी देरी रहेगी
> कहा हाल यह तब दिया क़ौल तुमने
> कि निस्बत उसी से ही तेरी रहेगी।
> सो अब ब्याह कर दो कि दिल शाद होवे।
> नहीं तो मुसीबत ये घेरे रहेगी।
> करोगे यह एहसान गर मुझ पै अब शाह
> तो ममनून दायम यह चेरी रहेगी।"

नाटक सुखान्त है। क़मरुलज़माँ नाम होने से उपरोक्त नाटक का भ्रम कभी-कभी हो जाता है।

६. 'खुरशैद-सभा'' का दूसरा नाम 'सानी इदरसभा' भी है। इसके लेखक उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध लेखक शमसुल उलमा मौलवी मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' देहलवी हैं। इन्होंने दो नाटक लिखे थे। एक का नाम 'कामिल किस्सा महारानी व छैलवटाऊ जवीव' रखा और दूसरे का 'खुरशैद सभा सानी इंदर-सभा' रखा।

'खुरशैद-सभा' की कथावस्तु में कुछ अपनी विशेषतायें हैं। खुरशैद नामक राजा के यहाँ देव और परियाँ गुलाम की तरह रहती हैं। जब सोसन परी और अख्तर परी दरबार में आती है तो अपने परिचय में अपनी प्रशंसा करती है। इनका परिचय कुछ-कुछ अमानत की इदर-सभा की पुखराज परी जैसा है। एक तीसरी परी और है जिसका नाम लाल-परी है। वह भी दरबार में आती है परन्तु मार्ग में एक शहज़ादे को देख कर प्रेम का शिकार होती है। शहज़ादे का नाम माहमनव्वर है। बस वह एकदम अपने सफ़ेद देव को हुक्म देती है कि शहज़ादा माहमनव्वर उसके विश्राम कक्ष में पहुँचा दिया जाय। आज्ञा का पालन होता है और शहज़ादा देव द्वारा लाल परी के कक्ष में लाया जाता है। लाल परी उससे भेंट कर फिर दरबार में हाज़िर होती है।

एक दिन शहज़ादा मनव्वर अपने उड़न-खटोले पर बाग की सैर कर रहा था कि उसकी दृष्टि मलिका शहज़ादी नूरआरा पर पड़ी। उसे देख कर वह नीचे उतरा और भेंट की। इस दृश्य को देखकर जमर्रुद परी बड़ी अप्रसन्न हुई और शहज़ादे को वहाँ से उठा ले गई।

नूरआरा के सौंदर्य का बखान देव ने राजा खुरशैद से किया। उसके रूप-गुण वर्णन पर खुरशैद भी नूरआरा पर आसक्त हो गया। सफ़ेद देव द्वारा उसने नूरआरा को अपने पास बुला भेजा। वहाँ पर मनव्वर और नूरआरा एक-दूसरे को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। परियाँ दोनों को बधाई देती है और लाल परी पुनः शहज़ादे को उठाकर ले जाती है। परन्तु शहज़ादा लाल परी से प्रेम नहीं करता। वह नूरआरा के वियोग में व्याकुल रहता है और एक दिन जोगी बनकर उसे ढूँढ़ने निकल खड़ा होता है। ढूँढ़ते ढूँढ़ते वह एक जंगल में पहुँचता है जहाँ उसे एक जादूगरनी बैल बना देती है। जबलालपरी को इसका पता चलता है तो वह उस जादूगरनी को कुत्ता और उसके बाप को मेंढा बना देती है। कुछ समय तक यह तिलस्मी युद्ध चलता है बाद में लाल

बस शाहजीन महलका का हाथ कमरुलज़माँ के हाथ में देता है। नाचो गान के बाद नाटक समाप्त होता है ।

३ इसी कथानक को लेकर हाजी अबदुल्ला ने 'हवाई मजलिस व हसफ़ नैरंग तिलस्म' नाम से अपना नाटक लिखा था जो उन्हीं की नाटक कम्पनी 'इंडियन थियेट्रिकल कम्पनी' मे खेला गया।

४. कहा जाता है कि मुन्शी 'रौनक़' ने भी एक नाटक परियों की हवाई मजलिस के नाम से लिखा था ।

मोलवी मोहम्मद अबदुल वहीद 'कैस' ने एक नाटक 'जलस-ए-परिस्तान' के नाम से लिखा। कैस साहब हाजी अबदुल्ला के शिष्य थे और उन्हीं के कहने पर नाटक लिखा करते थे। इनके नाटक भी 'इंडियन थियेट्रिकल कम्पनी' में खेले जाते थे।

५ 'सभा' के नाम से 'आराम' ने 'फ़र्रुख़-सभा' नाटक लिखा। यह भी कविता-बद्ध नाटक है। इसका दूसरा नाम "कमरुलज़माँ व बदमआरा' है। इसका रचना-काल सन् १८८३ माना जाता है और यह भी विक्टोरिया कम्पनी के लिए लिखा गया था ।

कथा-वस्तु करीब क़रीब एक सी है। हुसैनाबाद राज्य के राजा आलमशाह का एक बेटा है जिसका नाम है कमरुलज़माँ। हवाई मजलिस वाले क़मरुलज़माँ की तरह यह हज़रत भी स्वप्न में 'बदमआरा' को देखकर आसक्त हो जाते है। बदमआरा भी कमरुलज़माँ को स्वप्नग्रस्त देखकर आसक्त होती है और उसे लाने के लिए एक देव को भेजती है। शहज़ादा अपना स्वप्न और व्याकुलता की अभिव्यक्ति अपने पिता के सामने करता है। ज्योतिषियो और तिलस्मकारों को बुला कर स्वप्न के फल की बात चलाती है। वे कहते है कि शाहज़ादा के बिस्तर पर एक हबशी को सुला दिया जाय । वह हबशी शहज़ादा क़मरुलज़माँ समझ कर उड़ा दिया जाता है परन्तु बदमआरा अपने प्रेमी को न पाकर व्याकुल होती है । उसका गुरु उसे सलाह देता है कि वह नौकर बन कर कमरुलज़माँ के पास रहे और जब अवसर उपयुक्त हो उसे उड़ा कर ले आए। बदमआरा मौक़ा आने पर सीमतन परी द्वारा शहज़ादे को उड़वा लेती है। परन्तु शहज़ादा उसके प्रेम-कलाप का घृणास्पद उत्तर देता है। परी उसे कैद कर देती है । परिस्तान के हाकिम शाह फर्रुख को जब यह पता चलता है तो वह बदमआरा का विवाह कमरुलज़माँ और सीमतन परी का हबशी के साथ कर देता है ।

नाटक सुखान्त है। क़मरुलज़माँ नाम होने से उपरोक्त नाटक का भ्रम कभी-कभी हो जाता है।

६. 'खुरशैद-सभा' का दूसरा नाम 'सानी इंदरसभा' भी है। इसके लेखक उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध लेखक शमसुल उलमा मौलवी मोहम्मद हुसैन 'आज़ाद' देहलवी हैं। इन्होंने दो नाटक लिखे थे। एक का नाम 'कामिल किस्सा महारानी व छैलवटाऊ जवीव' रखा और दूसरे का 'खुरशैद सभा सानी इंदर-सभा' रखा।

'खुरशैद-सभा' की कथावस्तु में कुछ अपनी विशेषतायें हैं। खुरशैद नामक राजा के यहाँ देव और परियाँ गुलाम की तरह रहती है। जब सोसन परी और अख़्तर परी दरबार में आती है तो अपने परिचय में अपनी प्रशंसा करती है। इनका परिचय कुछ-कुछ अमानत की इंदर-सभा की पुखराज परी जैसा है। एक तीसरी परी और है जिसका नाम लाल-परी है। वह भी दरबार में आती है परन्तु मार्ग में एक शहज़ादे को देख कर प्रेम का शिकार होती है। शहज़ादे का नाम माहमनव्वर है। बस वह एकदम अपने सफ़ेद देव को हुक्म देती है कि शहज़ादा माहमनव्वर उसके विश्राम कक्ष में पहुँचा दिया जाय। आज्ञा का पालन होता है और शहज़ादा देव द्वारा लाल परी के कक्ष में लाया जाता है। लाल परी उससे भेंट कर फिर दरबार में हाज़िर होती है।

एक दिन शहज़ादा मनव्वर अपने उड़न-खटोले पर बाग़ की सैर कर रहा था कि उसकी दृष्टि मलिका शहज़ादी नूरआरा पर पड़ी। उसे देख कर वह नीचे उतरा और भेंट की। इस दृश्य को देखकर ज़मर्रुद परी बड़ी अप्रसन्न हुई और शहज़ादे को वहाँ से उठा ले गई।

नूरआरा के सौंदर्य का बखान देव ने राजा खुरशैद से किया। उसके रूप-गुण वर्णन पर खुरशैद भी नूरआरा पर आसक्त हो गया। सफ़ेद देव द्वारा उसने नूरआरा को अपने पास बुला भेजा। वहाँ पर मनव्वर और नूरआरा एक-दूसरे को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। परियाँ दोनो को बधाई देती है और लाल परी पुनः शहज़ादे को उठाकर ले जाती है। परन्तु शहज़ादा लाल परी से प्रेम नही करता। वह नूरआरा के वियोग मे व्याकुल रहता है और एक दिन जोगी बनकर उसे ढूंढने निकल खड़ा होता है। ढूंढते ढूंढते वह एक जंगल मे पहुँचता है जहाँ उसे एक जादूगरनी बैल बना देती है। जब लालपरी को इसका पता चलता है तो वह उस जादूगरनी को कुत्ता और उसके बाप को मेंढा बना देती है। कुछ समय तक यह तिलस्मी युद्ध चलता है बाद मे लाल

परी उसको मनुष्य बना देती है। मनव्वर उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट करता है। लालपरी के साथ उसका विवाह हो जाता है।

इस नाटक की सबसे बड़ी विचित्रता यही है कि शहजादी नूरआरा के साथ मनव्वर की शादी नहीं होती।

७. 'इन्दर-सभा' का दूसरा नाम 'कज्जले-इश्क' भी है। इसके ऊपर किसी लेखक का नाम न होकर उसके प्रकाशक का नाम है। परन्तु अंत में कुछ पंक्तियाँ दी गई हैं जिनसे मालूम होता है कि पुस्तक के लेखक कोई अमीरुद्दीन हैं।

कथानक इस प्रकार है। गुलशन नामक नगर के राजा का पुत्र औरंगजेब बख्त अपने पिता से सैर और शिकार पर जाने की आज्ञा माँगता है। राजा उसे मंत्री-पुत्र बेदारबख्त के साथ जाने की आज्ञा दे देता है। मार्ग में उन्हें एक सुन्दर और आकर्षक उद्यान दिखाई देता है जहाँ दोनों जाकर थोड़ा विश्राम करते हैं। इसी बीच राजकुमारी जानआरा और मंत्री-पुत्री सर्वनाज उद्यान की सैर को आती है और दोनों युवकों को देखते ही दिल से हाथ धो बैठती है। दोनों युवक उद्यान के एक भाग में विश्राम करते रहते हैं।

एक दिन जब राजकुमार स्वप्नग्रस्त था तो जमर्रुदपरी उधर से निकली और उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो गई। इतना ही नहीं उसने अपने देव से कहकर युवराज को उठवा मँगवाया। अपना प्रेम प्रगट करते ही युवराज ने उसे घृणा की दृष्टि से देखा। इधर जब मंत्री-पुत्र ने अपने मित्र को न देखा तो वह बहुत व्याकुल हुआ और उसकी खोज में निकला। चलते-चलते उसे एक शाहजी मिल गए। उनकी सहायता से उसने राजकुमार को बुलवा भेजा।

अन्त में राजकुमार और राजकुमारी तथा मंत्री-पुत्र और मंत्री-कुमारी की परस्पर शादी हो गई।

नाटक की कथावस्तु का गठन बड़ा ढीला और लचर है।

८. 'नागर-सभा' के लेखक कालीप्रसाद जी हैं। यह सन् १८७४ की प्रकाशित रचना मानी जाती है, परन्तु इसका विवरण प्राप्त नहीं है।

९. इसी नाम का एक नाटक और भी है। उसके लेखक बख्श इलाही 'नामी' हैं। इसका भी विवरण प्राप्त नहीं हो सका। इन्हीं लेखक की एक अन्य रचना 'आशिक सभा' भी है परन्तु वह भी कहीं नहीं मिलती।

१०. 'बन्दर-सभा' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखी थी और वास्तव में यह रचना अपनी पर्यायवाची रचनाओं पर एक व्यंग मात्र था। इसका मुख्य लक्ष्य इंदर-सभा की 'पैरोडी' है जैसा उसके प्रत्येक छंद से प्रतीत होता है—

"सभा में दोस्तो बन्दर की आमद आमद है
गधे औ फूलों के अफ़सर की आमद आमद है ॥
मरे जो घोड़े तो गदहा या बादशाह बना
उसी मसीह के पैकर की आमद आमद है ॥
व मोटा तन व धुंदला धुंदला मू व फुच्ची आँख
व मोटे ओंठ मुछन्दर की आमद आमद है ॥
है खर्च खर्च तो आमद नहीं खरे-मुहरे की
उसी विचारे नए खर की आमद आमद है ॥

इस बंदर-सभा की परियों में एक शुतुरमुर्ग परी है। यह रचना इतनी सुदर है कि मलाल रह जाता है लेखक ने केवल एक अश की पैरोडी ही क्यो की ? यदि वह समस्त इन्दर-सभा को इसी रूप मे ढाल देते तो हिन्दी साहित्य की एक चीज हो जाती।

११. हुसैनी मियाँ 'ज़रीफ़' ने भी एक इन्दर-सभा लिखी है जिसका नाम रखा है 'नई जनकवाटी इन्दर-सभा' उर्फ़ 'गुलशन पुर फ़िज़ा' । आरम्भ के कुछ अंश को छोड़ कर शेप इन्दर-सभा अमानत की इन्दर-सभा ही है। लेखक ने आरम्भ में दिखाया है कि गुलज़ारशाह बादशाह के युवराज गुलफ़ाम को चौकीदार आकर यह सूचना देता है कि कुछ गवैये आये हैं। युवराज उन्हें अन्दर आने की आज्ञा देते है । गवैयो का गाना सुनकर युवराज अपने शयन-कक्ष मे चले जाते हैं ।

सब्ज़परी शहज़ादे पर आसक्त हो जाती है और उसे उठाकर अपने घर ले जाती है और वहाँ परिस्तान मे रखती है । आगे का कथानक वही है जो अमानत की इन्दर-सभा का है ।

ऊपर जिन 'सभा' या 'मजलिस' नाम के नाटको का उल्लेख हुआ है उनके विश्लेपण करने पर उनमे निम्नलिखित लक्षण पाये जाते है —

१. सभी नाटक कविताबद्ध नाटक है जिनमें विभिन्न छदों और राग-रागिनियों का समावेश किया गया है ।

२. सब नाटकों की भाषा उर्दूमिश्रित हिन्दी है । यही भाषा अधिकांश दर्शकों की समझ मे आने वाली भाषा थी । जिन स्थानो पर कठिन उर्दू का प्रयोग हुआ है वे उन दर्शकों के दृष्टिकोण से उनकी समझ के बाहर रहे होंगे परन्तु संगीत की बहुलता और संदर्भ ने उनकी कठिनाइयों को दूर कर दिया होगा ।

३. सारे नाटक अधिक से अधिक तीन अंक के और कम से कम दो अक के हैं । गद्यप्रधान नाटकों की अपेक्षा इनके छोटे होने का कारण इनकी संगीत प्रधानता है ।

४. सारे नाटकों का कथानक एक ही विचारधारा में चलता है । या तो कोई परी किसी मानव पर पहले आसक्त होती है और फिर वह मानव उस पर आसक्त होता है अथवा इसके विपरीत घटना घटित होती है परन्तु अन्त मे दोनों का मिलन अवश्य हो जाता है। देवों की सहायता उद्देश्य सिद्धि मे ली जाती है । सभी देव और परी किसी न किसी राजा के अधीन है। स्थान प्रायः वही परिस्तान या कोह काफ (काफ नाम का पहाड़) है । राजा का नाम जुदा जुदा है। साहित्य में इन उड़नखटोलो, देवों, परियों का आगमन मुसलमानो की देन है ।

५. सारे नाटक तिलस्म और जादूपरक परिवेश से भरे हैं। नायक उसे दूर करने पर ही नायिका की प्राप्ति करता है और इसमे उसकी सफलता का कारण वह मन्त्र या कोई 'असा' होता है जो उसे सिद्ध संन्यासी से प्राप्त होता है ।

६. तिलस्म और जादू की दुनिया दृश्य जगत् में चमत्कार की सृष्टि करती है जिसे रगमंच पर दिखाने में पारसी थियेट्रिकल कम्पनियाँ हजारों रुपये खर्च करती थी । इसी 'अद्‌भुत' के कारण दर्शकों की पर्याप्त सख्या नाटक देखने आती थी । ये दृश्य विज्ञापित भी किये जाते थे।

उपसंहार में यह मानना पड़ेगा कि अमानत की इंदर-सभा ने अनेकों अद्‌भुत और चमत्कारपूर्ण संगीत प्रधान नाटकों को जन्म दिया तो अपने मूलग्रंथ का अनुकरण उनके द्वारा होने से इंदर-सभा की ख्याति भी चारों ओर जहाँ जहाँ यह नाटक मडलियाँ गईं फैलाती गई । और भी कई ऐसे नाटक लिखे गये जो इदर-सभा से प्रभावित थे और जिनमे 'देवमाला' का आश्रय लिया गया था। लेखकों की दृष्टि किसी अनीति की ओर नहीं थी। वे केवल प्रभाव को ही ध्यान में रखते थे। काल, स्थान और समय के समन्वय का अभाव ही इनके शिल्प मे अधिक था, उनका समावेश नहीं। इंदर-सभा की लोकप्रियता उसके गाने और तर्जें थी जिनका प्रभाव देशव्यापी था। भारत ही नहीं सिंहल द्वीप तक में इन्दर-सभा का प्रभाव फैल गया था। सिंहली भाषा के आदि नाटक-लेखक श्री फरनेनडीज उससे विशेष प्रभावित थे।

पारसी नाटक मंडलियों का प्रभाव

मंडलियों के संक्षिप्त विवरण से पता चलता है कि केवल बम्बई नगर में ही कितनी मंडलियाँ पारसियों द्वारा स्थापित हुई और उनमें से कौन-कौन सी प्रतिद्वंद्विता में खड़ी रह सकीं। इन मंडलियों ने केवल बम्बई को ही नहीं वरन् भारत के अनेक भागों में घूम-घूम कर पर्याप्त धन और यश कमाया। कुछ मंडलियाँ तो विदेशों तक गईं और वहाँ कीर्तिलाभ किया।

अपने देश में भी इनका प्रभाव सभी दिशाओं में पड़ा। बम्बई से दक्षिण पश्चिम हैदराबाद और मद्रास में नाटक मंडलियों की स्थापना हुई जिनमें उर्दू के अनेक नाटक खेले गये। महाराष्ट्र में कई नाट्यशालायें और मंडलियाँ बनी जिन पर पारसी मंडलियों का प्रभाव स्पष्ट था। सुदूर उत्तर में पेशावर, लाहौर, अमृतसर और लुधियाने में इनकी अनुकृति पर अनेकों कम्पनियाँ खुली। उत्तर प्रदेश में भी नाटक मंडलियों की स्थापना पर्याप्त मात्रा में हुई। उत्तर प्रदेश में अव्यावसायिक नाटक मंडलियाँ भी बनी और उन्होंने शुद्ध हिन्दी के नाटकों का अभिनय किया। इन मंडलियों के अभिनेताओं में पं० मदन-मोहन मालवीय, पं० माधव शुक्ल, पं० प्रतापनारायण मिश्र आदि अनेकों का नाम लिया जा सकता है।

नाटकों के युग की समाप्ति पर जब सवाक् चलचित्रों की प्रतिष्ठा हुई तो 'आलमआरा' और 'ख़ूने-नाहक़' जैसी फ़िल्मों में पारसी नाट्य-मंच के नाटक जैसे के तैसे उतार दिए गये। बाद में नाटक और फ़िल्म दोनों की तकनीकी बारीकियों का विकास पृथक्-पृथक् रूप से हुआ। लोग सस्ते मनोरंजन की ओर झुके और नाटकों का तो जैसे अन्त ही हो गया।

अन्य नाटक मंडलियाँ

१. पारसी अमेच्युअर्स ड्रामेटिक क्लब : यह क्लब बहुत पुराना प्रतीत होता है। इस क्लब के मोनोग्राम से युक्त तालिब कृत 'हरिश्चन्द्र' नाटक की एक प्रति मेरे पास है जिस पर लिखा है 'नाट फार सेल, रिहर्सल कापी'।

२. डायमण्ड जुबली थियेट्रिकल कं० : इसके उन्नायकों में धनजी भाई पटेल थे। रुस्तम फ़िडलर ने इसी मंडली में सर्वप्रथम ख्याति प्राप्त की थी।

३. **पारसी जुबली नाटक मंडली।** इसके संस्थापक कुंवरजी नाजिर थे। विक्टोरिया और एलफ़िंस्टन नाटक मंडलियों से पृथक् होकर उन्होंने यह मंडली बनाई थी। इसी को लेकर वह बाहर विशेषकर रजवाड़ों में घूमते थे। जब टोंक में इस मंडली का नाटक हो रहा था तो वहीं वह बीमार पड़े और देहान्त होने पर जयपुर में पारसी आरामगाह में दफन हुए।

४. **दी बाम्बे पारसी ओरिजनल ओपेरा कंपनी :** जैसा नाम से प्रकट होता है यह मंडली केवल 'ओपेराओं' के अभिनय करने में विशेष दक्ष थी।

५. **आर्यभूषण नाटक मंडली :** यह पूना की एक प्रसिद्ध नाटक मंडली थी जिसका प्रधान लक्ष्य महाराष्ट्री नाटकों का अभिनय करना था। परन्तु हिन्दुस्तानी के भी नाटक किया करती थी। 'हारुन रशीद' नाटक का अभिनय इसी के द्वारा हुआ था।

६. **आर्य-सुबोध नाटक मंडली :** यह भी पूना में स्थापित हुई थी। इसके मालिकों में रुस्तम मोदी (सोहराब मोदी के बड़े भाई) थे।[१२९] इसमें जोज़ेफ़ डेविड ने निर्देशक का कार्य किया था। स्वयं भी डेविड 'खूने-नाहक' में हैमलेट का अभिनय करते थे जो बाद में सोहराब मोदी ने किया था। इसमें मराठी के नाटक और उनके हिन्दी रूपान्तर भी होते थे। मंडली अधिक दिन नहीं चल पाई।

७. **नेशनल नाटक मंडली :** इसके निर्देशक जोज़ेफ डेविड थे। 'आफ़तावे दकिन' नाटक का अभिनय इसमें हुआ था।

८. **न्यू पारसी थियेट्रिकल कम्पनी :** इसमें 'धूप-छाँह', 'हार-जीत', 'काली नागन' और 'दुख्तर-फ़रोश' का अभिनय जोज़ेफ डेविड के निर्देशन में हुआ था।

९. **इम्पीरियल नाटक मंडली :** यह एक प्रसिद्ध मंडली थी परन्तु इसके विषय में केवल इतना ही पता चलता है कि जोज़ेफ डेविड के निर्देशन में इसने 'नक़ली शहज़ादा', 'अंदाज़े-जफ़ा', 'भोला शिकार', 'तीरे हविस', 'हूरे-अरब', 'ख़ाकी दुतला', 'मतलबी दुनिया', 'गाफ़िल मुसाफ़िर', 'एशियाई सितारा', 'नूरे वतन', 'समार-नौका', 'बागे-ईरान', 'कर्म प्रभाव', 'शेरे-काबुल', 'क़ौमी दिलेर' और 'नूर में नार' आदि नाटकों का अभिनय हुआ था।

१०. **अलेक्जेंड्रिया नाटक मंडली :** यह मंडली जेब भाई और उनके भाई की थी। इनमें भी जोज़ेफ डेविड निर्देशक रहे। इसके प्रसिद्ध नाटक 'इन्ते-

---

१२९. प्रसिद्ध फ़िल्मी अभिनेता सोहराब मोदी की इंटरव्यू से।

काम', 'आह् मजलूम', 'सुनहरी खंजर', 'हसीन कातिल', 'खूनी शेरनी' और 'वतन' थे। मैंने स्वयं बचपन में 'वतन' का अभिनय देखा था। राष्ट्रीय जागृति की दृष्टि से यह अद्भुत नाटक था। अपनी राष्ट्रीय भावना के कारण ही इसे कई बार सरकार ने जब्त कर लिया परन्तु मंडली अपने लक्ष्य पर डटी रही। 'वतन' में नैयर की शायरी देखने योग्य थी। उसकी एक गजल की पंक्ति थी—

'मकां से बाहर मकान वाले पड़े हुए हैं।'

यह संकेत अंगरेजों के उस दुर्व्यवहार की ओर है जो उन्होंने भारतवासियों के साथ किया था। यह घटना सन् १९१९-२० की है। असहयोग का वह चरम उत्कर्ष काल था।

उपर्युक्त मंडलियों के अतिरिक्त बम्बई के बाहर अनेकों नाटक मंडलियों की स्थापना हुई। यथा—

१. **एल्बर्ट कम्पनी** : यह मद्रास में स्थापित हुई। इसमें 'तिलस्मे-इश्क़', 'नमूना-अस्मत' और 'जोहरा-मुश्तरी' अभिनीत हुए।

२. **निज़ामी कम्पनी** : यह हैदराबाद में बनी। इसमें 'आधा निकाह' उर्फ़ 'मसदर लुत्फ़' तथा 'अजीब इश्क' नामक दो नाटकों के खेले जाने का पता चलता है। इनके लेखक मुंशी मोहम्मद शम्सुद्दीन अमीर हमज़ा 'अमीर' थे।

३. **महबूब शाही नाटक कम्पनी** : यह भी हैदराबाद में थी। इसमें 'अमीर' का लिखा 'साहिर-सभा' उर्फ़ 'मीना बाजार' खेला गया।

४. **देकिन ड्रामेटिक कम्पनी** : इसमें 'अमीर' के लिखे हुए 'सहर-सामरी' और 'जौहर खंजर' नाम के नाटक खेले गये।

५. **बालरूम कम्पनी** : इसमें 'अमीर' का 'लाल बी की नक़ल' अभिनीत हुआ।

६. **एलबर्ट नाटक कम्पनी** : इसकी स्थापना भी मद्रास में हुई। इसमें 'अमीर' के 'तिलस्म इश्क', 'नमूना अस्मत' और 'जोहरा मुश्तरी' अभिनीत हुए।

उत्तर भारत में भी कुछ कम्पनियों का पता चलता है। यथा—

१. **रिपन इंडियन क्लब** : यह पेशावर की मंडली थी।

२. **सिविलाइज्ड थियेट्रिकल कं०** : लाहौर में थी।

३. **ओरियन्टल ओपेरा एण्ड ड्रामेटिक कं०** : यह भी लाहौर में थी। इसमें सन् १८८७ ई० में सैय्यद बजुर्गशाह मनेजर ने गुजराती नाटक का अनुवाद 'तिलस्मात सुलेमानी' के नाम से अभिनीत किया था।

४ विक्टोरिया थियेट्रिकल कं० · यह अमृतसर की कम्पनी थी ।
५. न्यू इंडियन ओपेरा थियेट्रिकल कं० : यह सक्कर (सिंध) की मंडली मालूम होती है । इसमें 'अफ़सूने इश्क' नामक नाटक अभिनीत हुआ था ।

अलेकजेंड्रिया थियेट्रिकल कं० :

इसके संस्थापक मोहम्मद सेठ और जेव सेठ थे। सन् १९०८ में इसके मैनेजिंग प्रोप्राइटर जोजेफ़ डेविड थे जैसा कि उनके एक दीवाचे से पता लगता है ।[१३०]

इस मंडली का सर्वप्रथम खेल 'इंतकाम' था जिसके लेखक मुंशी सुलेमान 'आसिफ' थे। उसके बाद 'आहे-मज़लूम' खेला गया। इसके रचयिता मुंशी खलीउल रहमान 'खलील' मुरादाबादी थे। तीसरा नाटक 'सुनहरी खंजर' अभिनीत हुआ । इसकी रचना प्रसिद्ध लेखक इब्राहीम 'महशर' अम्बालवी ने की थी । बाद में और भी कई नाटकों का अभिनय हुआ जिसमें 'खूनी चोरनी' लेखक इशरत हुसैन 'तैय्यर', और 'वतन' नाटक बड़े लोकप्रिय रहे। 'वतन' का अभिनय मैंने स्वयं सन् १९१९-२० मे मुरादाबाद में देखा था। यह राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण नाटक है और वे दिन असहयोग आन्दोलन के थे। अतएव 'वतन' की लोकप्रियता स्वाभाविक ही थी। उसके गानों मे—

"जो आये मेहमाँ हमारे होकर लगे हकूमत हमीं पै करने,
मकाँ से बाहर मकान वाले पड़े हुए हैं ।"

बड़ा जोश भरने वाली गजल थी । कम्पनी को कई बार अपनी प्रवृत्तियों के कारण सरकार के कोप का भागी होना पड़ा था ।

बम्बई में इस मंडली के नाटक प्रायः 'रिपन थियेटर' मे हुआ करते थे।

'सुनहरी खंजर' का प्लाट मैरी करोली के उपन्यास 'वेन्डिटा' से लिया गया है । उसमें एक फ्रांसीसी कमेडी का प्रहसन 'जन्टल वा बुर्ज आम' शीर्षक भी सम्मिलित है। इसे हरिश्चन्द्र आनंदराव तालरोडकर ने लिखा था। 'आहेमज़लूम' का प्लाट 'अंगरेज़ी लेखक 'ज्यार्ज डबल्यु एन० रेनाल्स' मे लिया गया है ।

नवी एलफिस्टन नाटक मंडली :

सन् १८९४ मे एक गीत की पुस्तक छपी थी जिसका शीर्षक था 'गुलज़ारे नेकी' नामनाँ उर्दू नाटक माँ गवातां गायणो। प्रचलित परम्परा के अनुसार उस पर जो नाटक मंडली का नाम लिखा है वह है 'नवी एलफिस्टन नाटक मंडली' । इससे अधिक परिचय इस मंडली का प्राप्त नहीं होता ।

---

१३०. दीवाचा गाय 'सुनहरी खंजर' और 'आहेमज़लूम' ।

पारसी कर्जन नाटक मंडली :

इसके मैनेजर और डायरेक्टर मेहरजी नशरवानजी सरवैयर थे।[१३१] 'कोरदिल' नाटक के लेखक कलकत्ते के एक विद्वान मुंशी जहीन थे। इसका अभिनय कलकत्ता, वर्मा तथा भारत के अनेक बड़े नगरो मे किया गया था। प्रस्तावना से पता चलता है कि यह नाटक बड़ा लोकप्रिय सिद्ध हुआ और जहाँ भी एक वार इसका अभिनय हुआ वहाँ के निवासियों ने इसे पुन. खेलने की फ़रमाइश की।

अराफियस थियेट्रिकल कम्पनी :

यह मंडली किसकी थी इसका पता नहीं परन्तु इसमें 'लीजन आफ यूनान' उर्फ 'जोशे तौहीद' का अभिनय किया गया था। नाटक इब्राहीम 'महशर' की रचना थी। 'महशर' अपने समय के प्रसिद्ध लेखक थे, अतएव अनुमान हो सकता है कि यह मंडली कोई अच्छी मंडली रही होगी।

दी इंडियन दिलपज़ीर थियेट्रिकल कम्पनी आफ इटावा :

डा० नामी के लेखानुसार इसमें नाटक लेखक 'नामी' के नाटक 'गुलवकावली' उर्फ़ 'नाटक हिम्मत आली हिस्साव' का अभिनय हुआ था। यह रचना १८९३ ई० मे प्रकाशित हुई। नाटक पद्य-बद्ध है और इसमें गुलवकावली का प्रसिद्ध कथानक लिया गया है।

राजपूताना-मालवा नाटक मंडली आफ झालावाड़ :

केवल यह पता चलता है कि प्रसिद्ध नाटक लेखक और अभिनेता 'नज़ीर' इसके मैनेजिंग डायरेक्टर थे।

दी इंडियन इम्पीरियल थियेट्रिकल कम्पनी आफ आगरा :

इसके मालिक हाफ़िज मोहम्मद अवदुल्ला थे। संरक्षकों मे धौलपुर के महाराज लोकेन्द्र बहादुर राना निहालसिंह थे। इसमें अवदुल्ला के प्रायः सभी नाटकों का अभिनय होता था। कम्पनी धौलपुर, आगरा, कानपुर, ग्वालियर आदि अनेक नगरों मे अपने खेल दिखाया करती थी।

नज़ीरवेग 'नज़ीर' जो बाद में स्वतंत्र नाटक मंडली के मालिक बन गये आरम्भ में इसी में एक अभिनेता थे।

---

१३१. 'कोरदिल' नाटक की प्रस्तावना।

दी मून आफ इंडिया थियेट्रिकल कम्पनी :

इसके मैनेजर का नाम मोहम्मद वज़ीर खां बताया गया है। इनकी फ़रमाइश से 'नज़ीर' ने 'सितम इश्क मारूफ़बे नतीजा मोहब्बत' और 'तमाशा गर्दिश तकदीर मारुफ़बे सत हरिश्चन्दर नाटक 'नज़ीर' ने लिखा था।

दी न्यू स्टार आफ इंडिया थियेट्रिकल कम्पनी आफ आगरा :

सन् १९०४ ई० में इसके मालिक नज़ीर बेग 'नज़ीर' थे जैसा उनके नाटक 'तमाशा इश्क़ व आशिकी का गंजीना मारूफ़बे नई तरज गुलरुख़रीना' के मुखपृष्ठ से प्रगट होता है। नज़ीर के अनेकों नाटकों का अभिनय इस मंडली में हुआ था।

लाइटनिंग आफ इंडिया थियेट्रिकल कम्पनी :

इसके मैनेजिंग डायरेक्टर भी नज़ीर बेग ही थे। स्वाभाविक है कि इसमें भी उनके कई नाटकों का अभिनय हुआ था।

दी पारसी जुबली थियेट्रिकल कम्पनी आफ बम्बई :

किसी समय में इसके मैनेजिंग डायरेक्टर नजीरबेग 'नज़ीर' थे। इसकी चीफ एक्ट्रेस शीरीन जान थी जिनकी सिफ़ारिश से नज़ीर ने कई नाटकों की रचना की थी।

मेरे विचार में यह मंडली वर्तमान उत्तर प्रदेश की ही थी 'आफ़ बम्बई' केवल प्रसिद्धि के लिए एक पुच्छल्ला लगा दिया गया था।

स्टूडेंट्स अमेच्युअर्स क्लब :

जैसा नाम से प्रकट होता है यह केवल अव्यावसायिक युवकों के द्वारा नाटकीय मनोरंजन के लिए स्थापित किया गया था। इसके विषय में केवल यह पता चलता है कि सन् १८५८ में इसमें 'रोमियो-जूलियट' का गुजराती अनुवाद अभिनीत हुआ था। यह नाटक वही था जिसे सन्१८७६ ई० में डोसाभाई राडोलिया ने 'डेस्टा' उपनाम से लिखकर शेक्सपियर थियेट्रिकल मंडली को दिया था।

दी इंडियन थियेट्रिकल क्लब :

सन् १८६८ में यह क्लब वर्तमान था। इसमें 'नाना साहब' नाम का नाटक हिन्दुस्तानी भाषा में खेला गया था। इसमें नाना साहब को राष्ट्रद्रोही बताकर उनकी निंदा की गई है और अंग्रेज़ी राज्य की सराहना है।

भारत व्याकुल कम्पनी :

विश्वम्भर सहाय जी 'व्याकुल' के उद्योग से यह मंडली मेरठ में स्थापित हुई। इसका सबसे प्रसिद्ध नाटक 'गौतम बुद्ध' था जिसके लेखक 'व्याकुल' जी स्वयं थे। अन्य नाटकों में 'मायल' के दो-एक नाटकों का अभिनय भी इसमें हुआ करता था।

कुछ वर्षों तक मंडली अच्छी धूम मचाती रही। परन्तु 'व्याकुल' जी को जिह्वा का कैंसर हो जाने से उनकी मृत्यु के पश्चात् यह बिखर गई।

कोरिंथियन नाटक मंडली :

कलकत्ते में इसकी स्थापना मादन बंधुओं द्वारा हुई। ये पारसी थे और बम्बई में अभिनय कला की दक्षता प्राप्त कर चुके थे। धीरे धीरे कोरिंथियन ने 'बेताब', 'हृश्र' आदि अच्छे-अच्छे सभी नाटककारों को अपनी ओर खींच लिया। अल्फ्रेड जैसी बड़ी और अनेक छोटी-छोटी नाटक मंडलियाँ इसमें आत्मसात हो गईं। नये नाटकों में 'बेताब' का 'पत्नी-प्रताप' अच्छा नाटक निकला।

उपसंहार

खोज से पता चलता है कि बम्बई में सबसे पहला थियेटर "बाम्बे अमेच्योर्स थियेटर" था जो सन् १७७६ ई० में वर्तमान 'सेन्ट्रल लाइब्रेरी' के सामने वर्तमान था। इसका निर्माण अंगरेजों द्वारा हुआ प्रतीत होता है और इसमें अंगरेजी के नाटक ही खेले जाया करते थे। अतएव इंग्लैंड के थियेटर का अनुकरण उसमें स्वाभाविक ही था। रंगस्थल, रंगशाला, वेशभूषा और नाटकों तक का कथ्य सभी कुछ अंगरेजी था। अभिनेता और दर्शक भी अंगरेज ही थे। धीरे-धीरे इस थियेटर में व्यापारिक हानि होती रही और अन्त में इसे बेच देना पड़ा। सन् १८४६ में इसके स्थान पर एक नया थियेटर ग्रांट रोड पर बना और वह ग्रांट रोड थियेटर कहलाया। इसमें भी आरम्भ में अंगरेजी नाटक ही अभिनीत हुए। सन् १८५३ में यह नाट्यशाला पहले मराठी, फिर हिन्दी और फिर गुजराती नाटकों के अभिनय के काम में आने लगी।

अतएव अंगरेजी थियेटर की सारी अच्छाइयों और बुराइयों का उत्तराधिकार लेकर पारसी थियेटर का आरम्भ हुआ। अंगरेज अधिकांश में नौकर पेशा थे या व्यापारी थे। उनमें नाटक मनोरंजन का बड़ा साधन था। फिर अभिनेता और धनाभाव के कारण उनकी कुछ अपनी सीमाएँ भी थीं। परिणामस्वरूप अंगरेजी के केवल वे ही नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किए जाते थे जो अधिक गंभीर न होकर हर्षप्रधान थे, जिनमें अधिक पात्र नहीं होते थे विशेषकर महिला पात्र, जिनके मिलने में उन दिनों भी कठिनता थी। उनकी वेशभूषा पर धनाभाव के कारण विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। कभी-कभी तत्कालीन समाचार-पत्रों में वेशभूषा की विचित्रता पर व्यंग्य भी कस दिए जाते थे। नाटक के साथ प्रहसन का चलन हो गया था। यह प्रहसन प्रायः नाटक की समाप्ति पर होता था। बीच-बीच में आरकेस्ट्रा की भी व्यवस्था रहती थी। रंगमंच का साज-सामान प्रत्येक नाटक के सर्वथा अनुकूल तो न होता था परन्तु कुर्सी-मेज का पर्याप्त चलन था। दृश्य पटों के अंकन में चित्रकला का सहारा लिया जाता था और विदेशी चित्रकार

इस कार्य को करते थे। संक्षेप में इस "अमेच्योर्स थियेटर" का यही रूपरंग था और पारसियो ने इसी को अपनाया।

परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उस युग में केवल अंगरेजी के अनुकरण पर नाटकशालाओं में नाटक खेले जाते थे। भारतीय लोकधर्मी परम्परा उन दिनों भी वर्तमान थी। नौटंकी और भवाई वाले नाटक तब भी बड़े मनोयोग से चलते थे और यह लोकधर्मी थियेटर काफ़ी दर्शकों को संतोष दिया करता था। 'खेतवाड़ी थियेटर' इसी प्रकार का जनप्रिय थियेटर था जिसमें संस्कृत नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत हुआ करते थे। सागली के विष्णुदास भावे ने अपनी मंडली लाकर सन् १८५३ में लोकधर्मी थियेटर की धूम मचाई थी। उसके नाटक 'गीत-नाटक-आख्यान' कहलाते थे जो संगीत-परक अधिक थे। इन नाटकों का प्रदर्शन ग्रांट रोड थियेटर मे भी हुआ था। उन दिनों पारसी नाटक मंडलियो का कोई नाम न था। प्रस्तुतिकरण और वेशभूषा आदि की दृष्टि से लोकधर्मी थियेटर अधिक उन्नत नही था।

अतएव पारसियों को एक ओर अंगरेज़ी थियेटर और दूसरी ओर भावेकृत नाटकों में लोकधर्मी थियेटर दोनों ही बपौती में प्राप्त हुए। ओपेरा की प्रधानता का श्रेय लोकधर्मी परम्परा को ही है।

पारसी नाटक मंडलियों ने अपने नाटकों का आरम्भ अपने देश ईरान की कुछ ऐतिहासिक गाथाओं का नाटकीकरण करके किया। स्वाभाविक था कि अपने धर्म और इतिहास के प्रति उनका इतना मोह हो। कैखुसरु काबराजी ने 'बेजन मनीजेह', 'जमशेद' और 'फ़रेदून' इसी परम्परा में लिखे। यही पारसी नाटकों और थियेटरों का आरम्भ कहा जा सकता है। यद्यपि इसके पहिले कुछ पारसी नौजवान कई नाटक क्लबों की स्थापना कर अपना और दूसरों का मनोरंजन किया करते थे। उनमे एलफ़िंस्टन कालेज का एलफिस्टन क्लब अंगरेज़ी नाटक—विशेषकर शेक्सपियर के—खेला करता था। संगीतबद्ध 'स्केच' का अभिनय भी चालू था। इस प्रकार नाटक के प्रायः सभी अवयव न्यूनाधिक मात्रा में पारसी थियेटर के परिवेशस्वरूप उपलब्ध थे।

मेरा विचार है कि पारसी थियेटर में प्रहसन (नकल) की जो परम्परा चली वह भी अंगरेज़ी नाटको के प्रभाव के कारण थी। आरम्भ में ये प्रहसन मूल नाटक से भिन्न होते थे और उनमें प्रायः पारसी जाति पर व्यंग हुआ करता था परन्तु बाद मे यह मूल नाटक का अंश बन गये यद्यपि इनकी कथा मूल से पृथक् हुआ करती थी। परन्तु धीरे-धीरे मूल-कथ्य मे ही इसका समावेश हो गया।

नाटकों की भाषा, जैसा लिखा जा चुका है, पहले गुजराती होती थी। फिर उर्दू का चलन हुआ। परन्तु सभी दर्शक उर्दू पसन्द करते हों ऐसी बात नहीं थी। हाँ, पंजाब और उत्तर प्रदेश में, जो उन दिनों 'संयुक्त प्रान्त' कहलाता था, उर्दू अच्छी तरह समझी जाती थी। एक बात यह भी थी कि आरम्भ में ही पारसियों को जो नाटककार मिले वे सभी उर्दू के जानकार थे और उसी भाषा में लिखने के अभ्यस्त थे। फिर भी व्यवसाय की दृष्टि से भाषा की समस्या बिल्कुल सुलझ नहीं पाई थी। बेताब ने अपने नाटक 'महाभारत' की प्रस्तावना में भाषा विषयक नटी के उत्तर में सूत्रधार से कहलाया है—

"न खालिस उर्दू, न ठेठ हिन्दी, जुबान गोया मिली जुली हो,
अलग रहे दूध से न मिसरी, डली डली दूध में घुली हो।"

ओपेरा मे तो छन्दोबद्ध भाषा का प्रयोग होता ही था परन्तु गद्य की भाषा भी टेक-युक्त हुआ करती थी। इस शैली पर भी कुछ तो अंगरेजी की अमात्रिक भाषा का प्रभाव था और कुछ लोकधर्मी छन्दोबद्ध भाषा का प्रभाव भी था। याद रखने में भी सरलता होती थी। दूर बैठने वाले दर्शकों को—जिनको संतोष देना अति आवश्यक था—सुगमता से उच्च-स्वर से बोली जाने वाली भाषा छन्दबद्ध या टेक-युक्त गद्य ही हो सकती थी। यह भाषा के स्वरूप का व्यावहारिक पक्ष था।

पारसी नाटक मंडलियों का प्रभाव, जैसा सूची से ज्ञात होगा, पारसी इतर जातियों पर भी पड़ा था। उन्होंने अपनी ही मंडलियाँ स्थापित कीं। रजवाड़ों पर भी इनका प्रभाव पड़ा। जयपुर और पटियाला में नाट्यशालाएँ बनवाई गईं। रजवाड़ों का नाट्य-साहित्य एक पृथक् भाग की आवश्यकता रखता है। इसीलिए उसे प्रस्तुत प्रबंध में सम्मिलित नहीं किया गया। पारसी थियेटर के भाग २ मे वे सब विवरण दिए जायेंगे और उनसे सम्बन्धित सामग्री का समावेश किया जायेगा।

आज अवश्य भारतीय थियेटर अपनी नई दिशा खोज रहा है परन्तु वर्तमान और भविष्य दोनों में उसके स्वरूप ढालने के श्रेय से पारसी थियेटर वंचित नहीं किया जा सकता। पारसी थियेटर भी एक प्रकार से प्रयोगी थियेटर था। उसके प्रयोग उस समय के नाटकों में हमे मिल रहे है। क्या यह आशा की जाय कि हमारे नाटक निर्देशक और उसको अपना ही एकाधिकार समझने वाले महाजन नवीन निर्माण की खोज में पुरातन को भुलायेंगे नही।

परिशिष्ट १

नाटकों के विज्ञापन

१

Hindu Theatre

The Hindu Dramatic Corps most respectfully beg to acquaint the Bombay Public, Native and European, that they will have the honour to appear on the boards of the Grant Road Theatre, on Saturday the 26th Instant, when the interesting play of 'Raja Gopichand and Jalunder' will be performed in Hindoostanee.

Prices of Admission

Dress Circle	**Rs. 3|-**
Stall	**Rs. 2|-**
Gallery	**Rs. 1|½**
Pit	**Re. 1|-**

Tickets to be had at the Theatre, performances to commence at 8 P.M. precisely (848)
Telegraph and Courier, Bombay.

Thursday, November 24, 1853.

२

१. पारसी ड्रामेटिक कोर ने अपना पहला खेल 'रुस्तम ज़बोली अने सोहराब' गुजराती भाषा मे ग्राटरोड थियेटर मे, २९ अक्टूबर सन् १८५३ ई० के दिन अभिनीत किया।

२. इसके बाद दो अन्य गुजराती नाटकों का अभिनय क्रमशः ५ नवम्बर सन् १८५३ तथा ६ फ़रवरी सन् १८५४ को दिखाया गया।

३. सन् १८५४ में पारसी थियेटर के नाम से नाटक हिन्दुस्तानी भाषा में अभिनीत हुए। एक का नाम 'स्यावक्ष की पैदायश' था जो ६ मई सन् १८५४ को अभिनीत हुआ।

(उर्दू अदब, मार्च, सन् १८५५, पृ० ९७)

३

श्री शृंगार संग्रह पुर्णरस इराणी नाटक मंडली

पुर्णे येथील चैनी लोकांकरितां 'जान आलम अणि अंजुमन आरा' ह्या नांवाचा अति सुरस खेल हिंदुस्थानी भाषेंत शनवार ता० २७ माहे डिसम्बर सन् १८७३ रोजी रात्रौ आपा बलवंत याच्या वाडयांत केला जाईल, त्या मध्ये उत्तम, चकचकीत, सुंदर मनोवेधक पोशाक, मन-व्यापक सिनऱ्या, चमत्कारिक देखावे ह्यात मोठ्या तरहवाईक रीती में राक्षस व अप्सरा त्याचे एकदम अंधातरी उडून जाणें व जमीनीत गडप होणें, डोंगर फाटून मनुष्याचे नीघूनयेणें आकाशांत हूबेहूब सूर्य दाखवीणें, जलते आगींतून मनुष्याचें चालून जाणें, व मनुष्याचें डोके कापलेलें पुनहा सांधले जाणें वगैरे उत्तम देखावे करण्यांत येतील ।

ह्यांत मधूर गायनही गाण्यांत येतील—

ह्यानतर

'मोले मीयाची मोलाई'

ह्यानांवाचा एक रमुजी हिन्दुस्थानीं भाषेंत फार्स केला जाईल।

दरवाजा ९ वाजतां उघडून, खेल १० वाजतां सुरु होईल

'ज्ञान चक्षु', २४ दिसम्बर १८७३, अंक ५२, बुधवार .सायंकाल; पूणे।

परिशिष्ट २

बम्बई और महाराष्ट्र में हिन्दी नाटक का आरम्भ

७६-१८४६) में सदा से अंगरेजी के नाटक ही
, कि नव-निर्मित ग्राटरोड थियेटर मे भी अंगरेजी
बोलवाला था। महाराष्ट्र सरकार के आलेख
जिल्दें 'थियेटर डायरीज़' की हैं जिनमे सन्
अभिनीत नाटकों की सूची दी गई है। इन दैनं-
किसी नाटक का नाम नही है।

'ल आफ़ कामर्स' पत्र से जो दैनिक रूप
ोता था, एक समाचार दिया गया है।
का है। उसके पढने से पता चलता है कि
प्रयत्न सन १८४६ में फरवरी के पहिले से
लता भी मिली। परन्तु वे प्रयास कौन से
ंभिनय किया गया इन प्रसगों पर उसमें
गया। केवल इतना पता चलता है कि
टर कमिटी' थी जो अभिनय का प्रबन्ध
विज्ञापित किया कि आगामी सोमवार को
दिखाया जायगा। नाटक के सम्बन्ध मे
वह किसी सस्कृत के नाटक का अनुवाद है
किया है। यह ब्राह्मण स्वय विदूषक
होता है और नाटक का निर्देशन करता है।
टाइम्स मे जो शब्दावली 'हिन्दू ड्रामा' तथा
की गई है उसका अपना महत्व है।
प्रतीत होता है कि 'हिन्दू नाट्यशाला'
मूल वस्तु का अस्तित्व है। परन्तु मेरा
प्रयोग समस्त हिन्दू नाटक कला
विल्सन की ईजाद है जिन्होने 'हिन्दू
टकों का अनुवाद और साराश

हिन्दू थियेटर

बाम्बे थियेटर (१७७६-१८४६) मे सदा से अंगरेजी के नाटक ही दिखाये जाते थे। यहाँ तक कि नव-निर्मित ग्रांटरोड थियेटर में भी अंगरेज़ी नाटको के अभिनय का ही बोलवाला था। महाराष्ट्र सरकार के आलेख एवं पुरातत्व विभाग मे दो जिल्दें 'थियेटर डायरीज़' की है जिनमे सन् १८१६ से सन् १८१९ तक अभिनीत नाटको की सूची दी गई है। इन दैनंदिनियों में भारतीय भाषा के किसी नाटक का नाम नही है।

'बाम्बे टाइम्स एण्ड जर्नल आफ कामर्स' पत्र से जो दैनिक रूप मे बम्बई से प्रकाशित होता था, एक समाचार दिया गया है। पत्र १६ फरवरी सन् १८४६ का है। उसके पढने से पता चलता है कि 'हिन्दू ड्रामा' के पुनरुत्थान का प्रयत्न सन १८४६ में फरवरी के पहिले से ही किया गया और उसमे सफलता भी मिली। परन्तु वे प्रयास कौन से थे तथा किन नाटको का अभिनय किया गया इन प्रसगों पर उसमें कोई प्रकाश नही डाला गया। केवल इतना पता चलता है कि थियेटरों के लिए एक 'थियेटर कमिटी' थी जो अभिनय का प्रबन्ध करती थी। इस कमिटी ने विज्ञापित किया कि आगामी सोमवार को 'खेतवाडी' मे एक नाटक दिखाया जायगा। नाटक के सम्बन्ध मे सम्पादक का कहना है कि वह किसी संस्कृत के नाटक का अनुवाद है जिसे एक ब्राह्मण ने किया है। यह ब्राह्मण स्वयं विदूषक बनकर रंगमंच पर उपस्थित होता है और नाटक का निर्देशन करता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि टाइम्स मे जो शब्दावली 'हिन्दू ड्रामा' तथा 'हिन्दू थियेटर' के रूप मे व्यवहृत की गई है उसका अपना महत्व है। सामान्यतया इस शब्दावली से यह प्रतीत होता है कि 'हिन्दू नाट्यशाला' अथवा 'हिन्दू ड्रामा' नाम की कोई स्थूल वस्तु का अस्तित्व है। परन्तु मेरा अनुमान है कि 'हिन्दू थियेटर' का प्रयोग समस्त हिन्दू नाटक कला का अभिव्यंजक है। यह शब्द श्री होरेस विलसन की ईजाद है जिन्होने 'हिन्दू थियेटर' के नाम से कुछ संस्कृत के नाटकों का अनुवाद और साराश

हिन्दू थियेटर

बाम्बे थियेटर (१७७६-१८४६) में सदा से अंगरेज़ी के नाटक ही दिखाये जाते थे। यहाँ तक कि नव-निर्मित ग्रान्टरोड थियेटर में भी अगरेज़ी नाटकों के अभिनय का ही बोलबाला था। महाराष्ट्र सरकार के आलेख एवं पुरातत्व विभाग मे दो जिल्दें 'थियेटर डायरीज़' की है जिनमे सन् १८१६ से सन् १८१९ तक अभिनीत नाटको की सूची दी गई है। इन दैनंदिनियों में भारतीय भाषा के किसी नाटक का नाम नही है।

'बाम्बे टाइम्स एण्ड जर्नल आफ़ कामर्स' पत्र से जो दैनिक रूप में बम्बई से प्रकाशित होता था, एक समाचार दिया गया है। पत्र १६ फरवरी सन् १८४६ का है। उसके पढने से पता चलता है कि 'हिन्दू ड्रामा' के पुनरुत्थान का प्रयत्न सन १८४६ में फरवरी,के पहिले से ही किया गया और उसमे सफलता भी मिली। परन्तु वे प्रयास कौन से थे तथा किन नाटको का अभिनय किया गया इन प्रसंगो पर उसमें कोई प्रकाश नही डाला गया। केवल इतना पता चलता है कि थियेटरों के लिए एक 'थियेटर कमिटी' थी जो अभिनय का प्रबन्ध करती थी। इस कमिटी ने विज्ञापित किया कि आगामी सोमवार को 'खेतवाडी' मे एक नाटक दिखाया जायगा। नाटक के सम्बन्ध मे सम्पादक का कहना है कि वह किसी संस्कृत के नाटक का अनुवाद है जिसे एक ब्राह्मण ने किया है। यह ब्राह्मण स्वयं विदूपक बनकर रंगमंच पर उपस्थित होता है और नाटक का निर्देशन करता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि टाइम्स मे जो शब्दावली 'हिन्दू ड्रामा' तथा 'हिन्दू थियेटर' के रूप में व्यवहृत की गई है उसका अपना महत्व है। सामान्यतया इस शब्दावली से यह प्रतीत होता है कि 'हिन्दू नाट्यशाला' अथवा 'हिन्दू ड्रामा' नाम की कोई स्थूल वस्तु का अस्तित्व है। परन्तु मेरा अनुमान है कि 'हिन्दू थियेटर' का प्रयोग समस्त हिन्दू नाटक कला का अभिव्यजक है। यह शब्द श्री होरेस विल्सन की ईजाद है जिन्होने 'हिन्दू थियेटर' के नाम से कुछ संस्कृत के नाटकों का अनुवाद और साराश

प्रकाशित किया था। संस्कृत के नाटकों को भी वह 'हिन्दू ड्रामा' के नाम से इसलिये पुकारते थे कि वे हिन्दू लेखकों द्वारा लिखे गये थे। तत्कालीन समाचारपत्रों में ये दोनों शब्द हिन्दुओं द्वारा लिखे गये अथवा अभिनीत किये गये नाटकों के ही द्योतक है, किसी विशेष नाट्यशाला अथवा नाटक के नाम नही है। इस मत की पुष्टि टाइम्स के उस समाचार से होती है जो पृ० ३१६ के कालम ३ तथा ४ मे दिया गया है। हेमेन्द्रनाथ दास ने भी 'हिन्दू थियेटर' शब्द का प्रयोग किया है।[1] अतएव जिन विद्वानों ने भारतीय भाषा के नाटकों का अभिनय सन् १८५३ में माना है—वैसे सागली मे तो विष्णुदास भावे ने सन् १८४३ मे ही 'सीता-स्वयवर' का अभिनय मराहठी भाषा में किया था—उन्हे अपने मत पर पुनः विचार करना चाहिये।

सन् १८४६ के रंगमच, अभिनय तथा वेषभूषा का भी थोड़ा परिचय उक्त समाचारपत्र मे प्राप्त होता है। रंगमच कोई चबूतरा या वर्तमान प्लेटफार्म की तरह नही था। समतल भूमि पर दर्शकों के बैठने के लिए कुर्सियाँ नही होती थी। बेंचों को चारों ओर एक के ऊपर दूसरी टाड पर पंक्ति मे लगा दिया जाता था और सैकड़ों दर्शक जिनमें अमीर, गरीब, बड़े-छोटे सभी सम्मिलित थे, उन पर बैठकर नाटक देखते थे। किसी प्रकार का जातिगत अथवा वर्गगत भेद-भाव नही था। अनुमान होता है कि स्थान 'खुला थियेटर' जैसा था।

नाटक के आरम्भ होने से पहिले विदूषक का प्रवेश होता था जो नाटक की समस्त कथा-वस्तु से दर्शकों को अवगत कर देता था। तत्पश्चात् चमकीली तथा विचित्र वेशभूषा से सजकर अभिनेता मंच पर प्रवेश करते थे और इस प्रकार नाटक गतिमान होता था। विदूषक सभी दृश्यों में विद्यमान रहता था और यदाकदा अपनी उक्तियों से दर्शकों का मनोरंजन किया करता था।

खेतवाडी में ये नाटक कब तक चलते रहे और कौन-कौन से नाटक अभिनीत हुए, इस सम्बन्ध मे कोई सूचना प्राप्त नही होती। एक अन्य बात यह भी ध्यान देने की है कि नाटकों की भाषा का भी पता नहीं चलता। सम्भवतः मराहठी भाषा मे थे। परन्तु इनका कोई भी

---

१. द इण्डियन स्टेज, वाल्यूम I, पार्ट II (१९४६), पृष्ठ २८०।

उल्लेख प्रो० वनहट्टी के इतिहास[२] मे नही है। हो सकता है कि हिन्दुस्तानी मे ही लिखे गये हों।

मेरे विचार से सन् १८४६ के इन नाटको को भी उसी श्रृंखला की एक कड़ी मानना चाहिए जो सन् १८४३ में विष्णुदास भावे द्वारा सांगली में 'सीता-स्वयंवर' के अभिनय से आरम्भ हुई थी। इस प्रकार सन् १८४३ से सन् १८५१ तक जो मराहठी नाटक भावे-मंडली द्वारा खेले गये उनकी रीति-नीति मे थोड़ा अन्तर था। निश्चय ही अनूदित नाटको मे संस्कृत गद्य का प्रयोग संवादों में किया गया होगा। यह गद्य भाग भावे-कृत काव्य 'नाटकाख्यान' के पाठो में नही मिलता। अस्तु।

मराहठी नाटकों की दूसरी मज़िल का श्रीगणेश विष्णुदास भावे की नाटक मडली के वम्वई आगमन से आरम्भ होता है। वम्बई आने की भावे की यह प्रथम यात्रा (सवारी) थी यद्यपि सागली से वह एक वार पहले भी नाटक-यात्रा कर चुके थे जो पूना तक समाप्त हो चुकी थी।

बम्बई की प्रवास-यात्रा का समय फरवरी सन् १८५३ से अप्रैल सन् १८५३ माना जाता है। 'बाम्बे टाइम्स' दिनाक वुधवार १६ फरवरी सन् १८५३ के अनुसार प्रो० वनहट्टी ने भावे के नाटको का सर्वप्रथम अभिनय १४ फरवरी सन् १८५३ को माना है। यह अभिनय विश्वनाथ आत्माराम शिपी के बाग मे हुआ था। अभिनीत नाटक थे—'इंद्रजित वध', 'सुलोचना सहगमन', 'अश्वमेधयज्ञ' तथा 'लवकुशाख्यान'।[१]

उक्त समाचारपत्र का कहना है कि नाटक का आरंभ ठीक ७ बजे हुआ। प्रबंध व्यवस्था यद्यपि उत्कृष्ट नही थी परन्तु जिन स्थानीय सज्जनों ने अपने ऊपर उसका भार लिया था, उनके लिए सराहनीय थी। उपस्थिति बहुत अधिक थी। कुशल अभिनेता पौने दस बजे तक सुलोचना का अभिनय करते रहे और शेष समय को लव-कुश आख्यान मे व्यतीत किया। बालकों का अभिनय विशेप रूप से अच्छा था। उनमे एक बड़ा आदमी भी था जो अपने को महादेव कहता था और जिसने समय पड़ने पर ऐसा कोई असवर हाथ से नही जाने दिया जहाँ हँसाने की आवश्यकता हो और वह चूक जाय। नाटक प्रातः २ बजे समाप्त हुआ।[२]

---

१. मराहठी रंगभूमि चा इतिहास, खण्ड १।

२. देखिये, अनुसूची संख्या ७, बनहट्टी-कृत मराठी रंगभूमिचा इतिहास।

मावे के यही नाटक बुधवार ९ मार्च सन् १८५३ को ग्रांट रोड थियेटर में पुनः अभिनीत हुए ।[1]

प्रो० धनहट्टी ने १४ फरवरी सन् १८५३ और ९ मार्च सन् १८५३ के बीच मावे-मंडली के किसी अभिनय का उल्लेख नहीं किया है। वास्तव में मावे-मंडली ने शनिवार १८ फरवरी सन् १८५३ को भी एक अभिनय मुलेश्वर मंदिर में किया था। इस अभिनय के संरक्षक श्री आत्माराम केशो भंडारी थे।[2] प्रबंध व्यवस्था सराहनातीत थी। न कुर्सियाँ थीं, न पिट और न रंगमंच—यद्यपि स्थान को रंगमंच की ही संज्ञा दी गई थी। भूमि पर कालीन बिछा दिए गये थे और दर्शकगण उन्हीं पर बैठे थे। महिलाओं और पुरुषों के शोर के कारण अभिनेता दर्शकों का मनोरंजन न कर सके। राम-वनवास का अभिनय किया गया था। नाटक ९॥ बजे आरम्भ होकर प्रायः २ बजे समाप्त हो गया।

इन विज्ञापनों से एक भ्रम पैदा होता है। क्या 'हिन्दू ड्रेमेटिक कोर' तथा 'हिन्दू ड्रेमेटिक कोर आव सांगली' दोनों नाम एक ही नाटक मंडली के थे अथवा ये दोनों पृथक् पृथक् मंडलियाँ थीं?

१६ फरवरी १८५३ के बाम्बे टाइम्स में जो विज्ञापन है उसके अनुसार मावे-मंडली को 'द हिन्दू थियेटर' कहा गया है। यह शब्दावली मावे के नाटकों के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है। ८ मार्च सन् १८५३ के विज्ञापन में उसे 'द हिन्दू ड्रेमेटिक कोर, जेंटिलमेन अराइव्ड फ्राम द डेक्कन' कहा गया है। पुनः ११ मार्च १८५३ के अंक में उसे 'द हिन्दू ड्रेमेटिक कोर, जेंटिलमेन अराइव्ड फ्राम सांगली' बताया गया है। शेष विज्ञप्तियों में उसे केवल 'हिन्दू ड्रेमेटिक कोर' ही कहा गया है।

इन सब विज्ञप्तियों से यही निष्कर्ष निकलता है कि 'हिन्दू ड्रेमेटिक कोर' और 'सांगली का हिन्दू ड्रेमेटिक कोर' दोनों नाम 'मावे-नाटक मंडली' के ही हैं तथा बम्बई आकर मंडली का यह नामकरण इसलिए कर दिया गया था कि बम्बई में और भी नाटक मंडलियाँ होंगी जो प्रादेशिक नाम से नाट्याभिनय करती होंगी। कम से कम अंग्रेजों के नाट्याभिनय से भिन्न करने के लिए—जो 'बाम्बे थियेटर' में हुआ करते थे—यों यह नाम उचित ही प्रतीत होता है। अंग्रेजों

१. वही।

२. टाइम्स, २२ फरवरी सन् १८५३, पृ० १५८-५९, कालम ४ और ५।

दर्शक-मंडली को सूचित करने के लिए भी उनकी नाट्य-मंडली से भिन्न 'हिन्दू ड्रेमेटिक कोर' की स्थापना मानी जा सकती है।

भावे नाटक मंडली का नाम 'सागलीकर हिन्दू नाटककार' पड़ गया था। इसका प्रमाण 'ज्ञानप्रकाश' पत्र का २१–१–१८५६ का अंक भी है जिसमे मंडली का नाम 'सांगलीकर हिदू नाटककार' लिखा है।[१] १५वी मई सन् १८६२ के 'ज्ञानप्रकाश' में इस मंडली को 'कदीमी सांगलीकर नाटककार' कहा गया है जिससे प्रतीत होता है कि 'सागलीकर नाटक-कार' के नाम से कोई नई मंडली और खडी हो गई थी।

साराश यह है कि सन् १८४६ के लगभग बम्बई मे भारतीय भाषा के नाटक का आरम्भ हो चुका था और सन् १८५३ तक उसका अच्छा खासा विवरण हमे पत्रों से पता चल जाता है। परन्तु नाटक संभवतः मराहठी भाषा के थे।

हिन्दी नाटक :

अब प्रश्न यह है कि हिन्दी का नाटक बम्बई में कब अभिनीत हुआ ?

२४ नवम्बर सन् १८५३ के 'टेलिग्राफ एण्ड कोरियर' में एक विज्ञापन छपा है जिसका आशय यह है "बम्बई की भारतीय एवं योरोपीय जनमंडली को बड़े आदरपूर्वक सूचित किया जाता है कि २६ तारीख शनिवार को हिन्दू ड्रेमेटिक कोर अपना अभिनय ग्रांटरोड थियेटर में करेगी। उस समय हिन्दुस्तानी भाषा में 'राजा गोपीचन्द और जलंधर'[२] नाम का अत्यन्त रुचिकर नाटक दिखाया जायगा।"

लगभग एक वर्ष बाद ३ जनवरी सन् १८५४ मे भी 'बाम्बे टाइम्स' मे एक विज्ञापन निकला जिसमें कहा गया है कि 'राजा गोपीचन्द और जलंधर' नाटक के दोनो भाग दिखाये जायेंगे। दर्शक मंडली को अधिक से अधिक संख्या में आकर्षित करने के लिए टिकट की दरों में कमी कर दी गई है। तत्पश्चात् सन् १८५४ को उक्त पत्र मे ही नाटक का साराश और ९ जनवरी १८५४ के अंक मे नाटक पर एक टिप्पणी भी प्रकाशित हुई।

नाटक के रचयिता :

'राजा गोपीचन्द और जलधर' नाटक के रचयिता कौन थे ? विष्णुदास भावे ने अपनी पुस्तक 'नाट्यकाव्याख्यान' की भूमिका में

१. बनहट्टी, पृ० १०८-१०९ तथा २१२।
२. देखिये अनुसूची।

लिखा है—"मी एक नवीनच नाटक बसवून तेथे प्रयोग केला।" यह नवीन नाटक 'गोपीचन्द' ही था और हिन्दुस्तानी मे लिखा गया था। इसके सम्बन्ध में विष्णुदास मावे के जीवनचरित के लेखक वासुदेव गणेश मावे का उद्धरण प्रो० वनहट्टी ने दिया है—

"ज्या दिवशी नाटक व्हावयाचे त्याच्या आदले दिवसापासून तिकिटें एकंदर १८०० रुपयांची खपली। खेलास शहरातील शेठ-सावकार सरकारी नोकर, युरोपियन, पारशी वगैरे बहुतेक बड़ी मडली आली होती। ते दिवशी नाटकात गणपति, सरस्वति यांचें आवाहन 'अधर' दाखविलें गेलें! व जालंधरच्या डोक्यावरची अधर मोली, मैनावती व जालदरचा महाल, वगैरे सीन उत्तम दाखविले, यामुले खेल मंडलीस फार पसत पडला।"[1]

उपरोक्त दोनों उद्धरणो से 'राजा गोपीचंद और जालंधर' के लेखक विष्णुदास मावे ही थे तथा नाट्यकाव्य संग्रह मे मुद्रित 'गोपीचंदाख्यान' एव ग्रांटरोड थियेटर में अभिनीत 'राजा गोपीचद और जालधर' एक ही नाटक हैं इसमें संदेह करने का कोई स्थान नही रहता। डा० नामी ने राजा गोपीचंद और जालधर को डा० भाऊदाजी लाड द्वारा रचित माना है जो सही नही है।[2] उन्होने अपने निष्कर्ष के लिए कोई प्रमाण भी नही दिया। डा० लाड मावे तो ग्राट रोड थियेटर मे अभिनय दिखाने की प्रेरणा देने वालो मे से थे।

निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि सन् १८४६ मे खेतवाडी थियेटर में अभिनीत होने वाले संस्कृत से अनूदित नाटक हिंदुस्तानी में नही थे तो हिन्दी का सर्वप्रथम बम्बई में अभिनीत होने वाला नाटक मावेकृत 'गोपीचन्द और जलधर' था जिसका अभिनय सन् १८५३ मे प्रथम बार ग्राट रोड थियेटर में किया गया।

राजा गोपीचंद और जलंधर नाटक की विशेषताएँ:

परिशिष्ट में प्रस्तुत 'गोपीचंदाख्यान' से प्रकट होता है कि मावे ने मूल नाम 'गोपीचदाख्यान' ही रखा था परन्तु विज्ञापन के लिए उसे 'राजा गोपीचद और जलधर' कर दिया गया था। यह संगीतबद्ध नाटक लोकधर्मी नाट्यपरम्परा की शैली मे लिखा गया है। अतएव इसमें गद्य का अभाव है। ऐसे नाटकों के अभिनय के समय यह शैली थी कि गद्य अश

१. वनहट्टी: 'मराठी रंगभूमिचा इतिहास', पृ० १०४-५।
२. डा० नामी: 'उर्दू थियेटर', खण्ड १, पृ० १९२।

अभिनेता यदाकदा और यथासमय स्वय जोड़ दिया करते थे । उनका यह कृत्य उनकी प्रत्युत्पन्नमति का द्योतक होता था और कथावस्तु के विभिन्न सूत्रों को एकत्रित कर उन्हें सामूहिक रूप देने मे सहायक होता था । कभी-कभी दर्शक मडली मे से भी कोई व्यक्ति चुटकला छोड देता था और अभिनेता तत्काल उत्तर देकर उसकी तुष्टि कर देता था ।

प्रस्तुत नाटक मे प्रथम दो पक्तियाँ मगलाचरण की है । परन्तु यह मगलाचरण अन्य नाटको की तरह नान्दी रूप मे ही व्यवहृत हुआ है । लेखक अभिनय के समय चाहे उसे किसी रूप मे बढ़ा देता हो परन्तु पाठ्य की दृष्टि से वह सूक्ष्म ही है । इस मगलाचरण के पश्चात् एकदम कथा का सक्षिप्त परिचय दर्शको को दिया जाता है । यह परिचय तीसरी पक्ति से आरम्भ होता है और १८ पक्ति तक चलता है । उसके बाद अपनी सोलह सहेलियों के साथ मैनावती प्रवेश करती है और जलधर जोगी के घर की ओर बढ़कर वहाँ पहुँचती है तथा उनके चरण स्पर्श कर अपना अभिप्राय उनसे कहती है । दोनों की परस्पर वार्ता के पश्चात् 'साम्या' द्वारा नाटक निर्देशक दर्शक मंडली को पुन. कथा की गति की ओर ले चलता है। समस्त नाटक मे यही क्रम है । अर्थात् कही परस्पर सवाद है और बीच-बीच मे कथावस्तु को शृखला जोडने के लिए 'साम्या' है ।

कथानक के विषय मे कोई नवीनता नही है । लोकप्रिय राजा गोपीचद के जोग लेने और अपनी नश्वर काया को योग द्वारा शुद्ध कर उसकी रक्षा करने की कथा ही नाटक रूप मे वर्णित है । प्रधान पात्र मैनावती, गोपीचन्द और जलंधरनाथ जी हैं ।

रचना के लेखक :

मूल रूप से विष्णुदास भावे है, यद्यपि उनका नाम केवल अतिम पद मे ही आया है । परन्तु उन्होने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि "या आख्यानाची काही कविता पूर्वीच्या कवीची घेतली आहे व काही मीकेलेली आहे ।" अर्थात् इसमे कुछ कविताएँ पहले के कवियों की है और कुछ मेरी हैं । पहले के कवियो में विश्वंभरनाथ, गुरुनाथ और कबीर के कुछ पद हैं । सभी पद गेय है और राग-रागिनियों मे लिखे गये हैं ।

नाटक की भाषा हिन्दुस्तानी है । यह वह भाषा है जो उस समय दक्षिण भाग मे प्रचलित थी । इसमे साहित्यिक पुट कुछ भी नही

है। इस दृष्टि से भी इस नाटक की अपनी विशेषता है और यह इसका प्रमाण है कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी कितनी दूर तक फैली थी और उस समय उसका क्या रूप था। वर्तमान व्याकरण की दृष्टि से इस भाषा मे अनेक त्रुटियाँ हैं परन्तु उन पर ध्यान नही देना चाहिये। आखिर यह भाषा बोल-चाल में एक सौ वर्ष से भी अधिक पुरानी हो गई क्योंकि इस नाटक के अभिनय की सूची 'बम्बई कोरियर' पत्र में सन् १८५३ मे पहली बार निकली थी।

गोपीचंद का अभिनय :

विष्णुदास भावे जब बम्बई मे पहली बार आए तो उन्हे अपनी लोक-परम्परा वाली अभिनय शैली का अभ्यास था जो उन्होने कन्नड के 'यक्ष-गान' देखकर अपनाई थी और जिसका उन्हे तथा उनके अभिनेताओ को अभ्यास था। १८ फरवरी सन् १८५३ को आत्माराम केशो भंडारी की संरक्षता मे श्री मूलेधर के मन्दिर मे तथा १४ फरवरी सन् १८५३ को विश्वनाथ आत्माराम शिपी की बगीची मे जहाँ उनकी 'सागलीकर नाटक-कार मंडली' के प्रदर्शन हुए थे वे दोनो उनकी अभ्यस्त परम्परा के ही अन्तर्गत थे।

परन्तु गोपीचन्द नाटक का अभिनय उन दिनों हुआ जब भावे ग्राटरोड थियेटर के नाटकों का प्रदर्शन देख चुके थे तथा उनकी योरोपीय परंपरा से परिचित हो चुके थे। निश्चय ही इन प्रदर्शनों से उन पर यह प्रभाव पड़ा था कि वह भी उस थियेटर मे, तथा दृश्य-चित्रों आदि की परम्परा मे अपने नाटक दिखा सकते तो कैसा अच्छा होता। अपनी इस इच्छा को उन्होने व्यक्त भी किया है। परन्तु नाट्यशाला का दैनिक भाड़ा उनकी इच्छा-पूर्ति मे बाधक प्रतीत होता था। अपनी पुस्तक 'काव्य-नाटकाख्यान' की भूमिका मे उन्होंने नाट्यशाला की एक रात का भाड़ा पाँच सौ रुपया बताया है। वास्तव मे वह लगभग पचास रुपये था। अंकों मे एक शून्य मुद्रकों के कारण लग गया प्रतीत होता है। इसका प्रमाण यही है कि समाचारपत्रों मे गोपीचन्द के अभिनय का जो विज्ञापन छपा वह ग्राटरोड थियेटर मे ही उसका अभिनय किया जायगा—इस आशय का था। यह कल्पना की जा सकती है कि ग्राट रोड थियेटर के रंगमंच के अनुकूल बनाने मे मूल पाठ्य रूप में अवश्य ही कुछ परिवर्तन किया गया होगा। पर्दों का उचित प्रयोग करने के लिए

कथा-वस्तु को दृश्यों और अंकों में विभाजित कर उसे आधुनिक नाटक के अनुरूप लाने के लिए अत्यधिक प्रयास हुआ होगा। ऐसी अवस्था में अभिनय वाली प्रति प्रकाशित प्रति से भिन्न होगी। फिर यह नाटक एक बार नहीं, एक वर्ष बाद भी खेला गया था। उस समय यह दो भागों में विभक्त था। अतएव यह हिन्दी का सौभाग्य ही मानना चाहिए कि उसके आदि-नाटकों में से गोपीचंद नाटक को नितान्त आधुनिक रंगमंच का आश्रय प्राप्त हुआ।

तत्कालीन दर्शक मंडली :

बम्बई थियेटर की जो दर्शक-मंडली अंगरेज़ी नाटकों में रुचि रखनेवाली थी उनके विषय में यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त है कि उसमें भले और संभ्रान्त अंगरेज भी थे और जहाजरानी तथा फ़ौज के ऐसे नौजवान भी थे जो कभी-कभी शोर-गुल से दूसरों को कुछ सुनने नहीं देते थे। परन्तु हिन्दू नाटकों की दर्शक मंडली अधिकांश में जमीन पर बिछे हुए क़ालीनों पर बैठे रहकर नाटक देखा करती थी। उनके सामने कोई ऊँचा उठा हुआ मंच नहीं हुआ करता था। उनके खेलों के टिकट अपेक्षाकृत कम पैसों में आते थे। अतएव दर्शकों की संख्या पर्याप्त होती थी। उनमें पुरुष, स्त्री और बच्चे सभी होते थे। अतएव शोर-गुल होना स्वाभाविक था। फिर भी उनके बर्ताव में कोई अश्लीलता या उग्रता नहीं थी। हिन्दू नाटकों की कथा पौराणिक होने के कारण उसके देखने में दर्शकों का मनोभाव भक्तिपूर्ण हुआ करता था। इसलिए उन पर स्वाभाविक संयम रहता था।

पात्रों की वेशभूषा पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। यद्यपि 'हिन्दू ड्रामेटिक कोर' का कोई विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं है परन्तु अनुमान यही होता है कि पुरुष और स्त्री पात्रों की पोशाकें जैसी उपलब्ध होती थी वैसी ही प्रयोग में ले आई जाती थी। उनकी ऐतिहासिकता पर कोई विचार नहीं होता था।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिन्दी का बम्बई में खेला जाने वाला सर्वप्रथम ज्ञात नाटक भावे-कृत 'गोपीचन्द' अथवा 'गोपीचंद और जालंधर' है।

भारतेन्दु का यह कथन कि हिन्दी का सर्वप्रथम अभिनीत नाटक 'जानकी मंगल' था जो सन् १८६८ मे बनारस थियेटर मे खेला गया, सत्य नही है।

मराहठी मडलियों द्वारा खेले गये एक अन्य नाटक का उल्लेख भी मिलता है। उसका नाम भी 'गोपीचंद' ही है और लेखक है अन्नाजी गोविंद इनामदार।

प्रसिद्ध मराहठी नाटक मंडली 'इचलकरंजीकर' को जो प्रशस्तियाँ समय समय पर नाट्यकला विषयक ख्याति के कारण मिली उनमे से एक प्रशस्ति प्रो० वनहट्टी ने अपनी पुस्तक के परिशिष्ट १० मे दी है।[1] इन प्रशंसकों में एक नाम अन्नाजी गोविंद इनामदार का भी है। अन्नाजी के विषय मे इस उल्लेख से केवल इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उन्हे नाटक मे रुचि थी। वह नाट्य कला के पारखी थे और उसको प्रोत्साहन देने में पीछे नही हटते थे।

इन्ही इनामदार ने 'गोपीचन्द' नाटक की रचना की है। रचनाकाल का तो पता चलता नही, परन्तु यह निश्चय है कि नाटक के तीन सस्करण हुए थे। सर्वप्रथम सस्करण सोलापुर मे सन् १८६९ मे छपा था। इस संस्करण की एक प्रति 'इण्डिया आफिस लायब्रेरी, लन्दन' मे सुरक्षित है।[2] दूसरा सस्करण बम्बई मे भाऊ गोविंद द्वारा सन् १८७७ में मुद्रित हुआ और तीसरा संस्करण २२ फरवरी सन् १८८७ मे 'ज्ञान-चक्षु' छापेखाने बुधवार पेठ, पूना से निकला था। एक पुस्तक के तीन तीन संस्करण हो जाना हिन्दी मे आश्चर्य की ही बात है। यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि नाटक कितना लोकप्रिय था। तीसरे सस्करण की प्रस्तावना से यह भी प्रतीत होता है कि नाटक के प्रत्येक सस्करण मे कुछ न कुछ सुधार किया गया है। लेखक को जहाँ सम्बन्ध सूत्र टूटता दिखाई दिया है वहाँ उसने उसे जोड़ने का बड़ा परिश्रम किया है।

कथा-वस्तु :

लेखक ने नाटक के आरम्भ मे जो 'इस नाटक की हकीकत' दी है उससे नाटक की कथा पर पूरा प्रकाश पड़ता है। अतएव उसे मूलरूप मे दे दिया गया है जिससे फिर से उसे लिखने की आवश्यकता नही।

---

१. म० रं० इ०, पृ० ४१७-४२०।

२. कृष्णाचार्य, 'हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रंथ, पृ० ५।

अभिनय :

इस नाटक का अभिनय किस नाटक मंडली ने किया, कहाँ किया और कब किया आदि प्रश्नों के उत्तर कहीं भी उपलब्ध नही होते। परन्तु अभिनय न किया गया हो यह समझ मे नही आता।

नाटक के अभिनय के विषय मे जो कुछ लेखक ने अपने पहले ही 'परवेश' में कह दिया है; वह उसकी शैली पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

शैली वही है जो नाट्य जगत् में प्रसिद्ध है। सूत्रधार, नटी, पारिपार्श्वक, विदूषक सभी पात्र प्रस्तावना में है। विदूषक की भूमिका स्वय नट सँभालता है। यह विदूषक महाराज मराहठी नाटक की विशेषता है। उसका कार्य केवल हास्य की उत्पत्ति मात्र नहीं है। वह कथानक को आगे बढ़ाने का कार्य भी करता है।

इस नाटक की शैली पर ध्यान जाने की बात एक और भी है। यह लोकधर्मी परम्परा और आधुनिक नाट्यधर्मी परम्परा का मेल है। लोकधर्मी नाटक में यदि पद्य की प्रधानता है तो इसमें गद्य की। यह पहले कहा जा चुका है कि पद्यबद्ध नाटको मे यथास्थान गद्य का समन्वय पात्रो द्वारा स्वय हो जाता था। यह गद्य नाटक का अश होते हुए भी गौण अश रहता था और मूल पाठ मे उसे देने की आवश्यकता नही समझी जाती थी। परन्तु इनामदार ने पाठ मे गद्य का समावेश कर उसे नितान्त आधुनिक बना दिया है।

मावे-कृत गोपीचन्द और इनामदार कृत गोपीचन्द के तुलनात्मक अध्ययन से प्रकट होता है कि लोकधर्मी परम्परा किस प्रकार नाट्यधर्मी परम्परा मे विकसित हो रही थी। इस दृष्टि से इनामदार का नाटक बहुत ही महत्वपूर्ण है।

बलवतराव भास्कर मराहठे एक ऐसे व्यक्ति थे जिनका नाम केवल महाराष्ट्र में ही नही वरन् समस्त भारत व्यापी हो गया था। इन्होने अपना जीवन 'सागलीकर नाटककार मडली' मे स्त्री-पार्ट करने से आरम्भ किया था परन्तु बाद मे महादेव भट्ट के सहयोग से 'नूतन सागलीकर नाटक मडली' स्थापित कर ली। यह स्थापना लगभग सन् १८६७ मे हुई थी। हिन्दी के लिए बलवतराव मराहठे का योगदान उनके हिंदी नाटक है। इनकी सख्या ३२ है और उनके नाम है—

१. सुभद्रा परिणय, २. बाणासुर चरित्र, ३. विक्रम चरित्र, ४. रुक्मागद

चरित्र, ५. गोपीचंद आख्यान, ६. प्रमिला स्वयंवर, ७. शारंगधर, ८. प्रह्लाद, ९. पार्वती परिणय, १० श्रिपाल चरित्र, ११. श्रीनिवास कल्याण, १२. शाकुतल, १३ चन्द्रकान्त, १४. ध्रुवचरित्र, १५. ध्रुवचरित्र (२रा), १६. हरिश्चन्द्र, १७. रामपट्टाभिषेक, १८ पारिजातक, १९ अलाउद्दीन, २०. शशि-रेखा परिणय, २१. शिवाजी, २२. प्रेमबंधन, २३. पारिजातक कौस्तुभ, २४. रामजन्म, २५. द्रौपदी-वस्त्रहरण, २६. गालवचरित्र, २७. उषा परिणय, २८. जयन्त जयपाल, २९. इला, ३०. भीमदेव, ३१. वसतमाधव, ३२. कीचक-वध ।

प्रो० वनहट्टी का मत है कि इन नाटको मे से कुछ पौराणिक पद्धति की आख्यान शैली मे थे, कुछ संवादपूर्ण थे और कुछ किर्लोस्कर कम्पनी के सगीत नाटकों के अनुरूप थे। यद्यपि इनकी पाडुलिपि उपलब्ध नही फिर भी यह उपेक्षणीय नही है ।[1]

उपरोक्त विवरण के देने का प्रमुख अभिप्राय यह है कि भारतेन्दु ने 'जानकी मगल' नाटक को जो सन् १८६८ ई० मे बनारस थियेटर मे अभिनीत माना है, उसके पहिले ही हिन्दी नाटक आधुनिक रगमच पर आ चुके थे और लोकप्रिय भी हुए थे। अतएव यदि पूर्ण जानकारी के अभाव मे सन् १८४६ मे 'खेतवाड़ी' मे होने वाले नाटको को हिन्दी नाटक न भी माना जाय तो कम से कम सन् १८५३ और १८५४ मे अभिनीत 'राजा गोपीचन्द और जलन्धर' तथा सन् १८६७ के लगभग लिखित एव अभिनीत बलवतराव मराठे के हिन्दी नाटकों को एवं इनामदार के 'गोपीचद' नाटक को 'जानकी मगल' के अग्रज मान लेना चाहिए और वही से हिन्दी रगमच तथा रगमचीय नाटकों का इतिहास आरम्भ कर देना चाहिए। तर्कसम्मत तथ्य तो यह है कि बम्बई नगर के अतिरिक्त अभिनीत नाटको मे नवाब वाजिद अली शाह का लिखा 'राधा-कन्हैया' का किस्सा सर्वप्रथम अभिनीत हिन्दी नाटक है ।

जानकी मंगल

इसके रचयिता पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी थे वह हिन्दी-संस्कृत के विद्वान थे। इस नाटक का अभिनय सन् १८६८ में हुआ।

कथावस्तु :

'जानकी मगल' की कथावस्तु बड़ी सरल और सीधी-सी है । प्रसंग पुष्पवाटिका मे राम-सीता मिलन है ।

---

१. म० रं० इ०, खं० १, पृ० १९०।

नाटक की रचना प्रचलित संस्कृत के नाटकों के अनुकूल है। आरम्भ नान्दी पाठ से होता है और तदनन्तर सूत्रधार तथा नटी परस्पर के वार्तालाप में दर्शकों को नाटक की प्राचीन मर्यादा का रोना रोते हुए तत्कालीन बनारस नरेश महाराज श्री ईश्वरीनारायण सिंह जी की प्रशंसा करते हैं। नाटक कौन-सा दिखाया जाय इस पर परस्पर मतभेद होने पर सूत्रधार और नटी 'जानकी मंगल' खेलने पर एकमत हो जाते हैं।

शिल्प-विधान :

नाटक में तीन अंक हैं। प्रथम अंक का आरम्भ मिथिला में आए हुए दशरथ-कुमारों के दर्शन की लालसा से होता है। राम और लक्ष्मण राजा जनक की वाटिका में पुष्प-चयन के लिए जाते हैं और लक्ष्मण से शीघ्रता करने के लिए कहते हैं क्योंकि राम ने 'सुना है कि इस समय जनकराजकिशोरी इस बाग में गिरिजा पूजने आवेंगी।' वे दोनों मालियों से पुष्प-चयन की सहमति लेते ही हैं कि सीता का प्रवेश होता है और वह जगज्जननी की स्तुति में संलग्न हो जाती हैं। इस स्तुति का आशय वही है जो तुलसी के 'रामचरित-मानस' में वर्णित है। शब्द लेखक के हैं तुलसी के नहीं। पूजा के पश्चात् प्रेमसखी आकर राम के सौन्दर्य का वर्णन तुलसी के 'स्याम गोर किमि कहौं बखानी' के साथ तो करती ही है परन्तु लेखक ने अपनी कविता द्वारा उस वर्णन को और अधिक चमका दिया है। उसका कहना

"चलत सोहाय मोर जियरा डराय,
हाय! गड़ि जनि जाय पाय पाँखुरी सुमन की"

स्त्रियोचित कोमलता को साकार कर देता है। चतुर सखी का वर्णन रीति-कालीन कविता की याद दिला देता है। गिरिजा की पुनर्पूजा और वरदान-प्राप्ति पर अंक समाप्त होता है।

त्रिपाठी जी ने दो बार सीता जी से गिरिजा की पूजा कराई है। एक बार एकदम वाटिका में प्रवेश करते ही और दूसरी बार लता की ओट से राम का दर्शन करने के पश्चात्। प्रथम पूजा में स्तुति के शब्द लेखक के हैं और दूसरी में तुलसीदास जी के। इन दोनों को देखते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि पहली पूजा सामान्य रूप से देवी की नित्य प्रति वाली पूजा है और दूसरी पूजा अपने स्वार्थ के हित में की गई है। एक बार गिरिजा-मंदिर से निपट कर सीता पुनः राम को देखने के पश्चात् मंदिर में आई है। यह स्थिति कुछ समझ में नहीं आती। यदि त्रिपाठी जी मौलिक रहना चाहते थे

तो दूसरा प्रवेश न कराते और यदि उन्हें केवल तुलसी का अनुगमन करना था तो अपनी कल्पना को संयम के साथ अपने मस्तिष्क मे स्थान देते। यह खिचड़ी बडी अद्‌भुत और असंगत मालूम होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि काशीवासी ब्राह्मण एक ही तीर से दो चिड़ियाँ मारना चाहता है। तुलसी के कथानक की रक्षा और अपने विचार की अभिव्यक्ति। परन्तु इस प्रयास के कारण नाटकीय प्रभाव की गरिमा का ह्रास हो गया।

दूसरा अंक धनुप-यज्ञ से संबंधित है। बदीजन स्वयवर में आये हुए राजाओं का पृथक् पृथक् परिचय देते है। दसों राजाओ के प्रवेश एवं परिचय के अनन्तर रावण के प्रवेश से सब खल-मल पड़ जाती है। धनुष देखकर रावण आसन ग्रहण करते है और वाणासुर वहाँ आ पहुँचते है। राम-लक्ष्मण और विश्वामित्र का प्रवेश इसके पश्चात् होता है। उनके प्रवेश के बाद ही राजा जनक स्वयंवर के मूल कारण का परिचय देते हैं। राजा लोग धनुष उठाने तक में सफल नही हो पाते। अंत में रामचंद्रजी द्वारा धनुर्भंग और सीता द्वारा जयमाल डालने पर दूसरा अंक समाप्त होता है।

प्रथम अंक की तरह इसमे भी त्रिपाठी जी ने तुलसी के शब्दों का प्रयोग किया है। भाव तो बाबा जी के है ही। लेखक की मौलिकता उसके गद्य की भाषा है, जो तत्कालीन गद्य के स्वरूप की ओर इंगित करती है।

तीसरा अंक परशुराम और लक्ष्मण के परस्पर सवाद का अक है। परशुराम द्वारा रामावतार का ज्ञान हो जाने पर इसकी समाप्ति होती है।

त्रिपाठी जी ने जिस प्रकार वाणासुर और रावण का प्रस्थान दिखाया है वह बड़ा हास्यास्पद है। चरित्र की कोई अभिव्यक्ति अथवा विकास उसमें नही है।

तुलसीदास जी ने भी दोनों का राजसभा मे धनुप-भंग के लिए आने का वर्णन किया परन्तु वापिस जाने का कारण भी बता दिया है। यह कारण चाहे किसी को मान्य हो या नही परन्तु त्रिपाठी जी ने तो दोनों को बिना कुछ कहे-सुने प्रस्थान करा दिया। नाटकीय न्याय पूछता है ऐसा क्यो ? नाटककार की अकुशलता मात्र ही इस प्रश्न का उत्तर है।*

---

*. काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने इस नाटक का प्रकाशन कर दिया है।

हिन्दी के सर्वप्रथम मंचित नाटक का कुछ अंश

गोपीचंदाख्यान

अलख निरंजन जनन वसतु है चरन कमल मन ध्याये जू ॥१॥
अविचल निश्चल अगम अगोचर मैं पुजु[1] प्रानम पावजू ॥२॥
उत्तरखण्ड के त्रिलोक चद राजा गौड बंगाल वाकों देस जू ॥३॥
रानी मैंनावती चदवदनि बाला नही गुरू उपदेस जू ॥४॥
बेटा गोपीचंद घिर-विर[2] नागर मदन भूरत महाराज जू ॥५॥
बारासों रानिया सोलासो खानियां सब सखि है सुखमान जू ॥६॥
नाथ जालंदर रहन गलिनमों जोग जुगत सजोग जू ॥७॥
काया न छाया नहि मुलमाया जुगत जति मे भोग जू ॥८॥
गले बनि कथा बमुत बिराजे जोगि अलख जगावे दिन रात जू ॥९॥
खलक सो न्यारा जोगि पलख न लागे नयना किंगरि से करे कुछ
बात जू ॥१०॥
कुबरि[3] कमडलु निल[4] मृगछाला बेनुवजावे नाना बात जू ॥११॥
जगहि जगोटा[5] नितक छोटा बाला भसम चढावे दिन रात जू॥१२॥
सिद्ध समाधि सकल गुन गावत वेद वचन पढे पात जू ॥१३॥
रहत उदासिन वास गलिन मो कोई नही याकों साथ जू ॥१४॥
जगल मे मो लाये लकरिया माथे न परे कुछ भार[6] जू ॥१५॥
देखे मैंनावति अपने मेहेल[7] पर माथे लकरि निराधार जू ॥१६॥
मन मे मैनावति थकित वचन कहे जोगि नही जगदीम जू ॥१७॥
करू गुरुनाथ अनाथ कि नायक लेउँ निगम उपदेम जू ॥१८॥

श्लोक भुजंग प्रयात

चली माय मैनावती साथ सोला।
सहेली लिये सिद्ध जोगी सलीला।

या आख्यानाची कांही कविता पूर्वीच्या कवींजी घेतली आहे व कांही मी केलेली आहे।

१. पूजूं २. धीर-बीर ३. ? ४. ? ५. लंगोटी ६. बोम ७. महल।

मडीमो जहाँ, देख के साधजी कू।
धरे पाव बोली दिनानाथ[1] जी कू॥१॥

पद : राग झिझटी, ताल दीपचंदी

किजो[2] जी नाथ दया महाराज विहारी॥ध्रु०॥
करहो सनाथ अनाथ के नाथजी अभिगत चूक परी॥१॥
त्यजहो किलाफ[3] गुन्हा करो माफ तन बिच मूल परी॥२॥
टूटे भवपास छुटे जन आस मै दास उदास खरी॥३॥
दास विस्वभरनाथ[4] कृपा कर जग मग जोत जरी॥४॥

सावया

तूं तो गोपीचद की मैया मैनावति हूं तो कलदर जोगि जू॥१॥
रहत गलिन मों लावत लकरिया जोग नही भवरोगी जू॥२॥
जोग न जानु कछु मत्र न जानुं जानु नही उपदेस जू॥३॥
जानुं नही . लय लछन मुद्रा वाला फिरू सव देस जू॥४॥
नदि[5] रुख वीरुख बसवि हमारी मैया रहत उदासिन वास जू॥५॥
भूत मसान स्मसान वासि मैया ओढ विछावे सव घास जू॥६॥

श्लोक पंचचामर

दयालया दयानिधे करी दया दयाघना।
त्वरे कृपा करून सोडवी कृतातयातना॥
प्रताप पापहारका प्रभू पतीत[6] पावना॥
सदा उदास दास की दरिद्र दुख हारणा॥१॥

श्लोक भुजंग प्रयात

दीनानाथ बोले महीपाल भाई। नही मे किसे मत्र माला सुनाई।
नही सार ससार की सूर्त पाई। नही जोग संजोग वानी बताई॥१॥
गले वीचमों गर्क गाफिल मुन्यारा[2]। न छाया कछू गर्द गलता न सारा।
किला कब्ज[3] म्यानं किलेदार मारा। वजाया नहीं वव वादल नगारा॥२॥
नही काज कर्तुद[4] कंथा सवारी। मगन्यस्त मुद्रा नही सूर्त सारी॥
नही मंत्र मौजूद बै वात न्यारी। निगतीत का बीज वातालकारी॥३॥

---

१. दीनानाथ २. कीजो ३. ? ४. लेखक का नाम
५. नदी ६. पतित।

दुना दुख दर्या व दर्वार जागा। नहीं जोग ना जुक्तिना रोग लागा।
दरोगा नही दर्द का दूर भागा। कलदीर कामीनि का प्रान धागा॥४॥

सावया

इतने वचन पर मैया मैनावती चरण कमल धरे ध्याय जू॥ध्रु०॥
करा हो दयानिधि कुमति उधारन करो कृपा अब नाथ जू॥१॥
तब करुनाकर शिस पर धरे कर निज मनमत्र सुनावे जू।
सुख जप माला देइ जो उन्मनी तबहि भई सुख दासि जू॥२॥
जनन मरन दुख दरद न आवे वाला भव जल पार तरावें जू।
घट मट निकट निगमागम बोलत सुन्य सकल सुख पावे जू॥३॥
कोरा जो कागद छर है अछर विन निरमल मत्र मढावे जू।
विन पानी दरिया भवरा जहा अविचल नाव चलावें जू॥४॥
उन्मनि के सग सून्य भुवन विच अभिगत चित जु डावें जू।
निपट त्रिपुटि पट उन्नन मारग झटपट वद छुड़ावें जू॥५॥
उलट कमल घट अलख जगाया जोगी अगमग जोति जगावें जू॥
जागत जग मे जोग जुगत जोगि जुग जुग जोति समाई जू॥६॥
निस दिन पल पल नील कमल विच सोहं निरामय भाव जू।
आध ऊर्ध्व की माला जो धरि वाला जपत जालधर [नाथ जू॥७॥
सहज समाधि उपाधि मूलि मन मगन मनोरथ जोग जू।
गुरुपद पंकज प्रानकला तहा लय लगी भव भागा जू॥८॥
अजय अजय की जापैं जपमाला कलख सब सुख पावें जू।
भसम भई जब दस्त भूवन बिच मस्त मनोरथ होंवे जू॥९॥
जागे कहा कछु रोग न आवें वाला रोग तहां नहि भोग जू।
गुरुनाथ उपदेस सून कर लग गइ रानि समाधि जू॥१०॥

पद : राग काफी, ताल : धुमाली

वाहवा खूब बनी खूब बनी जोत लगी उन्मनी है॥ध्रु०॥
आंखों मैं निच अखवा देखे क्या समाधी चोंखा॥१॥
आत सखये फुलझडी नैंनोंविच क्या उचला पड्या॥२॥
गुरूनाथ का देना जनादन का बडा खजीना॥३॥

परिशिष्ट ३

पारसी रंगमंच पर अभिनीत नाटकों के कुछ दृश्य

फ़रेदून

लेखक : फंखसरू काबा

रचना-काल : अप्रैल, १८७४

भाग १लो—अंक १लो

प्रवेश १लो

वरेनमा. एक गामडुं अने मेदान—गामडुं दूर देखाय

(मेदानमां एक पाणीना चश्मा आगल कबूतरखाना बांधेला छे, एकना कंगुरा ऊपर एक पतंग मेरवाई गयुं छे। कोई वार कबूतरो फडफडे छे अने तेमने हाकवा मा आवे छे।

एक खेडूतनो छोकरो एकेलो छे अने गाय छे, बीजाओ नाम परमांणे नीकली आवी गाय छे।

जोलानी मरी

("कगनवा गोरा कर से सडक गयो रे"—ए राहानी)

छोकरो	(एक लो गाय छे)... कनकवो मारो कगुरे कवज केवोरे (२ वार)
जंधे	(नीकली आवी गाय छे)...तेनु कुटे नेवु हुईआ?
तुस	(") दरावबे सेनुं दंमीआ ?
छोकरो	(बीजाओ ऊंचकी आपे) कनकवो मारो कंगुरे कवज केवो रे (२वार)
फ़रहाद	(नीकली आवी गाय छे) शु मारामारी रे ?
जंधे	(तुसने देखाड़ी गाय छे) थई हेने ओकारी रे ?
हुशंग	(नीकली आवीने गाय छे) ना तमे पछाड़ो जीव।
जंधे	(तुसने देखाडी गाय छे) कटारी दीठी मारी ?
तुस	(जगे ने देखाड़ी गाय छे) फुके फाटेलो मारी।

फ़रहाद ने हुशंग (गाय छे) लगाम राखी मोहडाने मचक देवो रे।

छोकरो	(सघला ऊंचकी आपे) कनकवो मारो कंगुरे कवज केवो रे (२वार)
तुस	(जगेने देखाडी गाय छे) कोण तुंथी बीहेरे ?
जंधे	(तुसने देखाडी गाय छे) दम कोने दीएरे ?

फ़रहाद ने हुशंग (गाय छे) जुध नेजगाड़ो तम।

जंघे (फरहाद देखाडी गाय छे) देवानाथी शु दरीए ?
तुस (हुशगने देखाडी गाय छे) लोमड़ी से लड़िए !
फ़रहाद ने हुशंग (गाय छे) अनाडी तो छे पवन से लड़े तेवो रे ।
छोकरो (सवला ऊचकी आपे) कनकवो मारो कंगुरे कबज केवो रे (२बार)
तुस (जवने देखाड़ी गायछे) चडीएल चडाल रे.
जंघे (तुमसे देखाड़ी गायछे) कदरूपा कगाल रे,
फ़रहाद ने हुशंग (गायछे) मुगा मरो चीठ डेहाल,
जंघे (तुसने देखाड़ी गाय छे) मारश सोटे सोटा,
तुस (जघेने देखाड़ी गाय छे) काहाडश खोटे खोटों
फ़रहाद ने हुशंग (गायछे) मरेछे कांहीं ए कुवामां कडक जेवोरे ।
सघला (साथे गाय छे) कनकवो मारो कंगुरे कबज केवोरे (२ वार)

(आ गाएण चालतामा तेओ मारामारी ऊपर आवी जाय छे । फरहाद अन हुशग वचे पडेछे ।)

तुस अरे छोड रे माई हुशग तु मने छोड हु एने हवाद देखाडु, आ उजवख ऊखडाने ऊकरडाने मारनी बी अक्कल न थी तारे ऊथरा जेदु कद ववारीने नादान वालक हात लडवा नीकलेलो केनी

जंघे नही, जो फरहाद, तुने मारा हम, जो तु मने लडवादे, मारी चापडी चवरी रहेली ने हाथ ने हथोयी आवेली । एक हो पचाह मुका लगवा दे । ईए ?

(उलटो फ़रहाद साथ मरावा जाय छे)

तुस (हुशग ने) जो यार मने छोड़ मारु नाख जायछे । हु ऐनी हाथे मारा वाप जनप हुथी लडवानो । हुं मरी जवाद तोबी लडाह, मरवा पछेवी लडाह, तखमें पैरो पैरो लडाह, पेली जीहानमांबी लडाह, तु नहने छोड़ । ईए ? नहि छोड़ें।

[सामो हुमग साथ मराय छे ।

जंघे (फरहादे धरेलो, तुसने कहे छे) एरे वेहरे वेह मोटा लडवा वाला लेवटानो लेकटो आवेली केनी ? लात ने लाडाक वेहु लगावहु केनी तो लपा लईने लावो थाई जाहे ?

तुस (हुमगनो घरेलो–जघेने) अरे तारोतो गुद रोटलो करी ने तेनो गाहडो वावु, ते गाहडाने गाडामा लाधु ने ते गाडाने गामे-गाम गहड गहड घहडीने गाठे गाठ तुने गपोगप पीपु ।

फ़रहाद अरे रातोरे रातो काडुसीनी जानया एनला तमनेज लडता आव-

डेलुं के ? फ़रेदुन पर वफ़ादारी वीहे आ तमारो वचन के ? फ़रेदुन मोटो थईने आवे तोहावेर हलाह हपज राखवाना हता पण आवे आलेकेनी ते फ़रेदुन आववा आगमच नायाख जुवाक आववानो । बचारो फ़रेदुन आवतो डोहो थयो, पण पाधरे पावरो पाहाड़ पर जई पुगे तेटलातो हलाह राखो । माहो माहे लडहोतो दुहमन हाथ लडवानुं हुं बाकी राखहो ?

हुशंग चालो कोटी करीने पाछा भली जाओ ।

जुस भाई तारूं नाम जंघे छे पण तुं कोई जगीछे ने वली जंगली जेवो छे, तारी हात लड़ता नही पालवे । (कोटी करे छे ।

(अदरथी शोहर अने चीचारी)

फ़रहाद हाय, हाय, ए हुं थाऊं ? (थोड़ा गामडी आ गभराय्या आवे छे)

१ गामडी (रजतो) ओ दीकरारे मारो। दुनिया वरणनो दीकरो कचाइ गयो रे। (गभराटया जतो रहे छे)

२ गामडी अरे एम काहा मरे ? ए तेनो आववानो रह तो ।

३ गामडी तो ताहा समा जइने लडीएनी । (तओ जाय छे अने जुऊ आवे छे।

जुऊ अरे देवानाओ तमो हईआ शुकरो ? जुवाकी देनो आपणा गाम पर आवे लानें ?

जंघे मारो भालो, मारो भालो । (दोडी जायछे)

जुऊ अरे फरहाद ताटा घर पर वधो धाडछे। फरेदुन आ गाममा जन मेलो, ने तारी ओरत फरंग तेनी दाई हती, ने हईना लोके सारी पेठे पइसा आपाने एनी मातने नसाडेली ए सघु जुवाए कोगजाणे केम जाणेलु, ते सांमलीने शोवमा मोटु लशकर मोकलेलु। दोड यार दोड ।

फ़रहाद हे नरवोद दादार मदद करजे। मारु घर, मारी ओरत, जुलम, जुलम। (जातो रहे छे)

जुऊ (मोटे) अरे थुवरनी जाहाडी पाछल्यी जा । (मनश) हा ए रस्ते जा बचाके तुं पहेले पकडवानो, तारा घर पर मारो आविलो तो जुवाखना करता मारो मारो वधारे छे। वचाजी, फरेदुननी मां फटानक साथनी तारी छुपी खवर ते मने नही कही पण मे जुवाखने कही। तारो में विसवास नही मेलव्यो पण जुवाखनु ईनाम में मेलवीऊं। तारी माहतावी मुखरावी ओरत फरगनो

हाथ मेलव वापर मारू दिल घरकेछे ने तेनु दील मेलववानो मारग मारा हाथ मा छे। (जरसा थोड़ाक सीपाहीयो साथ आवे छे) ओहो दोसत जुऊ हुं तारीज राह जोतो हतो। आपणां लशकरे गाममा अचबुच नूरी पडी एटली कतल चलावी छे के मोहोल्लामा मुंदनाना ढगला पड्याछे।

जुऊ ऐसा फ़रेदुनना मानीता फरहादने मे हमनाज एवे रस्ते मोक लेलो के पकडावा वगर रहेशे नही। हवे तेनी माहाताव हेरनी ओरतज रही; ते घरमां न थी, पण तु शेर मरदना सुरा सी पाहोना हाथः थी ते काहा जवानी छे? देलावर सरदार मारु जो कहयु मानीतो फरहाद ने तेनी ओरत फरग थी जुदी पाडजो। फरहादना मेजा मेहेनशाह जोहाकना समा ऊपर वाघवा तेने मोकलाको दई फरगने आपणी छावनीमाज राखजो तो पछे हईआथी फरेदुननी शोधमां ते आपण ने कोई पण काममीज थई पडशे। (मनशे) मारां कामनो चपारे थाशे।

जरसा ? तारो सलाह घणी वाजवी छे। पण जुऊ आपणी छावनीनो चोकरी ओलोमे शीयामक काहा छे? तेने तें कैथे जोयो वारुं? केदीओ नेने हवाले करवाना छे।

जुऊ जारथी आपणे गाममां दाखल थया त्यारथी ते केथे मुलो पड़ेलो। ओलियापणयां न ओलियापणसा रखे दुश्मनो हाथ पकडायो होय? अगर नही तो कोई गामडी आओनी आगल पोते मोरा हुशियारनो जने लो होय तेम मारी मारी बोलोनी दफास मारतो हन, ने नहीं ते वोर्लो पोते समजतो हशे के नहो गामडीया समझता हशे। पणनामदार सददार मारी सलाह मुजिव फरगने छावनी मा राखवानुं मुलतानो। (अदरथी शोहोर अने चीचारी)

जरसा (मोटा पुकारथी) मारो—लडो—दोडो।
[वेहूजन दोडी आवेछे। फरग दोडती आवेछे। तेनी पाछल शीयामक फ़सडार्ता ने हांकतो आवेछे।]

फरंग ओ वापरे! कोई आवो रे। खोदायजु रे! अरे-रे!

शीयामक मगी रेहे ओ! मारी फरेसता पनाहावाद, पतेत पसेमानीवाद, पाचे वखतनी साते घेहेवाद, मेहेसारनावाद, आफरगांन एदुनवाद एदुना शाखवाद, गोशनो बोटावाद, वाफेलां ईडावाद, शरावना शीशा वाद, मलीदानी ने आट वाद, तू ऊभी रेहे।

फरंग ओहुं काहां जाऊं ? (दोड़ते फरेछे)

शीयामक मारा तांहा चाल। मुगी रेहे, जो वारूं। तारे पगेलागुं, ने तारे हाथ लागुं, ने तारे माथे लागु, ने तेरे गलेबी लागुं। जोनावीह। मारा सम।

फरंग नीकल, नीकल, नापाख हेवान निकल। (दोड़ती फरेछे)

शीयामक शु निकल ? जो मारी शीकल, जो माटी नकल, जो माटी अकल, जो मारी बगल, जो मारी तीखल, जो मारी घांघल, जो मारी आगल, जो मारी पाछल। (आगल पाँछल फरिने)

फरंग ओ फरहाद–रे पीयारा फ़रहाद, ओ मारा घणी।(दोड़ती फरेछे)

शीयामक अरे चमरे मारा दिलनी गोर (सुघारी ने) अरे घोएर चाल मारी साथ (तेने पकडे छे)

फरंग (चीस पाडीने) कोई आवोरे। (जघे दोड़ी आवेछे)

जंघे हुंछे ? अरे हेठानी हुछे ?

शीयामक शु हुंछे ? ए तो हुंछे(छाती ठोकीने)तु सानो छे, हुं के वो छेऊ।

जंघे हुं ?

शीयामक शु हुं ? तुं नही हुं ऐनो वरछुं।

जंघे हु-हु ? फरीथी बोल ? ए कोणनी मोहोरदार।

शीयामक केथो वेहेरो मुवेलो छे(मोटे) एरे एतो मारी मोहोरनी वरदा छे, पटपट कीधीमे मारी नाखश।

जंघे लाख—लाखनी जोऊं लाखनी।

शीयामक शु लाखनी ? अरे ए तो करोडोनी छे, अवज, माहापदम, अंती, मधीने पराधनी छे, छोड।

जंघे अरे छोकरे छोकरी (तेने आच ऊपर मालोलई घसे छे, जरसा सीपाहीओ साथ दोडी आवेछे)

[सीपाहीयो जंघेने पकड़वा जाय छे, जंघे ते ओ साथ लड़े छे अने एकाद बेने मारी नारवे छे। आ लड़ाई चाले छे तेवा मा फराहद, तुस, होसग अने बीजाओ जोहाकना सीपाहीओ साथ लड़ता आवे छे। मोटी लडाइ थायछे। जोहाकना सीपाही हारे छे]

फरहाद फरेदुनना नामपर नापाको नुं नाबुद करो।

फरंग (घबराट मां) ओ फरहाद मारा घणी ,।

[जोहाकनु वधारे लशकर आवी जंघे, हुशंग वगरेने मारी नारवेछे फरहाद, फरंग, तुस वगेरे केद पकड़ाय छे)

(मुकेलाओने) बाहादुरो तमोतो आखर छुटा। ओ दादार, हुं हमारो दाहाडोज बुरो आएवो।

फरंग ओ फरहाद आ हु आफत ! ओ हरदार हमारो हुं वाक ?

जरसा वरांतीयन देवो—तमारा जवुन अनीयायनी तपास इनसाफना ते जागता जहरा जोहाकनी दरबारसा काशे, अने तमो नापाको नां मेजा पादशाहा जुहाकना छावमा ऊपर सरपोनो खोराक कारो। [सिपाहीयो मदर ओरत ना एक टो लाने लावेछे, जुऊ छुपातो छुपातो आवेछे, मारा बाहादुरो आ चडाल अने कंगाल केदीओने एरेदवो दरफ सामे वालों पायतरत्त वखडी खाते एकदम मोकल-वानी तईयारी करो ।

जुऊ (पाछवा सताईने) पेली ओरतने आमणी साथे राखो ।

जरसा मारा फतहमद सवारो आ केदीओ माथी आ खुश चेहेर नारने वकात राखो। फरेदुननी नशल अने पटो पकडी आयवान् जे बीड् मे जहड फीयुछे तेनी शोधमां ए मेहेबूब ने मारी साथ लई जवान् मे मुकरर करूं छे। छेले आ वरेन मुलकने एकदम खाली वेरान करो।

[शामया मोटी आग लागे छे, जरसा, जुऊ, शीयामक वगेरे एक रस्ते जाय छे । केदीओने नेओनी कलापीट वचे बीजे रस्ते लई जाय छे ।

फरहाद (जता जता) फरग ! –रे फरग ! हवे आपणे काहा मलीहुं। तेने लाई जायछे

फरंग हाय, हाय, फरहाद—मारा धणी—खोदाने वार मने जलदी तेडी लेजे। जरा यारीगम जो एक छेली भेट—एक कोटी, एक चुमी, एक मुलाकातनी भी ओरतो रही गयो । पण खेर। हवेतो नहीव तारे । तावे छेऊं। आ पापी ओना हाथ मा खोदाय यने मेलीतो काई-हारुज थवानु होए। खोदाने हाजर-नाजर जाणी हु हो गद खा ऊछ के मारा पर गमे ते गुजरो, जोईए धरती फाटो, जोईए बादल तुटी पडो तोपण मारा खावीद तरफनी वफादारी तुटु नही, फरेदुन तरफ दगो रमुनहीं न मारी हेटानी फरानक तरफ नीमकहराम थाऊ नही । (सपला जायछे)

इस नाटक के पात्र हैं—

१. जोहाक
२. जरसा—तेनो एक सरदार
३. शीयामक—जरसानी छावणी नो चोधरी
४. फरहाद—वरेनमा एक गामनो पटेल
५. जघे—ते गामनो एक सीपाह
६. होशंग
७. तुस } गामडी याओ
८. छोकरो
९. जुऊ—एक गामडीनो एक रेहवामी
१०. फरेदुन—यावत् एक बालक
११. फरानक—फरेदुननी मा
१२. फरग—फरहादनो ओरत अने फरानकनी आगली दासी

२

सावित्री

लेखक : नानाभाई रुस्तम जी राणीना।
रचना-काल : १० दिसम्बर, सन १८८२।

अंक १लो, प्रवेश १लो।

[स्थल— मध्यहिन्दुस्थान माहेल् एक जंगल—चोगर्दम फेलाई रहेलां झाडोना वेलाथी विटलाएली एक पर्णकुटीर मांथी वृद्ध अने आंधलो राजा ध्युमतसेन पोताना सत्यवान नामना पुत्रनी खाये हाथ नाखी प्रवेश करेछे। पडखामा निर्मल पाणीना झरानु वेहतु एक विशाल सरोवर देखाय छे सरोवरमा कमल फूलो वच्चे केटलाक हंसो तरता जणाय छे।]

ध्यमतसेन तथा सत्यवान

बिलावल-गजल

आवो पीतम आवो पीतम—अथवा
नंदजी को लाला मोरे—र राहा।

सत्यवान— आणी कोर आवो पिता आणी कोरे आवो,
वर्षातो छे गयो वही ने आयो कारतक, आवो—आणी...
छाई घटा छे झाड झुड पास, सुगंध छे जासुसनी खास
चोगरदमथी फरीमे ले छे, मघनाखी तेनो लावो—आणी...
मंद मंद वायु वही वही, करी स्पर्श फूलोने, स्वास हरी,
द्वेष मावथी माळी साथे, करे छे मरसीनो दावो। आणी...

ध्युमतसेन— ठीक कहयछे पुत्र पियारा, सुगंध वहु पदराई छे,
फरेछे आख् ब्रह्माण्ड, जेथी घटा गती फेरवाई छे—ठीक...
मने उलट आवे छे घणी, तु मूक सूर्यना कीर्ण मणी,
खीले रुतना वाहारथी माहरी, गती जे नवली थाई छे। ठीक..
लीला वसती सृष्टि शृंगार, वैभव ने जे देखाडनार,
वधे माहरी आखो, ते तो दृष्टि विना झंखवाई छे। ठीक...
चातुरमासनी सर्दीथी जवरी, रगमा गयुछे लोही ठरी,
गरम करे ने सूर्य तेजथी, स्थिति वहु दुखदाई छे। ठीक...

सत्यवान— प्रिय पिताजी आम तमे छेक हाम हारशो नहीं ! भगा अन परा-
त्रिक नामना आंधला ऋषिओए ईश्वर प्रत्ये पोताना वधे हाथा
डरगामी अश्वनिकुमारनी उपासना करीने एवु वरदान माग्युं
हतु के हमारा नेत्र हमने प्राप्त थाय एम करो; तो धर्मराजे प्रसन्न
थई, तेमने तेमनां नेत्र आप्यां हता, तेज प्रमाणे तमने तमारा
नेत्र पांछा प्राप्त थाय एम हुं ईश्वर प्रार्थना करी जाची लईश ।

ध्युमतसेन—ते शूरवीरोज एवा अद्‌भुत बनावोने योग्य हता; पर हुं तेमना
सरदवो योग्य न थी । में मारी पडोसनी प्रजाने गले दासपणानी
साकलो घालवाना गर्व कीधो तेने लीधे परमेश्वरे मने नीचो पाडी
धूलमा अवस्या मारतो कीवोछे—में मारा प्रमाणीक प्रधाणोने
पदभ्रष्ट करी, खुनी अने लुच्चा लोमोने भरुशे रही, मारी राक
प्रजाने पीडी, तेमनी वेदनामा सुख मान्यु-गाडी घेली रमुजे ने
तुच्छ प्रकारनां दुर्व्यशनों मां गरक थई जवाथी धीमे धीमे वुद्धिर्वल
मद थतां साथे आखोए पण अपग थयो; ते वामां एकाएक शत्रु
प्रबल थई मारा मोहल पर चढी आव्या, एवी वख्ते वहादुर सत्यवान
तारुं शूरातन अने वीर्य प्रजामा प्रकाशावी, ते जगतने देखाडी
आप्यु छे केतुं केवा वीर पुरुषोनां कुलमांनी उत्पत्ति पाम्योछे ।
योग्य रीते क्रोधामयान थयला देवताओए, युद्धमा तारा पराक्रम
अने सद्‌गुण साक्षात जोईने सानंदाश्चर्य पामवाथी, मने जेके
दैवहीन राख्योछे, तो पण रणक्षेत्र मो तारा महा पराक्रमथी
शत्रुओ ए पोते छक थईने, तारा यशनो जे डंको वगाडयोछे ते काने
सामली, तेथी उत्पन्न थतो आनद भोगवी शकु एटलो भाग्यवान,
हजी तेज दयावान ईश्वरनी कृपाथी हूं रह्योछुं; मारे हे पुत्र
देवताओ तारा प्रत्ये प्रसन्न छे।

सत्यवान— देवताओ ऊपरज आपणे विश्वास राखवो जोईएछे, ने खात्री
थी मानुंछुं प्रिय पिताजी के ते ओज आपणु रक्षण करी आपणी
चढती कला पाछी करश ।

ध्यमतसेन— मारां राज्यमा करलां अघोर पापनो पश्चाताप करवा पछे कदाच
देवताओ ऊपर मारो विश्वास रहे, वे त्यारेज मारीथी मारा हाथ
जोडी तेमनी भक्ति करी शकाय । पण में संख्या वध पापकरी,
मारा जोवंतने जे डाघा लगाड्याछे, तेनो पूरतो पश्चाताप करी
शकुं एटलो मारा आयुष्यनो वखत हवे वाकी रह्यो होय एम मन

भासतु नथी। सदानो पापी तो छुज, न मने हमरगा परग एमज लागेछे के सृष्टिजन्य ईश्वरनी भक्ति करी शकु एवु मारुं अंतःकरण स्वच्छ नथी। अंतःकरण स्वच्छ होयतोज भक्ति कारगत; पणजे हैडाया घणाक पापी कर्मोना काला डाघा पडेला तेवा हैडामा परमेश्वर वसेज केम ? सत्ययुगमा लोको खरा भावथी ईश्वर भक्ति करता ने ते थी ईश्वर तेमना हैडामा वसतो पण तेवा जमानाना भोला मन शाधने तेमनो भक्ति भाव आ जमानाना लोको धरावी शकता न थी, तेवे समे खरो भक्ति भाव मजसरखा एक दुराचारीना मनमा ते कयम आवे! जेम एक गलीच ने रोगिष्ट कीडो मिट्ठा पाणीना वेहता झरामां एक वार प्रवेश पाम्यो के ते पाणीने झेरी ने नाशकारक करी नाखता वार लगाडतो नथी तेम अन्तःकरणमा एकवार पापबुद्धि प्रवेश पामी के जिदगानीना निर्मल झराने एकदम बगडी जतावार लगती नथी। मारा पुत्र तुं शुद्धात्मा छे, तारी श्रद्धापूर्वक प्रार्थना विश्वासनी पाख ऊपर स्वार थई ईश्वर द्वारे जाय तो कदाच तेथी रूठेला देवताओनो रोष शात थायने अंधकारना अधारामां जे हु गोता खाऊंछु तेमाथी तेमाथी मारो घूटक थायतो थाय अने मारा आगला दाहाडानी खुशी भरेली याद पडी मारा मननुं समाधान वले; माटे मोटे परोढीए सूर्यदेवना दर्शन थता, जगत आखुं झगमगता वस्त्रोना श्रृंगारथी दिपवा माडे ते वेला ए, मारा पुत्र तु देव प्रार्थना करज मारी श्रद्धा जे उठी गईछे ते पाछी पामवानी हुं आशा राखी शकतो नथी, केमके नदीनां पाणी तेना मूल आगलथी वेहता आगल वध्या जाय छे, पण ते पाछां मूल पणी जता नथी; पण हु एकान बेसी अतःकरण थीर राखी, तुं जे प्रार्थना करे ते ऊपर एकाग्रह चित्त राखी मारां मनने कईक रीते आशा भरयुं राखुछुं।

सत्यव्रत— ठीक छे, पिताजी हु तेम करीश, पण तेटलीवार तमे तमारू मन मगन राखो; आनदथी तमारु वदन खिलवाओ। अरे तमे खुशाल लागो छ खरायण जोई शकता नथी; पेली झाडोओमा तुलसीना छोड वच्चे थी सूर्य अस्त पामतो देखायछे त्या तमे थोडीवार बेसो तेटले हु आ पडोस माहेला झाडो ऊपर थी थोडाक वनफल तोडी आणु छु। (ते जाय छे)

ध्युमतसेन— खरेज। हुं आ दशाने पुगीश एवुं में भाग्येज धार्यु हतुं। हसे!!

३

जहाँगीरशाह और गौहर

(रचनाकाल १८७४ ई०)

बाब दूसरा—परदा तीसरा

गौहर का मकान

(एक ऐवान में सेज पलंग पर गौहर और जहाँगीरशाह साथ बैठे हैं। जहाँगीरशाह के चेहरे पर गमगीन का साया पड़ता है।)

गजल (भैरवी)

"दिल के देने से किसी राह मुझे इन्कार नहीं।"—इस राह पर

गौहर जानों बोसे के लिए हमसे कर तकरार नहीं, क्या हुआ जो एक दिया,
छीन के लेंगे हम तो आपके रुखसार नहीं—लेंगे फ़कत उनका मजा
लबे लालीन का चख लेने दे कुछ भी तो रस, जरा फिर के यूं हंस।
चाहे ज़नक़दा में तेरे हाय गया दिल यह फंस, हुआ तंग हाल मेरा।
शानो शोखी से तेरे होश भी उड़ जाते हैं, आँखें झपकाती है,
नरगिसे मख़मूर की अभवाज जी वहाती है, होश में आओ भला।
क़हर अदायें है तेरी और गजब है अशवाए अय संगदिल होशरुबा
करशमे में है सितम, फ़ितने से नख़रा भरा, नाज तो अल्ला अल्ला
यही अरमान दिल में रखके मैं मर जाऊंगी, जी से गुज़र जाऊंगी
क़र्श पे मौत के राहत न कभी पाऊंगी; लुत्फ़ो करम कर तू ज़रा।
(जहाँगीरशाह का बाजू फेरकर अंदेशा करता है)

गजल (सोरठ)

"लागी है लगन तुमसे छुड़ा कौन सकेगा।" इस राह पर

जहाँगीरशाह बदमस्ती के मैं देव को अटकाऊं किस तरह
नाजुकतरी को ऐसी में फसाऊं किस तरह
इसके जमालो अशवे ने माइल किया मुझे
साहिब का दस्त अपना अब बढ़ाऊं किस तरह।
आहुए दिल है दामें मोहब्बत में मुबतिला,

सर इश्क के फंदे से फिर छुडाऊ किस तरह ?
पयमान मेरा मुझसे तो तोडा न जायगा
अहदशिकन आलम मे कहलाऊ किस तरह ।
आतिशदाने-सीने मे भड़के है शोले शौक़,
आबे सबर से उसको अब बुझाऊं किस तरह ?
दिल पर मेरे गुबार है यज़दान तू बचा,
अस्पे हविस को क़बज़े मे मैं लाऊ किस तरह ॥
कौलो कसम से मेरे नहीं बाज आऊगा
निकला सखुन जबां से फिराऊ किस तरह ॥
(गौहर उसे गमगीन देख समझाती है)

ठुमरी (देस)

'फ़ैज रसिया प्रीत कैसी कीनो रे"—इस राह पर

गौहर नयन लगिया प्रान छीन लीनो रे
भाये दिन न रैन मन सुख न चैन
भयो वदन खाक—कछु सोहत मान—नयन लगियां
आसू टपकत है—आग जब भड़कत
रोए रही सारी रात वही
रस रंग को मोय बात न भावे
काहे अखिया मोड़त–मोय करत सैन–नयन लगियां

ठुमरी (पीलु)

"ना लिखो सैया पतिया आवन की"—इस राह पर

जहांगीरशाह ना कहु सजनी, वतियां मनकी
वतियां करत–मोरा जिअरा जलत है ।
जादुआ डारे मोय अखिया मोहन की—ना कहुं सजनी ।

जिला (झिझोरी)

"बसी बाजी सो मोरा मन बस गयो रे"—इस राह पर

गौहर न चैना मारी सो मोरी जान छीन लीनी रे
बसी बसी सूरत तोरी मन मेरे–न चैना मारी सौं
जोरा जोरी, लूटा मन हमरा
बावरी बहुत तूने मोहे कीनी रे
बसी बसी सूरत तोरी मन मेरे–न चैना मारी सौं ।

(जहाँगीरशाह अदेशा करता हुआ एक बाजू जा खड़ा होता है गौहर सर नीचा कर सेज पर गिरती है।)

लावनी

"फस्ल मजनू की तय्यारी।" इस राह पर

जहाँगीरशाह सख्त मुशकिल है बीच आई
जिन पास मैंने कसम खाई।
इस मोहब्बत ने मुझे है घेरा।
फिरा सर पै इश्क का फेरा।
अगर तोड़ू वचन मैं मेरा
एक पल भी न हो यहाँ बसेरा
शैदा हुआ है दिल मेरा, हुआ शिकस्ता वक्त
पेच में गया हूँ लपटाया आफत है गिरी सख्त
होगी दुनिया में रुसवाई, जिन पास मैंने कसम खाई॥
दिल में हमने है यही ठाना।
शिकस्त हर्गिज से नहीं खाना।
फ़क़त मोहब्बत का करके बहाना।
इसको शाहे-जीन पास ले जाना।
दिल मेरा गर टूटेगा — टूटने दो एक बार।
तावे मैं मे तो न हूगा — इस ख़ाहिश के जीनहार
न करूं इश्क़ से आशनाई, सख्त मुश्किल है बीच आई॥

(एक तरफ़ खड़ा हो शाहे जीन की अंगूठी घिसता हुआ बोलता है)

गत—(काफ़ी)

जहाँगीरशाह तोरी नारी लाया कुंवारी
संग शाहके तू आ पुखराज परी।
लाया मोहन पियारी
मोरा मन फेर लिया री,
पूरा वचन किया री
संग शाह के तू आ पुखराज परी॥

(शाहेजीन, पुखराज परी, देव और जिन उतर आते हैं)

"Lucy Kucel"—इस राह पर

सब जीओ जीओ आदम—जीओ अब शेरमन।
वफ़ा किया पयेमा तूने—बजा लाया वचन।

शाहेजीन हवस पै काबू पाया तू अटकाया अपना दस्त।
मुराद का है आरास्ता किया—तेरे लिए तख्त।

सब जिओ जिओ आदम–जिओ अय शेरमन ।
वफ़ा किया पयेमां तूने—बजा लाया वचन ॥

शाहेजीन राह ले अपने मुलक की तू जल्द अय नेक अजाम ।
ख़ूबसूरत एक मूरत का वहाँ तू पायगा इनाम,

सब जिओ, जिओ आदम–जिओ अय शेरमन !
वफ़ा किया पयमाँ तूने—बजा लाया वचन।

शाहेजीन शाहेजीन हुआ है अब से तेरा खैरख्वाह,
पाक दामनी यह तेरी देख, जहाँगीरशाह॥

सब जिओ जिओ आदम—जिओ अय शेरमन !
वफ़ा किया पयेमां तूने—बजा लाया वचन॥

(शाहेजीन इशारा करता है कि फ़िल्फ़ौर वही सेज पर सोई हुई गौहर ग़ायब होती है। जिन, देव, शाहेजीन और पुखराज परी गायब होते है।)

नोट : जहाँगीरशाह गुल्जारशहर का निवासी, गौहर जहाँगीरशाह की प्रेमिका, शाहेजीन जिनों का बादशाह ।

४

बेनज़ीर बदरेमुनीर

लेखक : रौनक़

प्रकाशक : विक्टोरिया ग्रुफ ।

कथावस्तु :

पहला अंक—माहरुख नाम की परी पूरब के शहज़ादे बेनज़ीर को उड़ा कर ले जाती है। अपने प्रेम को प्रकट करती है परन्तु शहज़ादा इन्कार करता है। परी उसे खुश रखने के लिए एक उड़न खटोला देती है। बेनज़ीर के माँ-बाप उसके विरह में जोगी होकर घर से निकल जाते हैं।

दूसरा अंक—सरनदीप की राजकुमारी बद्रेमुनीर अपने बाग में सैर करती हुई दिखाई देती है। बेनज़ीर उड़नखटोले पर चढ़ कर उधर से निकलता है और ब० मु० को देखकर आसक्त हो जाता है। यही दशा ब० मु० की भी होती है। माहरुख के पास यह समाचार एक देव के द्वारा पहुँचता है। इस पर वह बे० न० को कुएँ में कैद कर देती है।

ब० मु० अपने प्रेमी के अभाव में विलाप करती है और अपनी विशिष्ट सहेली नजमुन्निसा को उसे ढूँढने भेजती है। जोगन के वेष में नजमुन्निसा बे०न० की खोज में निकलती है।

तीसरा अंक—ब० मु० के साथ बे० न० के माँ-बाप की भेंट होती है। वे सब बे० न० की खोज में निकलते हैं।

एक जंगल में नजमुन्निसा और जीन के बादशाह फ़ीरोज़शाह का मिलन होता है। उसकी सहायता से बे० न० का छुटकारा होता है। फीरोज ब० मु० और बे० न० के माँ-बाप को बुलवा के मँगाता है और दोनों का विवाह करा देता है। माहरुख परी को माफ़ी मिलती है। आगे किसी पर आसक्त न होने की आगाही होती है।

परदा पहला

स्थान बाग

(बेनज़ीर का एक झूले पर बैठे दिखाई देना—ख़वासों का फूल के तुरे, पान की गिलौरियाँ बे० को देना)।

जुल्ला जंगला
"शोमे शुशु शोमीत"

साकी	कर कर परवर का शुक्र मादाम
गुलाम	सर पर रखकर ताज दिल आराम–कर०
वगैरह	हर घर सरासर ए दिलवर
	तेरे पैदा होने की धूम तमाम–सर०
	हशमत दौलत, अशरत सब
	शाहज़ादे हासिल है तुझे ला कलाम—सर०
१ साकी	लो बीड़े
२ ,,	लो गुलदस्ते जनाब
साकी	दम ब दम मयका पीजिये जाम—सर०
रुब	क़ायम, दायम, हो बेनज़ीर
	यह ही दुआ हक़ से कीजे तमाम—सर०

कलीवान–ठुमरी ।
"या लगरवा चतर सुगर"

बेनज़ीर	भर जोवन में मनमोहन सी, आँखों में आती है नीद रे—भर०
	मतवाली आँखें कर कर अपनी, गमज़े दिखाती है नींद रे
	नाज़ो अदा से दिल का मेरे, अब तो, लुभाती है नींद रे—भर०
	बादानोशी करके उडावो, तुम तो भले, मैं सोता हू
	जोश से अपने मदहोश मुझको चारों बनाती है नींद रे—भर०
	(बे० का बिसतरे इस्तेराहत पर जाना)

परज—कालिगड़ा
"तन नुम बाँनुरी बाजे"

सब	सब अब शादरे होके मिलके करेंगे बादानोशी,
	क्यू न भये धूमधाम, धाम धूमजी
	गट गट गट करो नोश तुम, नोश तुम, शादरे होके—सब
	(गुलामों का साक़ी को छोड़ना)
दोनों गुलाम	छैल छबीली छल छल छलके
१ साकी	परे खड़े हो चलके रे
१ गुलाम	दिल से सदके
२ ,,	जान से बलके

१ साकी दूर दूर
२ „ मुवे दूर
दोनों गुलाम हम दूर हुवे, शादरे होके—

(नव जवानो का वेसुद हो कर गिरना और माहरुख परी का आना)

वेज

माहरुख
किया किसने है ऐसा तामीर बाग
हुआ इश्क से जिसके लाला को दाग
हमे बाहारो से गुल लेहै लेहै
चमन सारे शादाब और है है है है,
चमन से फिरा बाग गुल मे चमन
कही नरगिसो गुल, कही या समन
चमेली कही और कही मोतिया,
कहो रायबेल और कही मोगरा ।

(बे० को देखकर)

मगर कौन सोया है वो गुलबदन
मोअत्तर है खुशबू से जिसके चमन।
यहाँ सब को तो आलमे ख्वाब है
मगर जागता एक माहताब है
है आशिक पै खुरशीदरुका ही मोह
जो करता है इसके तरफ ही निगाह ।

(माहरुख का अंदर जाकर बे० के छपरखट को उठाना)

भैरव ठुमरी

"अरे कहाँ पाऊँ कहाँ पाऊँ यार"
अरे मै हूँ सदके हूँ सदके यार—अरे०
मन को मै वारू के जी को निसारू
अब तोहे पर वारो वार—अरे०.
होंठ तिहारे मीठे मीठे
चुस्त है होके निसार—अरे०
परस्ताँ मे तोहे ले जाके प्यारे
करुगी दिन रैन प्यार—अरे०

(मय छपरखट के माहरुख का बे० को लेकर हवा होना)

बाब पहला—परदा दूसरा

स्थान—दीवानखाना

(दाखिल होना शहरयार का खवासों से हाल पूछते हुए)

परज—कालिगड़ा

"अरे सामल मानवी वेगाना"

शहरयार गुम हुए कैसे वो मेरे प्यारे, तुम निगहवान थे उसके सारे
खोके लख्ते जिगर को हमारे, हमको वेमौत ही तुमने मारे

खवास क्या कहे तुमसे शाहे मोअज्जम, कोठे में सोये थे जानेआलम
(दाखल मादर
ले गया कोई उन्हे, और सब हम, करते २ यहाँ आये मातम

मादर कौन जाता रहा क्या खबर है, खैर से तो हमारा पिसर है
क्या पिसर है वह नूरे वसर है, जिंदगी के चमन का समर है।

शहरयार अे मलका ! नसीब अपना फूटा, गुम हुआ अपने गुलशन का बूटा
परियों ने आनकर उसको लूटा, कोह गम का यह अपने पै टूटा

मां मर गई तेरी मा हाय वेटा, तू सिधारा कहा हाय वेटा।
वस गई मेरी जा हाय वेटा, ओ मेरे नौजवा हाय वेटा॥

(वेताव हो जमीन पर गिरना मा का)

पीलु—ठुमरी

"कौन जजीर मे आन पड़ी रे"

शहरयार मुझे मार वेमौत अे मेरे प्यारे
परियो से तुम अैश करने सिधारे—मुझे०
मेरी आँखों का नूर था अय वेटा।
मैं जीता था करके तुम्हारे नजारे—मुझे०
मेरे औजे-इक़बाल के मेहरे तावाँ
जमाने मे अंधेरे है विन तुम्हारे—मुझे०

"सात वरसनी हूं मै राडी"

मां आह मेरी गोद का पाला कहा है, कित है ढूंढू किधर जाके
वेनजीर मेरे प्यार रे ! हाल तू मा का देख जरा आके—आह०
लाओ उसे लेके आवो, विन लिए जिसे मैं नही जाने की
मर जाऊ पीट के सर मैं, उसको अगर जो मै नही पाने की—आह०
वनके दीवानी जाऊं ढूढने को अव उस मेरे प्यारे को,
आई, आई ओ वेटा ! मादर दुखिया तरे नजारे को। आह०

(जाना मां का दीवानों की तरह और घबराये तसमीने रवाना होना शहरयार का)

बाब पहला—परदा तीसरा

स्थान महल

(बेनज़ीर का आराम फ़रमाना और माहरुख का जगाना)

पीलु—कहरवा

'योवन के नैना रसीले"

माहरुख मतवाले तोरे नैना रे करें बेचैना—मतवाले
हरवासा गरवा तोहे लगाए राखूंगी दिन रैना—करे बेचैना
भोर भई है सूरज मुख उठ, अबेरे जग में अब है ना
(बेदार होना बेनज़ीर का)

वरदृस—गजल

"यार का गुलज़ार था"

बेनज़ीर जागता हूँ मैं के है आलम भला ये ख्वाब का
जिस जगह सोया था मैं, था फ़र्श वां महताब का—जागता०
गैर का है घर, नहीं हरगिज़ है मेरा यह मका
एक बगीचा मेरे आगे था गुले शादाब का—जागता०
(माहरुख को देखकर)
कौन यह बैठा है सूरत तो है औरत सी मगर,
है परिन्दों से तो पर, पर रंग है उन्नाब का
या इलाही खैर करना, शायद है कोई बला
जुज़ तेरे किस्से कहूँ हाल, अब दिलेबेताब का॥ जागता०

अशेयात

माहरुख अरे कौन है तू ? तेरा नाम क्या ?
मेरे घर मे क्यू आया है, काम क्या ?
मैं बिन ब्याही लड़की तू है नौजवान
मुझे घूरता है क्यू ओ बदगुमान ?
बया कर तू है क्या तेरी आरजू ?
क्यों आँखें लड़ाता है मेरे से तू ?
मैं वो हू कि माहरुख परी जिसका नाम
तेरे से हैं लाखो मेरे घर गुलाम।

बेनज़ीर अरी बस परे हो यू नख़रे न कर
हुई तेरे ग़मज़ो से मुझको ख़बर
कि तू है उठा लाई मुझको यहा
ज़रा दिल पै रख हाथ है तू कहां ?
गो मेरे से हैं लाखों तेरे गुलाम
मगर शायद हों वो हो गये सब तमाम।
जो मेरे से अब काम तुझको पड़ा
अरी चुलबुली चल, न आखें लडा।

(बेनज़ीर का गज़बनाक होना और माहरुख का मनाना)

माहरुख ये मुहज़ोरियां ! वाह सनम ! वाह वाह !!
हो रश्के मसीहा, और पै दम, वाह ! वाह !
भला खैर, हमने ही ले आये आव
हमारे चमन की हवा चलके खाव।

जुल्ला—गज़ल

"मेरी जान जाती है ।"

ग़नीमत समझ तू ये सोहबत अय जानी
कि है चार दिन की फ़कत ज़िन्दगनी—गनीमत०
करो ऐश हसरत रहे तो न बाकी
कि अल्लाह है बाक़ी बता कुल्ले फ़ानी—ग़नीमत०
न लाओ वतन का ख्याल आप दिल मे
मयस्सर है या भी तुम्हे हुक्मरानी। गनीमत०
अगर तवा को सैर की होवे आदत
तो घोडा मैं एक तुमको दुगी अय जानी। गनीमत०
कहू क्या मैं उस अस्प के तुम से औसाफ़
कि करता हवा से है वह लंतरानी। ग़नीमत०
मगर ये भी कहिए क्या साहब का है नाम
और है क्या नसब बोलो राज़े निहानी।। गनीमत०

कल्याण

राजा हूँ मैं कौम का"

बेनज़ीर शाहज़ादा हूँ पूरब का, ऐश से नित है काम
परवरदा हूं नाज़ का, बेनज़ीर है नाम ।
विशो अक़ारब छुट गये, कौन हो दिल बेचैन

तनहा कब तक बैठ के रोता रहूं दिन रैन।।

मज़कूर राह

माहरुख़	राज़ी रक्खूंगी मैं तुम्हें हरदम मेरी जान
आंखों से लाऊँगी बजा तेरा नित फरमान
रात रहो मेरे पास तुम दिन को करना सैर
और को देना दिल नहीं जान की चाहो जो खैर।

बेनज़ीर	चाहने वाली तू मेरी है अय गुले गुलज़ार
छोड़ के तुझको और पर हरगिज़ हूं न निसार।
दे वो घोड़ा तू मुझे मानू तेरा अहसान
है हवाई सैर का दिल में मेरे अरमान।

(माहरुख़ का बेनज़ीर को अपने साथ ले जाना उल्फ़त और प्यार सहित)

इन्दर सभा उर्फ़ गुलफ़ामी सब्ज़परी

प्रथम बाब का पहला—पर्दा : (आराम फ़रमाये हुवे नज़र आना शाहज़ादे गुलफ़ाम का बाय पर, आना सब्ज़परी का बरा सैर आदमज़ादों के मुल्क में और आशिक होना शाहज़ादे गुलफ़ाम पर)

सब्ज़परी मोरे बाके सावरीया ओ सैंया मोरा
तूने मेरी मन हरलीनो—मोरे०
चाद सा मुखड़ा, मृग जैसी अखियां
लागी मोरी नज़रिया ओ सैंया मोरा
बलि बलि जाऊं, उठवा मगवाऊ
जानूं तोरी क़दरिया, ओ सैया मोरा—मोरे०

(सब्ज़परी का वास्ते निशान के अपना छल्ला निकाल कर गुलफाम को पहनाना)

कल्यान—ठुमरी

छल्ला हमारा यह याद रखना
ये याद रखना, ये पास रखना—छल्ला०
चुन चुन कलियाँ मैं सेज बिछाऊ
ओ सोनेवाले, सो जाने वाले, मजा लेने वाले
ये याद रखना. . . छल्ला०

(रवाना होना सब्ज़परी का गुलफाम के हातों को चूम कर)

दूसरा पर्दा

(इन्दर का सैर के लिए आना)

इंदर राजा हूं. . . . .
. . . . .नही क़रार
(लाल और काले देव का आना)
. . . . . मुजरा करे वहाँ।[1]

१. ये समस्त पंक्तियां वही हैं जो मूल अमानत की इन्दर सभा में हैं। पाठक उसे पूरा करें।

(इन्दर का प्रस्थान)

तीसरा पर्दा : दरबार

(चोबदारों व देव दरबारियों का हाथ जोड़ खड़े रहना सबका इन्दर की आमद गाना)

सब सभा में ....

.....फ़िलहाल महशर की आमद आमद है ।[१]

(इन्दर का प्रवेश; तख्त पर रौनक़ अफ़रोज़ होना सबका बदस्तूर मामूल के पुखराज परी की आमद, गाना)

सब .. महफ़िलें ..

करने उस वक्त में अब राजपरी आती है ।[१]

(आना पुखराज परी का सुगेदो रक्स करते हुए)

पुखराज परी .. गाती हूँ मैं....

... मामूर नये हुस्न से क्या जाम है मेरा ..[१]

(इन्दर का पुखराज परी को नज़दीक बुलाकर शाबाशी देना)

राजा इन्दर देस में .....

ख़ज़ाने की कब हू मैं मोहताज[१]

ठुमरी

रुत आई बसंत अजब बहार, खिले ज़र्द फूल बरों के डार
चिटकी कुसुबा फूले लागी सरसों, फेंकत चलत यू के बहार—रुत०
हरके दवारे माली का छोड़ा, गरवा डारत गेंदन के हार।[१]

परज कालिंगड़ा–होरी

पा लागू कर जोरी ....

........गोरी गोरी ॥[१]

(पुखराज परी का रक्स करके तख्त के नज़दीक जाकर आदाब बजा लाना; राजा इंदर का खुश हो जाना)

ठुमरी

इंदर खूब रिझाया......

......नीलम की परी बारी ।[१]

१. मूल के अनुसार ।

गजल

सब   सभा मे आमदे . . . .
. . . . उनमे भरी है ।[१]
(आना नीलम परी का मुरोदी रक्स करते)

पोलू—गजल

नीलम   हूरो के होश . . . .
. . . . जौहरियों की दुकान पर ॥[१]

पीलू

मैं चेरी सरकार की, और तुम राजों के राज
गाना मुझ माशूक का सुनो गौर मे आज।
सुनो ग़ौर से आज मेरा राजा जी गाना
नाच की छलबल देखकर देखो बतलाना।[१]

काफ़ी—होरी

कान्हा को समुझावत न कोई
. . . . . . वदन माटी मे मिलोई ॥[१]
(नी० परी का दस्तवस्ता खड़ा रहना; इन्दर का उसके नाच गाने पर मरहवा कहना)

इंदर   दिखा चुकी. . . .
. . . . लाल परी का काम[१]

देस—गजल

सब   समा मे लाल परी. . .
पोशाक मारी आती है ।[१]
(सभा में लाल परी का आना)

पीलु—गजल

ला० परी   इंसा का. . . . . . .
माहे तमाम है ।१

पीलु—ठुमरी

बैठी थी मे काफ मे. . . .
बाद दिखाया ॥१

---

१. मूल के अनुसार।

(इन्दर का प्रस्थान)

तीसरा पर्दा : दरबार

(चोबदारों व देव दरबारियों का हाथ जोड़ खड़े रहना सबका इन्दर की आमद गाना)

सब सभा में ....

.....फिनिए महाराज की आमद आमद है।[1]

(इन्दर का प्रवेश, तख्त पर रौनक़ अफ़रोज़ होना सबका बदस्तूर मामूल के पुखराज परी की आमद, गाना)

सब . महफ़िले...

करने उस बज्म में अब राजपरी आती है।[1]

(आना पुखराज परी का सुरीली रक़्स करते हुए)

पुखराज परी . . गाती हूँ मैं....

... मामूर नये हुस्न से क्या जाम है मेरा...[1]

(इन्दर का पुखराज परी को नज़दीक बुलाकर शाबाशी देना)

राजा इन्दर देस में .....

ख़ज़ाने की कब हू मैं मोहताज[1]

ठुमरी

रुत आई बसंत अजब बहार, खिले ज़र्द फूल बरों के डार
चिटकी कुसुबा फूले लागी सरसों, फेंकत चलत यू के बहार—रुत०
हरके दवारे माली का छोडा, गरवा डारत गेंदन के हार।[1]

परज कलिंगड़ा–होरी

पा लागू कर जोरी ....

.........गोरी गोरी ॥[1]

(पुखराज परी का रक़्स करके तख़्त के नज़दीक जाकर आदाब बजा लाना; राजा इंदर का खुश हो जाना)

ठुमरी

इंदर ख़ूब रिझाया......

......नीलम की परी वारी।[1]

---

१. मूल के अनुसार।

गजल

सब सभा में आमदे. . . .   .

. . . . उसमें भरी है ।[1]

(आना नीलम परी का सुरोदी रक्स करते)

पीलू—गजल

नीलम हूरों के होश. . . . .

. . . . जौहरियों की दुकान पर ॥[1]

पीलू

मैं चेरी सरकार की, और तुम राजों के राज

गाना मुझ माशूक का सुनो गौर से आज।

सुनो गौर से आज मेरा राजा जी गाना

नाच की छलबल देखकर देखो बतलाना।[1]

काफ़ी—होरी

कान्हा को समुझावत न कोई

. . . . . . बदन माटी में मिलोई ॥[1]

(नी० परी का दस्तबस्ता खड़ा रहना, इन्दर का उसके नाच गाने पर मरहबा कहना)

इंदर दिखा चुकी. . . . .

. . . . लाल परी का काम [1]

देस—गजल

सब सभा में लाल परी . .

पोशाक भारी आती है ।[1]

(सभा में लाल परी का आना)

पीलु—गजल

ला० परी इंसा का. . . . . . .

माहे तमाम है ।१

पीलु—ठुमरी

बैठी थी मैं काफ में. . . . . .

बाद दिखाया ॥१

१. मूल के अनुसार।

देस—ठुमरी

मोरे जोबन मे है लाल जड़े. बहोत क्यों ओ महाराज !

काहू मूगा काहू चुनी कहत है, परखन वारो पर गाज पड़े।१

काफी—होरी

लाज रखले स्याम हमारी . . . .

कहेंगे लोग मतवारी ।

(धुन होरी कुसुन राजा इन्दर का खुशी से सराहना) १

पीलु—ठुमरी

इंदर काटी रात. . . . .

सब्ज परी का ध्यान ।

बिहाग—गजल ।

सब आती नये अदाज . . . . .

सब्ज़े को चरी है ।१

(सब्ज परी का आना नाजो अदाज मे)

सब्जपरी गजल

मयूर हू . . . . नसीमे सहरी हूँ ।।१

(सब्ज परी के गाने की धुन से इन्दर का सोना)

पीलू

राजाजी . . . . .क्या काम१

(जाना काले देव को इशारे से बुलाना)

परदा चौथा

रास्ता

(काले देव के साथ सब्ज परी का आना)

सब्जपरी सुन रे काले देव रे . . . तोरी वे तकरार ।।१

कालदेव घर मे राजा के . . . . लाऊ अभी उठा ।।१

स०प० जा तू मगल दीप से . . . . उनको पेछान ।।१

(आदाब बजा कर कालेदेव का जाना और शाहजादे गुलफाम को छपरखट के साथ सोता हुआ ले आना)

का०देव० लाया. . . . . . . — . . . . स० प० मेहछान ।१

(का० दे० का जाना)

---

१. मूल के अनुसार ।

स०प० ये ही शहज़ादा. . . . . नींद से हो होशियार१

(शहज़ादे को जगाकर छुप जाना।' ग़ैर जगह पाकर शहज़ादे का हैरत में आना)

भैरवी—ग़ज़ल

गुलफ़ाम घर से यहाँ कौन. . . किस्मत ने सताया मुझको।१

(और भी घबराना)

बिहाग–ठुमरी

मुझे कौन घर से. . . उस्ताद से कहियो हाँ ॥१

(स० प० का बाहर आना; गु० का और घबराना)

खम्माच

स०प० देखो तुम मेरी तरफ़ घर का ले मत नाम

. . . . .हैगा कहाँ मुकाम ॥१

पीलू

गु० खिलवत मे मैं. . . . . . . निकला है ये क्या?१

स०प० कौम की दूगी में परी . . . . . —है मेरा काम।१

गु० जल्मी ये. . . . . हुआ है तेरे पास ?१

स०प० तुझ पर. . . . . .मेज के देव सियाह १

(देव का नाम सुनकर गु० का घबराना; स०प० का मनाना)

भैरवी–मसनवी

स०प० सरपै आँखों पै. . . . . आवाद करूं ।

गु० वस्ल की तेरी . . . . .फंसाया तूने।१

काफ़ी-पसनवी

सप०प० जिन्दगी का है . . . . परी का कभी होगा।१

गु० घर के छुटने का . . . बजा लाऊ मैं॥१

पीलू

स०प० ऐसी बातों का. . . झुकायेगा तुझे॥१

गु० मैं न मानूगा . . . . .वहाँ आती है ।१

स०प० बात हरगिज़. . . . .कुरबान करूं ॥१

गु० दिल हर एक. . . .मर जाऊगा १

---

१. मूल के अनुसार।

स०प० मुफत की यार. . . . दिखा लाऊ मैं।२

गु० किस तरह चलन मे. . . नोच के लादे मुझको ।१

स०प० वहकी वातों. . . .उडावो आनी ॥१

(स० प० का एक ताली वजाने से महल का जगल हो जाना और एक हवाई तख्त का नजर आना।

थाम लो पाया. . . . न जाना आनी ॥१

(स०प० का तख्ते पर बठना, गु० का तख्ता पर पकड़कर लटकना, तख्ते का आसमान पर उडना).

६

परियों की हवाई मजलिस उर्फ़ कमरुज्जमां माहलका

लेखक : मोहम्मद मिर्जा 'मनजूर'

पात्र :—

जहांदारशाह	मुल्के हलक का बादशाह
शाहेजीन	काफ़ का बादशाह
कमरुज्जमा	जहांदारशाह का बेटा
अलफ़ता	जहांदारशाह का वजीर
आबेद	एक राहबर
फ़ज़लेदीन	जहाँदारशाह के दरबार का नजूमी
माहलका	शाहेजीन की दुख्तर
मुकाम	तातार और काफ

बाब पहला—परदा पहला

क़मरुज्जमा का सोते हुए अपने दीवानखाने में नजर आना, नौकर का उसे जगाना; शाहजादे का उस पर गुस्सा होकर तलवार से मारने की कोशिश करना मगर रुक जाना; नौकर का वजीर के आने की खबर देना; *शाहजादे का वजीर को मारने की* कोशिश पर वजीर का उसे मनाना; अपने ख्वाब का बयान वजीर से करना; वजीर का उस परी को ढूढ लाने का वायदा करके *बाहर जाना और शाहजादे का भी वहाँ से रवाना हो जाना।*

दूसरा परदा

शाह का तख्त पर बैठे दिखाई देना और वेश्याओं का उसकी *प्रशंसा में झझोटी राग में एक गजल गाना; एकदम शहजादे की* बेकरारी का स्वर सुनाई देना और उसकी खोज में अधिकारियों का पर्दे के अंदर जाना; कमरुज्जमा का प्रवेश और वियोग भरी *अबीयात कहना; वजीर का शाह से ज्योतिषी को बुलवाकर* उस परी का नाम और मुक़ाम मालूम करने की प्रार्थना करना;

ज्योतिषी का आना और कहना कि कोह क़ाफ में दिलकुशा बाग में रहने वाली माहरुख परी है और शाहज़ादा उसी के प्रेम में व्याकुल है; पर वहा पहुचना बडा मुश्किल है, बीच मे मैदान फिर आग की वर्षा, बाद मे चौड़ा दरिया, फिर लोहे के काटे और चौथे में राखस का गम, फिर जीन का मैदान गरजे कि सब कुछ जादुई प्रभाव से युक्त है; यह सब सुनकर शाहज़ादा और अधिक घबराता है फिर अपनी व्याकुलता प्रकट करता है। जहादारशाह बेटे को दिलासा देने का प्रयत्न करता है। प्रतिज्ञा करता है कि परी को ढुढवा कर उसे मिलवायेगा। फिर अपने नौकरों को शाहज़ादा की रक्षा करने को आज्ञा देता है।

तीसरा परदा

दीवानखाने मे शाहज़ादा का वियोगवर्णन; शाहज़ादा वियोग में बाहर निकल जाता है और नौकर उसके पीछे भागते है।

चौथा परदा—दालान में शाह का अपने लड़के की खोज करते हुए आना।

पाचवा परदा—जंगल में कमरुज्ज़मा का वियोग गीत गाना; एक पेड़ में से आश्चर्यमय स्वर के साथ आबेद का निकलना शाहज़ादे से कहना कि ईश्वर ने दया करके मुझे तेरी मदद को भेजा है। यह कहकर उसे एक ऐसा असा (डंडा) देना जिसके छूते ही सारा जादू, राखस, जिन और देव सब टल जायेंगे और पहाड़ मैदान बन जायगा। यह देकर वह फिर पेड़ मे समा जाता है।

बाब दूसरा—परदा पहला

परियो की हवाई मजलिस; परियें शहज़ादी के लिए कालिंगड़ा मे गजल गातीहै; शहज़ादी हवा में से प्रकट होती हे और गाती है—

क्यो बुलाती हो जिगर है मेरा पारा पारा
ख्वाब में देखा हे एक माहरु प्यारा प्यारा।
शाहज़ादा था वह गुलफ़ाम गुलंदाम हसीन
जिसकी ज़ुल्फो का फसा फिरता है मारा मारा

आदमी जाद मेरा लूट गया सब्रोक़रार
जिन्दगी करने का अब क्या है महारा यारा ।।
चितवन मे वह शरारत थी कि अल्लाह अल्लाह
फ़ीमंने दिल को जलाया जो नज़ारा मारा ।।

इस पर दाया उसे कहती है कि शाहज़ादा सारे जादू को दूर कर यहाँ आ गया है और समझले कि तेरी शादी उससे हो गई।

वाव तीसरा—परदा पहला

दीवानख़ाने मे माहलका का सहेलियों सहित शाहज़ादे के लिए वियोग प्रदर्शन

अब उसके सिवा जीना भी मजूर नही है
वो दूर है तो मौत यहा दूर नही है। ......

हम तडपें तेरी चाह मे आराम तुझे हो
उल्फत का सितमगर यह तो दस्तूर नही है।

इस पर दाया उसे तसल्ली देती है।

परदा दूसरा

तिलस्मानी किला, एक देव द्वारा किले की रक्षा; शाहज़ादा आता है और देव कहता है कि तुझे अभी खाजाउंगा। शाहज़ादा असा देव को दिखाता है और देव फ़िरार हो जाता है। फिर वह असा किले को दिखाता है किला भी टूट कर हवा में उड जाता है; परिस्तान दिखाई देता है और एक देव उसकी रक्षा करता है मगर असा को देख कर वह भी पीछे हट जाता है; वहाँ तक पहुंचने पर देव आश्चर्य प्रगट करता है। कमरज्जमाँ शाहज़ादा कहता है—

आशिके महलका हूं मैं रानी पै मुबतिला हूं मैं
जामे मोहब्बत उसका अब मैंने पिया जो हो सो हो
देवो परी मे मिला, मौला तेरा करे भला
हाले गमो अलम बयाँ मैंने किया जो हो सो हो ।।

इस पर जिन ताली वजाकर महलका को बुलाता है जो सात सहेलियों के साथ आती है, दोनों एक दूसरे को देखकर आश्चर्य करते हैं। माहलका शाहज़ादे से उसके वहाँ पहुंचने का कारण पूछती है और अपने प्रेम को प्रकट करती है। शाहज़ादा भी अपना प्रेम बताता

है। इसी बीच जीन का शाह अपने अधिकारियों सहित वहाँ पहुंच कर शाहजादे को देखकर आश्चर्य से सब हाल पूछता है। शाहजादा कहता है —

जो शहजादी है आपकी माहे पैकर
सदा जिसको हमसर से मेरी रहेगी
हुवा मैं उसे ख्वाब में देख आशिक
सदा दिल पै उस गम की ढेरी रहेगी
इसपे मैं इसके लिए आया मेहनत उठाकर
हर एक हूर बन इसकी चेरी रहेगी
न उनसे अगर ब्याह कर दोगे मेरा
तो हरगिज न फिर जान मेरी रहेगी ॥

इसी आसम्बरी मे माहलका भी कहती है—-

जो शादी की बात इससे मेरी रहेगी
तो फिर क़ौल की बात तेरी रहेगी।
जो शाहज़ादा सपने में देखा था मैंने
यही है ये यहा इसकी देरी रहेगी।
कहा हाल ये तब दिया कौल तुमने
कि निस्बत उसी से ही तेरी रहेगी ॥
सो अब ब्याह करदो कि दिलशाद होवे
नही तो मुसीबत ये घेरे रहेगी।
करोगे यह एहसान गर मुझ पै शाह
तो ममनून दायम यह चेरी रहेगी

शाह जीन महलका का हाथ कमरुज्ज़मा के हाथ मे देता है; नाचो-गाना शुरू हो जाता है।

७

ख़ूने नाहक़

(र० का० लगभग १९०२ ई०)

बाब पहला परदा दूसरा

महल

(मेहरबानू का मय ख़वासों के गाते हुए आना)

गाना

अलबेले सों कहना सदेसा मेरा ।
काहे बिसारे अय प्यारे ! मोहे आरे, आरे तोरी आस निहारे ।
करो कुछ ध्यान लगे विरहवान है जान पै आन बनी रे ।
दिन रतिया, हा, दिन रतिया रकत बहे अखिया ।
आग है छतियां लगतिया न भावत कोऊ की बतिया ।
अब तो सजन दिखलादे दरशन हां रे ।
सुलगत तन मन तजें हम अन धन ॥

गाना

ख़वासें — मान वचन राजदुलारी मोरी
जीया न खो री ! थोरी मत हो री ।
मेहरबानू — जाओ जाओ मन न दुखाओ जाओ
ख़वासें — दिल न दुखाओ नित तुम उठाओ मन की मुरादें पाओ ।
मेहर० — जाओ जाओ कुढ़ाओ न मन मोरा समझाओ ।
रिहाना — अफ़सोस, प्यारी इश्क़ की बेक़रारी हुस्न को ख़ाक में मिलाती है
दिल में सोज़िश उस्तो ख़्वाने में आग लगाती है ।

अबियात

न रक्खो शोला ज़न नाल्ये बेबाक सीने में
न जल जाए कहीं प्यारी दिले ग़मनाक सीने मे ।
मेहर० — जला या तक नये ग़म से दिले ग़मनाक सीने में
अगर ढूढे कोई दिल को तो पाये ख़ाक सीने में ॥

गाना

सखी कैसे सहा दुख जाये, बिन पिया जिया कल नहिं पाये,
जाये सिसक सिसक जिया हाय ,
जियरा अजान को विद्रोह से पिछान पड़ी
दुख सों मिलाप भयो सुख बन गयो वैरी ।

खवासें — होय दरस तोहे प्रान का काहे मुन्दरी अधीर भई

मेहर० — सखी कैसे धरे मन धीर दरस बिन जहांगीर के ।

खवासें — धीर धीर अधीरी धीर ।

मेहर० — पीर दे गयो जहांगीर संग ले गयो मोरी धीर
करूं कहां हाय कहां बसू जाय; कैसे कल आस चैन जिया पाये ?
हाय क्या करूं ?

शेर

दिले नाशाद को आराम पहलू में नहीं आता
करूं मैं क्या वो ज़ालिम मेरे काबू में नहीं आता ।।

फ़रज़ाना — प्यारी बानू ! अब तो आपने ख्याल किया है कि शहज़ादे जहांगीर का मिज़ाज कुछ और है, दीवानों सा तौर है ,
पहले तो आपही के नाम पर मरते थे, वफ़ा का दम भरते थे ।
अब तो कुछ आपकी परवाह है नहीं ।

मेहर० — अय हमदम, खुदा की क़सम, इसी बात का तो है मुझे भी ग़म कि उस दग़ाबाज़, वे मुरव्वत ने तोते की तरह, आँख फेरी, इसमें क्या खता है मेरी ।

रिहाना — मगर मैं समझती हूं कि बादशाह की मौत से यह पेच पड़ गया है कि शहज़ादे साहब का मिज़ाज बिल्कुल बिगड़ गया है । लीजिये वही आते हैं ।

गाना

आज तोरा सैंया मन्दरवा मे आय है प्यारी !
भाग जगे है सोहाग राग गैहै ।

मेहर० — वार बार हूं निसार जान दूंगी वार-वार,

फ़रज़ाना — फिर हम को तुम जाओगी भूल, तुम बन के गुल जाओ फूल,
वाह वाह वाह: वाह ये उ लाग फाग लै है ।

(जहांगीर का आना)

मेहर० — क्यों मेरी जान ! मिज़ाज कैसा है ?

जहांगीर जैसा तुम देखती हो वैसा है ।

अशार

मेहर० इस दन्तेशार का कुछ माजरा कहो तो सही
मिज़ाज कैसा है अय दिलरुबा ! कहो तो सही ।

जहांगीर यह लोग हो गये क्यू बेवफ़ा कहो तो सही
यह क्यो ज़माने की बदली हवा कहो तो सही ।

मेहर० यह तो मै खुद पूछती हूं कि इस बेवफ़ाई, बे मुरव्वती का सबब क्या है ? -

जहांगीर यह तो मुझ को मालूम नही कि दगाबाज़ औरतो का मतलब क्या है ?
औरतें दगाबाज ?

जहांगीर दगाबाज , जालसाज़, मक्कार, जफ़ाकार ।

मेहर० फिर फ़रमाइये ।

जहांगीर ज्यादा न शर्माइये ।

मेहर० क्या मै ऐसी ?

जहांगीर कोई होगी ऐसी ।

मेहर० आप बड़ी बेमुरव्वती से ज़बान खोलते है ।

जहांगीर देग मे एक ही चावल टटोलते है।

मेहर० प्यारे जहागीर यह कैसी बाते ?

जहांगीर जहागीर के बदले मेरा नाम दिलगीर रखो ।

मेहर० नही नही ।

जहांगीर मुहब्बत का असीर रखो या फकीर रखो ।

मेहर० आपके दुश्मन ऐसे हों।

जहांगीर मेरे दुश्मन तो तख्तोताज के मालिक हुए।

मेहर० ओहो यह किनाया अब मेरी समझ मे आया, मगर मेरा कसूर !

जहांगीर खिलाफ़ दस्तूर !

मेहर० क्या ऐसा इरादा ?

जहांगीर कुछ इससे भी ज्यादा

अबीयात

मेहर० कौन वादा करके था मुझ से वफा का फिर गया ।

जहांगीर किसके दिल पर खजरे बुररा जफ़ाका फिर गया।

मेहर० जुल्म यह जिसने किया वह कौन था?
दाग यह जिसने दिया वह कौन था?
अफ़सोस सरकार की तबियत इस क़दर फिर गई जो मैं नजरों
में गिर गई।

अशार

क्या करे चाहने वालों का भरोसा कोई
सच है दुनिया में किसी का नहीं होता कोई,
अय जफ़ाकार नहीं मेरी वफाओं का ख़ियाल
यूं भी कर लेता है पत्थर का कलेजा कोई।

जहांगीर दिल हसीनों को न दे चाहने वाला कोई
कि जमाने में नहीं होता किसी का कोई;
बेवफ़ाई से अज़ीज़ों के खुला यह उकदा,
हम हैं दुनिया में किसी के न हमारा कोई॥

मेहर० यह कैसी कैसी उखड़ी तकरीर है, हयरत दामनगीर है
क्या आप पर भी तलउरन का साया पड़ गया जो मिज़ाज
ऐसा बिगड़ गया।

शेर

क्यों हंसी चेहरे पै नहीं आती।
क्यों वह हालत नज़र नहीं आती॥

जहांगीर सच है मैं तलऊने मिज़ाज हो गया, औरतों का यह रिवाज हो गया,
कुछ न कुछ इन्कलाब ज़रूर हुआ जो इसमत का नाम ख़राब हुआ।

रुबाई

शकले राहत नज़र नहीं आती
मौत भी बेख़बर नहीं आती
आगे आती थी हालते दिल पै हंसी
अब किसी बात पर नहीं आती।

मुख़म्मसात

मेहर० मैने क्या आप से बुराई की
जान भी अपनी जां फ़िदा की
इन्तहा करदी बावफ़ाई की
आपने खूब दिल रुबाई की;
आबरू खोई आशनाई की।

जहांगीर शर्त की जिसने बावफ़ाई की
उसने अंजाम में बुराई की
हमने खुद इस्मत आजमाई की
अब न कोशिश करो सफ़ाई की
देखली शान पारसाई की ।
मेहर० ओ बेदर्द नाक़दरदान ।

शेर

मरूं मैं तुझ पै तू कोशिश करे मेरे सताने में
बताओ तो कही ऐसा भी होता है जमाने में;

जहांगीर मुखम्मस

तिलस्मी सूरतें हैं औरतें इस सहरखाने में
नजिस रूहें पड़ी फिरती है यह सारे जमाने में।
जरर होता है इन नामहेरमों से दिल लगाने मे
नहीं गैरत पलीदों को जरा इस्मत बचाने में
जला दूं आग में उनको जो हो क़ाबू जलाने में।।

मेहर० बताइए वह कौनसी औरत सियाहकार हुई जो जलीलो ख्वार हुई, काबिलेनार हुई, क़हरे खुदा गिरफ़तार हुई।
जहांगीर अफ़सोस हकदार तरसें अंगारे बरसें ।

शेर

खुलेगा हाल मेरा आप पर रोजेकयामत मे
करेगा फ़ैसला वो दावरे महशर कयामत में।

मेहर० मेरी इस्मत मे कोई इल्जाम है ?
जहांगीर मुझे इन बातो से क्या काम है ? (जाना जहांगीर का)

गाना

मेहर० अफ़सोस गया हमदम छलिया
न रहा चमन जल जल गई कलिया;
खाक बदन कर मन मुरझाये
जान को मेरी रोग लगाये,
पीत के ग़म से मैं जलिया ।।

(जाना मेहरबानू का, आना सलमान का)

गाना

सलमान मानो मानो मानो रे प्यारी बतियां

रिहाना — जा जा नाही दिखावें तू जतिया यह बतिया सुरतियां

सलमान — बोसा दे एक गोरे गाल का प्यारी जान, बोसा दे एक गोरे गाल का।

रिहाना — चल मुवे, हट मुवे, घुस तू मनहूस मुवे।

सलमान — मैं जो जाऊं तो पछतायेगी, दूल्हा कहां मुझ सा पायेगी ?

रिहाना — निकल निकल उधर को, चल, अब न मचल यहां,
यह लीजिये ई दीगर गुले शिगुफ़; बीबो साहिबा को समझाते समझाते फिर सत पाई तो दूसरी बला सामने आई;

शेर

क्या गिजा मेरी हुई खूने जिगर का पीना
अपना सर फोड़ के इस मूजी का पीटू सीना।

मुवे बदजात, बद सिफ़ात, तुझ को अपनी जूतियों पै निसार करूं, सदके हर बार करूं।

सलमान — अगर मुझे जूतियों पर से निसार करोगी तो फिर जिन्दगी किसके सर बसर करोगी ?

रिहाना — चल बे उल्लू! हौसला तेरा। एक तो दीवाना दूसरे भूतों ने घेरा।

सलमान — वाहरे चुट्टू, नखरा तेरा, गंजी कबूतरी महल में डेरा।

रिहाना — चल रिज़ाला मतवाला, तुझे डसे सांप काला, कौड़ियाला, तू मर जाय कबूतरी बनाने वाला।

सलमान — हत् तेरे नखरे में गरम मसाला; हट न मुड़ी, हड़ बड़ा के उट्ठी अय जान! देख तो मैं कैसा रंगीला छबीला, सजीला शानोशौकत वाला तरहदार तेरा यार।

रिहाना — चल बदकार मेरे यार पर से तुझे करूं निसार; कहां तू गली का कुत्ता मुरदार और कहां मेरा यार अनवर नामदार।

सलमान — है, हैं, क्या कहा ? अनवर, वह अख्तर का बिरादर, रास्ते का पत्थर, मेरे बराबर। अरे मेरे हुस्न पर हूर अश अश करे, परी देख पाये तो गश खाकर गिर पड़े।

रिहाना — भला यह तो माना मगर मैं मेहरबानू की सहेली अलबेली और तू मुवा तेली, मेरा नाज क्यों कर उठायगा ? तेरे घर में है क्या ? मेरा खर्च कैसे उठायगा ?

सलमान — अरे दीवानी तेरे लिए मेरे घर में क्या है कमी; सुन, चूल्हा, चक्की, तवा डोई हंडी, चपनी, दसपनी, फुकनी, कांचे की पियाली, फिरकी,

भंवरा, लट्टू, चट्टू, वजर वट्टू, गिल्ली-डंडा, फिर मैं संडा मुस्तंडा खुदा का दिया हुआ सब कुछ मौजूद है और जो कुछ नहीं है, वे छोटी सी दो चार चीजें नहीं हैं सो क्या हुआ ?

रिहाना — क्या क्या है और क्या क्या नहीं है ?

सलमान — खाना, कपड़ा, दौलत, इज्जत, बस यही नहीं और इसके नहीं होने का हरज नहीं। न आए की शादी न गए का ग़म।

रिहाना — अब बदलगाम अपनी जुबान थाम।

सलमान — अय अक़्ले खाम तेरी माँग मुडे हज्जाम, जानती है कि बत्ती भी कोई चीज है। अरे मैं गुलाम हूं तो तू कनीज है। दोनों की बनी जोड़ी, एक अन्धा एक कोढ़ी। तेरी मेरी जोड़ी बनी प्यारी जान अल्लाह सलामत रखेगा।

रिहाना — अय बदतमीज ! बेशक मैं कनीज, नाचीज, मगर आदमी आदमी में अन्तर है कोई हीरा कोई कंकर।

सलमान — अरे एक का है दूसरा हम ख़र जैसे कंकर वैसे पत्थर।

रिहाना — मुवे की आंख के आगे नाक, सूझे क्या खाक।

सलमान — शुक्र है कि मेरे आगे नाक है, भूल जाओ शिकवये गम्माज़ी। जल्द हो जाओ वस्ल मे राज़ी। जब मियाँ बीवी राज़ी तो क्या करेगा काज़ी।

रिहाना — चाहे मुल्ला बुलाओ या काज़ी पर यह तेरे हाथ न आयेगी बाजी। किसी और से करना हीलासाज़ी, ज़बां दराज़ी।

सलमान — अच्छा, अच्छा बीबी जान ! जब ही मैं अपने नाव का सलमान कि मेहरबानू से लू तेरी शादी का पयगान।

गाना

रिहाना — दूर दूर परे हो दूरखे ई ऊर, तू मुह को तेरे झुलसूं, मसानी मजदूर तू।

सलमान — दो चार छातें, ले मार लातें, बातें मीठी कर जान

रिहाना — जा जा रे मूरख नादान।

सलमान — सुन प्यारी तू मान जारी न कर तूफ़ान

रिहाना — जा रे मूज़ी, शयतान अरे जा जा जा

सलमान — अरे आ आ आ हट न ला खट न ला, बोसा झटपट दिला।

रिहाना — जा जा रे काले लगूर तू।

(जाना दोनों का)

नोट : पात्रों में जहांगीर हैमलेट है, मेहरबानू अफ़ीलिया है, सलमान जहांगीर का नौकर और रिहाना मेहरबानू की सहेली है।

रिहाना जा जा नाही दिखावे तू जतिया यह बतिया सुरतिया

सलमान बोसा दे एक गोरे गाल का प्यारी जान, बोसा दे एक गोरे गाल का ।

रिहाना चल मुवे, हट मुवे, घुस तू मनहूस मुवे।

सलमान मैं जो जाऊ तो पछतायेगी, दूल्हा कहा मुझ सा पायेगी ?

रिहाना निकल निकल उधर को, चल, अब न मचल यहा,
यह लीजिये ई दीगर गुले शिगुफ़; बीबी साहिबा को
समझाते समझाते फिर सल पाई तो दूसरी बला सामने आई;

शेर

क्या निजा मेरी हुई खूने जिगर का पीना
अपना सर फोड़ के इस मूजी का पीटू सीना।

मुवे बदजात, बद सिफ़ात, तुझ को अपनी जूतियों पै निसार
करूं, सदके हर बार करूं।

सलमान अगर मुझे जूतियों पर से निसार करोगी तो फिर जिन्दगी किसके सर बसर करोगी ?

रिहाना चल बे उल्लू ! हौसला तेरा। एक तो दीवाना दूसरे भूतो ने घेरा।

सलमान वाह रे चुट्टू, नखरा तेरा, गंजी कबूतरी महल मे डेरा।

रिहाना चल रिज़ाला मतवाला, तुझे डसे सांप काला, कौड़ियाला, तू मर जाय कबूतरी बनाने वाला ।

सलमान हत् तेरे नखरे में गरम मसाला; हट न मुडी, हड़ बड़ा के उट्ठी अय जान ! देख तो मैं कैसा रंगीला छबीला, सजीला शानोशौकत वाला तरहदार तेरा यार ।

रिहाना चल बदकार मेरे यार पर से तुझे करू निसार; कहाँ तू गली का कुत्ता मुरदार और कहाँ मेरा यार अनवर नामदार।

सलमान है, हैं, क्या कहाँ ? अनवर, वह अख्तर का बिरादर, रास्ते का पत्थर, मेरे बराबर। अरे मेरे हुस्न पर हूर अश अश करे, परी देख पाये तो गश खाकर गिर पड़े ।

रिहाना भला यह तो माना मगर मैं मेहरबानू की सहेली अलबेली और तू मुवा तेली, मेरा नाज़ क्यो कर उठायगा ? तेरे घर मे है क्या ? मेरा खर्च कैसे उठायगा ?

सलमान अरे दीवानी तेरे लिए मेरे घर में क्या है कमी; सुन, चूल्हा, चक्की, तवा डोई हंडी, चपनी, दसपनी, फुकनी, काबे की पियाली, फिरकी,

भंवरा, लट्टू, चट्टू, वजर बट्टू, गिल्ली-डंडा, फिर मैं संडा मुस्तंडा खुदा का दिया हुआ सब कुछ मौजूद है और जो कुछ नही है, वे छोटी सो दो चार चीजें नही है सो क्या हुआ ?

रिहाना क्या क्या है और क्या क्या नही है ?

सलमान खाना, कपड़ा, दौलत, इज्ज़त, बस यही नहीं और इसके नहीं होने का हरज नही। न आए की शादी न गए का ग़म।

रिहाना अब बदलगाम अपनी जुबान थाम।

सलमान अय अक़्ले खाम तेरी मांग मुडे हज्जाम, जानती है कि वत्ती भी कोई चीज है। अरे मैं गुलाम हूं तो तू कनीज है। दोनों की बनी जोड़ी, एक अन्धा एक कोढी। तेरी मेरी जोड़ी बनी प्यारी जान अल्लाह सलामत रखेगा।

रिहाना अय बदतमीज ! बेशक मैं कनीज, नाचीज, मगर आदमी आदमी मे अन्तर है कोई हीरा कोई कंकर।

सलमान अरे एक का है दूसरा हम सर जैसे कंकर वैसे पत्थर।

रिहाना मुवे की आंख के आगे नाक, सूझे क्या खाक।

सलमान शुक्र है कि मेरे आगे नाक है, भूल जाओ शिकवये ग़म्माज़ी। जल्द हो जाओ वस्ल में राजी। जब मियाँ बीबी राज़ी तो क्या करेगा क़ाज़ी।

रिहाना चाहे मुल्ला बुलाओ या क़ाज़ी पर यह तेरे हाथ न आयेगी बाज़ी। किसी और से करना हीलासाज़ी, ज़बां दराज़ी।

सलमान अच्छा, अच्छा बीबी जान ! जब ही मैं अपने नाव का सलमान कि मेहरबानू से लू तेरी शादी का पयग़ान।

गाना

रिहाना दूर दूर परे हो दूरबे ई ऊर, तू मुंह को तेरे झुलसूं, मसानी मज़दूर तू।

सलमान दो चार छातें, ले मार लातें, बातें मीठी कर जान

रिहाना जा जा रे मूरख नादान।

सलमान सुन प्यारी तू मान जारी न कर तूफ़ान

रिहाना जारे मूज़ी, शयतान अरे जा जा जा

सलमान अरे आ आ आ हट न ला खट न ला, बोसा झटपट दिला।

रिहाना जा जा रे काले लगूर तू।

(जाना दोनों का)

नोट : पात्रों में जहांगीर हैमलेट है, मेहरबानू अफ़ीलिया है, सलमान जहांगीर का नौकर और रिहाना मेहरबानू की सहेली है।

८

हरिश्चन्द्र

(रचना-काल लगभग १८९५ ई०)

बाब तीसरा   दिखाव पाचवा

काशी—मसानघाट—रात का वक्त ।

(घाट किनारे हरिश्चन्द्र, डोम के लिबास में कम्बल ओढ़े झाडू देकर अपनी हालत पर शुक्र करता है)

हरिश्चंद्र . संसार सपने की संपत हैं; उस कर्तार ने मुझे यह प्रत्यक्ष दिखा दिया, नामुराद नसीब ने मान के आसमान से गिरा, नीच मलिक्ष बना साफ़ बता दिया कि इस झूठी दुनिया की बड़ाई छुटाई, हेच और हवाई है। धन्य है उस परमानद परमेश्वर को, जिसने ईमान की सलामती के साथ इस मसान में पहुंचा, जहान की बेबुनियाद हस्ती का बोध करा दिया । हा !!

सवैया छंद

एक चले हाथी पर चढ़के, हाथ मले दुखिया एक रोवे ।
एक सजन को मान मिले, तो एक हजारों मे पन खोवे ।
एक फ़क़ीरी हाल करे, तो एक धनी धनवंतर होवे ।
मौत करे धावा, तब दोनों एक सान चिता पर सोवे ॥

(तारामति रोहित की लाश उठाकर लाती है और ज़मीन पै रखकर सोग करती है)

तारामति हा बेटा ! हा प्यारा ! किस नीद मे तू सोया ?
अय प्यारा ! महपारा ! आखें तो खोल,
अय नाज़ों के पाले ! आंखों के उजियारे ।
अय हारे, दुखियारे ! ओ प्यारे ! ओ प्यारे !!
जागो तो अय बेटा ! उट्ठो तो अय बेटा !
कुछ माँ को अय बेटा ! मुंह से तो बोल !

(तारामति रोती है, हरिश्चन्द्र दिल कड़ा करके लरजती आवाज से पूछता है)

हरिश्चन्द्र अरे तू कौन है जो ऐसी अंधेरी रात में बेवक्त यहाँ आई है ? (जवाब न देने से हरिश्चन्द्र जोर से पूछता है) अरे ! बोलती क्यों नही ? ऐसे बेवक्त मुर्दा लाने, चोरी चोरी आने का कारण क्या ?

मुसद्दस

तारामति मां, बच्चे के लाश को सर पीटती लाई है
हय हय मेरी बेकस की यह एक कमाई है ।
दुखिया हू, मुसीबत नई मैने यही पाई है ।
सर पर न तो अम्मा है, न बाबा है, न भाई है ।
जिस शख्स को था हासिल आराम जमाने का,
मकदूर नही उसको अब लाश उठाने का ।।

हरिश्चन्द्र दुखिया, सुखिया, मकदूर, बेमकदूर, यह चाडाल अब एक नही समझता । दिन को आती तो थोड़े में काम निकल जाता मगर इस समय बे पूरा दाम दिए मुर्दा जलाने न पायगी ।
(तारामति दीवानों की तरह लाश से बातें करती और रोती है।)

तारामति हाय बेटा ! मैं क्या सुनती हू ! मैं तुझे जलाने आई हूं ? नही, नहीं; मैं तुझे न छोड़ूंगी; तेरे साथ चलूंगी, तेरे साथ जलूंगी । बेटा ! बेटा ! एक बार तो बोलो । क्या अब माता कहके न पुकारोगे ?

हरि० अरे दीवानी !

तारा० मैं दीवानी नहीं हूं, स्यानी हूं । यह मेरा फूलों की सेज पर सोने वाला बेटा है जो खाक पर लेटा है । यह इसके फूल से गाल जो काल खाने से काले हो गए हैं, सदा गुलाब से लाल थे, और मैंन इसे हजार बार चूमा है ।

हरि० (खुद से) हा ! परमेश्वर ! ! यह कैसा काम मुझे मिला । ऐसी अधीन पर कैसे न आए दया । (तारामति से) अय नारी ! मुसीबत की मारी ! ! क्या तेरा एक भी अपना नही, जो तू इस भयानक रात अकेली आई और आप मुर्दा उठा लाई ?
(तारामति रोती है, हरिश्चन्द्र मना करता है)।

मुसद्दस

अब रोने से क्या फ़ायदा, क्यो मारे हे नारे ?
जो उठते हैं रोने से कहो मौत के मारे ?
सोते हैं जो सोने के छपरघट पै बिचारे,
एक रोज जमी पर वही जाते हैं उतारे।

८

हरिश्चन्द्र

(रचना-काल लगभग १८९५ ई०)

बाब तीसरा　　दिखाव पांचवा

काशी—मसानघाट—रात का वक्त ।

(घाट किनारे हरिश्चन्द्र, डोम के लिबास में कम्बल ओढ़े झाड़ू देकर अपनी हालत पर शुक्र करता है)

हरिश्चंद्र संसार सपने की संपत है; उस कर्तार ने मुझे यह प्रत्यक्ष दिखा दिया, नामुराद नसीब ने मान के आसमान से गिरा, नीच मलिक्ष बना साफ़ बता दिया कि इस झूठी दुनिया की बड़ाई छुटाई, हेच और हवाई है। धन्य है उस परमानद परमेश्वर को, जिसने ईमान की सलामती के साथ इस मसान में पहुचा, जहान की बेबुनियाद हस्ती का बोध करा दिया। हा !!

सवैया छद

एक चले हाथी पर चढ़के, हाथ मले दुखिया एक रोवे ।
एक सजन को मान मिले, तो एक हजारों में पन खोवे ।
एक फकीरी हाल करे, तो एक धनी धनवतर होवे ।
मौत करे धावा, तब दोनों एक सान चिता पर सोवे ।।

(तारामति रोहित की लाश उठाकर लाती है और जमीन पै रखकर सोग करती है)

तारामति हा बेटा ! हा प्यारा ! किस नींद में तू सोया ?
अय प्यारा ! मेहपारा ! आखे तो खोल,
अय नाज़ों के पाले ! आंखों के उजियारे ।
अय हारे, दुखियारे ! ओ प्यारे ! ओ प्यारे !!
जागो तो अय बेटा ! उट्ठो तो अय बेटा !
कुछ माँ को अय बेटा ! मुंह से तो बोल !

(तारामति रोती है, हरिश्चन्द्र दिल कड़ा करके लथरती आवाज़ से पूछता है)

हरिश्चन्द्र अरे तू कौन है जो ऐसी अंधेरी रात में वेवक्त यहां आई है ?
(जवाव न देने से हरिश्चन्द्र जोर से पूछता है) अरे ! वोलती क्यों नहीं ? ऐसे वेवक्त मुर्दा लाने, चोरी चोरी आने का कारण क्या ?

मुसद्दस

तारामति मां, वच्चे के लाश को सर पीटती लाई है
हय हय मेरी वेकस की यह एक कमाई है ।
दुखिया हू, मुसीवत नई मैंने यही पाई है ।
सर पर न तो अम्मा है, न वावा है, न भाई है ।
जिस शख्स को था हासिल आराम ज़माने का,
मक़दूर नही उसको अब लाश उठाने का ॥

हरिश्चन्द्र दुखिया, सुखिया, मकदूर, वेमक़दूर, यह चांडाल अव एक नही समझता । दिन को आती तो थोड़े मे काम निकल जाता मगर इस समय वे पूरा दाम दिए मुर्दा जलाने न पायगी ।
(तारामति दीवानों की तरह लाश से वातें करती और रोती है ।)

तारामति हाय वेटा ! मैं क्या सुनती हूं ! मैं तुझे जलाने आई हूं ? नहीं, नही; मैं तुझे न छोड़ूंगी; तेरे साथ चलूंगी, तेरे साथ जलूंगी । वेटा ! वेटा ! एक वार तो वोलो । क्या अब माता कहके न पुकारोगे ?

हरि० अरे दीवानी !

तारा० मै दीवानी नही हूं, स्यानी हूं । यह मेरा फूलों की सेज पर सोने वाला वेटा है जो खाक पर लेटा है । यह इसके फूल से गाल जो काल खाने से काले हो गए हैं, सदा गुलाव से लाल थे, और मैंन इसे हज़ार वार चूमा है ।

हरि० (खुद से) हा ! परमेश्वर ! ! यह कैसा काम मुझे मिला । ऐसी अधीन पर कैसे न आए दया । (तारामति से) अय नारी ! मुसीवत की मारी ! ! क्या तेरा एक भी अपना नही, जो तू इस भयानक रात अकेली आई और आप मुर्दा उठा लाई ?
(तारामति रोती है, हरिश्चन्द्र मना करता है) ।

मुसद्दस

अव रोने से क्या फायदा, क्यो मारे हैं नारे ?
जी उठते हैं रोने से कही मौत के मारे ?
सोते हैं जो सोने के छपरघट पै विचारे,
एक रोज़ ज़मी पर वही जाते हैं उतारे ।

"जो आए है दुनिया मे वह सब कूच करेंगे,
इस जीने का अंजाम यही है कि मरेंगे ।"

तारा० हाय ! पर मुझे कृपा कर कुछ तो उपाय बता दो।

हरि० कर चुका कर जला दो ,नही तो नदी मे कच्चा ही बहा दो ।

तारा० कर क्यो कर चुकाऊ एक कौड़ी भी कही नही मिलती कि लाऊं।
(हरिश्चन्द्र तारा के गले में मगल डोरा देखके कहता है)

हरि० अय मक्कार औरत ! इस तेरे गले मे मगल डोरा है, वह बेच कर क्यो नही कर चुकाती है ?

तारा० ओ नीच मसानी ! जो डोरा त्रिशंकु के कुल के सिवा किसी को नजर नही आ सकता, वह तेरी आँख मे कैसे समाया ? क्या त्रिशकु के प्रताप का ऐसा अत आया ?
(हरिश्चन्द्र 'त्रिशंकु' का नाम सुनके तारामति पर शक लाता है)

हरि० हा, कौन ? (फ़ानूस से देखकर तारामति को पहचानता है) तारा ! !
(तारामति हरिश्चन्द्र को पहचानती है, दोनो एक-एक से मिलते है)

तारा० हाय ! ओ प्राणनाथ ! ! ऐसे कठिन कष्ट में तुम कहाँ हो ? तुम्हारी अभागिनी तारा ! (रोहित को बताकर) तुम्हारा प्यारा रोहित
(हरिश्चन्द्र रोहित की लाश को जानू पर लेकर रोता है ।)

हरि० हा ! बेटा रोहित ! ! यह क्या प्यारी तारामति !

तारा० अफ़सोस प्राणपति ! ! यह क्या आपकी गति ?

हरि० प्रिया, तुम्हारे बिक जाने के बाद मे इस घाट के डोम के साथ बिका; पर तुम्हारी यह क्या दशा ? अरे रोहित को क्या हुआ ?

तारा० फूल चुनते इसे सापने डसा, रोहित दगा दे चल बसा । प्राणनाथ ! लो जिसे तुमने पैदा किया उसे अब अपने हाथ से आग दो ।

हरि० (रोता है) अरे इसे क्यों तू यहाँ लाई ! क्यो इसकी सूरत मुझे दिखाई ? अगर खबर न पाता, यह मेरे अनजानपने में मर जाता, तो मै सदा इसकी कुशल मनाता ! अफ़सोस ! ! इसने भी दगा दिया, माता पिता से किनारा किया । हा प्रिया !

बयत

यह आस मुझे थी कि कफन मुझ को यह देगा
क्या जाने थे कि हाथ से मेरे ही जलेगा।

तारा० प्राननाथ ! मैंने जो आपका दर्शन पाया, तो सब शोक भुलाया। ईश्वर की गति के अधीन हो इसको क्रिया करो।

हरि० प्रिया ! जो अपने मालिक से दगा करता है, वह दोनों जहान में बुरी मौत मरता है। अग्नि संस्कार तो वे कर दिए कठिन है। दुश्वार है।

तारा० प्रानपति ! आपको दगा कभी न करने दूगी। जो उचित हो सो करो, जो मर्ज़ी हो मुझे कहो।

हरि० प्यारी ! एक बार फिर अपने मालिक के पास जाओ, जैसे वह माने, उसे समझा मना कर कम से कम एक पैसा, थोड़ा कपड़ा, *थोड़ा घी लाओ।*

तारा० उस निर्दयी ब्राह्मण से कुछ आस तो नही है परन्तु आपकी आज्ञा सीस चढ़ा जाती हूं, जो मिल गया तो लाती हूं।

हरि० जाओ ! ईश्वर दया करेगा।

(तारामति जाती है, हरिश्चन्द्र लाश को देखकर रोता है)

नोट : इस नाटक की हिन्दी भाषा ध्यान देने योग्य है।

१

महाभारत

रचना काल : सन् १९१३ ई०

अंक १—प्रवेश १

अद्भुत भवन

(मय दानव का बनाया हुआ भवन जिसमें जल की जगह स्थल और स्थल की जगह जल, इसी तरह दीवार का दर्वाजा और दरवाजे की दीवार नजर आती है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में देश देश के राजा-महाराजा और रानी-महारानियाँ जमा हैं। मेहमान रानियाँ यज्ञशाला और भवन को देखकर आनंद का गीत गा रही है।)

गाना

आली छाई आज जगत खुश हाली।
उमड़ घुमड़ आई घटा पीतवर्ण लिए लाली ॥ आली०
उत्सव की छवि माहिं सबके हैं नैन लगे
पक्षिन के सब जोड़े शुभ आशिष देन लगे।
निज निज बोली में, मनहर है सुरंग सुमन,
विघ्न हरत हरियाली ! ॥ आली० ॥

गाना

सत्यभामा — कोई प्रीत की रीत बतादो नई
करके जतन मैं तो हार गई
छल छन्द है छैल की नस नस में
नित खात हैं झूठी मेरी कसमें;
मन डालके सौतिन के बस में
सुधि श्याम ने मोरी बिसार दई।
तज मान गुमान वो आन मिले।

रुक्मणि — बोहतान है यह इनकी बतियां
रस रंग में काटत हैं रतियां

नित श्याम लगावत है छतियाँ
यों ही रात गुजारत कई कई;
सच बात है जो यह गिला मैं करू ।

द्रौपदी
जो चाहो कि प्रीतम हो अपना
पति नाम की माला सदा जपना
नहि ग़ैर का देखो कभी सपना,
तब जानो यह देह पवित्र भई ।
इसी मोहनी मत्र का जाप करो ।।

सत्यभामा
नहि लाभ समय कुसमय से कभी
ढिग आत न इनके भय से कभी,
सर बाह पै डाल के ऐसे कभी
न निगाह निगाह मे डाल दई
मुख चुम्बन की नही चाट चखी ।।

रुक्मणि
भला छोड़ के मिसरी भली से भली
कभी खायगा क्या कोई गुड की डली
यह है कामलता की सुरग गली
मैं कटेली हूं कटकी सूलमयी
मोहे काहे लगायेगे श्याम गले ।।

द्रौपदी
जिसकी है पति प्रति प्रीति घनी
वही साजन की है खरी सजनी
उसी का दिन है उसी की रजनी
जिन जान बलमुवा पै वार दई
वही *भाग्यवती* वही *सुहागवती* ।

(श्रीकृष्ण महाराज आते है; उन्हे देखकर द्रौपदी चल देती है।)

गीतिका

कृष्ण
हो रहे है आज तो आपस मे झगड़े प्यार के
कौन समझाता है देखे अर्थ इस तकरार के
प्रेम के मन्दिर में आना है जिसे झेपे नही
जल्द आ जाये ये दोनो पट खुले है द्वार के ।।

सत्य०
दख्ल देना पराई बातों मे
हो न जाय लड़ाई बातो मे ।

कृष्ण : अजी लड़ लो, झगड़ लो परन्तु वह प्रीत की रीति तो सीख लो ।

रुक्मणि इन्ही को सिखाइए। इसकी जरूरत इन्ही को हर घड़ी रहती है।

सत्य० सच है क्योंकि तुम्हारी सेवा में तो प्रीत प्रीतम को लिए हर वक़्त खडी रहती है।

रुक्मणि और तुम्हारे पास तक नही झाकती, गजब की बात है।

गिला तकदीर का है बेसबब तकदीर वालों को
यह किसका इत्र है ? सूघें ज़रा इनके दुशालों को
रुपट्टा पोंछता रहता है हरदम किस के गालों को
किसे सौ बार दिन में बांधना पडता है बालो को ?
उडा करती है अक्सर धज्जियां किसके दुकूलो की ?
उतरतीं है कहाँ मसली हुई मालायें फूलो की ?

सत्य० यह सब बातो की सफ़ाई है वर्ना मेरे दिल से पूछो मैं ऐसी पटरानी होने से बाज़ आई। बहन ! अब तो तुम मुझे अपनी दासी बना लो।

क्योंकि हिस्से में तुम्हारे आ चुके है सात दिन,
कुछ न होगा स्याम के दर्शन तो होंगे रात दिन

कृष्ण यह तुम्हारा जो कुछ वादविवाद है वो सब बेहद प्रेम का प्रसाद है—

पल भी जुदाई में हमसर है साल के,
लेकिन पलो से कम है महीने विसाल के॥

गाना तोटक

कृष्ण सुख में सब आयु गुज़ार सकें दुख एक घड़ी जब पावत है।
अकुलावत है, घबरावत हैं, पल को फिर कल्प बतावत है।
मन पीत ने जीत लियो जिनको अनरीत के गीत वो गावत हैं।
कुछ प्रेम के जोश में होश नही बस और को दोष लगावत हैं।

सत्यभामा और रुक्मणि वाह जी ! ये बतिया लेहारी है घतिया विहारी। दोनो का मन समझाना पूरे नटखट को कान्हा, ऐसी होशियारी।

कृष्ण मानो जी मोरी मानो
दोनों बातें ये कोरी मानो
कृष्ण दोनों की दोनों भोली हैं
दोनों जाहिर बातें अनमोली है
लेकिन अन्दर से पोली हैं
जायें बलिहारी यह बतियाँ॥

(सब चले जाते हैं। भीमसेन दुर्योधन को अपने नये मकान को

सैर कराता इस मुकाम पर भी लाता है, शकुनी साथ है।)

भीम — यह भवन भी मयदानव की दस्तकारी है।

शकुनि — (बहकाने के तौर पर दुर्योधन से) यह दिखाना भलाना आपके जलाने के लिए चिनगारी है।

दुर्योधन — (जवाब में शकुनी से) मैं समझता हूं यह दरपरदा दिलाजारी है, सैर कराना छुपी कटारी है। (भीम से) वाह, वाह ! यहां जो चीज है बड़ी ही प्यारी है। हरएक वस्तु शोभायमान है। (पोशीदा तौर पर) यह भवन नहीं पाडवों की ख्वारी का सामान है, (द्रौपदी वगैरह शहनशी से देख रही है)

भीम — वह रास्ता उधर से घूम कर यज्ञशाला को जाता है।

शकुनि — (भड़का कर) देखा ! किस घमण्ड से रास्ता दिखाता है ?

दुर्योधन — हा, मेरे सामने शखी जताता है। (जाहिर) ईश्वर जाने इसका नकशा, इसका काम मुझे बहुत ही भाता है।

द्रौपदी — (अपनी हमजोलियों से) यह जो कुछ तारीफें इस मकान की है, दिल की नही जबान की है—

छुपते नहीं छुपाए कभी नेको-बद के तौर।
आखों से आश्कार है देखो हसद के तौर ॥

भीम — देखिये यह चबूतरा देखने मे बिल्कुल हकीर है मगर इसके काम पर गौर कीजियेगा तो मालूम होगा कि बेनजीर है।

शकुनि — (दुर्योधन से) *गोया इन के दिल से आपने ये चीजें कभी नहीं* देखी। दुर्योधन कोई राजा नहीं कंगाल फ़क़ीर है।

दुर्योधन — (होजनुमा चबूतरे को देखकर) अहा यह जल कैसा निर्मल बह रहा है।

शकुनि — जो जबाने हाल से कह रहा है कि देखें पहले कौन मेरी स्वच्छता की बहार लूटे।

दुर्योधन — *(अपने दिल से) हे भगवान इस संपत्ति पर बिजली टूटे।* (दामन संभाल कर पानी मे उतरना चाहता है।)

भीम — (हंसकर) है, यह आप दामन क्यों संभालते है ? (शकुनी से) *शकुनी जी ! आप जूता और जुर्राब क्यो निकालते है ?*

दुर्योधन — अजी जरा इस कुड की सैर करेंगे।

द्रौपदी — (ऊपर बैठी हुई) नही तो चुल्लू भर पानी मे डूब मरेंगे।

भीम (हंस कर) वाह भाई साहब ! क्या आज आंखों में सुरमा नहीं लगाया जो पत्थर के फ़र्श को पानी का कुंड बताया ?

पानी की लहर कब है यह पत्थर की चीन है।
समझे हो इसको हौज ये सूखी ज़मीन है।

दुर्योधन (खिसियाना होकर) कमाल है।

शकुनि वाकई कमाल है।

दुर्योधन (बखुद) इस मकान की सैर भी एक बवाल है।

भीम चलिये अब ज़रा उधर की भी सैर करें।

दुर्योधन आइये ।

(दुर्योधन आगे बढ़ते ही धम से पानी में गिरता है; भीम क़हक़हा लगाता है; द्रौपदी वग़ैरह भी हंसी उड़ाती है)

भीम क्यू साहब क्या आज गोते खाने की ही ठानी है। यह तो साफ़ नज़र आ रहा है कि पानी है।

द्रौपदी चकाचौंध से भवन की बिगड़ गया सब तौर
अंधे की औलाद है सूझे क्योंकर ठौर॥

दुर्योधन मुझे कहत है द्रौपदी अंधे की औलाद।

शकुनि हा राजन इस यज्ञ में है अपमान प्रसाद॥
हंसी उड़ाय आपको यह गरूर का काम।

दुर्योधन बदला लू इस हंसी का तो दुर्योधन नाम॥

भीम अब खामख्वाह ख़फ़ीफ़ होने से क्या फ़ायदा है। तबियत को संभालिये, चलिये कपड़े बदल डालिये—

(दीवार को दर्वाज़ा समझ कर दुर्योधन आगे बढ़ता है और टक्कर लगती है, फिर हंसी होती है।)

दुर्योधन या मेरे कर्तार यह दरवाज़ा है या दीवार ?

भीम अजी इधर से निकल आइयें।

दुर्योधन उधर कहां से आऊ दरवाज़ा तो है ही नहीं, क्या दीवार में घुस जाऊं ?

भीम अजी भाई साहब कहते हुए तो शर्माइए। खुले हुए दरवाज़ों को दीवार न बताइये। लीजिए मैं आगे चलता हूं अब तो आइए।

(सब का जाना)

नोट : इस दृश्य में लेखक ने दुर्योधन को 'अंधे की औलाद' कहलवाकर उसे अपने असम्मान का बदला लेने के लिए प्रेरित कर द्यूत-दृश्य का अस्तित्व दिखाया है।

वीर अभिमन्यु

प्रथम अंक   सातवाँ दृश्य

चक्रव्यूह

(मुख्य द्वार पर जयद्रथ खड़ा हुआ है)

जयद्रथ (स्वगत) मुझे भगवान शंकर का वरदान है कि अर्जुन को छोड़कर शेष चारों पाडवों को परास्त कर सकता हूं। आज अर्जुन बहुत दूर है। अब मुझे किसी का डर नहीं है। युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव! आज तुमने सर उठाया तो समझ लेना सर नहीं है—

बाण चलाऊं जिधर, उधर हो जाय सफ़ाई।
धनुप उठाऊं जिधर, उधर मच जाय दुहाई॥
उड़े व्योम पर धूल, न दे रवि-बिम्ब दिखाई।
इस प्रकार मैं करूं आज, घनघोर लड़ाई॥
इसी जगह आजायें, यदि वह पाण्डव चारों।
तो मेरे बाणों पर नाचें, ताण्डव चारों॥

(अभिमन्यु का प्रवेश)

अभिमन्यु भूल जा, भूल जा, अपने इस अभिमान को भूल जा। मृग के पीछे दौड़ने वाले शिकारी! सिंह को देख, धनुप बाण को भूल जा।

जयद्रथ जा, जा दुधमुंहे बच्चे! जा मेरी क्रोध की तुर्शी से तेरा दूध फट न जाये।

अभि० मेरे मुंह में वह दूध नहीं जो तुरशी से बिलगा जाये।
डरता हूं तेरी अग्नि से, कहीं और उबाल न आ जाये॥

जय० उबाल? अरे, जरा मुंह को संभाल। मै तो तुझे एक संपोलिया समझ रहा था। तू तो काले की तरह फुकारने लगा। बड़ी बड़ी बातें मारने लगा।

अभि० बड़ों का अस्तित्व छोटों से ही है। प्रत्येक छोटी वस्तु आगे चलकर बढ़ती है और बड़ी हुई वस्तु अपने उच्च स्थान तक पहुंच कर

फिर नीचे गिरती है। इसलिए अपनी अधेड़ अवस्था को देखकर पतन की दशा ध्यान मे ला। ज्यादे बातें न बना, बाज आ।

जय० बाज आ! एक चिड़िया का बच्चा, बाज के सामने चहचहाये और बाज बाज आये? बोल क्या चाहता है? लड़ाई लड़कर शीश का बलिदान या प्राणदान?

अभि० प्राणदान? चक्रव्यूह के दरबान, इस प्रकार बोलते हुए तुझे लज्जा नही आती? दुष्ट कौरवों के पक्षपाती, प्रतिघाती, संभल—

मैं तेरी आन तोड़ दूं, अभिमान तोड़ दूं।
तेरा यह धनुष तोड़ दूं, और बान तोड़ दूं॥
जिस व्यूह के मुखद्वार का तू नागराज है।
उस व्यूह और व्यूह की सब शान तोड़ दूं॥

जय० यह अहंकार! अच्छा, आजा राजकुमार।
(दोनों का बाणयुद्ध, फिर असियुद्ध, फिर गदायुद्ध; अन्त में कुश्ती का होना और अभिमन्यु का जयद्रथ को पृथ्वी पर पटक देना, जयद्रथ का मूच्छित होना।)

अभि० (स्वगत) अहंकारी मूछित हो गया। पृथ्वी माता की गोद में सो गया। अब मारना पाप है। मूछित पड़े हुए योधा का शीश काटना वीरों के लिए पश्चात्ताप है। इस कारण इसको यही इसी अवस्था मे छोड़ना चाहिए और चलकर द्रोणाचार्य के बनाए हुए चक्रव्यूह को तोड़ना चाहिए।

दूर यह कांटा हुआ, खुटका निकल बिल्कुल गया।
व्यूह है अब सामने और मार्ग अपना खुल गया॥

(अभिमन्यु व्यूह में प्रवेश करता है और जयद्रथ मूर्छा से जागता है।)

जयद्रथ (स्वगत) हैं, मैं मूच्छित हो गया? एक नादान बालक मुझे मूछित करके व्यूह में चला गया? यदि वह चाहता तो इस मूछित अवस्था, में मेरा सिर काट लेता। परन्तु नही; आखिर अर्जुन का पुत्र है पाण्डु का पवित्र रक्त है, आर्यजाति का गौरव है। धन्य है उस कोख को जिसने ऐसा लाल जाया। धन्य है उस पिता को जिसने ऐसा पुत्र पाया। धन्य है उस जाति को जिसमें ऐसा रत्न जग-

मगाया । धन्य है उस देश को जहाँ ऐसा कर्मवीर जन्म लेकर आया।

हा, मैं सिन्धुराज हो कर, महान वीर होकर, एक बालक से पराजित हो गया, पाषाण पानी में गलित हुआ ।

हस्ती के दन्त उखाड़े जो, जो सिंह से रण मे पोच न हो।
वह बालक द्वारा मूछित हो, तो कैसे उसको सोच न हो ॥

(थोड़ी देर बाद)परन्तु क्या मैं उसे जीता छोड़ दूगा ? नही । वह मूर्ख था जो उसने मुझे छोड़ दिया। मैं उसको नहीं छोड़ सकता। प्रथम तो वह व्यूह ही मे मारा जायगा और यदि वहां से बच गया तो मेरे बाणों से कब बचने पायेगा।

कहा छिप के जायगा, सब ओर भय है ।
यहा भी प्रलय है, वहा भी प्रलय है ।
वह क्या है ? पिता पर भी उसके विजय है,
जयद्रथ के शुभ नाम मे पहले 'जय' है ।

अभी टूटे हुए स्थान को बनाय देता हूं। अभिमन्यु आ गया सो आ गया, अब और कोई नही आ सकता। बोलो, सुयोधन महाराज की जय ।

(जयद्रथ एक ओर को चला जाता है, अभिमन्यु व्यूह तोड़ता हुआ दिखाई देता है ।)

अभिमन्यु विजय, विजय, व्यूह के इस भाग पर भी विजय। (सामने द्रोणाचार्य को देख कर) यह कौन ! आचार्य !! (द्रोण के चरणो मे बाण मार कर) प्रणाम है ।

द्रोणाचार्य धन्य, प्रणाम करने के लिए पहले बाण का लक्ष्य मेरे चरणो पर करना यह अर्जुन जैसे धनुर्धारी के पुत्र वीर अभिमन्यु का ही काम है ।

अभि० आचार्य ! संभल जाइए। अब दादा से नाती का संग्राम है।

द्रोण० पुत्र अभिमन्यु ; मै तुम्हें परामर्श देता हूं कि तुम व्यूह मे से निकल जाओ व्यर्थ प्राण न गवाओ ।

(स्वगत) बनाया व्यूह था दुर्योधनादिक के चिढ़ाने पर।
किसी की क्रोध में बुद्धि नही रहती ठिकाने पर।
उठे थे पाण्डवों में से-किसी को हम मिटाने पर,

नहीं मालूम था आ जायगा बालक निभाने पर।
प्रतिज्ञा और दया मे अब लड़ाई होने वाली है
भलाई में न जाने क्या बुराई होने वाली है ॥

अभि० दादा, दादा, आप क्या कह रहे हैं ?

द्रोण० यही कि तुम लौट जाओ।

अभि० क्या लौट जाऊं ? अर्जुनकुमार होकर उल्टा चला जाऊं ? नहीं आचार्य ! नही; यदि तुम्हें मेरी अवस्था पर कुछ विचार हो तो तुम्ही मेरे आगे से हट जाओ। मेरे निर्दोषी धनुष को गुरु हत्या, ब्रह्महत्या, वृद्धहत्या का दोष न लगाओ। यह हाथ अन्यायी कौरवों के लिए है, आचार्य के लिए नही। अधर्मियों के लिए है आर्य्य के लिए नही।

द्रोण० देखो मैं फिर कहता हूं मान जाओ।

अभि० मैं भी फिर कहता हू मेरे आगे से हट जाओ। तुम मेरे पितृ गुरु हो। तुम्हारा लक्ष्य करने के लिए मैं तैयार नहीं। मेरे बाणों को तुम्हारे पवित्र रक्त के चाटने का अधिकार नही। (कुछ ठहर कर) हैं ! तुम खड़े हो ? कुछ सोच रहे हो ? आचार्य, आचार्य !! क्या चिंता कर रहे हो ?

द्रोण० बेटा ! मुझे अपनी चिन्ता नही। चिन्ता है तो तेरी, ममता है तो तेरी।

अभि० हैं ! चिन्ता !! ममता !!! मेरे लिए। किसको ? आपको ? एक शत्रु के पक्षपाती को ?

द्रोण० पुत्र ! मैं युद्ध मे पाण्डवों का शत्रु हूं परन्तु और सब समय पाण्ड का हितू हू।

अभि० ऐसा है तो आप हमारी सेना का सहार क्यों कर रहे हैं ? कौरवों की ओर से क्यों लड़ रहे हैं ?

द्रोण० केवल अपना धर्म समझकर, वचनबद्ध होकर।

अभि० अच्छा, आज अर्जुन की अनुपस्थिति मे आपने चक्रव्यूह क्यों निर्माण किया है ? क्या आपने जान बूझकर यह अनर्थ और यह अपराध अपने पवित्र उद्देश्य मे नहीं लिया है ? मुझे क्षमा करें। मैं आज प्रतिज्ञा कर चुका हू कि मेरे द्वारा चक्रव्यूह भेदन होगा।

द्रोण० तो मैं भी प्रण कर चुका हू कि उस चक्रव्यूह मे पाण्डवों के किसी वीर का मरन होगा।

अभि० चिन्ता नहीं कर्मवीर के लिए मरने की परवाह नहीं। बस, दादा गुरु ! नही मानते तो समलो। यह भेंट अंगीकार करो। अपने शिष्य की संतान का यह पत्र-पुष्प स्वीकार करो।

(वाण मारता है)

द्रोण० (स्वगत) मुझे आज क्या हो गया है ? मै जब धनुष उठाता हूं तो हाथ फिसलते हैं। वाण प्रत्यंचा से बाहर नही निकलते हैं। और उधर उसके तीर बराबर तीखी मार कर रहे हैं, वार पर वार कर रहे हैं—

है। यह क्या है कान पै गाता कोई यह गीत है ?
युद्ध; यह जो हो रहा है, धर्म से विपरीत है।

अभि० क्यो नही लड़ते, हृदय क्या आपका भयभीत है ?

द्रोण० युद्ध बालक से करे आचार्य, यह अनरीत है।
इसलिए इस युद्ध में, अभिमन्यु ! तेरी जीत है।
(आचार्य का एक ओर को चले जाना)।

अभि० (व्यूह तोड़ते हुए) कहा है ? कहां है ? वह दुराचारी दुर्योधन कहा है ? हमारी बड़ी माता महारानी द्रौपदी की साड़ी उतारने वाला दुष्ट दुःशासन कहा है ?

आ पहुंचा है शीश पर व्यूह फाड़ता सिंह
भगो तुम्हारे कान पै, अब दहाड़ता सिंह॥

(दुःशासन का सन्मुख होना)

दुःशासन नन्हें नादान, यह जरा सी जान और इतनी लम्बी जुबान ? जी में आता है, अभी तुझे पृथ्वी पर सुला दिया जाय, यमपुरी पहुंचा दिया जाय; परन्तु तेरी अवस्था को देखकर दया आती है। तुझ पर हाथ डालते हुए इन हाथो को लज्जा आती है।

अभि० लज्जा ? और उन हाथो को जो एक पतिव्रता सती नारी की साड़ी भरी सभा में उतारते हुए भी न लजाये थे ? शर्म ? और उन शर्मदार हाथो को शर्म जो अपनी भाभी के बाल खीचते हुए, उसे घसीटते हुए, राजसभा मे लाये और फिर भी नही शरमाये थे। उन्ही बड़े बड़े घुंघराले केशों का बदला, आज तेरे इन काले काले बालो से लिया जाएगा। पत्थर का जवाब पत्थर से दिया जायगा।

अभि० चिन्ता नहीं कर्मवीर के लिए मरने की परवाह नहीं। बस, दादा गुरु ! नहीं मानते तो संभलो। यह भेंट अंगीकार करो। अपने शिष्य की संतान का यह पत्र-पुष्प स्वीकार करो।

(वाण मारता है)

द्रोण० (स्वगत) मुझे आज क्या हो गया है ? मैं जब धनुष उठाता हूं तो हाथ फिसलते हैं। वाण प्रत्यंचा से बाहर नहीं निकलते हैं। और उधर उसके तीर बराबर तीखी मार कर रहे हैं, वार पर वार कर रहे हैं—

हैं! यह क्या है कान पै गाता कोई यह गीत है ?
युद्ध यह, जो हो रहा है, धर्म से विपरीत है।

अभि० क्यों नहीं लड़ते, हृदय क्या आपका भयभीत है ?

द्रोण० युद्ध बालक से करें आचार्य, यह अनरीत है।
इसलिए इस युद्ध में, अभिमन्यु ! तेरी जीत है।
(आचार्य का एक ओर को चले जाना)।

अभि० (व्यूह तोड़ते हुए) कहां है ? कहां है ? वह दुराचारी दुर्योधन कहां है ? हमारी बड़ी माता महारानी द्रौपदी की साड़ी उतारने वाला दुष्ट दुःशासन कहां है ?

आ पहुंचा है शीश पर व्यूह फाड़ता सिंह
मृगो तुम्हारे कान पै, अब दहाड़ता सिंह॥

(दुःशासन का सम्मुख होना)

दुःशासन नन्हे नादान, यह जरा सी जान और इतनी लम्बी जुबान ? जी में आता है, अभी तुझे पृथ्वी पर सुला दिया जाय, यमपुरी पहुंचा दिया जाय; परन्तु तेरी अवस्था को देखकर दया आती है। तुझ पर हाथ डालते हुए इन हाथों को लज्जा आती है।

अभि० लज्जा ? और उन हाथों को जो एक पतिव्रता सती नारी की साड़ी भरी सभा में उतारते हुए भी न लजाये थे ? शर्म ? और उन शर्मदार हाथों को शर्म जो अपनी भाभी के बाल खींचते हुए, उसे घसीटते हुए, राजसभा में लाये और फिर भी नहीं शरमाये थे। उन्ही बड़े बड़े घुघराले केशों का बदला, आज तेरे इन काले बालों से लिया जाएगा। पत्थर का जवाब पत्थर से दिया जायगा।

नहीं मालूम था आ जायगा
प्रतिज्ञा और दया में अब
भलाई में न जाने क्या वु

अभि० दादा, दादा, आप क्या कह रहे हैं ?

द्रोण० यही कि तुम लौट जाओ ।

अभि० क्या लौट जाऊं ? अर्जुनकुमार होकर
आचार्य ! नही; यदि तुम्हें मेरी अवस्य
तुम्ही मेरे आगे से हट जाओ । मेरे f
ब्रह्महत्या, वृद्धहत्या का दोष न लगाओ ।
के लिए है, आचार्य के लिए नहीं । अधर्मि
लिए नहीं ।

द्रोण० देखो मैं फिर कहता हूं मान जाओ ।

अभि० मैं भी फिर कहता हूं मेरे आगे से हट जाअ
हो । तुम्हारा लक्ष्य करने के लिए मैं
को तुम्हारे पवित्र रक्त के चाटने का अ
कर) हैं ! तुम खड़े हो ? कुछ सोच रहे हो
क्या चिंता कर रहे हो ?

द्रोण० बेटा !. मुझे अपनी चिन्ता नहीं । चिन्ता
तो तेरी ।

अभि० हैं !. चिन्ता !! ममता !!! मेरे लिए
एक शत्रु के पक्षपाती को ?

द्रोण० पुत्र ! मैं युद्ध में पाण्डवों का शत्रु हूं परन्तु
का हितू हूं ।

अभि० ऐसा है तो आप हमारी सेना का संहार क्यों
की ओर से क्यों लड़ रहे हैं ?

द्रोण० केवल अपना धर्म समझकर, वचनबद्ध होकर ।

अभि० अच्छा, आज अर्जुन की अनुपस्थिति में आपने चक्र
किया है ? क्या आपने जान बूझकर यह अनर्थ अ
अपने पवित्र उद्देश्य में नहीं लिया है ? मुझे क्षमा
प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि मेरे द्वारा चक्रव्यूह भेदन हो

द्रोण० तो मैं भी प्रण कर चुका हूं कि उस चक्रव्यूह में पा
वीर का मरण होगा ।

अभि० चिन्ता नही कर्मवीर के लिए मरने की परवाह नही। बस, दादा गुरु ! नही मानते तो संभलो। यह भेट अंगीकार करो। अपने शिष्य की संतान का यह पत्र-पुष्प स्वीकार करो।

(वाण मारता है)

द्रोण० (स्वगत) मुझे आज क्या हो गया है ? मैं जब धनुष उठाता हूं तो हाथ फिसलते हैं। वाण प्रत्यंचा से बाहर नही निकलते है। और उधर उसके तीर बराबर तीव्री मार कर रहे है, वार पर वार कर रहे हैं—

हैं! यह क्या है कान पै गाता कोई यह गीत है ?
युद्ध यह, जो हो रहा है, धर्म से विपरीत है।

अभि० क्यों नही लड़ते, हृदय क्या आपका भयभीत है ?

द्रोण० युद्ध वालक से करें आचार्य, यह अनरीत है।
इसलिए इस युद्ध में, अभिमन्यु ! तेरी जीत है।

(आचार्य का एक ओर को चले जाना)।

अभि० (व्यूह तोड़ते हुए) कहा है ? कहां है ? वह दुराचारी दुर्योधन कहा है ? हमारी बड़ी माता महारानी द्रौपदी की साड़ी उतारने वाला दुष्ट दुःशासन कहां है ?

आ पहुंचा है शीश पर व्यूह फाड़ता सिंह
मृगो तुम्हारे कान पै, अब दहाड़ता सिंह॥

(दुःशासन का सन्मुख होना)

दुःशासन नन्हे नादान, यह जरा सी जान और इतनी लम्बी जुबान ? जी मे आता है, अभी तुझे पृथ्वी पर सुला दिया जाय, यमपुरी पहुंचा दिया जाय; परन्तु तेरी अवस्था को देखकर दया आती है। तुझ पर हाथ डालते हुए इन हाथों को लज्जा आती है।

अभि० लज्जा ? और उन हाथो को जो एक पतिव्रता सती नारी की साड़ी भरी सभा मे उतारते हुए भी न लजाये थे ? शर्म ? और उन शर्मदार हाथों को शर्म जो अपनी भाभी के बाल खीचते हुए, उसे घसीटते हुए, राजसभा में लाये और फिर भी नही शरमाये थे। उन्ही बड़े बड़े घुघराले केशों का बदला, आज तेरे इन काले काले बालों से लिया जाएगा। पत्थर का जवाब पत्थर से दिया जायगा।

नहीं मालूम था आ जायगा बालक निशाने पर।
प्रतिज्ञा और दया में अब लड़ाई होने वाली है
भलाई में न जाने क्या बुराई होने वाली है ॥

अभि० दादा, दादा, आप क्या कह रहे हैं ?

द्रोण० यही कि तुम लौट जाओ।

अभि० क्या लौट जाऊं ? अर्जुनकुमार होकर उल्टा चला जाऊं? नहीं आचार्य ! नहीं, यदि तुम्हें मेरी अवस्था पर कुछ विचार हो तो तुम्हीं मेरे आगे से हट जाओ। मेरे निर्दोषी धनुष को गुरु हत्या, ब्रह्महत्या, वृद्धहत्या का दोष न लगाओ। यह हाथ अन्यायी कौरवों के लिए है, आचार्य के लिए नहीं। अधर्मियों के लिए है आर्य्य के लिए नहीं।

द्रोण० देखो मैं फिर कहता हूं मान जाओ।

अभि० मैं भी फिर कहता हूं मेरे आगे से हट जाओ। तुम मेरे पितृ गुरु हो। तुम्हारा लक्ष्य करने के लिए मैं तैयार नहीं। मेरे वाणों को तुम्हारे पवित्र रक्त के चाटने का अधिकार नहीं। (कुछ ठहर कर) है ! तुम खड़े हो ? कुछ सोच रहे हो ? आचार्य, आचार्य !! क्या चिंता कर रहे हो ?

द्रोण० वेटा !. मुझे अपनी चिन्ता नहीं। चिन्ता है तो तेरी, ममता है तो तेरी।

अभि० हैं! चिन्ता !! ममता !!! मेरे लिए। किसको ? आपको ? एक शत्रु के पक्षपाती को ?

द्रोण० पुत्र ! मैं युद्ध में पाण्डवों का शत्रु हूं परन्तु और सब समय पाण्ड का हितू हू ।

अभि० ऐसा है तो आप हमारी सेना का संहार क्यों कर रहे हैं ? कौरवों की ओर से क्यों लड़ रहे है ?

द्रोण० केवल अपना धर्म समझकर, वचनबद्ध होकर ।

अभि० अच्छा, आज अर्जुन की अनुपस्थिति में आपने चक्रव्यूह क्यों निर्माण किया है ? क्या आपने जान बूझकर यह अनर्थ और यह अपराध अपने पवित्र उद्देश्य में नहीं लिया है ? मुझे क्षमा करें। मैं आज प्रतिज्ञा कर चुका हू कि मेरे द्वारा चक्रव्यूह भेदन होगा।

द्रोण० तो मैं भी प्रण कर चुका हूं कि उस चक्रव्यूह में पाण्डवों के किसी वीर का मरण होगा।

अभि॰ चिन्ता नही कर्मवीर के लिए मरने की परवाह नहीं। बस, दादा गुरु ! नही मानते तो सम्हलो। यह भेट अंगीकार करो। अपने शिष्य की संतान का यह पत्र-पुष्प स्वीकार करो।

(वाण मारता है)

द्रोण॰ (स्वगत) मुझे आज क्या हो गया है ? मै जब धनुष उठाता हूं तो हाथ फिसलते हैं। वाण प्रत्यचा से बाहर नही निकलते हैं। और उधर उसके तीर बराबर तीखी मार कर रहे हैं, वार पर वार कर रहे हैं—

हैं! यह क्या है कान पं गाता कोई यह गीत है ?
युद्ध यह जो हो रहा है, धर्म से विपरीत है।

अभि॰ क्यों नही लड़ते, हृदय क्या आपका भयभीत है ?

द्रोण॰ युद्ध वालक से करें आचार्य, यह अनरीत है।
इसलिए इस युद्ध मे, अभिमन्यु ! तेरी जीत है।

(आचार्य का एक ओर को चले जाना)।

अभि॰ (व्यूह तोड़ते हुए) कहा है ? कहा है ? वह दुराचारी दुर्योधन कहा है ? हमारी बड़ी माता महारानी द्रौपदी की साड़ी उतारने वाला दुष्ट दुःशासन कहा है ?

आ पहुंचा है शीश पर व्यूह फाड़ता सिंह
भगो तुम्हारे कान पं, अब दहाड़ता सिंह॥

(दुःशासन का सन्मुख होना)

दुःशासन नन्हे नादान, यह जरा सी जान और इतनी लम्बी जुबान ? जी मे आता है, अभी तुझे पृथ्वी पर सुला दिया जाय, यमपुरी पहुंचा दिया जाय; परन्तु तेरी अवस्था को देखकर दया आती है। तुझ पर हाथ डालते हुए इन हाथों को लज्जा आती है।

अभि॰ लज्जा ? और उन हाथो को जो एक पतिव्रता सती नारी की साड़ी भरी सभा मे उतारते हुए भी न लजाये थे ? शर्म ? और उन शर्मदार हाथों को शर्म जो अपनी भाभी के वाल खीचते हुए, उसे घसीटते हुए, राजसभा मे लाये और फिर भी नहीं शरमाये थे। उन्ही बड़े बड़े घुघराले केशों का वदला, आज तेरे इन काले काले बालो से लिया जाएगा। पत्थर का जवाब पत्थर से दिया जायगा।

(दुःशासन को पछाड़ कर उसकी छाती पर बैठ कर)

बाल के बदले में यह सोलह बरस का बाल है।
देख, छाती पै तेरी अब द्रौपदी का लाल है॥

बोल, अब बोल, बाल तोड़ दूं! यह आंखें, जो द्रौपदी को दासी की दृष्टि से देखती थी, फोड़ दूं? यह हाथ, जो अबला पर पड़े थे, मरोड़ दूं? (कुछ सोचकर) मगर नहीं, नहीं, याद आया, तू मेरा भोजन नहीं है महात्मा भीम का शिकार है। तेरी मृत्यु का, उन्हीं के हाथों को अधिकार है। उन्होंने तेरे रक्त से द्रौपदी के बाल सींचने की आन की है। इसलिए तू उनकी प्रतिज्ञापूर्ति का सामान है। जा, दुष्ट, जा, अपनी रानियों के आँसुओं में डूब कर मर जा, मेरे बाणों की धारा में प्राण न गवा।

(छोड़ देता है। दुःशासन परास्त होकर एक ओर को जाता है।)

फसा तो हूं अकेला मैं, मगर इसकी नहीं चिन्ता।
बहादुर लोग प्राणों की, कभी करते नहीं चिन्ता॥

(दुर्योधन का सम्मुख होना)

दुर्योधन — अभिमन्यु! तुझे अपने प्राणों का लोभ नहीं?

अभि० — योधाओं के प्राण हमेशा बाण की नोक पर रहते हैं, उन्हें युद्ध करते समय किसी की माया और किसी का मोह नहीं। आ जाओ, चाचा साहब! आ जाओ। तुमने समझ रखा होगा कि आज अर्जुन दूर है, चक्रव्यूह रचायें और पाडवो पर विजय पायें। परन्तु तुम्हें यह खबर नहीं—

आनंद उसी के राग में है जिसके सर में सच्ची धुन है।
पाण्डव का सारा दल का दल, और बच्चा बच्चा अर्जुन है॥

दुर्योधन — इतना अहंकार?

अभि० — तुम्हारे कानों का पर्दा हिलाने के लिए।

दुर्यो० — यह विचार?

अभि० — तुम्हारी तलवारें म्यान से बाहर निकलवाने के लिए।

दुर्यो० — इन नन्हें नन्हे हाथो में यह लोहा और यह हथियार।

अभि० — हा, अन्यायियों को यमपुरी पहुचाने के लिए आज अकेला अभिमन्यु इस चक्रव्यूह के बन में दहाड़ रहा है। बनैले जीवो के समान तुम्हारे योधाओं को चुन चुन कर मार रहा है। और तुम लजाते

नही ? शरमाते नही ? शोक है तुम्हारे इस ढीठपन पर। धिक्कार है तुम्हारे इस कपट भरे रन पर।

जो जीना चाहते हो तो न जाओ नाग के मुंह में।
नही तो तुम भी मुन जाओगे गिर कर आग के मुंह मे।

दुर्यो० अब नही सहा जाता।

अभि० तो आओ।

(दोनों का लड़ते हुए अन्दर चले जाना)

भीम (रगस्थल मे आकर) भाग गया। मुरदार भाग गया। घाव खाकर, दाव बचाकर, शिकार भाग गया। अधर्मी, आचार्य की सेना की ओर चला गया नही तो इसी समय सारा भुगतान हो जाता। कल्यान हो जाता। (सामने देखकर) अच्छा पिता नही तो पुत्र ही को यमपुरी पहुचाया जायगा। उसका बदला इससे चुकाया जायगा। खड़ा रह दुर्योधन के लाल, खड़ा रह। शृगाल खड़ा रह—

न्याय इस समय ही हो जायगा यौधापन का।
रक्त अर्जुन का प्रबल है या प्रबल दुर्योधन का॥

(अभिमन्यु का दुर्योधन के पुत्र को मारने के लिए एक ओर जाना, दूसरी ओर से बहुत से राजाओं का आना।)

राजा नं० १ क्यो क्या समाचार है?

राजा नं० २ अब कौरव सेना का पूर्ण संहार है।

राजा नं० ३ क्योंकि समस्त कौरव दल, अभिमन्यु के हाथों से लाचार है।

राजा नं० ४ मार है, पुकार है।

राजा नं० ५ धुन्धकार है, धुन्धकार है।

राजा नं० ६ चीत्कार है, हाहाकार है।

राजा नं० ७ सुनो, सुनो, फिर उसी सिंह की दहाड़ है।

(अभिमन्यु का प्रवेश)

अभि० अबाबीलो ! फ़से हो तुम भी अब शिकरे के चंगुल में।
तुम्हे भी यमपुरी जाना हो तो आ जाओ दंगल में॥

(एक ही समय मे अकेला अभिमन्यु इन सबों को परास्त करता है। पूर्ण हुआ। यह अनुष्ठान भी पूर्ण हुआ। व्यूह तोड़ा, कौरव सेना को विध्वंस किया। सप्त अक्षौहणी दल को परास्त कर लिया। अब इस मायाजाल से सुलझने का प्रयत्न करना चाहिए व्यूह के

दुर्योधन — हैं, यह क्या हुआ ? मेरा नन्हा, फूल सा बच्चा पृथ्वी पर !! अभिमन्यु ! अभिमन्यु !

अब तक तो मैं शान्त था, अब चढ़ गया जनून
अब तू जाता है कहाँ, करूं खून का खून ॥

(अश्वत्थामा का प्रवेश)

अश्वत्थामा — महाराज ! महाराज !!

दुर्यो० — भाई अश्वत्थामा ! कहो, कहो । क्या संवाद है ?

अश्व० — इस समय सारी सेना मे विषाद है । अभिमन्यु के हाथ से आज कोशल राज वृहद्वल, मगधराज नन्दन, श्वेतकेतु, अश्वकेतु, चन्द्रकेतु, कुंजरकेतु, महामेघ, सुवर्चा, सूर्यभानु, शत्रुंजय आदि अनकों और अनगिनती राजा मारे जा चुके हैं ।

दुःशासन — मैंने तो पहले ही कहा था, हजारो योद्धा संहारे जा चुके है ।

(शकुनि का प्रवेश)

शकुनि — दुःशासन !

दुःशासन — मातुल शकुनि क्या समाचार है ?

शकुनि — अन्धकार है । अभिमन्यु ने अभी अभी तुम्हारे पुत्र उलूक को भी यमलोक पहुंचाया, उस टिमटिमाते हुए दीपक को भी बुझाया ।

दुःशासन — हाय ! यह तुमने क्या सुनाया । (गिरना चाहता है शल्य संभालता है)

कर्ण — क्षत्रियों की संतान, यह समय रोने-रुलाने का नहीं है । वीरता दिखाने का है ।

शल्य — और बदला चुकाने का है ।

शकुनि — बेशक हमें सब यही राय करनी चाहिए ।

दुर्यो० — अभिमन्यु को मारने का उपाय करना चाहिए।

दुःशासन — उपाय ? उपाय सब से उचित यही है कि हम सब सात वीर यहां उपस्थित है, चौदह हाथो से बचकर निकलना उसके लिए असंभव है । इसलिए सब मिलकर उसे घेरघार लो और मार लो । इसी में अपना हित है—

फंसी हो बीच मे नौका तो सब बल को लगाते हैं ।
कि चौदह हाथ मिल करके एक छप्पर भी उठाते है ॥

द्रोणाचार्य — परन्तु यह धर्म नही अधर्म है । एक सोलह बरस के बालक को सात वीर मिलकर एक समय में मारें तो शर्म है ।

उस भाग पर भी विजय प्राप्त करके बाहर निकलना चाहिए।
उधर ही चलना चाहिए —
अगर रस्ता निकल आय, उधर ही से निकलने में।
तो भय मुझको नही है आज तलवारों के चलने में॥
(अभिमन्यु का फिर एक ओर को जाना और आचार्य, दुर्योधन, कर्ण, शल्य का घबराये हुए आना।)

दुर्यो० आचार्य! अभिमन्यु तो बड़ा अनर्थ कर रहा है। सारथी नहीं रहा, रथ नहीं रहा, शस्त्रों का समूह नही रहा, फिर भी एक धनुष और एक खड्ग पर हजारों में लड़ रहा है।

कर्ण० सर्प की अपेक्षा सर्प का बच्चा बड़ा भयकर है।

द्रोण० उसे बच्चा न कहो। वह अर्जुन से भी बढ़कर है। उठती हुई आंधी में, उमड़ते हुए मेघ में, बढ़ती हुई ज्वाला में जितना वेग है, उससे भी अधिक उस राजकुमार का तेज है। क्या तुमने रामायण में लवकुश की कथा नही पढ़ी है? अर्जुन बली अवश्य है परन्तु वह अब ढलते हुए दिन के समान है और अभिमन्यु प्रातःकाल का अरुणोदय है। इसीलिए वह उससे बढ़कर है।

कर्ण इस समय वह किधर है?

शल्य इधर-उधर, चारों ओर वह ही एक नाहर है।

दुःशासन भाई साहब! इस समय मैं जो समाचार लाया हूं वह बड़ा कष्ट-कर है।

दुर्यो० क्या खबर है?

दुःशासन कहते हुए देह कापती है, जिह्वा कापती है। अभी अभी अभिमन्यु ने महाराज शल्य के कनिष्ठ भ्राता को:..

शल्य मेरे सुखदाता को.... (घबराना)

दुःशासन हा, उसी योधा को संहारा। बुरे समय मे बुरी जगह, बुरी तरह मारा।

शल्य हाय मेरा प्यारा (गिरना चाहता है कर्ण संभालता है)

दुःशासन (दुर्योधन से) और आपके पुत्र लक्ष्मण को भी मौत के घाट उतारा। देखिए वह पड़ा है बेचारा।
आज अभिमन्यु के हाथों सब का सत्यानाश है।
देखिए वह आपके प्रिय पुत्र की भी लाश है॥

दुर्योधन हैं, यह क्या हुआ ? मेरा नन्हा, फूल सा बच्चा पृथ्वी पर !! अभिमन्यु ! अभिमन्यु !

अब तक तो मैं शान्त था, अब चढ़ गया जनून
अब तू जाता है कहाँ, करूं खून का खून ॥

(अश्वत्थामा का प्रवेश)

अश्वत्थामा महाराज ! महाराज !!
दुर्यो० भाई अश्वत्थामा ! कहो, कहो । क्या संवाद है ?
अश्व० इस समय सारी सेना मे विषाद है । अभिमन्यु के हाथ से आज कोशल राज वृहद्‌वल, मगधराज नन्दन. श्वेतकेतु, अश्वकेतु, चन्द्रकेतु, कुंजरकेतु, महामेघ, सुवर्चा, सूर्यभानु, शत्रुंजय आदि अनकों और अनगिनती राजा मारे जा चुके हैं ।
दुःशासन मैने तो पहले ही कहा था, हजारों योद्धा सहारे जा चुके है ।

(शकुनि का प्रवेश)

शकुनि दुःशासन !
दुःशासन मातुल शकुनि क्या समाचार है ?
शकुनि । अन्धकार है । अभिमन्यु ने अभी अभी तुम्हारे पुत्र उलूक को भी यमलोक पहुंचाया, उस टिमटिमाते हुए दीपक को भी बुझाया ।
दुःशासन हाय ! यह तुमने क्या सुनाया । (गिरना चाहता है शल्य संभालताहै);
कर्ण क्षत्रियों की सतान, यह समय रोने रुलाने का नही है । वीरता दिखाने का है ।
शल्य और बदला चुकाने का है ।
शकुनि बेशक हमें सब यही राय करनी चाहिए ।
दुर्यो० अभिमन्यु को मारने का उपाय करना चाहिए।
दुःशासन उपाय ? उपाय सब से उचित यही है कि हम सब सात वीरे यहां उपस्थित है, चौदह हाथो से बचकर निकलना उसके लिए असंभव है। इसलिए सब मिलकर उसे घेरघार लो और मार लो । इसी में अपना हित है—

फंसी हो बीच मे नौका तो सब बल को लगाते हैं ।
कि चौदह हाथ मिल कर एक छप्पर भी उठाते है ॥

द्रोणाचार्य परन्तु यह धर्म नहीं अधर्म है । एक सोलह बरस के बालक को सात वीर मिलकर एक समय में मारें तो शर्म है ।

दुर्यो० शर्म ? इसमें क्या शर्म है ? शत्रु को जिस प्रकार हो सके मार डालें यह हमारा धर्म है। तुम हमारे सेनापति हो। सेनापति को धर्मोपदेश देने का अधिकार नही है। युद्ध की भूमि पर धर्म-अधर्म का विचार नही है।

द्रोण० (स्वगत) सच है बाबा ! जो खटकता था वह सब आगे आ रहा है। इन अधर्मियों का सग मुझे भी खोटे मार्ग पर ले जा रहा है। परतंत्रता की जंजीरों से जकड़ा हुआ यह शरीर अनर्थ करने के लिए लाचार किया जा रहा है। किसी ने ठीक कहा है—

कुसंग उच्च को पैरों तले गिराता है।
कुसग स्वर्ग का जल कीच में मिलाता है।
कुसग जीव को पशु तुल्य कर दिखाता है।
कुसग देवता को भी असुर बनाता है।
कुसंग वाला कहे धर्म तो कहना धिक्कार
और परतंत्र का, ससार में रहना धिक्कार ॥

दुःशासन बस संभल जाइए। वह देखिए, अभिमन्यु इसी ओर आ रहा है।

दुर्यो० हा, यही समय है, जिस प्रकार हो सके घेरो, मारो तुम्हें अधिकार है।

द्रोण० हा, कैसा नीच विचार है।

दुर्यो० अब क्या देरदार है ?

दुःशासन तय्यार है। पक्षी को फांसने के लिए हाथों का जाल तैयार है।

(अभिमन्यु का व्यूह तोड़ते हुए आना)

अभिमन्यु विजय ! विजय ! ! यह दूसरी बार विजय है।

दुःशासन नहीं, यह विजय नहीं, तेरा अन्तिम समय है।

अभि० हारे हुए कायरो, मेरे बाणों की मार खाते खाते, तुम्हारी रणलालसा अभी पूरी नही हुई ? जाओ, जाओ। अपनी माताओ की गोदियों में जाकर सो जाओ। मेरे धन्वा के सामने न आओ—

अब फिर सम्मुख तुम आते हो, धिक्कार है इस मरदानी में।
यदि क्षत्रीपन की लाज हो तो डूबो चुल्लू भर पानी में ॥

दुःशासन पानी ? अभी प्रगट हुआ जाता है कि दूध किधर है और पानी किधर है।

अभि० और बेईमानी किधर है ? अरे तुम बार बार पाण्डवों के पराक्रम से पराजित हो कर मुह छिपाते हो और बार बार बेशर्मी के साथ सिर उठाते हो। यह वीरों का कर्म है ? निशाचरों, तुम कुरुकुल के प्रकाशमान सूर्य नही हो, स्याही वाले मयंक हो। वीर नही हो, वीर कलंक हो।

दुर्यो० तुम बड़े सुपूत हो जो अपने बड़ों को इस प्रकार गालियाँ सुनाते हो बार बार जुबान चलाते हो।

अभि० जब बड़े अपनी बड़ाई पर न जायें, अपने ही हाथों अपना बड़पन गंवायें तो इसमें छोटों का क्या दोष है ?

दुर्यो० नहीं, हम आज भी तुम्हारे साहस से प्रसन्न है और हमें तुम्हारी वीरता पर संतोष है।

अभि० ऐसा है तो भतीजे की रगरग में भी चाचा की मुहब्बत का जोश है।

दुर्यो० सच्चा सत्कार है ?

अभि० अगर आपको बालक पर सच्चा प्यार है तो बालक का शीश भी आपको प्रणाम करने के लिए तैयार है।

दुर्यो० यह बात है ?

अभि० यही।

दुर्यो० तो अपनी खड्ग को फेंक और अपने इस धनुषबाण को फेंक और हमारी गोद में बैठकर वैर की पीड़ा को प्रेमाग्नि से सेक।

अभि० तथास्तु। जा, मेरी तलवार। तू बहुत रक्त पी चुकी अब विश्राम कर। (तलवार फेंक देता है) बाणो से भरे हुए निषंग, तू भी विश्राम कर। (तरकस उतारता है) धनुष ! तू भी पयान कर (धनुष डाल देता है)। आज कौरव और पाण्डव में सन्धि हुई। वैर-वाटिका मे प्रेम-पुष्पों की सुगन्धि हुई। (मिलने को आगे बढता है)

दुर्यो० हाँ, लेना, पकड़ना, घेरना जाने न पावे।

(सब मिलकर अभिमन्यु को पकड़ लेते है।)

अभि० अरे तुम सब पर धिक्कार है।

दुर्यो० ऊंह, हमारी ज़रा सी युक्ति पर तूने यह विश्वास कर लिया कि बरसो की भभकती हुई आग ठण्डी हो जायगी; कौरव पाण्डवों में संधि हो जायगी। इस भोलेपन पर बलिहार है।

अभि० अरे जो बहादुर होते हैं, वह भोले ही होते है। भोलापन तो शूर-

वीरों का शृंगार है। (द्रोणाचार्य से) क्यों दादागुरु ! तुम्हारे होते यह अत्याचार है ?

यह वीर ! वीर-कलंक है, गुरुदेव !! तुम बलवान हो।
आचार्य हो, धर्मज्ञ हो, बूढ़े हो और सुजान हो।
तुम जान के रणरीति करते कर्म आज अज्ञान का।
बोलो गुरु ! बोलो, यही क्या धर्म है बलवान का।।

द्रोण० मैं जानता हूं पुत्र तुझ पर घोर अत्याचार है।
पर क्या करूं अपने वचन का आज मुझ पर भार है।
जकड़ा खड़ा हूं इस समय परतंत्रता की डोर मे
मेरे लिए मेरी प्रतिज्ञा आज कारागार है।।

दुर्यो० अब हमारी दया पर तेरे जीवन और मरण का आधार है। बोल साप के बच्चे ? नदी किनारे के बिरवे। अब क्या चाहता है ? मौत या प्राणों की भीख ?

अभि० भीख और तुम जैसे नर-पिशाच से ? भीख मांगना भिखारियों का काम है ? क्षत्रिय, सच्चे क्षत्रिय ऐसी भ्रष्ट भीख कभी नहीं ले सकते है।

दुर्यो० नही, तू जो मांगे वह अब भी हम तुझे दे सकते है।

अभि० (कुछ ठहर कर) दे सकते है ?

दुर्यो० हा, दे सकते हैं।

अभि० तो वह उस तरफ़ पड़ी हुई मेरी तलवार मुझे दे दो। यदि मैं सुभद्रा का लाल हूं तो उस तलवार से तुम सबको मारता हुआ, तुम्हारी सेना को चीरता फाड़ता, हुआ तुम्हारे व्यूह को विदारता हुआ पूर्ण विजय पाऊंगा और निर्भय होकर अपनी सेना की ओर जाऊंगा।

द्रोण० धन्य ! मरते मरते भी यह दान मांगना वीर अभिमन्यु की ही शान है। देखो सच्चे बहादुरों की यह आन-बान है।

शकुनि (दुर्योधन से) ऐसा न कीजियेगा नही तो लाभ के स्थान में महान हानि है।

दुःशासन तलवार उन हाथों मे पहुंची और बस मैदान ही मैदान है।

दुर्यो० नही, सुयोधन क्या ऐसा अज्ञान है।

अभि० क्यों दान देने वाले दानियो ! अब क्या देरदार है ?

दुर्यो० ऐसा कठिन दान देने के लिए सुयोधन लाचार है।

कैखुसरो नवरोज जी कावराजी

सोहराब मोदी 'हैमलेट' की भूमिका में
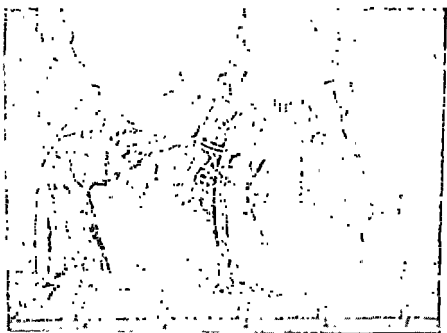
रोम्यो और जूलियट, न्यू हाई स्कूल, बम्बई

शेक्सपीयर के नाटकों में प्रयोग की गई वेषभूषा
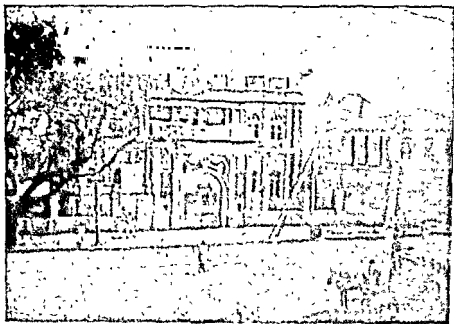
विक्टोरिया थियेटर—बम्बई

एक धार्मिक नाटक का ड्राप सीन

न्यू पैराडाइज़ विक्टोरिया थियेटर कम्पनी

बेंजमिन 'हैमलेट' की भूमिका में

बम्बई ऐमेच्योर थियेटर—१७७६ में

थियेटर डायरी का एक पृष्ठ

कावसजी पालनजी खटाऊ की 'एलफ्रेड नाटक मण्डली' का एक विज्ञापन